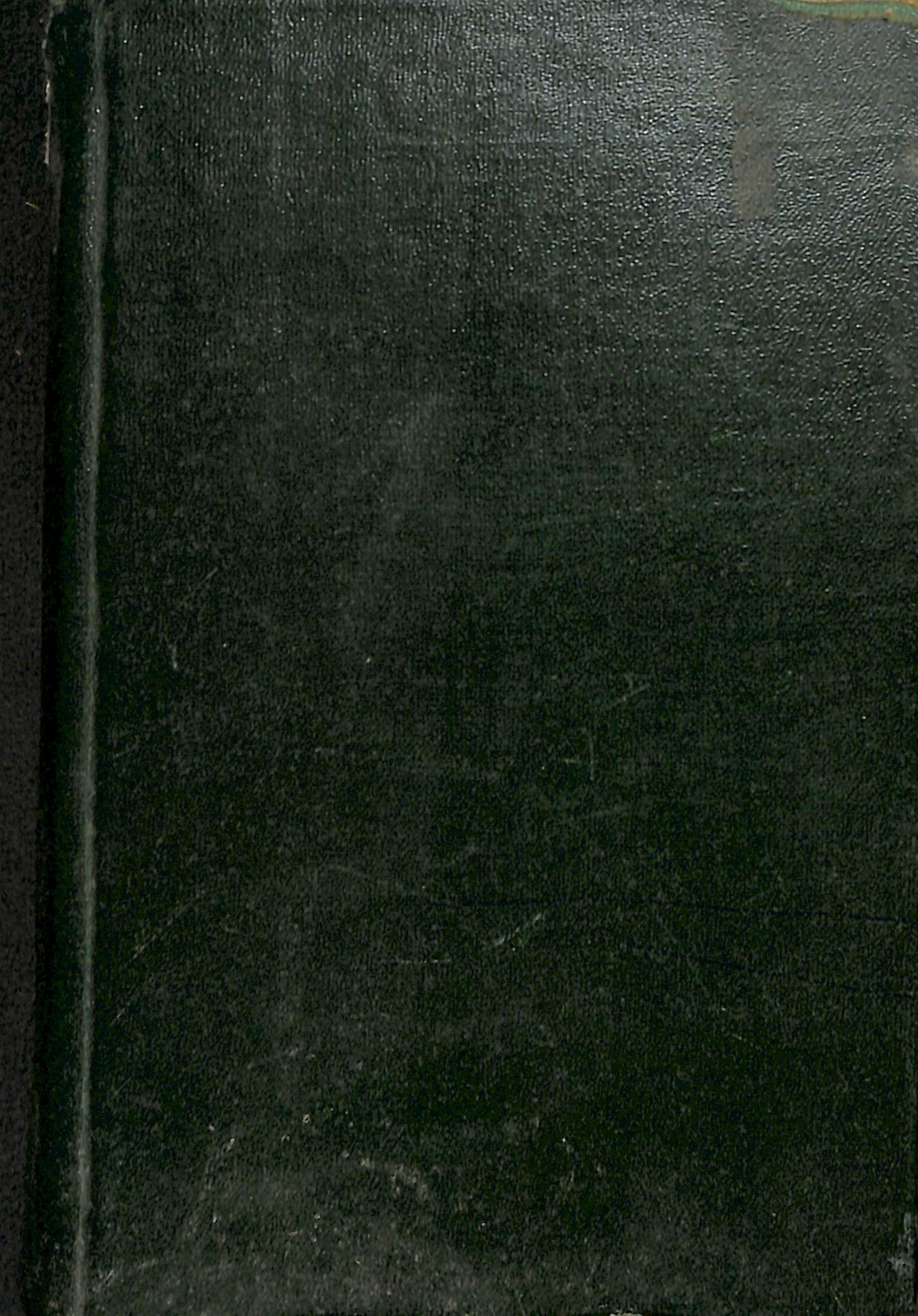


ॐ

सामवेदीय
श्रीछान्दोग्योपनिषत्

अष्टाध्यायीस्वरूप

पंडित श्रीपीतांबरशर्मकृत

समूल सटीक संपूर्ण शंकरभाष्यानुसार

वेदांतदीपिका

नामक भाषा टीकासहित

कर्त्तानैं सर्व मुमुक्षुनके हितार्थ



मुंबाईमैं

जावजी दादाजी इनोंके

"निर्णयसागर" छापखानेमैं छपवायके प्रकट करी.

"श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" ॥ १ ॥

संवत् १९५० । शके १८१५ । सन १८९४.

मौल्यमात्र रुपैया ६

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

प्रस्तावना ।

सकलशास्त्रनका मूलभूत प्रमाणशिरोमणि अपौरुषेय जो च्यारी वेदनका कदंब है सो शब्दसमूहरूप भूमिकामैं सरोवरकीन्यांई सरोवर है । तिसमैं सहस्रशाखारूप पंखुरिनकरि युक्त सामवेद जो है सो भगवद्रूप(भगवत्विभूति) होनेकरि उत्तम होनेतैं सरोवरगत कमलकीन्यांई कमल है । तिस सामवेदके मध्य रहस्यरूप होनेतैं कमलगत केसरकीन्यांई केसर यह छांदोग्योपनिषद् है ॥ तामैं ज्ञानरूप मकरंदकीन्यांई मकरंद (सुगंध) है ॥ छंदनके गायक जे सामग ब्राह्मण हैं वे छंदोग कहियेहैं । तिनकी संबंधिनी जातैं यह उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्याहै । यातैं यह छांदोग्योपनिषत् कहियेहै ॥ ताके प्रपाठक नामवाले अध्याय दश हैं । तिनमैं पहिले दो अध्याय कर्मरूप विषयवाले हैं ताका जिज्ञासुजनोंकूं उपयोग नहीं है । यातैं तिनकी व्यावृत्ति

करिके पीछले अष्ट अध्यायनकूं उपनिषद्रूप जानिके सकलाचार्यमुकटमणि श्रीमच्छंकराचार्य । भाष्यरूप व्याख्यानकरि युक्त करतेभये । तिस भाष्यकी बी श्रीमत् आनंदगिरि स्वामीनैं संस्कृत व्याख्या करी है॥यामैं पंच अध्यायपर्यंत चित्तशुद्धिअर्थ अनेकविध उपासना निरूपण करी हैं । वे ज्ञानशेष हैं औ अंतिम षष्ठ सप्तम औ अष्टमरूप तीनि अध्यायनविषै क्रमतैं उत्तम मध्यम अरु कनिष्ठ अधिकारीनकूं तत्वज्ञानकी उत्पत्तिअर्थ तत्वका निरूपण कियाहै ॥ इस रीतिसैं संपूर्ण इस छांदोग्योपनिषत्का अद्वैतब्रह्मके निरूपणमैं तात्पर्य है ॥ याके अद्वैतविषै तात्पर्यके निर्णायक उपक्रमोपसंहारकी एकता आदिक षट् लिंगनका कथन हमनैं श्री बृहदारण्यकोपनिषत्के तथा ईशाद्यष्टोपनिषत्के भाषाव्याख्यानके आरंभमैं जो श्रुतिषड्लिंगसंग्रहनामक लघु ग्रंथ धरिके छपवाया है तामैं कियाहै॥जैसैं हमनैं ईशाआदिक अष्ट औ नवम बृहदारण्यक । इन नव उपनिषदनका भाषा व्याख्यान कियाहै । तैसैं दशोपनिषदनके व्याख्यानकी संपन्नताअर्थ याका

व्याख्यान बी कर्तव्य है । यह जानिके हमनैं इस छांदोग्योपनिषत्‌रूप मूलका औ संपूर्ण शंकरभाष्यका औ संपूर्ण आनंदगिरि टीकाका हिंदुस्थानीभाषामैं यथामति व्याख्यान किया है। सो महज्जनोंकूं प्रमोदका हेतु होहू औ जिज्ञासुजनोंकूं सर्व अनर्थकी निवृत्तिस्वरूप परमानंदकी प्राप्तिका कारण होहू ॥ याका विषय याके पीछे धरी अनुक्रमणिकामैं औ प्रति अध्यायके अरु प्रतिखंडके आरंभमैं अरु सम विषम पृष्ठनके उपरि क्रमसैं धरे अध्याय अरु खंडनके प्रसंगनमैं स्पष्ट लिख्या है ॥ यामैं प्रति अध्यायके आरंभमैं जो सारे अध्यायका विषय धर्या है ताके अंतमैं जो १२ आदिक अंक धरै हैं वे तिस तिस अध्यायके खंडनकी संख्याके सूचक हैं औ प्रतिखंडके आरंभमैं जो खंडका विषय धर्या है ताके अंतमैं जे अंक हैं वे खंडनकी कंडिकाकी संख्याके सूचक हैं औ यामैं जे ? प्रश्नचिन्ह औः—निर्देशचिन्ह आदिक चिन्ह धरेहैं तिनके आकार हमारे किये अन्य ग्रंथनकी प्रस्तावनामैं लिखे हैं। तहां देख लेनें॥

इहां मूलविषै संधिभिन्न योग्यस्थलमैं निर्देश चिन्हके ठिकाने— ऐसा चिन्ह। तथा? ऐसा प्रश्नचिन्ह औ " " ऐसा अवतरणचिन्ह अरु! ऐसा उद्गारचिन्ह ये सुबोधके अर्थ धरेहैं॥ यामैं दृष्टिदोषतैं कहूं अशुद्ध होवै तो महाशय ब्रह्मनिष्ठ सज्जनोंनैं सुधारिके वांचना। यह विनति है॥ ॥

पंडित पीतांबर पुरुषोत्तमजी।

श्रीछान्दोग्योपनिषत्प्रथमप्रपाठकस्यानुक्रमणिका १



श्रीछान्दोग्योप० द्वितीयप्रपाठकस्यानुक्रमणिका २

श्रीछान्दोग्योपनिषदस्तृतीयप्रपाठकस्यानुक्रमणिका ३

खंडांक. प्रपाठक–खंडविषय. खंड-कंडिका. पृष्ठांक.

अथ तृतीयप्रपाठक ३

श्रीछान्दोग्योपनिषच्चतुर्थप्रपाठकस्यानुक्रमणिका ४

अथ चतुर्थप्रपाठक ४

श्रीछान्दोग्योपनिषत्पंचमप्रपाठकस्यानुक्रमणिका ५

अथ पंचमप्रपाठक ५

प्राणके ज्येष्ठता श्रेष्ठतादि अन्न वस्त्र । पंचाग्निविद्या । गतित्रय । वैश्वानरोपास्ति । विद्वदग्निहोत्र ॥ २४ ॥

श्रीछान्दोग्योपनिषत्षष्ठप्रपाठकस्यानुक्रमणिका ६

अथ षष्ठप्रपाठक ६

श्रीछान्दोग्योपनिषत्सप्तमप्रपाठकस्यानुक्रमणिका ७

अथ सप्तमप्रपाठक ७

श्रीछान्दोग्योपनिषदष्टमप्रपाठकस्यानुक्रमणिका ८

अथाष्टमप्रपाठक ८

इति श्रीछांदोग्योपनिषदनुक्रमणिका समाप्ता ॥

ॐ

तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्री

सामवेदीय

छान्दोग्योपनिषत्

पंडित पीतांबरजीकृत समूल भाष्य-भाषादीपिका

तथा

आनंदगिरिकृत टीकाटिप्पणी-सहिता प्रारभ्यते ॥

॥ भाषाकर्तृकृतमंगलाचरण-

पूर्वकग्रंथारंभप्रतिज्ञा ॥

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥

या वै संवित्स्वरूपा तदवगतिमया

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्य-भाषा-

दीपिका प्रारभ्यते ॥

प्रथमप्रपाठकगत—प्रथमः खंडः ॥ १ ॥

भाषाकर्त्ताकृत मंगलाचरणपूर्वकग्रंथारं-

भकी प्रतिज्ञा ॥ ४ ॥

टीकाः—जो सरस्वती विद्वानोंके अनुभवकरि

वाङ्मुखाक्षादिरूपा सर्वं वै दृश्यजातं
रजतमिव यतो बाधितत्वान्न भिन्नम् ॥
त्रय्या गीता द्विजेंद्रैः स्वसुकृतिसमये

प्रसिद्ध संवित् जो चेतनरूप ज्ञान तिसस्वरूप है औ "घट है पट है" इसरीतिसैं अज्ञ तज्ज्ञ साधारण सामान्यतैं होनेवाली जो ता ब्रह्मकी अवगति कहिये वृत्तिज्ञान है औ "मैं चेतन आनंद नित्यशुद्ध नित्यमुक्त असंगादिरूप हूं" इस रीतिसैं विशेषतैं विद्वान्के चित्तविषै होनेवाली जो ताब्रह्मरूप संवित्की अवगति तिसमय है औ वाक् है मुख्य जिनाविषै ऐसे जे अक्ष कहिये इंद्रिय अरु आदिशब्दकरि तिनके शब्दादि विषय तिसरूप है औ सर्व प्रसिद्ध दृश्यका समूह शुक्तिरजतकी न्यांई बाधित (नित्यनिवृत्त) होनेतैं जिसतैं भिन्न नहीं है औ जो सरस्वती ब्राह्मणादि त्रिवर्णोंकरि त्रयी जो ऋगादि चतुर्वेदरूप विद्या तिससैं गायन करी है औ जो सरस्वती शास्त्रकारोंकरि स्वकीय श्रेष्ठ काव्यरचनाके समयविषै स्मरण करियेहै। तिस स्वस्वरूपभूत औ स्वसाक्षात्कारद्वारा भव जो संसार ताके भयकूं

स्तूयते शास्त्रकृद्भिर्वंदे तां स्वस्वरूपां भवभयसुहरां भारतीं ब्रह्मरूपाम्॥ १॥

ग्लौँगंबीजार्णवैर्यं सुहृदयजनता सिद्धिकामा प्रपेदे यो वै सर्वैर्मनुष्यैः सकलसुरपुरः पूज्यते सर्वकार्ये॥ चित्संविन्नागवक्त्रः सरतिकवरदः सिद्धिबुद्धिप्रयुक्तो वंदे तं ब्रह्मरूपं गणपतिमभयं श्रीशिवासूनुमग्र्यम् ॥ २ ॥

सुष्ठुप्रकारसैं हरणकरनेहारी भारती (सरस्वती)कूं मैं अभेदभावकरि वंदन करूंहूं ॥ १ ॥

टीकाः—ग्लौँ अरु गं आदिक बीजरूप वर्णवाले मंत्रोंकरि जाकूं सिद्धिकी कामनावाला शुद्धहृदयवाले जनोंका समूह प्राप्त होता भया औ जो प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ मनुष्यनकरि सर्व कार्यविषे सकल देवनतैं पूर्व पूजित होवैहै औ जो चेतनरूप ज्ञान वृत्तिज्ञान अरु गजवदनरूप है औ जो प्रीतिसहित जनोंकेअर्थ वरदेनेहारा है औ सिद्धिबुद्धिरूप स्वशक्तिनकरि युक्त है। तिस स्वस्वरूपसैं अभिन्न भयर-

योो वै वेदप्रणेता ऋषिमुनिवपुषा सर्वलोकोपदेष्टा यश्चेशो देशिकेशो सकलजनहृदिस्थो हृषीकेशरूपः ॥ स्वं शिष्यं स्वस्वरूपं स्वयमुपदिशति स्वीय-

---

हित ब्रह्मरूप गणपतिके तांई मैं अभेदभावकरि वंदन करूंहूं ॥ २ ॥

टीकाः—जो परमेश्वर प्रसिद्ध वेदका कर्त्ता है औ जो सनकादिक वसिष्ठ व्यास शुकदेव औ भगवत्पूज्यपाद श्रीशंकराचार्यआदिक ऋषि अरु मुनिवरोंके स्वरूपसैं सर्वलोकनका उपदेष्टा भयाहै औ मुमुक्षुनके चित्तमैं जो उपासनाकालविषै ईश्वररूप औ उपदेशकालविषै गुरुरूप औ बोधकालविषै सकल जनोंके हृदयविषै स्थित हृषीक जे इंद्रिय तिनका ईश कहिये प्रकाशक आत्मा तिस रूप प्रतीत होवैहै औ जो स्वस्वरूपभूत अपने शिष्यकूं अरूप कहिये स्थूलादि आकाररहित अपने रूपकूं आचार्यमूर्त्तिविषै स्थित होयके आप प्रसिद्ध उपदेश करैहै। तिस

रूपं ह्यरूपं वंदे तं देशिकेंद्रं मुनिवरवपुषं रामबापुस्वरूपम् ॥ ३ ॥

जंतून् भ्रांतान् भवाब्धौ नरवरवपुषो दुष्टमार्गे प्रसक्तान् सन्मार्गे नेतुकामः श्रुतिवचनगणं व्याचचक्षे मुनीशः ॥ मंदानां बोधदात्रीं नृवचनरचनां तस्य

मुनिवररूप राम (अखंडानंदसरस्वती) अरु बापुसरस्वतीस्वरूप गुरुराजकूं मैं देहाभिमान छोडिके वंदन करूंहूं ॥ ३ ॥

टीकाः—भवसागरविषै भ्रमण करते हुये औ काकतालीय न्यायवत् श्रेष्ठ (ज्ञानाधिकारी) मनुष्यदेहकूं प्राप्तभये औ गड्डूलिका प्रवाह न्यायकरि दुष्ट मार्गविषै प्राप्त भये जंतुनकूं श्रेष्ठमार्गविषै ल्यावनेकी कामनावाले मुनीश जे श्रीशंकराचार्य। सो श्रुतिवचनोंके समूहकूं व्याख्यान करते भये॥ तिस संस्कृत वाणीरूप व्याख्यानविषै मंदबुद्धिवाले मनुष्यनके मोह(भ्रम)की निवृत्तिअर्थ ता संस्कृत व्याख्यानकी प्राकृत भाषारूप रचना करनेकूं प्रवृत्त भया जो मैं। सो पूर्व ईशा केन क-

कर्तुं प्रवृत्तश्छान्दोगाख्यश्रुतिं वै न्ववचनकृतया टीकयाऽऽढ्यां करोमि ॥ ४ ॥

ठवल्ली प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेय औ बृहदारण्यक। इन नव उपनिषदनका भाष्य अरु टीका सहितका जैसें–होवै तैसें भाषारूप व्याख्यान करिके। अब सामवेदविषै प्रसिद्ध औ भाष्य अरु आनंदगिरिस्वामीकृत टीकारूप युगल व्याख्यानोंकरि युक्त श्रीछांदोग्यनामक उपनिषद्कूं भाषारूप व्याख्याकरि युक्त करताहूं ॥ ४ ॥

अथ सामवेदीय
श्रीछान्दोग्योपनिषत्

प्रथम प्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमि-

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषा दीपिकायाः

प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थः—"ॐ" ऐसे इस उद्गीथरूप अक्ष-

अथ प्रथमप्रपाठकाऽऽरंभः ॥ १ ॥

सामावयवउद्गीथ (ॐकार) आदिकके उपासन १३

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषा-दीपिकायाः

प्रथमप्रपाठकस्य–प्रथमः खंडः ॥ १ ॥

रसतमत्वादित्रिगुणविशिष्ट ॐकारका परमात्मबुद्धि-सैं उपासन १०

॥ भाष्यभूमिका भाषा ॥

"ओमित्येतदक्षरं ("ॐ" ऐसे इस अ-

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदो भाष्यभाषादीपिकायाः प्रथम-प्रपाठकगतप्रथमखंडस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

१ छंदोग (छंदनके गायनकरनेवाले सामवेदी)नके उप-

ति ह्युद्गायति। तस्योपव्याख्यानम्॥१॥

रकूं उपासनकरै। "ॐ" ऐसें जातें उद्गा-

क्षरकूं)" इहांसें आरंभ करिके अष्ट अध्याय-
वाली सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद् है। ता-[2]
का [3]संक्षेपतैं [4]सरलविवरणरूप यह अल्पग्रंथ

निषद्के भेदकूं व्याख्यान करनेकूं इच्छते हुये भगवान् भाष्यकार। करनेकूं वांछित तिसग्रंथकी परिसमाप्ति अरु प्रचयके विरोधि जे पाप तिनकी नाशकी सिद्धि अर्थ ॐ कारके उच्चारणरूप मंगलाचरणकूं संपादन करतेहुये व्याख्यान करनेयोग्य ग्रंथके स्वरूपकूं दिखावैहैं॥

२ प्रयोजनसहित व्याख्यानकूं प्रतिज्ञा करैहैं॥

३ ननु शारीरक (ब्रह्मसूत्रभाष्य) विषै बहुतस्थलोंमें विस्तरकरि व्याख्यान किया होनेतें या ग्रंथका भाष्य अबी क्यूं आरंभकरिये है? तहां कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—विस्तरसें व्याख्यानके किये हुये बी संक्षेपतैं या उपनिषद्का व्याख्यान सम्यक् करिये है॥ काहेतें विस्तृत अर्थके संक्षेप करिके ग्रहण हुये सुखसें ग्रहण होनेतें॥

४ किंवा:—यह उपनिषद् तहां पाठक्रमके अनुसार व्याख्यान करी नहीं। प्रकृतविषय तो पाठके क्रमकूं न उल्लंघन करिके व्याख्यान करियेहै। तातें यह भाष्य युक्त है। ऐसें कहैहैं॥ इहां ऋजु कहिये पाठक्रमके अनुसारि औ विवरण कहिये अर्थका स्पष्टीकरण। प्रकृत उपनिषद्का जिसभाष्यविषै है सो भाष्य ऋजु विवरण है। यह अर्थ है॥

५ ननु पाठक्रमकूं आश्रय करिके बी द्राविड भाष्य किया है। तातें इस भाष्यसें क्या है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

यनकरैहै। ताका उपव्याख्यान [प्रवृत्त होवैहै] ॥ १ ॥

अर्थके जिज्ञासुनकेअर्थ आरंभ करियेहै ॥ तहां संबंधः—समस्त कर्म अधिगत (ज्ञात भया)

---

६ ननु तथापि विशिष्ट अधिकारीके अभावके हुये कैसैं यह आरंभ करिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह भावहैः—जे प्रसिद्ध मुमुक्षु या उपनिषद्के विवक्षित अर्थकूं जाननेकूं इच्छते हैं तिनकेअर्थ यह भाष्य प्रस्तुत करियेहै। ऐसैं हुये विशिष्ट अधिकारीके संभवहुये ताका आरंभ संभवै है औ ता अधिकारीकूं प्रकृत उपनिषद्के अर्थका परिज्ञानरूप अवांतर (परम फलका साधनरूप) फल होवैहै अरु तिसद्वारा कैवल्य (मोक्ष)रूप परम फल होवैहै ॥

७ ननु उपनिषद्कूं कर्म विधिकी शेष (उपकारक) होनेतैं ता (कर्मविधि)के व्याख्यानकरिहीं कृतव्याख्यानवाली होनेतैं पिष्टपेषण न्यायके प्रसंगतैं ताके भाष्यसैं जो करनाथा सो किया? यह आशंका करिके। उपनिषद् अरु कर्मकांडके शेषशेषी (साधनसाध्य) भावविषै प्रमाणके अभावतैं ऐसैं मतिकहो। या अभिप्राय करिके वेदके पूर्वोत्तर कांडनके नियमित पूर्व अपर भावके किये संबंधकूं प्रतिज्ञा करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिस व्याख्यान करनेकी योग्यताकरि प्रस्तुत उपनिषद्का कर्मकांडके साथि संबंध कहियेहै ॥

८ कौंन यह संबंध है? इस अपेक्षाके हुये। ताके कहनेकी इच्छाकरि कर्मकांडके अर्थकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—विहित औ प्रतिषिद्ध कर्म पूर्वकांडविषै सिद्धहै ॥

है। सो प्राणादि देवताओंके विज्ञानसहित हुया अर्चिरादि मार्गसैं कार्यब्रह्मकी प्राप्तिका कारण है औ केवल कर्म धूमादि मार्गसैं चंद्रलोककी प्राप्तिका कारण है औ स्वभावसैं प्रवर्त्त उक्त

---

९ तहां प्रसिद्ध विहितकर्म समुच्चित अरु असमुच्चित इस भेदकरि द्विविधहै। ऐसैं अंगीकार करिके समुच्चितके फलकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—प्राण औ अग्नि इत्यादिक देवता हैं तिनका विज्ञान कहिये उपासन। तिसकरि समुच्चित (मिलित)जो अग्निहोत्रादि कर्म। सो अर्चिआदिककरि उपलक्षित देवयान मार्गसैं कार्यब्रह्म (हिरण्यगर्भ) की प्राप्तिविषै कारण है। परंतु ब्रह्मकी प्राप्तिविषै नहीं। काहेतैं ता ब्रह्मकूं गंतव्यताके अभावतैं औ कार्यब्रह्मकीहीं गंतव्यता (गमनकरनेकी योग्यता)कूं बादरीअधिकरणविषै सिद्धान्तकूं प्राप्तकरी होनेतैं। तातैं समुच्चित विहित (शुभ) कर्म परम पुरुषार्थका हेतु नहीं है ॥

१० तिसीहीं असमुच्चित कर्मके फलकूं कहैहैं ॥

११ विहितकी गतिकूं कहिके अब निषिद्धकी गतिकूं कहैहैं ॥ इहां ऐसैं अन्वय है:—स्वभाव करि कहिये शास्त्रकी अपेक्षासैं विना प्रकृतिके वशतैंहीं प्रवृत्त जे यथेष्टचेष्टा (यथेष्टाचरण)विषै रसिक हैं तिन कर्मउपासनाके अभावतैं देवयान अरु पितृयाण मार्गविषै अनधिकारीनकूं तिर्यक् अवस्थावाली क्षुद्रजंतुरूप अधोगति "अनंतर इनदोनूं मार्गनमैंसैं किसीकरि बी नहीं जाते किंतु वे ये क्षुद्र वारंवार आवर्त्तनवाले भूत होवैहैं। जायस्व म्रियस्व (जन्ममरणकूं पाव) यह

दोनूं मार्गनतैं परिभ्रष्ट पुरुषनकी कष्टरूप अ-
धोगति कही [12]औ उक्त दोनूं मार्गनमैंसैं एक
मार्गविषैबी आत्यंतिकी पुरुषार्थकी सिद्धि

तृतीयस्थान है" इस वाक्यकरि कही है । अपुनरावृत्ति (मुक्ति) दुर्लभ है ॥

१२ ननु उक्त दोनूंमैंसैं एकहीं मार्गविषै अधिकारीनकूं परमपुरुषार्थ होवैगा । काहेतैं "प्रसिद्ध ये दो शुक्ल कृष्णरूप जगत्की शाश्वत (नित्य) गतियां संमतहैं" इस गीता स्मृतिकरि तिन दोनूं मार्गनकी नित्य फलवान्ताके निश्चयतैं ? यह-शंका भई । यातैं कहैहैं ॥ इहां यह शंका है:—ननु उक्त दोनूं मार्गनतैं भ्रष्ट पुरुषनकूं पुरुषार्थके अभावहुये बी दोनूं मार्गनके मध्य एकके होते वा पुरुषार्थ होवैगा ? ऐसैं जो कहै । तहां प्रथम देवयान मार्गरूप निमित्तकेहुये निरतिशय पुरुषार्थकी सिद्धि नहींहै । काहेतैं "इस मानव आवर्त्तकूं जे आवर्त्तन नहीं करैहैं तिनकूं इहां पुनरावृत्ति नहीं होवैहै" इस वाक्यविषै "इमं (इसकूं)" औ "इह (इहां)" ऐसे विशेषणतैं औ "एक मार्गकरि अनावृत्तिकूं जाताहै" इसगीतास्मृतिविषै अनावृत्तिकूं इसकल्प विषयक होनेतैं अन्यकल्पविषै बी अनावृत्तिके हुये बी विशेषणकी व्यर्थतातैं औ पितृयाण मार्गके हुये बी निरातिशय पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं है काहेतैं "इसीहीं मार्गकेतांई फेर निवर्त्त होतेहैं । अरु अन्य मार्गकरि पुनरावृत्तिकूं पावताहै" ऐसे चंद्रस्थलतैं स्खलन (पतन)के निश्चयतैं । तातैं कर्मके वशतैं आत्यंतिक पुरुषार्थ-की प्राप्ति नहींहै । यह अर्थ है ॥

नहीं होवैहै। ऐसैं है[१३] यातैं कर्मनिरपेक्ष (कर्मकी अपेक्षासैं रहित) अद्वैत आत्माका विज्ञान जो है सो उक्त संसारकी तीन गतिनके कारणके उपमर्द्दन (निराकरण) करि कहनेकूं योग्य है। यातैं उपनिषद् आरंभ करियेहै॥ ॥ [१४]ओं अ-

---

१३ ऐसैं कर्मफलकूं अनुवाद करिके फलितभये संबंधकूं कहेहैं॥ इहां यह अर्थ है:—उक्तरीतिकरि कर्म जातैं निरतिशय पुरुषार्थका हेतु नहीं है। यातैं साधनसहित कर्मतैं औ ताके फलतैं विरक्त अरु निरतिशय पुरुषार्थकूं कांक्षाकरनेवालेकूं ता (मोक्ष)का साधन केवल आत्मज्ञान है। सो संसारके अंतर्भूत पूर्वोक्त तीन गतिनके हेतु कर्मके अरु ताके हेतुनके निराकरणकरि कहनेकूं योग्य है। या अभिप्रायकरि यह उपनिषद् आरंभ करियेहै॥ जातैं कर्मके अनुष्ठानतैं निरतिशय पुरुषार्थ नहीं प्राप्त होवैहै ताकी "सो जैसैं इहां कर्म रचितलोक क्षीण होवैहै" इत्यादि स्थलविषै क्षयशीलफलवान् ताकी श्रुतितैं। तैसैं हुये ईश्वरार्पणबुद्धिकरि अनुष्ठित शुभकर्मके वशतैं उत्पन्न शुद्ध बुद्धिवाले विरक्त मुमुक्षुकूं मोक्षकेसाधन ज्ञानअर्थ यह उपनिषद्का आरंभ है। ऐसैं [दशमैंसैं पूर्व अतीत दो अध्यायरूप] कर्मकांडका इसज्ञानकांडके साथि हेतुहेतुमद्भाव (श्रुतिउक्त मोक्षके साधन ज्ञानकी हेतु चित्तशुद्धिकी हेतुमान्‌ता)रूप संबंध है॥

१४ ननु "तिनमैं मोक्षार्थी काम्य अरु निषिद्धविषै प्रवृत्त होवै नहीं। किंतु प्रत्यवायके त्यागकी इच्छाकरि नित्यनैमित्तिककूं करै" ऐसैं वृद्धोंकरि उक्त होनेतैं काम्य अरु नि-

द्वैत आत्माके विज्ञानतैं अन्य साधनके होते
आत्यंतिकी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होवैहै। सो १५
यह उपनिषद् आगे कहैगीः—“अनंतर जे इस
अद्वैततैं अन्यथा जानतेहैं वे अन्य हैं राजा
(स्वामी) जिनका ऐसैं हुये क्षयशील लोक-

षिद्ध वर्जनीय हैं औ नित्य नैमित्तिककूं करिके स्थित भये मुमुक्षुकूं वर्त्तमानदेहके पात हुये फेर अन्य देहके ग्रहणविषै हेतुके अभावतैं अनायासकरि सिद्ध ज्ञानतैंविनाबी मुक्ति होवैगी। यातैं तिस अर्थवान्‌ताकरि कैसैं उपनिषद् आरंभ करियेहै? तहां कहैहैं॥ इहां यह भावहैः—हे एकभविकवादी! जातैं तुजकरि कल्पना किया मोक्षका उपाय प्रमाणविना कल्पना करियेहै औ पौरुषेयवाक्य मूल प्रमाणविना प्रमाण नहीं है औ इहां (तेरे वाक्यविषै) श्रुतिस्मृतिरूप वा प्रत्यक्षादिरूप मूल नहीं देखियेहै औ यथावर्णित आचरणवालेकूंबी कर्मशेषकेवशतैं देहान्तर संभवैहै औ एकभविक (एक जन्मका हेतु) कर्माशय (कर्मका संस्कार) नहीं संभवैहै। काहेतैं “तहां जे इहां रमणीय आचरणवाले हैं वे तदनंतर कर्मके शेषकरि” इत्यादि श्रुति स्मृतिके विरोधतैं। तातैं आत्मज्ञानतैंहीं मुक्ति होवैहै॥

१५ अद्वैत आत्माके ज्ञानसैं रहित भेदज्ञानवाले कर्मानुष्ठानके कर्त्ताओंकी क्षयफलकरि युक्तताविषै वाक्यशेषकूं प्रमाण करैहैं॥ इहां अद्वैत आत्माके उपदेशके अनंतर अथशब्दका अर्थ है औ जे फेर नहीं उपासन किया है गुरु जिनोनैं अरु गुरु उपदेशकरि शून्य हुये यथाबुद्धि उक्त अद्वैततैं अन्यथा द्वैतकूं

वाले होवैहैं" [१६]औ विपर्ययके होते "सो (विद्वान्) स्वराट् (परमात्मा) होवैहै" ऐसैं ॥ [१७]तैसैं द्वैतकूं विषय करनेहारे अनृतकी प्रतिज्ञावाले पुरुषकूं चोरकूं तप्तपरशुके ग्रहण हुये बंध अरु दाहके सद्भावकी न्यांई बंधन औ संसारदुःखकी प्राप्ति

हीं तत्व जानतेहैं वे परतंत्र हुये रागादिकरि कर्मकूं अनुष्ठान करते हुये विनाशि फलवाले होवैहैं । यह श्रुतिका अर्थ है ॥

१६ अद्वैत आत्माके ज्ञानतैं आत्यंतिक पुरुषार्थकी सिद्धि होवैहै । इस अर्थविषैवी वाक्यशेषकूं अनुकूल करैहैं ॥ इहां चकारतैं क्रियापद अनुकर्षण करियेहै औ सो प्रसिद्ध विद्वान् विद्याकरि निरस्त है अविद्या आदिक मल जिसका ऐसा हुया आपके परिज्ञानतैं आपहीं परमात्मा होवैहै । भेदज्ञानके हेतुकूं उच्छिन्न होनेतैं । यह अर्थ है ॥

१७ भेदनिष्ठ कर्मिनकूं निरतिशय पुरुषार्थ नहीं सिद्ध होवैहै औ कर्मकूं त्याग करनेवाले अद्वैतनिष्ठनकूं तो पुरुषार्थ होवैहै । इस अर्थमैं वाक्यशेषविषै स्थित लिंगकूं दिखावैहैं ॥ इहां द्वैतहीं विषय है । वाचारंभण श्रुतितैं । अनृत रूप तिस द्वैतविषै है अभिसंधा (सत्यताका अभिमान) जिसकूं ऐसा जो पुरुष ताकूं बंधन जो परमानंदके आविर्भावसैं रहितता औ संसाररूप दुःखकी प्राप्ति । सो होवैहै ॥ जैसैं वस्तुतैं तस्कर (चोर) जो "मैं तस्कर नहीं हूं" ऐसैं मिथ्याहीं अभिमान करताहै ताकूं परिशोधनअर्थ तप्तपरशुके ग्रहणहुये दाह बंधन औ दुःखकी प्राप्ति प्रतीत होवैहै । तैसैं हीं द्वैतके अभिनिवेशवालेकूंवी होवैहै ॥ ऐसैं प्रथमकूं कहिके

होवैहै ऐसे कहिके। अद्वैत आत्माविषै सत्य प्रतिज्ञावाले पुरुषकूं अचोरकूं तप्त परशुके ग्रहण हुये बंध अरु दाहके अभावकी न्यांई संसाररूप दुःखकी निवृत्ति औ मोक्ष होवैहै। ऐसैं कहैगी। याहीतैं अद्वैत आत्माका ज्ञान कर्मसहभावी

[अब द्वितीयकूं कहैहैं] वस्तुतैं अतस्कर औ अन्योंकरि आरोपित तस्करभाववालेकूं परिशोधनकी इच्छाकरि तप्तपरशुके ग्रहण हुये दाह आदिकके (अभावकी न्यांई द्वैतके) अभावकरि उपलक्षित परमार्थसत्य प्रत्यगात्माविषै अभिमानवाले अरु द्वैततैं निवृत्त चित्तवालेकूं अनर्थका ध्वंस औ निरतिशय आनंदका आविर्भाव होवैहै। ऐसैं उक्त अर्थके अनुसारकरि आगे श्रुति कहैगी। ऐसैं योजना है ॥

१८ केवल आत्मज्ञान कैवल्यका हेतु है ताकी सिद्धि अर्थ उपनिषद्का आरंभ है। ऐसैं स्वपक्ष दिखाया। औ स्वयूथ्य (वेदान्तके एकदेशी एकभविकवादी) तो कर्म समुच्चित आत्मज्ञान मोक्षका साधन है तिस अर्थवान्ताकरि उपनिषद्का आरंभ है। ऐसैं कहते हैं। तिनके प्रति कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— "जो कृतक (क्रियासाध्य) है सो अनित्य है" इस व्याप्तिकरि अनुगृहीत जो "सो जैसैं इहां कर्मरचित लोक क्षयकूं पावता है" इत्यादिरूप श्रुति है। तिसकरि कर्मफलकी अनित्यताके निश्चयतैं औ "ब्रह्मवित्पर ब्रह्मकूं पावता है" इत्यादि श्रुतिकरि ज्ञानके फलकी नित्यताकी सिद्धितैं ज्ञान अरु कर्मकी विरुद्ध फलवान्ताके निश्चयतैं अद्वैत आत्माका ज्ञान कर्मके साथि होनेकूं उत्साह करता नहीं। जातैं विरुद्ध तम अरु प्रकाशका समुच्चय (मिलाप) नहीं संभवैहै। तातैं

(मोक्षविषै कर्मरूप सहकारीवाला) नहीं है। काहेतैं क्रिया कारक अरु फलके नाशकरि "सत् एकहीं अद्वितीय आत्माहीं यह सर्व है" इत्यादि वाक्यसैं जनित ज्ञानके बाधक प्रत्यय (अन्यज्ञान)के असंभवतैं ॥ ॥ ननु कर्म विधिका ज्ञान। उक्त ज्ञानका बाधक है? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं:—काहेतैं कर्त्ता भोक्ता

कर्म समुच्चित ज्ञानरूप अर्थवान् होनेकरि उपनिषद्का आरंभ नहीं संभवै है ॥

१९ किंवा:—अद्वैत आत्माका ज्ञान स्वसाध्य(मोक्ष)की सिद्धिअर्थ कर्मकूं अपेक्षा करताहै वा स्वबाधकके नाशअर्थ कर्मकूं आपेक्षा करताहै? ये दो विकल्प हैं। तिनमैं प्रथम पक्ष बनैनहीं:—काहेतैं ताज्ञानकूं असाध्य (अजन्य) फलवाला होनेतैं। ऐसैं हुये आचार्य द्वितीय पक्षकेप्रति कहैहैं ॥ इहां वाक्यजनित अद्वैतआत्मज्ञानके। यह शेष (अध्याहार) है ॥ औ ताज्ञानके बाधकके अभावकरि ताके परिहारअर्थ सहकारीकी अपेक्षा नहीं है। यह अर्थ है ॥

२० बाधक प्रत्ययके अभावकी असिद्धिकूं पूर्ववादी आशंका करैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—ताकूं विषय करनेवाला विधिप्रत्यय जो "यजनकरै" इत्यादि विधिकरि जनित कर्त्तव्यताका बोधरूप है। सो आत्माविषै कर्त्ताभाव आदिककूं आकांक्षा करता हुया अकर्त्तादिरूप आत्माके ज्ञानका बाधक होवैहै ॥

२१ कौनकूं यह कर्मका विधि है अज्ञकूं है। वा विद्वान्कूं

स्वभावके ज्ञानवाले औ तिसकरि जनित कर्म फलविषै राग द्वेषआदिक दोषवाले पुरुषकूंहीं कर्मके विधानतैं ॥ ॥ ननु[२२] जान्या है सकल वेदका अर्थ जिसनैं ऐसे पुरुषकूं कर्मके विधानतैं अद्वैत ज्ञानवान्कूंबी कर्म [कर्त्तव्य] होवैगा?

है ? ऐसैं विकल्प करिके । आचार्य प्रथमपक्षके प्रति कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—कर्त्ता आदिक आकारवाला प्रमाण निरपेक्ष प्रकृति (स्वभाव)करि जनित जो मिथ्याज्ञान तिसवालेकूं औ तिस मिथ्याज्ञानसैं जनित कर्मफलकूं विषय करनेवाला जो रागादि दोष। तिसवालेकूं कर्म विधान करियेहै। यातैं "मैं कर्त्ताहूं" इत्यादि मिथ्याज्ञानके अरु रागादि दोषके अभाव हुये कर्म विधान करनेकूं शक्य नहीं है "जो जोई जंतु करता है सो सो कामका चेष्टित है" इस स्मृतितैं । यातैं अज्ञानीकूं कर्मविधिपक्षके हुये ता विधिका प्रत्यय (ज्ञान) आत्मज्ञानका बाधक नहीं है । ज्ञानीकूं विधिकी प्राप्तिके अभावतैं ॥

२२ द्वितीय विकल्पके प्रति द्वितीय (अन्य)वादी शंका करैहै ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं अध्ययन किया है स्वाध्याय (स्वशाखारूपवेद) जिसनैं सो वैदिक कर्मविषै अधिकारकूं पावताहै औ अध्ययन जो है सो अर्थके बोधरूप फलवाला है। यह मीमांसकोंकी मर्यादा है । तैसैं हुये अध्ययनवाले ज्ञातसर्व वेदार्थकूं "यजनकरै" इत्यादि वाक्यकरि कर्मके विधानतैं आत्मज्ञानकूंबी कर्मकी अंगता (साधनता) जानियेहै औ आत्मज्ञान बाधकूं पावता नहीं । अविरोधतैं ॥

उद्गीथ आदिकके उपासन १३.

ऐसें जो कहै। सो[23] वनै नहीं:—काहेतें कर्मके[24] अधिकारीकूं विषयकरनेवाले स्वाभाविक (अशास्त्रजनित) कर्त्ता भोक्ताआदिकके ज्ञानकूं "एकहीं अद्वितीय सत् (ब्रह्म) रूप आत्माहीं यह सर्व है" इस ज्ञानकरि वाधित होनेतें॥ तांतें[25] अविद्याआदिक दोषवालेकूंहीं कर्म विधान करियेहैं। अद्वैत ज्ञानवानकूं नहीं॥ यांहीतेंहीं[26]

---

२३ प्रथम अर्थके बोधरूप फलवाला अध्ययन नहीं है। किन्तु सो प्रामाणिक अरु अक्षरोंकी प्राप्तिरूप फलवाला है। ऐसें अध्येता (अध्ययनकर्त्ता)ओंविषै प्रसिद्ध है। तहां अध्ययनविधिके वशतें आत्मज्ञानकूं कर्मविधिका संवंध नहीं संभवै है॥ ऐसें सिद्धांती परिहार करैहैं॥

२४ किंवा "मेरा यह कर्म है। ऐसें कर्मविषै स्वामीपनैकूं पायके व्यवस्थित पुरुषकूं विषय करिके प्रवर्त्ते अरु प्रमाणकी अपेक्षाविना स्वभावसें प्राप्त कर्त्ता आदिक आकारवाले विज्ञानकूं वाक्यजन्य सम्यक्ज्ञानसें बाधित होनेतें कर्मफलविषयक राग आदिकके अयोगतें तिस निमित्तवाले कर्मकेवी दुःखसें अनुष्ठानके होनेतें आत्मज्ञानीकूं कर्मका संभव नहीं है। ऐसें कहैहैं॥

२५ अद्वैत आत्मज्ञानकूं कर्मविषै प्रवृत्तिके विरोधीपनैके हुये फलितकूं उपसंहार करैहैं॥

२६ अज्ञानीकूं कर्मविधि है आत्मज्ञानीकूं नहीं। इस अर्थविषै श्रुतिकूं कहैहैं॥ इहां ये तीनवी आश्रमी कर्मके अधिकारी हैं। यह अर्थ है॥

यह श्रुति आगे कहैगीः—"सर्व ये पुण्यलोकवाले होवैहैं। ब्रह्मविषै[27] सम्यक् स्थित पुरुष अमृतभावकूं पावताहै" ऐसैं॥ तहां[28] इस अद्वैतविद्याके प्रकरणविषै अभ्युदय (सांसारिक फल) के साधन औ कैवल्य (मोक्ष)की सन्निधिरूप फलवाले अद्वैततैं किंचित् विकृत ब्रह्मकूं विषय करनेवाले "मनोमय प्राणरूप शरीरवाला है" इत्यादिक औ कर्मकी समृद्धिरूपफलवाले कर्मा-

२७ जैसैं ब्रह्मचारी गृहस्थ अरु वानप्रस्थ ये तीन कर्मी हैं। तैसैं जब ब्रह्मवेत्तावी कर्मी होवै तब प्रथक् नहीं करियेगा औ प्रथक्करणतैं ताकूं कर्मका विधि नहीं है । ऐसैं मानिके "ब्रह्मविषै सम्यक्स्थित" ऐसैं कहा॥

२८ जब समुच्चयके असंभवतैं केवलहीं आत्मज्ञान कैवल्यका साधनहै। यातैं तिस अर्थवान्ताकरि उपनिषद् आरंभ करियेहै। बडा खेद है किः—इस उपनिषद्विषै त्रिविध उपासन क्यूं उपन्यास करियेहैं? तहां कहैहैं॥ इहां "तहां" इस शब्दका उक्त रीतिकरि उपनिषद्के आरंभके होते। यह अर्थ है औ "सो जो वायुकूं दिशाकूं वत्सकूं जानताहै। सो पुत्ररोदनके प्रति रुदन करता नहीं" इत्यादिक अभ्युदयरूप फलवाले उपासन हैं अरु कैवल्यकरि समीप फलवान्ता नाम क्रममुक्तिरूप फलवान्ता। औ निष्प्रपंच अद्वैततैं किंचित् विकारी सगुण ब्रह्म है औ कर्मकी समृद्धिरूप फलवाले अरु कर्मफलगत अतिशयरूप फलवाले उद्गीथ आदिकके उपासन हैं। यह अर्थ है॥

गके संबंधी । ऐसे त्रिविध उपासन कहियेहैं । [२९]रहस्यके सामान्यतैं औ [३०]मनोवृत्तिके सामान्यतैं जैसैं अद्वैतज्ञान मनोवृत्तिमात्रहै । ऐसैं अन्य उपासनवी मनोवृत्तिरूपहैं । यातैं वृत्तिरूपताकरि ज्ञान औ उपासनोंका प्रसिद्ध सामान्यहै ॥ ॥ [३१]ननु तब अद्वैतज्ञानका औ उपासनोंका कौंन विशेष है? [३२]तहां कहियेः—[३३]स्वाभाविक औ अक्रिय आत्मा-

२९ आत्मविद्याके प्रकरणविषै त्रिविध उपासनके उपन्यासविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—आत्मविद्याविषै औ उपासनोंविषै उपनिषद्पदकरि जाननेकी योग्यताके अविशेषतैं ॥

३० तहांहीं अन्य हेतुकूं उद्भव करिके विभाग करैहैं ॥

३१ आत्मज्ञानका औ उपासनोंका उक्त सामान्य जब अंगीकार करिये है । तब फलतैं बी विशेष नहीं होवैगा? ऐसैं मानता हुया पूर्ववादी शंका करैहै ॥

३२ अब सिद्धांती फलतैं विशेषकूं दिखावते हुये उत्तरकूं कहै हैं ॥

३३ तहां प्रथम आत्मज्ञानके उपासनोंतैं विशेषकूं दिखावैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—क्रिया कारक अरु फलके विभागसैं रहित कूटस्थरूप प्रत्यगात्माविषै स्वभावशब्दकी वाच्य अविद्याका किया अध्यारोपित कर्त्ता आदिक आकारका विज्ञान है । ताका अद्वितीयता आदिलक्षणवाले अधिष्ठानके स्वरूपका ज्ञान निवर्त्तक है ॥ जैसैं रज्जुआदिक अधिष्ठानविषै सर्पआदिकके आरोपरूप मिथ्याज्ञानका प्रकाशादि कारणकरि-

विषै अध्यारोपित कर्त्ताआदिक कारक क्रिया अरु फलके भेदके विज्ञानका निवर्त्तक अद्वैतका विज्ञानहै। रज्जुआदिकविषै सर्प आदिकके अध्यारोपरूप ज्ञानके निवर्त्तक प्रकाशरूप निमित्तवाले रज्जु आदिकके स्वरूपके निश्चयकी न्यांई॥ [34]उपासना तो शास्त्रअनुसार प्रतिपादित किंचित् आलंबनकूं लेके तिसविषै समान चित्तवृत्तिओंके संतानका करण जो तिस[35]तैं विलक्षणवृत्तिके अंतरायसैं रहितहै सो (उपासन) है। [36]यह ज्ञान औ उपासनोंका विशेष है॥ [37]वे ये उ-

---

जन्य रज्जुआदिक अधिष्ठानके स्वरूपका निश्चय निवर्त्तकहै। तैसैं॥

३४ अब उपासनोंके अद्वैतज्ञानतैं विशेषकूं दिखावैहैं॥ इहां शास्त्र "मनोब्रह्म है ऐसैं उपासन करै" इत्यादि है औ किंचित् आलंबन मनआदिक विवक्षित है॥

३५ समानजातिवाले प्रत्ययोंके संतानका करण विच्छेद करिके विच्छेद करिके ध्यानके कर्त्ताकूं बी सिद्ध होवैहै। यातैं विशेषण देते हैं॥

३६ आत्मज्ञानके औ उपासनोंके अवांतर विशेषकूं समाप्त करैहैं॥

३७ ननु विद्याके प्रकरणविषै उक्त उपासनोंके उपदेशके संभवके हुयेबी विद्याहीं प्रधान होनेतैं प्रथमताकरि कहनेकूं योग्य है। उपासन करै अप्रधान होनेतैं पश्चात्पनैकरि कह-

पासन चित्तशुद्धिकर होनेकरि वस्तुतत्व (ब्रह्मस्वरूप)के अवभासक होनेतें अद्वैतज्ञानके उपकारक हैं औ आलंबनरूप विषयवाले होनेतैं सुखसैं साधनेकूं योग्य हैं। यातें पूर्व उपन्यास करियेहैं ॥ तहां कर्मके अभ्यासकूं दृढकिया होनेतैं कर्मके परित्यागकरि उपासनाविषैहीं चित्तका समर्पण दुःख करनेकूं है। यातैं कर्मके अंगोंकू विषय करनेवालाहीं उपासन प्र-

---

नेकूं योग्य हैं? यह आशंका करि कहै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—उपासनोंकूं ईश्वरार्पणबुद्धिकरि अनुष्ठित नित्यादिकर्मकीन्यांई चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानके कारण होनेतें औ कार्य (फल)तें कारण (साधन)की प्रथमताकी प्रसिद्धितें औ साकारवस्तुरूप विषयवाले होनेकरि सुसाध्य होनेतें मंद पुरुषनकी तत्काल तिनोंविषै प्रवृत्तिके संभवतें आदिविषै उपासनोंका उपदेश संभवैहै ॥

३८ तथापि बहुविध उपासनोंविषै क्यूं अंग संबंधीहीं उपासन प्रथम कहिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—प्राकृत पुरुषविषै कर्मके अध्यासकूं अनादि वासनाकरि दृढ किया होनेतैं अभ्यास किये तिसतिस कर्मके त्यागकेहुये तिस कर्मके असंबंधि केवल उपासनविषै चित्तका समर्पण दुःख करनेकूं होवै है। यातैं कर्मके अंगका संबंधीहीं उपासन प्रथम कहिये है । ऐसैं आदिविषै कहिके फेर अन्य उपासन क्रमसैं कहनेकूं योग्य हैं ॥

थम आदिविषै उपन्यास (कहनेकूं आरंभ) करियेहै:-

अथ उपनिषद् भाष्यव्याख्याऽऽरंभः॥

“ॐ” ऐसे इस अक्षररूप उद्गीथकूं उपासन करै॥ “ॐ[39]” ऐसा यह अक्षर [40]परमात्माका [41]समीपका नाम है। यातैं तिसके[42] उच्चारण किये हुये सो (परमात्मा) प्रियनाम ग्रहणके हुये लोककीन्यांई प्रसन्न होवैहै ॥ [43]सो

---

३९ दोनूं कांडनके नियत पूर्व अपर भावके किये संबंधकूं औ उपनिषद्के तात्पर्यकूं कहिके । अब प्रतिअक्षरकूं व्याख्यानकरनेकूं इच्छते हुये आचार्य । प्रथमपादरूप प्रतीककूं ग्रहण करै हैं ॥

४० तहां प्रथम ॐकारकी वाच्यताके पक्षकूंहीं आश्रय करैहैं॥

४१ परमात्माके अन्य नामोंतैं ॐकारके—विशेषकूं दिखावै हैं ॥ इहां नेदिष्ठ कहिये अत्यंत निकट। अर्थ यह जोः—अतिशयकरि प्रिय है ॥

४२ ॐकारकी नेदिष्ठता (अतिसमीपता) कूं समर्थन करैहैं॥

४३ ननु ॐकारकूं अन्यठिकाने परमात्माकी नामताके हुयेबी प्रकृतविषै क्या विवक्षित है ? यह आशंका करिके कहै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं प्रकृत वाक्यविषै सो “ ॐ ” ऐसा पद । इतिशब्द है शिरविषै जिसके ऐसा प्र-

(ॐ अक्षर) इहां इति शब्द है पर जिसके ऐसा प्रयोग किया (उच्चारण किया) परमात्माका अभिधायक (वाचक) होनेतैं व्यावर्त्तित (वाच्यतैं भिन्न) शब्दस्वरूपमात्र प्रतीत होवै है ॥ [४४] तैसैं हुये मूर्तिआदिककीन्यांई यह परमात्माका प्रतीक संभवैहै ॥ [४५] ऐसैं नाम होनेकरि औ प्रतीक होनेकरि यह परमात्माके उ-

---

योग (उच्चारण) किया है ॥ इति शब्दके सामर्थ्यतैंहीं वाचक होनेतैं वाच्यतैं भिन्नकिया "ॐ" शब्दका स्वरूपमात्र उपास्य जानिये है। जहांहीं इति है परजिसके ऐसा प्रयोग नहींहै। तहां वाच्यके कहनेकी इच्छा है ॥ जैसैं "गौरिति (गौ ऐसैं) यह कहै है" यह प्रयोग है [तहां शब्दमात्र विवक्षित है। तैसैं इहां "इति" है पर जिसके ऐसा होनेतैं ॐकारका स्वरूपमात्र उपास्य विवक्षित है ॥

४४ ताकी उपास्यताके अर्थ श्रेष्ठताकूं साधतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"इति" है पर जिसके ऐसे प्रयोगके वशतैं वाच्यताके अभावके होते अर्चाशब्दकी वाच्य प्रतिमाकूं भगवत्की प्रतीकताकीन्यांई ॐकारकूंबी परमात्माकी प्रतीकताकरि श्रेष्ठ होनेतैं उपास्यताकी सिद्धि है ॥

४५ प्रमाणसहित ताकी श्रेष्ठताकूं निगमन करैहैं ॥ इहां सर्व वेदांतनविषै कहिये "यह आलंबन श्रेष्ठ है" इत्यादि श्रुतिवाक्यनविषै ॥

पासनका साधन श्रेष्ठ है । ऐसैं सर्वउपनिषद्नविषै निश्चित है औ [46]जप कर्म अरु स्वाध्यायके आदि अंतविषै बहुतवार याके प्रयोगतैं तिस ॐकारका श्रेष्ठपना प्रासिद्ध है ॥ [47]यातैं तिस इस [48]वर्णात्मक अरु [49]उद्गीथरूप भक्तिका अवयव हो-

---

४६ किंवाः—इसकी श्रेष्ठता समर्थन करने योग्य नहींहै प्रसिद्ध होनेतैं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—गायत्री आदिकके जपविषै यज्ञादि कर्मविषै औ स्वाध्यायके आदि अरु अंतविषै ॐकारका प्रयोग देखियेहै औ " तातैं ॐ ऐसैं उदाहरण करिके वेदवादिनके विधानकरि उक्त यज्ञ दान तप अरु क्रिया निरंतर प्रवर्त्त होतेहैं औ ब्राह्मण । आदि अरु अंतविषै सर्वदा प्रणवकूं करै । ॐकाररहित पूर्व किया कर्म स्रवताहै औ पीछे क्रियाकर्म विनाशकूं पावता है " इस स्मृतितैं औ " ब्राह्मण ॐ ऐसैं कहनेकूं इच्छता हुया कहैहै " इत्यादि श्रुतितैं ॥

४७ "ॐ इति" ऐसा यहभाग व्याख्यान किया । अब "यह अक्षर है" इस भागके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां श्रेष्ठपना उपास्यताके अर्थ अनुकर्षण करिये है ॥

४८ "औ व्याप्तितैं समंजस है" इस न्यायकरि विशेषणकी अर्थवान्ताकूं अभिप्रायकी विषय करिके "रूढि । योगकूं अपहार करैहै" इस न्यायकरि अक्षर शब्दके प्रकरणकूं अनुसरिके प्रसिद्ध अर्थकूं कहै हैं ॥

४९ ग्राम दग्ध भया । पट दग्ध भया । याकी न्यांईं एकदे-

नेतैं उद्गीथ शब्दके वाच्य ऐसे अक्षरकूं उपासन करै कहिये [५०]कर्मके अंग (उद्गीथ)के अवयवभूत ॐकाररूप परमात्माके प्रतीकविषै दृढ एकाग्रतारूप मतिकूं प्रवाहरूप करै ॥ आ-
[५१]पैहीं श्रुति ॐकारकूं उद्गीथशब्दकी वाच्यताविषै हेतुकूं कहैहै:–“ ॐ ” ऐसैं उद्गायन करैहै कहिये “ ॐ ” ऐसैं आरंभ करिके जातैं [यज्ञादि कर्मविषै उद्गाता] उच्चस्वरसैं गायन करैहै । यातैं उद्गीथ ॐकारहै । यह अर्थ है ॥
[५२]तांका उपव्याख्यान कहिये तिस अक्षरका

शविषै समुदायकूं विषय करनेवाला पद प्रवृत्त भयाहै । ऐसैं कहैहैं ॥

५० उपासनाकूं विभाग करै हैं ॥

५१ ननु उद्गीथका अवयव होनेतैं ॐकारविषै तिस उद्गीथशब्दकी प्रवृत्ति है । ऐसैं उक्त होनेतैं अनंतरका वाक्य अकिंचित्कर है ? यह आशंका करिके । श्रुतिउक्त जो असदुक्त हेतु है सो तिसकरि स्पष्ट करियेहै । तातैं उत्कर्षकरिके हमोनैं दिखाया है । इस अभिप्रायकरि कहै हैं ॥

५२ “ ॐ ऐसा यह अक्षरहै ” इस ठिकाने उपासनाकी उत्पत्तिका विधि कहा । अब गुणकूं कहनेकूं इच्छतेहुये वाक्यान्तरकूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥

उपव्याख्यान । ऐसे[५३] उपासनवाला ऐसी[५४] विभूतिवाला ऐसे[५५] फलवाला । इत्यादि कथनरूप उपव्याख्यान प्रवर्त्त[५६] होवैहै । यह वाक्यशेष है ॥ १ ॥

---

५३ इहां अत्यंत रसरूपताका प्राप्ति समृद्धि है । ऐसे गुणवाला उपासन जिस अक्षरका है सो अक्षर तैसा (एवमुपासन) है । यह अर्थ है ॥

५४ इहां परम परार्ध्य तिसकरि यह त्रयी (वेदरूप) विद्या प्रवर्त्त होवै है । इत्यादि विभूति है स्तुति जिसकी सो-तैसा (एवं विभूति) है । यह अर्थहै ॥

५५ इहां "कामोंका निश्चयकरि प्रापक है" इत्यादि फल है जिस उपास्यके साक्षात् कारका सो तैसा (एवंफल) है । यह अर्थ है ॥ औ गोदोहनकीन्यांई आश्रयकरिके विधानतैं अधिकारीके अधिकारवाला यह उपासन है । तथापि प्रथक्हीं है । काहेतैं "प्रथक्हीं प्रतिबंधरहित फल है" इस न्यायकरि फलवाला है ॥ औ फल जो है सो यजमानका है । उद्गाताकूं यजमानकरि कर्मअर्थ क्रीत (मोललिया) होनेतैं ताके किये उपासनकावी यजमानरूप स्वामीकूं फल होवैहै । यह वचन आदिशब्दका अर्थ है ॥

५६ वाक्यकी आकांक्षा सहितताकरि व्यर्थताकूं निवारते हैं ॥

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस ओषधी-

अर्थः—इन भूतनका पृथिवी रस है। पृथिवीका जल रस है। जलनका ओषधि-

टीकाः—इन[56] चराचर भूतनका पृथिवी रसहै कहिये गति परिणाम अवष्टंभ है। पृथिवीका आप (जल) रसहै जलविषै[57] जातैं पृथिवी ओत है अरु प्रोत है यातैं वे (आप) पृथिवीका रसहै। जलनका ओषधियां (अन्न) रसहै औषधिनकूं[58] जलका परिणाम होनेतैं।

---

५७ इसीहीं उपव्याख्यानकूं अनुवर्त्तन करतेहुये ॐकारके रसतमतारूप गुणकूं विधान करनेकूं पातनिका (भूमिका)कूं करैहैं॥ इहां "गति" यह उत्पत्तिकी कारणता औ "परायण" ऐसैं स्थितिकी हेतुता औ "अवष्टंभ" ऐसैं प्रलयकी कारणता कहियेहै। यह भेद है॥ वा विपरीतपनैंकरि ये पद लगावनेकूं योग्य हैं॥

५८ जलोंकूं पृथिवीकी रसता साधतेहैं॥ इहां इस अर्थकी अन्य श्रुतिविषै प्रसिद्धिकूं द्योतन करनेकूं "हि" शब्द है॥

५९ औषधिनकी जलके प्रति कारणताके अभावतैं कैसैं तहां रस शब्दहै? तहां कहैहैं॥ इहां कारणपरताकरि पूर्व

नां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ॥ २ ॥

यां रस है। ओषधिनका पुरुष रस है। पुरुषका वाक् रस है। वाक्का ऋक् रस है। ऋक्का साम रस है। सामका उद्गीथ रस है ॥ २ ॥

तिन ओषधिनका पुरुषरस है पुरुषकूं अन्नका परिणाम होनेतें। तिस पुंरुषकाबी वाक् (वाणी) रस है पुंरुषके अवयवनका जातें वाक् अतिशय सार है यातें वाक् पुरुषका रस कहियेहै । तिस वाक्काबी ऋक् (ऋग्वेदकी

वाक्यविषै व्याख्यान किया बी रसशब्द "गोरस" याकी न्याईं उत्तर वाक्यविषै कार्यपरताकरि व्याख्यान करनेकूं योग्य है। यह अर्थ है ॥

६० ननु औषधिनका पुरुष रस कैसैं है। जातैं तिनकरि यह नहीं करियेहै? तहां कहै हैं ॥

६१ पुरुषकी रस ता वाक्कूं समर्थन करैहैं ॥ इहां जातैं वाक्विहीन अन्यपुरुषके प्रति विशेषकरि निंदतेहैं। यातैं वाक्की सारतमता प्रसिद्ध है। यह "हि" शब्दका अर्थ है

उद्गीथ आदिकके उपासन १३

स एष रसानाꣳ रसतमः परमः पराद्ध्योंऽष्टमो यदुद्गीथः ॥ ३ ॥

अर्थः—सो यह रसोंका रसतम। परम। पराद्ध्यं। अष्टम है। जो उद्गीथ है॥ ३ ॥

वाक्यरूप ऋचा) रस (अत्यंत सार) है। ऋक्का साम रस (अत्यंत सार) है। तिस-सामकाबी उद्गीथ कहिये प्रसंगविषै प्राप्त होनेतैं ॐकार सारतर (अत्यंत सार) है ॥ २ ॥

टीकाः—ऐसैं सो यह उद्गीथ नामवाला ॐ-

औ ता वाक्की अत्यंत साररूपताकी प्रसिद्धि अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है ॥

६२ वाक्करि निर्वाह करने योग्य होनेतैं ऋक्कूं ता वाक्की रसताहै। या अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

६३ ऋक्तैं बी तिसकरि निर्वाह किया साम गीयमान-हुया वक्ता अरु श्रोताकूं सुखकर होवैहै। ऐसैं मानिके कहैहैं ॥

६४ "उद्गीथ" शब्दकूं अवयवविषै प्रकरणतैं नियमन करैहैं ॥

६५ जातैं ॐकाररहित किया साम फलअर्थ नहीं होवैहै। ऐसैं मानते हुये कहै हैं ॥

६६ जिस अर्थ पृथिवी आदिकनकी रसरूपता कही। तिस प्रयोजनकूं अब दिखावै हैं ॥

कार भूतआदिकनके उत्तर उत्तर रसोंका अतिशयकरि रसरूप ऐसा रसतमहै ॥ औ [६७]पँरम है। परमात्माका प्रतीक होनेतैं ॥ औ परार्ध्य है। पर (परमात्मा) ऐसा अर्ध जो स्थान सो परार्ध है ताके तांईं योग्य होवैहै यातैं परार्ध्य (परमात्मा रूप स्थानके योग्य) है [६८]परमात्माकी न्यांईं उपास्य होनेतैं। यह अभिप्राय है ॥ औ [६९]अष्टम [७०]पृथिवी आदिक रसनकी संख्याविषै [७१]जो उद्गीथ है ॥ ३ ॥

---

६७ रसतमता (अत्यंत सारता)रूप गुणवाले ॐकारकूं उपास्यताके अर्थ दो विशेषणोंकरि महान् करैहैं ॥

६८ तिसकी परमात्मस्थानकी योग्यताकूं समर्थन करैहैं ॥ इहां जैसैं परमात्मा स्वरूपताकरि अनुसंधान करियेहै। तैसैं इस (ॐकार)कूंबी तिसरूपसैं अनुसंधान करनेयोग्य होनेतैं विष्णुबुद्धिकरि आलंबनके योग्य प्रतिमाकी न्यांईं यहबी परमात्मबुद्धिकरि आलंबनके योग्य होवै है। यह अर्थ है ॥

६९ ॐकारतैं पराचीन रस नहीं है। यातैं ताकी रसतमताके स्पष्ट करनेअर्थ परिगणनातैं सिद्ध अष्टमपनैकूं अनुवाद करैहैं ॥

७० ननु भूतोंकूं आरंभकरिके नवमभावके प्रतीयमान हुये ॐकारकी अष्टमता कैसैं प्रतिज्ञा करियेहै ? तहां कहैहैं ॥

७१ "सो यह" ऐसैं उक्त अर्थकूं स्पष्ट करनेकूं जो उद्गीथ

कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम ।

अर्थः–कतमा कतमा (कौंनसी कौंनसी) ऋक् है। कतमत् कतमत् (कौंनसा कौं-

टीकाः–“ वाँक्[72]का ऋक् रस है ” ऐसें पूर्व कहा। तहां कौंनसी[73] सो ऋक् (ऋचा) है। कौंनसा सो साम है। वा कौंनसा सो उद्गीथ है ॥ [इहां कतमा[74] कतमा (कौंनसी कौंनसी) ऐसी जो वीप्सा (मूलविषै दो वार कथन) है। सो आदरअर्थ है] ॥ ॥ ननु[75] “ ब-

है। तिस पदकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां पूर्वकी न्यांई उद्गीथ शब्द अवयवपर जाननेकूं योग्य है ॥

७२ अब अन्य गुणके विधानअर्थ प्रश्नकूं प्रकटकरते हुये पूर्वउक्त अर्थकूं अनुवाद करै हैं ॥ इहां ऋचाका साम रस है औ सामका उद्गीथ रस है। ऐसें पूर्व कहा है। ऐसें देखनेकूं योग्य है ॥

७३ अब ऋक् आदिककी जातिकूं जाननेकूं इच्छताहुया पूर्ववादी पूंछताहै ॥

७४ प्रश्नविषै तीन वीप्सा जे हैं वे तिस तिस जातिके ज्ञानविषै श्रद्धाके अतिशयकूं दिखावनेकूं हैं। ऐसें कहै हैं ॥

७५ तीन प्रश्नोंके प्रति पूर्ववादी आक्षेप करै है ॥ इहां अनेक जातिनकरि विशिष्टपदार्थनके मध्य जब एकजातिके

कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ॥ ४ ॥

नसा) साम है। कतमः कतमः (कौंनसा कौंनसा) उद्गीथ है। ऐसैं विचार किया होवै है ॥ ४ ॥

हुतनकी जातिके परिप्रश्नविषै" वा "डतमच् शब्द होवैहै" यह नियम है ॥ [76] ईहां प्रसिद्ध [77] ऋचाओंकी जातिका बहुत्व नहींहै । कैसैं

निर्द्धारण अर्थ प्रश्न होवैहै । तब तिस विषयविषै "डतमच्" प्रत्यय होवै । जैसैं बहुत कठ आदिकनकेमध्य कठ जातिके निर्णय अर्थ "कौंनसे कठ हैं" ऐसा प्रश्न देखिये है । तैसैं अन्य ठिकाने बी है । यह सूत्रका अर्थ है ॥

७६ ननु बहुतनकी एकजातिके निर्द्धारणविषै "डतमच्" प्रत्ययके विधानके हुये बी प्रकृत तीन प्रश्नोंके विषै कौंन असंभव है ? ॥ इधर "इहां" ऐसें अध्यापक अरु अध्येताके व्यवहारकी भूमि कही है औ ऋचाओंकी जातिका ग्रहण जो है सो । सामोंकी जातिका अरु उद्गीथोंकी जातिका उपलक्षण है ॥

७७ ननु तिनकी बहुताके अभाव हुये बी हमारा क्या छेदन होवैहै? ऐसा जो सिद्धांती कहै। तहां पूर्ववादी कहैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—ऋक् आदिककी जातियां जब बहुत होवैं

"डतमच्" शब्दका श्रुतिनैं प्रयोग किया? तहां यँह दोष नही हैः–काहेतैं "जातिविषै जो परिप्रश्न सो जातिपरिप्रश्न है" ऐसैं इस विग्रहके हुये जातिविषै ऋचाओंकी व्यक्तिनकी बहुलताके संभवतैं ॥ औ "जातिका परिप्रश्न है" ऐसैं विग्रह नहीं करियेहै ॥ ॥ ननु "जा-

---

तब तिनके मध्य कौंनसी ऋचाओंकी जाति। वा कौंनसी सामोंकी जाति। वा कौंनसी उद्गीथकी जाति। इहां विवक्षित है। ऐसा प्रश्न घटित होवै अरु तहां जातिका बहुत्व नहीं है। प्रमाणके अभावतैं। यातैं तीन प्रश्न अघटित हैं। यह पूर्वपक्षीकी शंका है॥

७८ प्रश्नके असंभवकूं सिद्धांती दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः–तिस तिस जातिकरि विशिष्ट बहुतनके सन्निधानविषै जातिके होते व्यक्तिनकी बहुलताके संभवतैं अन्यतमके निर्द्धारणअर्थ प्रश्नविषै विकल्पकरि (भिन्न भिन्न) "डतमच्" प्रत्यय होवैहै। ऐसैं सूत्रार्थके अंगीकारतैं ॥ ऋक् आदिककी जातिविषै ताकी व्यक्तिनकी बहुलतातैं कौंनसी ताकी व्यक्ति "वाक्का ऋक् रस है" इत्यादि वाक्यविषै विवक्षित है। ऐसैं प्रश्नके पर्यवसानतैं तीन प्रश्न बनै हैं ॥

७९ औ जो अन्यविग्रहकूं ग्रहणकरिके प्रश्नका असंभव है? ऐसैं पूर्ववादीनैं कहा। तहां कहैहैं ॥ इधर "तहां" अनुपपत्तिकूं "जब जातिका" इस वाक्यविषै स्पष्ट करैंगे॥

८० तब हमारेकूं इष्ट जो विग्रह है ताके अग्रहण हुये

तिका परिप्रश्न है" ऐसे इस विग्रहविषै "कौंनसा कठ है" इत्यादि उदाहरण घटित है औ "जातिविषै परिप्रश्न है" इस विग्रहविषै तो नहीं घटताहै? तँहांबी कठ आदिककी जाति विषै हीं व्यक्तिनकी बहुलताके अभिप्रायसैं परिप्रश्न है। यातैं अदोष है॥ जँब जातिका परिप्रश्न होवै तब कौंनसी कौंनसी ऋक् इत्यादिकविषै उपसंख्यान कर्त्तव्य होवै॥ ऐसैं इहां विमृष्ट होवैहै कहिये विमर्श (विचार) किया होवैहै॥ ४॥

वृत्तिकारका उदाहरण विरोधकूं पावैहै। काहैतैं कठशब्दके व्यक्तिविशेषताके अभावतैं। ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै॥

८१ उदाहरणके हुयेबी कठजातिके होते ताकी व्यक्तिकी बहुलतातैं तिन व्यक्तिनके मध्य अन्यतम (एकव्यक्ति)के निर्द्धारणके अभिप्रायसैं प्रश्नविषै "डतमच्" प्रत्यय है ऐसै अंगीकारतैं परोक्त उदाहरणका विरोध हमारेपक्षविषै नहीं है। ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं॥

८२ ननु दोनूं प्रकारसैं बी विग्रहके संभव हुये तुमारेकूं इष्ट जो विग्रह है सो क्यूं नियम करिये है? तहां कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:-हे पूर्ववादी! तेरेकूं इष्ट जो विग्रह है ताका ग्रहण जो होवै। तो ऋगादिजातिकी एकतातैं वा प्रत्येककी बहुलताके अयोगतैं "बहुतनकी" इत्यादि सूत्र-

वागेवर्क् । प्राणः सामोमित्येतदक्ष-

अर्थः-वाक्हीं ऋक् है। प्राण साम है।

टीकाः-वि[८३]मर्श (विचार)के किये हुये प्रति-वचन (प्रत्युत्तर)की उक्ति उपपन्न होवैहैः-वाँक् हीं ऋक् है। प्राण साम है ऐसैं। वाँक् अरु ऋचाकी एकताके हुयेबी ताकी अष्टमताका व्याघात नहीं है काहेतैं [८६]आप्तिरूप गुणकी सिद्धि

करि कौंनसी ऋक् है अरु कौंनसा साम है। यह उदाहरण नहीं सिद्ध होवैगा। तैसैं हुये तिस (उदाहरण)की सिद्धिअर्थ पृथक् पृथक् विधान प्राप्त होवै ॥ जातैं वैदिक उदाहरण प्रमत्तके गीतकी न्यांई त्यागनेकूं शक्य नहीं। तातैं ऋक् आदिककी व्यक्तिहीं इहां पूंछनेकूं युक्त है ॥

८३ ऐसैं उक्त रीतिसैं क्यूं विचार करिये है। विवक्षित ऋक् आदिकका स्वरूपहीं आदिविषै उपन्यास करनेकूं योग्य है लाघवतैं? यह आशंका करिके कहै हैं ॥

८४ शिष्यभूत श्रुतिकरि प्रश्नके किये हुये। आचार्यभूत सोई श्रुति परिहार करै है ॥

८५ ननु आद्य उत्तरविषै वाक् अरु ऋचाकी एकताके निश्चयतैं ॐकारका रसतमवाक्यकरि उपदेश किया अष्टमपना व्याघातकूं पावैगा? यह आशंका करिके कहै हैं ॥

८६ ननु फेर रसतमवाक्यतैं यह प्रश्न उत्तररूप वाक्य

रमुद्गीथस्तद्वा एतन्मिथुनम् । यद्वाक् च प्राणश्चर्क् च साम च ॥ ५ ॥

"ॐ" ऐसा यह अक्षर उद्गीथ है। सो प्रसिद्ध यह मिथुन है जो वाक् है औ प्राण है। औ ऋक् है अरु साम है॥ ५॥

अर्थ पूर्व वाक्यतैं याकूं वाक्यान्तररूप होनेतैं ॥ औ "ॐ" ऐसा यह अक्षर उद्गीथ है ॥ ऐसैं। वाँक् अरु प्राण। ऋक् अरु सामके कारण

कैसैं भेदकूं पावताहै। अर्थकी अधिकताके अभावतैं [भेद भासता नहीं] ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं पूर्ववाक्य ॐकारकी रसतमताकूं विधान करैहै। यह वाक्य तो ताहीके आप्तिरूप गुणकूं विधान करैहै। तैसैं हुये तैसे गुणकी विधि अर्थ होनेकरि याकूं वाक्यांतररूप होनेतैं इस वाक्यके वशतैं अष्टमताके अभावहुयेबी पूर्ववाक्यतैं ॐकारकी अष्टमता अविरुद्ध है ॥

८७ तथापि ऋक्आदिनकी जातिके पूंछे हुये "वाक्हीं ऋक्है" इत्यादि उत्तर कैसैं उचित है। ताकी व्यक्तिविशेषका वचनहीं प्रश्नानुसारि है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—वाक् ऋचाकी योनि है ताकी निर्वाहक होनेतैं औ प्राण सामका हेतु है। जातैं प्राणके बलकरि गीति उत्पादन करिये है। तैसैं हुये "वाक्हीं ऋक् है" इत्यादि

हैं। यह "वाक्हीं ऋक् है प्राण साम है" इस वाक्यकरि कहियेहै ॥ ⁸⁸यथाक्रम ऋक् सामके कारण वाक् अरु प्राणके ग्रहण (निरोध) हुये जातें सर्व ऋचाओंका औ सर्व सामोंका अवरोध किया होवै है। औ ⁸⁹सर्व ऋक् अरु सामोंके अवरोध हुये ऋक् अरु सामकरि साध्य सर्व कर्मोंका अवरोध किया होवैहै औ तिन कर्मोंके

वाक्यकरि कार्यकारणके अभेदके उपदेशतें ऋचामात्र वा साममात्र तिस तिस कारण स्वरूप प्रतीत होवै है। तिस हेतुकरि पूर्वविषै वी व्यक्ति अविवक्षित है प्रश्नउत्तरकूं एक अर्थरूप होनेतें औ ऐसें ऋक् आदिककी जातिकूं एक होनेतें "डतमच्" प्रत्ययका असंभव नहीं है। काहेतें तिस तिस जातिकरि विशिष्ट ऋक् साम अरु उद्गीथकी सन्निधिके हुये एक ऋक् आदिककी जातिके निर्द्धारण अर्थ प्रश्नके हुये तिस "डतमच्" प्रत्ययके प्रयोगके संभवतें। ऋक् आदिकविषै एकएकके भेदकी विवक्षाकरि षष्ठीसमासविषै दूषण कहा। तहां एक एककी एकताकूं अंगीकार करिके उक्तरीतिकरि षष्ठीसमासविषै तौ किंचित् वी दूषण होता नहीं॥

८८ ऋक् स्वरूपता वाक्के अरु सामस्वरूप प्राणके ग्रहण हुये फलितकूंहीं दिखावते हुये उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं॥

८९ ननु ऋक् अरु साममात्रके अवरोध हुयेबी सिद्ध होवैहै? यह आशंका करिके कहैहैं॥

अवरोध किये हुये सर्व[90] काम अवरोधकूं प्राप्त होवैहैं [यातैं वाक् अरु प्राण ऋक् अरु सामके कारण हैं] ॥ ॥ "ॐ[91]" ऐसा यह अक्षर उद्गीथ है ऐसैं ताकी भक्तिरूपताकी आशंका निवारण करियेहै ॥ सो[92] प्रसिद्ध यह ऐसैं मिथुन[93] (युगल) निर्देश करियेहै ॥ ॥ क्या सो मिथुनहै ? यह कहै हैं:– जो वाक् अरु प्राण

९० तथापि क्या होवैगा ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:–उक्त प्रक्रियाकरि सर्वकामोंकी प्राप्तिका हेतु ॐकार । विवक्षित प्राप्तिरूप गुणवाला सिद्ध होवैहै ॥

९१ तृतीय उत्तरविषै तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां बी पूर्वकी न्यांई जातिके ग्रहण हुये ताकी व्यक्तिरूप होनेकरि भक्तिहीं कही । या शंकाकूं निवारनेकूं "ॐ ऐसा यह अक्षर है" यह विशेषण है ॥ तैसैं हुये इहां उद्गीथ । ता (उद्गीथ)का अवयव है । विशेषणतैं औ प्रकरणतैं । यह अर्थ है ॥

९२ परंपराकरि वाक् अरु प्राणके सर्व कामोंके साथि संबंधतैं उद्गीथका बी तथाभूत वाक्आदिकसैं संबंधतैं सर्व कामोंसैं संबंध है ऐसैं कहा । अब ॐकारके वाक् अरु प्राणद्वारा सर्व कामोंसैं संबंधविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

९३ तत् (सो) अरु एतत् (यह) इनदोनूं पदनकी अक्षररूपविषयवान्ताकूं निषेधकरिके । वक्ष्यमाण विषयवान्ताकूं दिखावैहैं ॥ इहां "वै" शब्द मिथुनकी प्रसिद्धि अर्थ है ॥

सर्व ऋक् अरु सामोंके कारणभूत हैं । सो मिथुन है ॥ ऋक् अरु साम इहां [९४]ऋक् अरु सामके कारण । ऋक् अरु सामकरि कहे । यह अर्थ है ॥ [९५]ऋक् अरु साम मिथुन है । [९६]परंतु स्वतंत्र नहींहै । [९७]अन्यथा प्रसिद्ध वाक् अरु प्राण यह एक मिथुन अरु ऋक् अरु साम अपर (द्वितीय) मिथुन । ऐसें दो मिथुन होवैंगे । [९८]तैसें हुये "सो यह मिथुन है" ऐसें एकवचनका कीर्त्तन अघटित होवैगा । [९९]तांतें ऋक् अरु सामके कारणरूप वाक् अरु प्राणकूं हीं मिथुनपना है ॥ ५ ॥

---

९४ वाक् औ प्राण । ऐसें यह उभय प्रतीत होवैहै । सो यह मिथुन है । ऐसी योजनाकूं अंगीकार करिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

९५ वाक् अरु प्राणकूं ऋक् अरु सामकी कारणता है । ताकूं उत्तर वाक्यसैं स्पष्ट करैहैं ॥

९६ ननु जैसें वाक् अरु प्राण मिथुन है । ऐसें ऋक् अरु साम बी स्वतंत्रताकरि मिथुन है । निर्देशके सामान्यतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

९७ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

९८ ननु वांछित हीं दो मिथुन हैं ? ऐसें जो कहै । तहां नहीं ऐसें कहैहैं ॥

९९ ननु दो मिथुनोविषै अनुगत मिथुनभावकूं लेके

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे स-
ꣳसज्यते ॥ यदा वै मिथुनौ समाग-

अर्थः—सो यह मिथुन "ॐ" ऐसे इस अक्षरविषै संबंधकूं पावताहै ॥ जब प्रसिद्ध दो मिथुन (स्त्रीपुरुष) संयोगकूं पावतेहैं

टीकाः—सो यह इस लक्षणवाला मिथुन " ॐ " इस अक्षरविषै संसर्ग (संबंध)-कूं पावताहै ॥ [100] ऐसैं सर्वकामोंकी अवाप्तिरूप गुणकरि विशिष्ट मिथुन ॐकारविषै संसर्गवाला विद्यमान है । यातैं ॐकारकी सर्वकामोंकी अ-[101]वाप्तिरूप गुणवान्ता प्रसिद्ध है ॥ ॐकारकी वाणीमयता औ प्राणतैं उत्पाद्यता औ मिथुनकेसाथि

एकवचन संभवैहै ? ऐसैं जो कहै । तहां नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां उपक्रम (आरंभ)के भंगतैं स्वतंत्र दो मिथुन नहीं हैं । यह अर्थ है ॥

१०० ननु वाक् अरु प्राण नामक ऋक् साम स्वरूप वाक् अरु प्राणका रूप होहु । परंतु ॐकार अरु मिथुनके संबंधविषै क्या फल होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

१०१ ननु फेर अक्षरका मिथुनके साथि संबंधवान्पना किसप्रकारकरि होवैगा ? तहां कहैहैं ॥

च्छत आपयतो वै तावन्योन्यस्य कामम् ॥ ६ ॥

[तब]वे अन्योअन्यके कामकूं प्रसिद्ध प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

संसर्ग युक्तता है ॥ औ मिथुनकूं[१०२] कामोंकी प्रापकता प्रसिद्धहै[१०३] यह दृष्टांत कहियेहैः—जैसें[१०४] लोकविषै मिथुन (मिलित अवयवेंवाले[१०५] स्त्री पुरुष) जब ग्राम्य धर्मवान्ताकरि संयोगकूं पावतेहैं तब वे परस्परके कामकूं प्राप्तकरते

१०२ औ जो सर्वकामाप्तिरूपगुणकरि विशिष्ट मिथुन है ऐसें कहा। ताकूं उपपादन करैहैं ॥

१०३ इहां "प्रसिद्ध ऐसें" तैसा अर्थ उक्त अक्षरकी सर्व कामोंकी प्रापकताविषै दृष्टांतरूप हुया अनंतरके वाक्यकरि कहिये है ॥

१०४ दृष्टांतकूंहीं विवरण करैहैं ॥

१०५ ननु दो मिथुन नहीं हैं। ऐसें उक्त होनेतैं "मिथुनौ (दो मिथुन)" ऐसा द्विवचन कैसें कहा? तहां कहैहैं॥ इहां ग्राम्य (मैथुन) धर्मवान्ताकरि। याका तिसप्रकारके व्यापारवान्ताकरि। यह अर्थ है औ "वै" शब्द अवधारणविषै है ॥

आपयिता ह वै कामानां भवति ।

अर्थः—कामोंका आपयिता (प्रापक) नि-

हैं ॥ [106] तिसप्रकारहुये स्वात्मा (स्वस्वरूप)विषै अनुप्रवेशकूं प्राप्त मिथुनकरि सर्व कामोंकी प्राप्तिरूप गुणवान्‌ता ॐकारकूं सिद्ध भई । यह अभिप्राय हे ॥ ६ ॥

टीकाः—[107] ताँ (ॐकार)का उपासक उद्गातावी तिसधर्मवाला होवैहै । ऐसैं कहैहैः—सो निश्चयकरि य[108]जमानके कामोंका प्रापक होवैहै जो इस अक्षररूप ऐसे आप्तिरूपगुणवाले उद्गी

१०६ कहनेकूं इच्छित दार्ष्टांतिककूं कहैहैं ॥

१०७ ऐसैं आप्तिगुण विशिष्ट ॐकारकूं विशेषण देके। अब ताकी उपासनाके फलकूं कथन करैहैं ॥ इहां तद्धर्मा (तिस धर्मवाला) ऐसैं उपासककी आप्तिरूप गुणकरि विशिष्टताकी उक्ति है ॥

१०८ ननु इहां आप्ता (प्राप्त होनेवाला) ऐसैं कहनेकूं योग्य हुये । आपयिता (प्रापक) यह कैसैं कहा ? तहां कहैहैं ॥ इहां " ह वै " ऐसे दो निपात तो अवधारण (निश्चय) रूप अर्थवाले हैं॥ औ उद्गीथकूं । याका ताके अवयवभूत ॐकारकूं । यह अर्थ है ॥

य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते॥७॥

श्चित होवैहै जो इसकूं ऐसैं जानता हुया अक्षररूप उद्गीथकूं उपासताहै ॥ ७ ॥

थकूं उपासताहै ताकूं यह यथोक्त फल होवैहै। यह अर्थ है॥"[109]तां (परमात्मा)कूं जैसैं जैसैं उपासताहै सोई (फल) होवैहै" इस श्रुतितैं ॥ ७॥

टीका:—"[110]समृद्धिरूप गुणवाला ॐकार है"॥ [111]कैसैं किः—सो प्रसिद्ध यह [112]प्रकृत अक्षर अनुज्ञा है औ सा [113]अनुज्ञा सो अक्षर है। अनुज्ञा-

---

१०९ ननु आप्तिरूप गुणवाले ॐकारके उपासनतैं कैसैं उपासक तिसगुणवाला होवैहै ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

११० उत्तरग्रंथके अन्यगुणके विधानविषै तात्पर्यकूं दिखावैहैं ॥

१११ ननु ताकी समृद्धिरूप गुणवान्‌ता अप्रामाणिक है ? यह आशंका करिके परिहार करैहैं ॥

११२ तत् (सो) अरु एतत् (यह)। इन दोपदोंका विषय होनेकरि ॐकारनामक अक्षरकूं निर्देश करैहैं ॥ इहां ताकी स्मृतिअर्थ "वै" शब्द है ॥

११३ अनुज्ञा अक्षर है। इसपदकूं विग्रहकरिके विवक्षित अर्थसैं घटावतेहैं ॥

तद्वा एतदनुज्ञाऽक्षरं । यद्धि किञ्चा-
नुजानात्योमित्येव ॥ तदा हैषो एव
समृद्धिर्यदनुज्ञा ॥ समर्द्धयिता ह वै का-

अर्थः—सो प्रसिद्ध यह अक्षर अनुज्ञा
है। जोई कछुक अनुज्ञा (आज्ञा) करैहै
"ॐ" ऐसैंहीं ताकूं कहैहै। यहहीं समृद्धिबी
है जो अनुज्ञा है। कामोंका समर्द्धयिता

कहिये अनुमति। अर्थ यह जोः—ॐकार है॥
[114] कैसैं सो अनुज्ञा है? यह श्रुति कहैहैः—जोई किं-
चित् कहिये लोकविषै यत्किंचित् ज्ञानकूं वा
धनकूं विद्वान् वा धनी अनुज्ञा (अंगीकार)
करैहै। तहां अनुमतिकूं करता हुया "ॐ" ऐसैं
हीं ताकूं कहैहै। औ [115] तैसैं वेदविषै "तेंतीस(३३)

११४ ताके अनुज्ञापनैविषै प्रश्नपूर्वक प्रसिद्धिकूं उपन्यास करैहैं ॥ इहां "तहां" ऐसैं ज्ञान अरु धनकी उक्ति है औ "तत् (सो)" ऐसैं अनुमंतव्य (अनुमतिका विषय) साधारणपनैकारि कहियेहै ॥

११५ ॐकारके अनुज्ञा अरु अक्षरभावविषै लोकप्रसि-

मानां भवति। य एतदेवं विद्वानक्षर-
मुद्गीथमुपास्ते ॥ ८ ॥

निश्चित होवैहै जो ऐसैं इसकूं जानता
हुया अक्षररूप उद्गीथकूं उपासताहै ॥ ८ ॥

देव हैं" ऐसैं [याज्ञवल्क्यकरि कहेहुये] "ॐ"
ऐसैं [शाकल्य] कहता भया। इत्यादि ॥ [116] औरु
तैसैं लोकविषैबी "तेरे इस धनकूं मैं ग्रहण कर-
ताहूं" ऐसैं कहे हुये "ॐ" ऐसैं कहै है ॥ [117] यातैं

द्धिकी न्यांई वेदप्रसिद्धिकूं मिलावतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:–
"हे याज्ञवल्क्य! कितनेहीं देव हैं" ऐसैं साकल्यकरि पूंछे
हुये "तैंतीस (३३) हैं" ऐसैं याज्ञवल्क्यकरि कहे हुये।
शाकल्य "ॐ" ऐसैं अनुज्ञा (अंगीकार)कूं करताभया औ
फेर "कितनैं हीं देव हैं" ऐसैं प्रश्नके हुये "षट् हैं" ऐसैं
उत्तरके दिये हुये "ॐ" ऐसैं कहता भया। इत्यादि
वाक्य बृहदारण्य उपनिषद्विषै है। सो उक्त अर्थका अनु-
सारि प्रसिद्ध है ॥

११६ "जोई कछुक" इत्यादि वाक्यविषै कही लोकप्र-
सिद्धिकूंहीं प्रकट करै हैं।

११७ ननु ॐकारके लोक वेदकी प्रसिद्धिकरि अनुज्ञा-
भावके हुये बी ताकूं समृद्धिरूप गुणवान्पना कैसैं है? यह
आशंकाकरिके कहेहैं ॥ इहां "उ" शब्द "अपि (बी)" रूप
अर्थवाला है। सो समृद्धि अर्थतैं उपरि संबंधकूं पावता है ॥

यह अनुज्ञा हीं समृद्धि बी है। जो अनुज्ञा है कहिये जो अनुज्ञा है सो समृद्धि है। काहेतैं ॥ अनुज्ञाकूं तिस समृद्धिरूप मूलवाली होनेतैं ॥ यातैं [118] समृद्धिवाला पुरुष " ॐ " ऐसैं अनुज्ञा (आज्ञा) कूं देताहै। [119] तातैं समृद्धिरूप गुणवाला ॐकारहै। यह अर्थ है॥ [120] समृद्धिरूप गुणका उपासक होनेतैं तिसधर्मवाला हुया निश्चयकरि यजमानोंके कामोंकी समृद्धिका कर्ता होवैहै। जो ऐसैं जाननेवाला इस अक्षररूप उद्गीथकूं उपासताहै। [121] इत्यादि पूर्वकी न्यांई है ॥ ८ ॥

---

११८ ता अनुज्ञाकूं समृद्धिकी मूलता (कारणता) कूं साधते हैं ॥

११९ अनुज्ञाकी समृद्धिके प्रति कारणताकरि समृद्धिरूपताके हुये। तिस अनुज्ञास्वरूप ॐकारकूं बी समृद्धिरूप गुणवान्‌ता सिद्धभई। ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

१२० समर्द्धयिता (समृद्धिका कर्ता) इत्यादि फलवाक्यकूं कहैहैं ॥

१२१ इस वाक्यविषै "समर्द्धयिता" इत्यादि पदोंका समूह "आपयिता" इत्यादि रूप पूर्ववाक्यकी न्यांई व्याख्यान करनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

उद्गीथ आदिकके उपासन १३.

तेनेयं त्रयी विद्या वर्तते। ओमित्याश्रावयत्योमितिशꣳसत्योमित्युद्गाय-

अर्थः-तिसकरि यह त्रयी विद्या वर्त्तीहै॥ "ॐ" ऐसैं आश्रवण करावैहै। "ॐ" ऐसैं प्रशंसन करैहै। "ॐ" ऐसैं उद्गायन

टीकाः-[122] अनंतर अब अक्षरकूं स्तुति करैहै। [123] उपास्य होनेतें प्ररोचनके अर्थ॥ ॥[124] कैसें तिस प्रकृत अक्षरकारि यह ऋग्वेदादिरूप त्रयी विद्या। अर्थ यह जोः-[125] त्रयीविद्याविषै विहित कर्म। वर्त्तमान होवैहै॥ [126] जातें त्रयी विद्याहीं आश्रवणा-

१२२ ननु तीन गुणवाले ॐकारका सकल उपासन कहा। तैसैं हुये आगे कहनेके अभावतें "तिसकरि यह त्रयी विद्या" इत्यादि वाक्य व्यर्थ है? यह आशंका करिके कहैहैं॥

१२३ स्तुतिकी व्यर्थताकूं आशंका करिके कहैहैं

१२४ प्ररोचन (रुचि)कूं प्रश्नपूर्वक प्रकट करैहैं॥ इहां त्रयी विधा वर्तती है। ऐसैं संवंध है॥

१२५ "त्रयी विद्या" इस वाक्यकी उपचाररूप अर्थवान्ताकूं कथन करैहैं॥

१२६ ननु श्रुत अर्थकूं त्यागकरिके क्यूं ऐसैं व्याख्यान

त्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन ॥ ९ ॥

करैहै। इसीहीं अक्षरकी अपचिति (पूजा) अर्थ। महिमाकरि औ रसकरि ॥ ९ ॥

दिकनकरि नहीं वर्त्तती है। [127] कर्म तो तैसें प्रवृत्त होवैहै। यह प्रसिद्ध है ॥ [128] कैसें किः— "ॐ" ऐसें आश्रवण करावैहै। औ "ॐ" ऐसें शंसन (प्रशंसा) करैहै औ "ॐ" ऐसें उद्गायन करैहै औ इस [129] लिंगतें [सो कर्म] सोमयाग है। ऐसें

करिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ता विद्याके स्वरूपलाभकूं अनादिताकरि कारणकी अपेक्षासैं रहित होनेतें ॥

१२७ ननु कर्म बी आश्रवण आदिककरि कैसें आत्मा (स्वरूप)कूं पावता है? तहां कहैहैं ॥

१२८ प्रसिद्धिकूं हीं प्रपंचन करैहैं॥

१२९ आध्वर्यव (अध्वर्यु संबंधि कर्म) । हौत्र (होता संबंधि कर्म) अरु औद्गात्र (उद्गाता संबंधिकर्म) । इन तीनके समाहारके दर्श अरु पूर्णमासविषै असंभवतें औ अग्निष्टोम आदिकनविषै संभवतें तिनतीनके समाहाररूप लिंगतें ॐकारकरि प्रवर्त्तमान जो वेदविहित कर्म सो सोमयाग है। ऐसें भासताहै। यह कहैहैं ॥

प्रतीत होवैहै। औ सो[१३०] कर्म इसी हीं अक्षरकी अपचिति (पूजा) अर्थहै।[१३१] जातैं सो परमात्माका प्रतीक है यातैं [१३२] ताकी जो अपचिति सो परमात्माकीहीं है। "[१३३] मानव स्वकर्मकरि ताकूं पूजिके सिद्धिकूं पावताहै" इस स्मृतितैं॥ औ महिमाकरि अरु रसकरि।[१३४] किंवाः—कहिये अ-

१३० "ॐकाररहित किया कर्म स्रवता है" इस न्यायतैं ॐकारकरि वैदिककर्मकी स्थिति है। ऐसैं स्तुतिकूं करिके अब अन्य स्तुतिकूं कहैहैं॥

१३१ ननु फेर अक्षर जो है सो कर्मकरि कैसैं पूज्य होवैहै? तहां कहैहैं॥

१३२ ननु तहां ॐकारकूं तिस परमात्माकी प्रतीकताके हुये क्या होवैहै? ऐसैं जो कहै। तहां सो कहैहैं॥

१३३ ननु कर्मकरि परमात्मा जब आराधन करियेहै तब ताका प्रतीक होनेतैं अक्षरका बी तिसकरि आराधन होवै। औ ईश्वर तिसकर्मकरि आराधन करियेहै ऐसा प्रमाण नहीं है? तहां कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—"वर्णाश्रमविहित कर्मकरि ईश्वरकूं प्रसन्न करिके ताके प्रसादके वशतैं ताके फलकूं कर्त्ता पावता है" ऐसैं श्रीकृष्ण भगवान्करि उक्त होनेतैं ईश्वरकी पूजा अर्थ कर्म है। ऐसैं जानिये है। तिस प्रकार हुये ताका प्रतीक होनेतैं ॐकारकी पूजा अर्थ सो कर्म है। यह युक्त है॥

१३४ वैदिक कर्म अक्षरकी पूजा अर्थ है। ऐसैं अक्षरकूं

न्यस्तुति करियेहै किः—इसीहीं अक्षरके महिमा (महत्पनै) करि। अर्थ यह जोः—ऋत्विक् औ यजमानआदिकके प्राणोंकरि ॥ [135] तैसैंहीं इसी अक्षरके रसकरि। अर्थ यह जोः—व्रीहि अरु यव आदिक रसकरि निर्वाह किये हवि (हुतद्रव्य)करि कर्म वर्त्तताहै॥ [136] याग होम आदिक। अक्षरकरि करियेहै। औ सो [137] आदित्यके प्रति उपस्थित होवैहै।

स्तुतिकरिके प्रकारांतरकरि स्तुति करैहैं ॥ इहां यजमान आदिक। इस आदि पदकरि पत्नी ग्रहण करियेहै औ प्राणोंकरि त्रयीविहित कर्म वर्त्तता है। ऐसैं संबंध है ॥

१३५ अन्य स्तुतिकूं कहैहैं ॥ इहां जैसैं अक्षरके विकार यजमान आदिकके प्राणोंकरि वैदिक कर्म प्रवर्त्त होवैहै। तैसैं ॥ यह अर्थ है ॥ औ "हविकरि" इहां बी पूर्वकी न्यांई अन्वय है ॥

१३६ ननु ऋत्विक्आदिकके प्राणोंकूं औ हविकूं अक्षरका विकारपना कैसैं है? यातैं कहैहैं ॥ इहां आदिशब्द अनुक्त वैदिककर्मके ग्रहण अर्थ है ॥ "तातैं ॐ ऐसैं उदाहरण करिके" इत्यादि स्मृतितैं। यह अर्थ है ॥

१३७ "अग्निविषै डाली जो आहुति सो सम्यक् आदित्यके प्रति स्थित होवैहै आदित्यतैं वृष्टि होवैहै वृष्टितैं अन्न औ तिसतैं प्रजा होवैहैं" इस स्मृतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद । यश्च न वेद ॥ नाना तु विद्या चाविद्या च ॥ यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोप-

---

अर्थः–[ननु] तिसकरि दोनूं करतेहैं जो याकूं ऐसें जानताहै औ जो न जानताहै? नाना तो विद्या औ अविद्या है। जिसीहीं (कर्म)कूं विद्याकरि श्रद्धाकरि उ-

---

तिसतैं वृष्टि आदिकके क्रमसैं प्राण औ अन्न उपजताहै औ प्राणोंकरि[१३८] अरु अन्नकरि यज्ञ करिये है। यातैं कहियेहैः–अक्षरके महिमाकरि अरु रसकरि कर्म प्रवृत्त होवैहै ऐसैं ॥ ९ ॥

टीकाः–तहां[१३९] अक्षरके विज्ञानवालेकूं कर्म कर्तव्यहै। ऐसें स्थित भये अर्थकेप्रति श्रुति आ-

---

१३८ ननु वृष्टि आदि। इहां आदिशब्दकरि अन्नकी औ प्रजाकी उत्पत्तिका उपकरण सर्व कहिये है। तथापि इसी हीं अक्षरके महिमाकरि कैसें है? तहां कहैहैं ॥

१३९ ननु अक्षरकूं स्तुतिकरि महान् किया होनेतैं ताके उपासनके सिद्ध हुये उत्तर ग्रंथसैं क्या है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः–पूर्व ग्रंथविषै स्तुतिके वशतैं

निषदा । तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥ १० ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषदि प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

पनिषद्करि [युक्तहुया] करैहै सोई (कर्म) अत्यंत वीर्यवाला होवैहै ॥ ऐसा निश्चित इसीहीं अक्षरका उपव्याख्यान होवैहै॥ १०॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः समाप्तः ॥ १ ॥

क्षेप (निषेध) करैहैः–तिंस[140] अक्षर करि दोनूं करतेहैं। कहिये जो इस ऐसैं व्याख्यान किये अक्षरकूं जानताहै औ जो कर्ममात्रका वेत्ता

कर्त्तव्य अक्षरके विज्ञानके हुये तिसकरि साध्य कर्म । ताके विज्ञानवालेकूं अनुष्ठान करनेकूं योग्य है । ऐसैं स्थितभया । ताकूं आक्षेप करनेकूं उत्तर वाक्य है ॥

१४० श्रुति उक्त आक्षेपके अक्षरोंकूं व्याख्यान करैहैं ॥

अक्षरके याथात्म्य (यथार्थस्वरूप)कूं नहीं जानताहै वे दोनूं कर्मकूं करतेहैं ॥ [141] ननु तिन दोनूंकूं कर्मके सामर्थ्यतेंहीं फल होवैहै। तहां अक्षरके याथात्म्य (स्वभाव)के विज्ञानसैं क्या प्रयोजनहै। ऐसैं आक्षेप करैहै। [142] जातैं लोकविषै हरीतकी (हरडे)कूं भक्षण करनेवाले तिसके रसके अभिज्ञ अरु अनभिज्ञ दोनूंकूं विरेचन देख्याहै? [143] ऐसैं कहना बनै नहीं:—काहेतें जातैं नाना तो विद्या औ अविद्या है। [144] जातैं विद्या

१४१ ननु कर्मके विद्वान् अरु अविद्वान् दोनूंकूं कर्मके कर्त्तापनैके हुये विद्वान्हीं ताके फलकूं भोगताहै अविद्वान् नहीं। यह कैसैं है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां "इति" (ऐसैं) शब्द तो आक्षेप करैहै। याके साथि संबंधकूं पावताहै ॥

१४२ ननु विद्वान् अविद्वान्कूं समान फल कैसैं है? यह आशंका करिके दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

१४३ विवादका विषय जो उक्त गुणवाले अक्षरका ज्ञान। सो स्वतंत्र फलवाला नहीं है। अंगका ज्ञान होनेतैं आज्यके अवलोकनकी न्यांई? ऐसैं आक्षेपके प्राप्तहुये अब श्रुति। सिद्धांतीरूपसैं प्रत्युत्तरकूं कहैहैं ॥

१४४ हेतुताकरि अवतारित वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

अरु अविद्या भिन्नहैं [इहां "तु" शब्द पक्षके निषेध अर्थ है] ॐकारका[145] कर्मांगतामात्रका विज्ञानहीं रसतम आप्ति (प्राप्ति) अरु समृद्धि रूप गुणवाला विज्ञान नहीं । किंतु तिसतैं अधिक है । तातैं[146] तिसके अंगकी अधिकतातैं फलकी अधिकता युक्त है । यह अभिप्राय है ॥ जातैं[147] लोकविषै वणिक् (वैश्य) अरु शबर (भिल्ल) दोनूंके मध्य । पद्मरागआदिक मणिके विक्रयके हुये वणिककूं विज्ञानकी अधिकतातैं फलकी अधिकता होवैहै । तातैं[148] जोई विद्या

इहां यह अर्थ हैः—विद्या जो उपासना । कर्म जो अविद्या । इन दोनूंका भिन्नपना कहिये पृथक्फलवान्पना है । तातैं विद्याकी व्यर्थता नहीं है ॥

१४५ विद्याकूं स्वतंत्र फलवान्पना नहीं है । इसपक्षकी व्यावृत्ति (निषेध)के प्रकारकूंहीं प्रपंचन करैहैं ॥

१४६ अंगके ज्ञानतैं गुणवाले अक्षरके ज्ञानकी अधिकताविषै फलकूं कहैहैं ॥ इहां ताका अंग कहिये कर्मका अंग उद्गीथ मात्रका ज्ञान तातैं विशिष्ट अक्षरके ज्ञानकी अधिकतातैं। यह अर्थ है ॥

१४७ औ जो फेर कहाकिः—तिन विद्वान् अविद्वान् दोनूंकूं कर्मके सामर्थ्यतैं हीं फल होवैगा ऐसैं ? तहां कहैहैं ॥

१४८ औ जो "अंगका ज्ञानरूप होनेतैं" ऐसैं कहा था ।

(विज्ञान) करि युक्त हुया औ श्रद्धाकरि कहिये श्रद्धायुक्त हुया औ उपनिषद्करि । अर्थ यह जोः—योगकरि युक्त हुया कर्मकूं करताहै । सोई कर्म अत्यंतवीर्यवाला (अविद्वान्के कर्मतें अधिक फलवाला) होवैहै । ऐसें विद्वान्के[१४९] कर्मके अत्यंत वीर्यवान्पनेके वचनतें

सो क्याः—अंग भावके होते ज्ञानभाव है । किंवाः—आश्रय करिके विहितपना है । अथवा यह हीं ज्ञानभावकरि विशेषित है ? ये तीन विकल्प हैं । तीनमैं प्रथम पक्ष बनै नहींः—काहेतें ताके निर्द्धारणके अनियमरूप न्यायकरि असिद्धितें ॥ औ द्वितीय पक्ष बनै नहींः—काहेतें गोदोहनविषै विहितपनेके व्यभिचारतें ॥ औ तृतीयपक्ष बनै नहींः—काहेतें आज्य अवलोकनरूप दृष्टांतकूं साधनविकल (असिद्ध) होनेतें । घृतके अवलोकनकूं आश्रय करिके विधिके उदाहरणतें बहिर्भूत होनेतें अंग संबंधकी ज्ञानरूपतामात्रकरि दृष्टांतभावके होते अंगतारूप उपाधिके संभवतें । या अभिप्रायकरिके ज्ञानकी अधिकताविषै फलकी अधिकता है । इसअर्थविषै अनंतरके वाक्यकूं योजना करैहैं ॥ इहां विज्ञान उद्गीथ आदिक अंगमात्रकूं विषय करनेवाला उपासनातैं भिन्न है तिसकरि युक्त हुया । यह अर्थ है । औ योग कहिये देवताआदिकनकूं विषय करनेवाला उपासन है । औ इति शब्द तिस अर्थकी समाप्तिअर्थ है ॥

१४९ तहां हीं अर्थतैं सिद्ध अर्थकूं कथन करैहैं ॥

अविद्वान्का बी कर्म वीर्यवालाहीं होवैहै । यह अभिप्राय है औ अविद्वान्कूं[150] कर्मविषै अनधिकार नहीं है काहेतैं औषस्त्यकांड (उषस्तिऋषिसंबंधी आगे कहनेके ग्रंथभागके समूह)विषै अविद्वानोंके अनंतर आर्त्विज्य (ऋत्विक्संबंधिकर्म)के देखनेतैं ॥ रसतम[151] आप्ति (प्राप्ति) समृ-

---

१५० ननु "अर्थी समर्थ विद्वान् अरु अपर्युदस्त (अजाति बहिष्कृत) जो पुरुष है। सो कर्मविषै अधिकारी है" ऐसैं अंगीकारतैं तिस लक्षणकरि अविशिष्ट अविद्वान्कूं कर्मविषै अनधिकारतैं सो (अविद्वान्का किया) कर्म वीर्यवान् है । यह कैसैं प्रतिज्ञा करियेहै? तहां कहैहैं ॥ इहां औषस्त्याविषै कहिये उषस्ति चाक्रायण नामक जो ऋषि है तिससैं संबंधवाले "कुरुनके (कुरुदेशके धान्य वृक्षनके) मचटी (पाषाणनकी वृष्टि)नकरि हत हुये" इत्यादिरूप जो वक्ष्यमाण ग्रंथ है । तिस ग्रंथके समूहविषै । विद्याहीनोंकूं बी कर्मका अनुष्ठान देखियेहै । काहेतैं "हे प्रस्तोतः ! जो देवता " इत्यादि स्थलविषै "ताकूं जब अविद्वान् हुया " इत्यादि लिंगतैं । तातैं अविद्वान्कूं बी कर्मविषै अधिकार है औ अधिकारीके लक्षणविषै तो ज्ञानके अभाव हुयेबी द्रव्यआदिकके ज्ञानमात्रसैं विद्वान् इस विशेषणकी सिद्धि होवैहै । यह अर्थ है ॥

१५१ ननु गुणवाले अक्षरका ज्ञान स्वतंत्र फलवाला है ऐसैं कहा । सो तो रसतमरूपगुणवाले अक्षरकूं विषय करनेवाला एक उपासन है औ तहां विधिके उद्देशविषै फलके

द्धिरूप गुणवाला अक्षर है। यह एक उपासन है। काहेतैं मध्यविषै अन्य प्रयत्नके अदर्शनतैं। जातैं
१५२
अनेकविशेषणोंकरि अनेक प्रकारसैं उपास्य हो-

अश्रवण हुयेबी वा विश्वजित् यज्ञके न्यायकरि सो (फल) कल्पना करियेहै। औ आप्तिरूप गुणवाले औ समृद्धिरूप गुणवाले अक्षरके दो विज्ञान (उपासन) हैं। प्रत्येकके फलकी श्रुतितैं॥ तैसैं हुये इहां भिन्न फलवाले तीन उपासन विवक्षित हैं? ऐसैं कहा। यातैं कहैहैं॥ इहां यह भाव है:—इहां प्रथम "उपासन करै" ऐसे विधिविना मध्यविषै अन्यविधि नहीं प्रतीत होवैहै औ "कामोंका आपयिता निश्चयकरि होवैहै" इत्यादि वाक्यविषै फलश्रुतिकरि विधि कल्पना करने योग्य नहीं है। काहेतैं फलाकांक्षि रसतमरूप गुणवाले अक्षरके विज्ञानके विधिविषै अर्थवादविषै स्थित फलांशके अन्वयकरि अनेक गुणवाले एकके विज्ञानके विधिके संभवहुये विधिभेदकी कल्पनाके अयोगतैं औ निश्चयकरि अर्थवाद संबंधि फलवाले अनेक विशेषणयुक्त एकके उपासन विषयक विधिके अंगीकारकरि वाक्यकी एकताके संभवहुये वाक्य भेदन करनेकूं उचित नहीं है॥ इसकरि विश्वजित् न्याय निरस्तकिया औ रात्रिसत्र न्याय तो प्रकृतका अविरोधी है॥

१५२ ताका उपव्याख्यान। ऐसैं उक्त अर्थका उपसंहार वाक्य "निश्चित इसीहीं अक्षरका" इत्यादि है। तहां "एतत्" शब्दकरि प्रकृत अक्षरके आकर्षणविषै कारण कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—रसतम आप्ति अरु समृद्धिरूप अनेक विशेषण हैं तिनकरि विशिष्ट होनेकरि अक्षरकूं अनेकप्रकारसैं

नेतैं निश्चयकरि इसीहीं प्रकृत उद्गीथनामवाले अक्षरका उपव्याख्यान होवैहै ॥ १० ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

उपास्य होनेतैं प्रकारके भेदविषैबी उपासनकी एकताकूं पूर्वहीं उक्त होनेतैं प्रकृतहीं अक्षरका यह उपव्याख्यान है । जो प्रसिद्ध विहित है ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां प्रथमप्रपाठकगत-प्रथमखंडस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ श्री० प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः ॥ २ ॥

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिरे। उभये

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदो मूलमात्रभाषा दीपिकायाः

प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः प्रारभ्यते ॥ २ ॥

अर्थः–प्रसिद्ध देव असुर जिस निमि-

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायाः प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयः खण्डः प्रारभ्यते ॥ २ ॥

प्राणदृष्टिसैं ॐकारका उपासन ॥१४॥

टीकाः–देवासुर[१५३] कहिये देव[१५४] औ असुर ॥

अथ श्री० प्रथमप्रपाठकगतद्वितीयखंडस्य-टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

१५३ गुणत्रयविशिष्ट उद्गीथरूपकर्मका अवयवभूत ॐकारनामक अक्षर परमात्माका प्रतीक है सो तिस (परमात्मा) की बुद्धिकरि उपास्य है। ऐसै उपदेश किया ॥ अब तिसीहीं अक्षरके अध्यात्म अधिदैव भेदकरि आदित्य अरु प्राणकी दृष्टिकरि उपासनकूं कहनेकूं इच्छते हुये आचार्य। अन्य कंडिकाकूं अवतार देतेहैं ॥

१५४ तहां अक्षरनकूं व्याख्यान करनेकूं इच्छते हुये अ-

प्राणदृष्टिसैं (ॐकार) का उपासन १४

प्राजापत्यास्तद्ध देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति ॥ १ ॥

त्तके होते संग्रामकूं करते भये। दोनूं प्रजापतिके संतान हैं ॥ तिस निमित्तके होते देव उद्गीथकूं ग्रहण करते भये ॥ इसकरि इनोंकूं अभिभव करेंगे ऐसैं ॥ १ ॥

१५५
दे॰ यह द्योतनरूप अर्थवाले "दिव्यति" धातुका रूप है। यातैं देव कहिये [१५६] शास्त्रकरि उद्भासित इं-

---

प्रतिभा (अप्रकाशरूपता)के निषेधअर्थ विवक्षित समासकूं दिखावै हैं ॥

१५५ देवशब्दकी सिद्धिके प्रकारकूं सूचन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"दिव्यति" शब्द द्योतनरूप अर्थवाला है। काहेतैं "दिवु धातु जो है सो। क्रीडा। विजिगीषा। व्यवहार। द्युति। स्तुति। मोद। स्वप्न। कान्ति। गतिरूप अर्थनविषै है" ऐसैं देखनेतैं औ "अच्" अंतवाले तिस "दिवु" धातुके गुणके होते कर्त्ताकेविषै [दिव्यतीति देवः] ऐसैं उक्तरूपकी सिद्धि होवैहै है ॥

१५६ औ वे द्योतक (प्रकाशक) देव रूढिवृत्तितैं इंद्रादिक होवैंगे? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"ऐसैं अध्यात्म है" इस उपसंहारके विरोधतैं प्रसि-

द्रियनकी वृत्तियां हैं औ[157] असुर जे[158] तिनतैं विपरीत कहिये[159] अपनेहीं असुनविषै (चारीओर विषय-करनेवाली प्राणनरूप क्रियाओंविषै) रमणतैं[160] स्वाभाविकी[161] तमोगुण स्वरूप इंद्रियनकी वृत्ति-

ध्दिकूंहीं त्याज्य होनेतैं उपासकके शरीरविषै स्थित करण-रूप अवस्थावाले देव सत्वगुणरूप शास्त्रानुसारी देवशब्दके वाच्य हैं ॥

१५७ तैसैं अध्यात्मरूप विरोचन आदिक असुर होवैंगे? यह आशंका करिके। पूर्वकी न्यांई उपसंहारके विरोधकूं अ-भिप्रायका विषय करिके कहै हैं ॥ इहां असुर इंद्रियनकी वृत्तियांहीं हैं। ऐसैं संबंध है ॥

१५८ सात्विक इंद्रियनकी वृत्तिनतैं तिनकी विपरीतताकूं असुरभावकी सिद्धि अर्थ दिखावैहैं ॥

१५९ तिनकी असुरशब्दकी वाच्यताविषै अन्य निमित्तकूं कहैहैं ॥ इहां चारीओरतैं विषयवालियां। याका चारीओरतैं नानागतिवाले हैं विषयजिनके तिनविषै। यह अर्थ है औ प्रा-णनरूपक्रियाओंविषै। याका जीवनके अनुकूल चेष्टाओंविषै। यह अर्थ है ॥

१६० ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—शास्त्रकी अपेक्षा विनाहीं स्वभावके वशतैं प्रवर्त्तमानपना स्वाभाविक-पना है। तैसैं हुये शास्त्रजनित इंद्रियवृत्तिनतैं इनका विपरी-तपना अतिस्पष्ट है ॥

१६१ अन्य विपरीतताकूं कहैहैं ॥

यांहीं हैं (इहां "ह वा" ये दो पूर्व वृत्तांतके प्रकाशक निपात हैं) वे जिस परस्परके विषयके अपहार (भराभव करने) रूप निमित्तके होते संयति करते भये। अर्थ यह जोः—["सं" पूर्व "यतति" धातुकूं संग्रामरूप अर्थवान्‌ता है। यातैं] संग्रामकूं करते भये॥ अभिप्राय यह है किः—शास्त्र[162]जनितप्रकाशरूपवृत्तिनके पराभवअर्थ प्रवृत्त स्वाभाविकी तमोरूप इंद्रियनकी वृत्तियां असुर हैं॥ तैसैं[163] तिनतैं विपरीत शास्त्रके[164] अर्थरूपविषयके विवेककरि प्रकाश स्वरूप जे देव हैं वे स्वाभाविक तमोरूप असुरनके पराभवअर्थ प्रवृत्त हैं। ऐसैं[165] परस्परके अभिभव अरु उद्भवरूप

---

१६२ परस्पर विषयके दूरीकरनेकूं निमित्तकरिके देवनका अरु असुरनका संग्राम कैसैं होताभया? इस अपेक्षाके हुये। आसुरी वृत्तिकूं प्रकट करैहैं॥

१६३ दैवी वृत्तिकूं प्रसिद्ध करैहैं॥

१६४ देवनकी उक्त असुरनतैं विपरीतताकूं स्पष्ट करैहैं॥ इहां स्वाभाविक शास्त्रकी अपेक्षासैं रहित तमोरूप पापमय असुर परिच्छेदका अभिमान है ताके तिरस्करण अर्थ। यह अर्थ है॥

१६५ उक्त आध्यात्मिक (देहके अंतर्गत) संग्रामकूं नि-

संग्रामकी न्यांई सर्व प्राणिनविषै प्रतिदेह देव असुरनका संग्राम अनादिकालसैं प्रवृत्त है ॥ सो इहां श्रुतिकरि आख्यायिकारूपसैं धर्म अधर्मकी उत्पत्तिके विवेकविज्ञानअर्थ प्राण (इंद्रियन)की विशुद्धिके विज्ञानके विधिपर होनेकरि कथन करियेहै ॥ यातैं दोनूं बी देव असुर प्रजापतिके संतान हैं। यातैं प्राजापत्य हैं ॥ इहां

गम करैहै ॥ इहां उक्तरीतिकरि उक्तदेवनका अरु असुरनका परका अभिभव औ अपना उद्भव इसरूपवाला संग्राम प्रतिदेह अनादिकालसैं प्रवृत्त भया है । जैसैं देव असुरनका संग्राम है तैसैं । ऐसैं योजना है ॥

१६६ ननु फेर अपुरुषार्थरूप देव असुरनका संग्राम किसअर्थ श्रुतिकरि श्रवण करीताहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां सोई संग्राम। इसप्रकरणविषै प्राणकी विशुद्धिविषयकविज्ञानकूं विधान करनेकूं प्रवृत्त भयाहै । तैसैं श्रुतिकरि कथारूपसैं आख्यान करियेहै औ इंद्रियनकी विषयनतैं विमुखताके हुये धर्म होवैहै अरु तिनकी विषयनकी अभिमुखताके हुये पापकी उत्पत्ति होवैहै । ऐसैं विवेकविज्ञानकी सिद्धिअर्थ आख्यायिका रचिये है । तातैं इंद्रियनका प्रयत्नतैं विषयतत्परपना त्याग करनेकूं योग्य है औ तिनका विषयनतैं विमुखपना मुमुक्षुनकरि यत्नतैं धारणकरनेकूं योग्य है । यह भाव है औ यजमानके प्राणन (इंद्रियन)काहीं देव असुरभावका उक्तपना अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है ॥

[१६७]प्रजापति कर्म अरु ज्ञानका अधिकारी पुरुष है। काहेतें "[१६८]पुरुषहीं उक्थ है। यहहीं महान्प्रजापति है" इस अन्य श्रुतितें ॥ [१६९]ता (प्रजापति)केहीं शास्त्रीय अरु स्वाभाविकी इंद्रियवृत्तियां परस्पर विरुद्ध संतानोंकी न्यांई हैं तिसकरि उद्भवके होनेतें। [१७०]तिसैं उत्कर्ष अरु अपकर्षरूप निमित्तके होते प्रसिद्ध देव [१७१]उद्गीथ (उद्गीथरूप भक्तिकरि उपलक्षित उद्गाताके कर्म)कूं आहरण (ग्रहण) करते भये। [१७२]अभिप्राय यह है कि:—तिस के-

---

१६७ प्रजापति शब्दके रूढ अर्थकूं त्यागिके विवाक्षित अर्थकूं कहैहैं ॥

१६८ उक्तरूपवाला पुरुष प्रजापति है। इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

१६९ फेर उक्त देव असुरनकूं ता (पुरुष)का संतानपना कैसैं हैं?

१७० जिसके होते। ऐसैं उक्त संग्रामके निमित्तकूं स्मरण करैहैं ॥

१७१ देवनका उत्कर्ष अरु असुरनका अपकर्ष। इस निमित्तके होते उद्गीथरूप भक्तिका ग्रहण कैसैं होवैहै? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१७२ लक्षित लक्षणाके न्यायकूं सूचन करैहैं ॥ इहां उद्गीथरूप भक्तिकी न्यांईं। यह "अपि (बी)" शब्दका अर्थ है॥

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासा-

अर्थः—वे (देव) नासिकागत प्राणरूप उद्गीथकूं उपासनकरतेभये। ता (प्राण)कूं

वल उद्गीथकेबी आहरणके असंभवतें उद्गीथ-भक्तिकी न्यांई ज्योतिष्टोमआदिक कर्मकूं आहरण करते भये॥ ताकूं[१७३] किसअर्थ आहरण करते भये? यह कहियेहैः—इस कर्मकरि हम इन असुरनकूं पराभव करैंगे। इस अभिप्रायवाले हुये॥ १॥

टीकाः—औ जब[१७४] तिस उद्गीथरूपकर्मकूं आहरण करनेकूं इच्छनेवाले हुये तब वे देव नासिकाविषै होनेवाले चेतनावाले[१७५] घ्राण[१७६] प्रा-

---

१७३ तिसके ग्रहणके प्रयोजनकूं प्रश्नपूर्वक कथन करैहैं॥

१७४ अब उद्गीथके आहारण (ग्रहण)के प्रकारकूं प्रकट करैहैं॥

१७५ अचेतन करणकूं उद्गातापनैके असंभवतैं विशेषण देतेहैं॥

१७६ मुख्य प्राणकूं भिन्न करैहैं॥

प्राणदृष्टिसैं (ॐकार) का उपासन १४

श्चक्रिरे। तꣳ हासुराः पाप्मना विविधु-
स्तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दु-
र्गंधि च। पाप्मना ह्येष विद्धः॥ २॥

हीं असुर पापकरि वेधन करते भये॥ तातैं तिसकरि-[लोक] सुगन्धि अरु दुर्गन्धि उभयकूं सूंघताहै। पापकरि जातैं यह (घ्राण) विद्ध है॥ २॥

णमय उद्गीथके[177] कर्त्तारूप उद्गाताकूं उद्गीथ[178]रूप भक्तिकरि उपासना करतेभये[179]। अर्थ यह जोः-[180]नासिकागत प्राणकी दृष्टिकरि उद्गीथ

१७७ "तूं हमारे प्रति उद्गायन कर" इस वाजसनेयक श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं॥

१७८ अब उद्गीथरूप भक्तिहीं सुनियेहै। उद्गाता तो नहीं सुनिये है। तातैं ताका उपासन कैसैं संभवै है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥ इहां तिस (उद्गीथभक्ति) करि उपलक्षित उद्गाताकूं उपासते हैं॥ यह अर्थ है॥

१७९ उपासन कैसैं होवै है? इस अपेक्षाके हुये उद्गीथसैं कर्त्ताभावकी प्रार्थनासैं होवै है। ऐसैं कहैहैं॥

१८० "वे प्रसिद्ध नासिकागत प्राणकूं" ऐसैं अक्षर उक्त अर्थकूं कहिके। अब वाक्यार्थकूं कहैहैं॥

नामवाले अक्षररूप ॐकारकूं उपासनाकरते-भये ॥ [१८१] ऐसैं हुये प्रकृतअर्थका परित्याग अरु अप्रकृत अर्थका ग्रहण नहीं किया होवैगा । [१८२] जातें "निश्चित इसीहीं अक्षरका" ऐसैं ॐकार उपास्य होनेकरि प्रकृत है ॥ ॥ [१८३] ननु उद्गीथकरि उपलक्षित कर्मकूं आहरण करतेभये । ऐसैं तुम पूर्व कहतेभये । अबी हीं कैसैं नासिकागत प्राणकी दृष्टिकरि ॐकारकूं उपासन करतेभये । ऐसैं कहते हो ? [१८४] यह दोष नहीं हैः—

१८१ ननु क्यूं ऐसैं इहां ॐकारनामक अक्षर उपास्यपनैकरि व्याख्यान करियेहै ? तहां कहैहैं ॥

१८२ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां तिस प्रकारसैं प्राणके उद्गाताद्दष्टिकरि उपासनके हुये प्रकृतका परित्याग औ भक्तिके प्राणविषै प्राणद्दष्टिकरि उपास्य होनेतैं अंगीकारके हुये अप्रकृतका ग्रहण होवैगा । यह शेष है ॥

१८३ पूर्वापरके विरोधकूं पूर्ववादी आशंका करैहै ॥ इहां यह अर्थ हैः—उद्गीथकरि उपलक्षित जो उद्गाताका कर्म । तिसकरि उपलक्षित ज्योतिष्टोमादि कर्म ग्रहण किया ऐसैं कहा औ ताका ग्रहण जो है सो ताका उपासनरूप है । तिसतैं विरुद्ध नासिकागत प्राणकी द्दष्टिकरि अक्षरके उपासनका वचन है ॥

१८४ अपनी उक्तिके परस्परविरोधकूं सिद्धांती परिहार-करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—उद्गीथकरि उपलक्षित जो कर्म ।

जातैं उद्गीथकर्मविषैहीं तिसके कर्त्ता प्राणदेवताकी दृष्टिकरि उद्गीथरूप भक्तिका अवयवरूप ॐकार उपास्य होनेकरि विवक्षित है स्वतंत्र नहीं। यातैं तिस अर्थवान्ताकरि कर्मकूं आहरणकरते भये। यह हमनैं युक्त हीं कहा है॥ तिंसैं[१८५] ऐसैं देवनकरि स्वीकृत उद्गाताकूं स्वाभाविक तमोरूप प्रसिद्ध असुर ज्योतीरूप नासिकागत प्राणरूप देवकूं स्वजनित अधर्मके आसंगरूप पापकरि वेधन करते भये। अर्थ यह जोः—संसर्गकूं करतेभये॥ सोई[१८६] नासिका-

तिसकरि उपलक्षित ज्योतिष्टोमादिक कर्मके होतेहीं उद्गाताके प्राणकी दृष्टिकरि अक्षर (ॐकार) विवक्षित है औ उद्गीथका अवयवरूप ॐकार ध्येयपनैकरि इष्ट है। स्वतंत्र व्यापक नहीं। तिसप्रकार हुये अक्षरके उपासनरूप अर्थवाला होनेकरि कर्मका ग्रहण है। ध्येयभावकरि नहीं। ऐसैं अविरोध है॥

१८५ आश्रयकरिके विधान अर्थ कर्मका ग्रहण है। ऐसैं कहिके अब "ताकूं" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं॥ इहां स्वजनित आसुर नासिकासैं संबद्ध। तिसकरि। यह अर्थ है॥

१८६ अधर्मतैं जो आसंग तिसरूपकरि। ऐसैं इसके आ-

गत घ्राण कल्याणरूप गंधके ग्रहणके अभिमानरूप आसंगकरि अभिभूत[१८७] विवेकविज्ञानवाला होता भया । कहिये सो तिस दोषकरि पापका संसर्गी होताभया ॥ सो[१८८] यहि कहा है कि:—"असुर पापकरि वेधन करतेभये" ऐसैं ॥ [१८९] जातैं आसुरपापकरि विद्ध भया । तातैं तिसपापकरि प्रेरित घ्राणरूप प्राण प्राणिनकी दुर्गंधिका ग्राहक भया । [१९०] यातैं तिसकरि लोक उभय सुरभि (सुगंधि) अरु दुर्गंधिकूं सूंघता

संगकरि वेधकूं साधतेहैं ॥ इहां कल्याणगंध जो सुरभि कहाहै ताका ग्रहण मुजकूंहीं होवै इस अभिमानरूप जो यह आसंग है तिसकरि अभिभूत है "गंधके सूंघनेका किया उपकार सर्व कार्यकारणके संघातकूं तुल्य है" ऐसा विवेकज्ञान जिसका [ऐसा जो नासिकागत प्राण] सो तैसा है । ऐसैं विग्रह है ॥

१८७ ननु नासिकागत प्राणकूं उक्त आसंगका स्पर्शीपना कैसै है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१८८ उक्त अर्थविषै वाक्यकूं पतन करैहैं ॥

१८९ घ्राणगत प्राणके आसुर पापकरि विद्ध होनेविषै कार्यरूपलिंगवाले अनुमानकूं सूचन करैहैं ॥

१९० उक्त अनुमानके प्रकाशक वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

है । [१९१]पापकरि यह जातैं विद्ध है ॥ इहां [१९२]उभयका ग्रहण अविवक्षित है ।"[१९३]जाका उभय हवि आर्तिकूं पावता है" इस वाक्यविषै । यह अर्थ है । काहेतैं "[१९४]जिसीहीं इस अप्रतिरूप (अननुकूल)कूं सूंघताहै" इस समान प्रकरणकी श्रुतितैं ॥ २ ॥

---

१९१ अतः (यातैं) शब्दके अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

१९२ पापकरि विद्धहोनेतैं तिसकरि लोक दुर्गंधकूं जानताहै ऐसैंहीं कहनेकूं योग्य है । काहेतैं सुगंधके ज्ञानकूं पापकर्मताके अभावतैं । तैसैं हुये "तिसकरि उभयकूं सूंघताहै" यह कैसैं कहा ? तहां कहैहैं ॥

१९३ द्रवात्मक वा पुरोडाशआदिक एकबी हविके काक आदिकके संबंधतैं भ्रंशके हुये प्रायश्चित्तके सद्भावके हुयेबी "जाका उभय हवि आर्ति (नाश)कूं पावताहै सो इंद्रसंबंधी पंचशरावबाले ओदन (भात)कूं निर्वपनकरै" या वाक्यविषै उभयका ग्रहण अविवक्षित है । ऐसैं प्रथम तंत्रविषै स्थित है । तैसैं इहां बी होवैगा । ऐसैं कहैहैं ॥

१९४ केवल "पापकरिहीं" इस वाक्यशेषतैं इहां उभय (सुगंध दुर्गंध)का ग्रहण अविवक्षितहै ऐसैं नहीं । किंतु वाजसनेयक (बृहदारण्यक)विषै उक्त उद्गीथ विद्याविषयक होनेकरि समान प्रकरणविषै "जोई इस अप्रतिरूप (दुर्गंध)कूं सूंघता है सोई सो पाप है" इस श्रुतितैं इहां बी पापकरि

उद्गीथ आदिकके उपासन १२

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। ताꣳ हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यञ्चानृतं च। पाप्मना ह्येषा विद्धा ॥ ३ ॥

अर्थः—अनन्तर प्रसिद्ध वाक्रूप उद्गीथकूं उपासनकरतेभये। ताहीकूं असुर पापकरि वेधनकरतेभये। तातैं तिस (वाक्) करि [लोक] सत्य अरु अनृत उभयकूं कहताहै। पापकरि जातैं यह(वाक्) विद्ध है॥३

टीकाः—[195]मुख्यप्राणके उपास्यभावअर्थ ताकी

वेधके वशतैं दुर्गंधकूं जानताहै ऐसैंहीं कहनेकूं योग्य होनेतैं उभयका ग्रहण अविवक्षित है। ऐसैं कहैहैं ॥

१९५ ननु नासिकागत प्राणकी पापकरि विद्ध होनेतैं अनुपास्यताके सिद्ध हुये न्याय (युक्ति)की समतातैं वाक् आदिकनकी बी अनुपास्यता है। तातैं उत्तरग्रंथसैं क्या है? यातैं कहैहैं ॥ इहां न्यायकी समताके हुयेबी मुखतैं निराकरणके अभाव हुये मुख्यप्राणकीहीं उपास्यता है ऐसे अनिश्चयतैं ता (मुख्यप्राण)की उपास्यताकी दृढता अर्थ मुखतैं वाक्आदिकनकी उपास्यताकूं निषेध करनेकूं उत्तरग्रंथ है। यह अर्थ है औ विद्ध भये ऐसैं विचार करिके क्रमसैं कलपना करियेहैं। ऐसैं संबंध है ॥

अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं चादर्शनीयं च। पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ४ ॥

अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे।

अर्थः—अनन्तरहीं चक्षुरूप उद्गीथकूं उपासन करतेभये। ताहीकूं असुर पापकरि वेधनकरतभये। तातैं तिसकरि दर्शनीय अरु अदर्शनीय उभयकूं देखताहै। पापकरि जातैं यह (चक्षु) विद्ध है॥ ४ ॥

अर्थः—अनन्तरहीं श्रोत्ररूप उद्गीथकूं उ-

विशुद्धताके अनुभवरूप अर्थवाला यह विचार श्रुतिनैं प्रवर्त्त किया। यातैं चक्षुआदिक देवता विचार करिके आसुरपापकरि विद्धभये। ऐसैं कल्पनासैं जानियेहै। [१९६] अन्य समान है ॥ अ-

---

१९६ उत्तर वाक्यनविषै अक्षरोंका व्याख्यान अपेक्षित नहीं है। काहेतैं पूर्वस समान होनेतैं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अवशिष्ट वाक्यके एकदेशके ग्रहणअर्थ आदि पद है ॥

तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनो-
भयꣳ शृणोति श्रवणीयञ्चाश्रवणीयञ्च।
पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ५ ॥

अथ ह मन उद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे।
तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनो-

पासनकरतेभये । ताहीकूं असुर पापकरि वेधनकरतेभये । तिसकरि श्रवणीय अरु अश्रवणीय उभयकूं सुनताहै । पापकरि जातैं यह (श्रोत्र) विद्ध है ॥ ५ ॥

अर्थः—अनन्तरहीं मनरूप उद्गीथकूं उपासनकरतेभये । ताहीकूं असुर पापकरि वेधनकरतेभये। तातैं तिसकरि संकल्पनीय

नन्तर वाक्कूं चक्षुकूं श्रोत्रकूं मनकूं इत्यादि। इहां अनुक्त[१९७]बी अन्य त्वक् रसनाआदिक दे-

१९७ ननु घ्राणादिकनकी पापकरि विद्ध होनेतैं अनुपास्यताके हुये बी । त्वक्आदिकनकी तिस पापकरि सिद्ध होनेकरि अनुपास्यताके अकथनतैं मुख्यहीं प्राणकी उपास्यता निश्चित नहीं होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

भय॑ संकल्पयते संकल्पनीयञ्चासंक-
ल्पनीयञ्च। पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ६ ॥
अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमु-

अरु असंकल्पनीय उभयकूं संकल्पकरता है। पापकरि जातैं यह (मन) विद्ध है ॥६॥

अर्थः–अनन्तरहीं जोई यह मुख्य (मु-

वता देखनेकूं योग्य हैं। काहेतैं "ऐसैंहीं[198] निश्चयकरि ये देवता पापोंकरि विद्ध भये" इस अन्यश्रुतितैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

टीकाः–[199]आसुर पापकरि विद्ध होनेतैं प्राणादि देवताओंकूं कल्पनासैं जानिके अनंतर-जो यह प्रसिद्ध मुखविषै होनेवाला मुख्य

---

१९८ उक्तनकूं अनुक्तनकी उपलक्षणता है तिसविषै बृहदारण्यक श्रुतिकूं कथन करैहैं ॥

१९९ "अब प्रसिद्ध" इत्यादि मुख्यप्राणविषयक वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां पूर्वकी न्यांई। याका वाक् आदिकनविषै जैसैं कहा तैसैं। यह अर्थ है औ टंकनकरि। याका विदारण करनेहारे लोहविशेषनकरि। यह [आदिशब्दका] अर्थ है ॥

द्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तँ हासुरा ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वँसेत ॥ ७ ॥

खगत) प्राण है तिसरूप उद्गीथकूं उपासन करतेभये। ताहीकूं असुर पायके विनाशकूं पावतेभये। जैसें आखण (कठिन) पाषाणकूं पायके [लोष्ट] विध्वंसकूं पावै ॥ ७ ॥

प्राण है ता उद्गीथकूं उपासन करते भये। ताकूं असुर पूर्वकी न्यांई प्राप्तहोयके विध्वंसकूं प्राप्त होते भये कहिये तिस प्राणके नाशके अभिप्रायमात्रकरि प्राणकूं किंचित्‌बी न करिके वे असुर आप विनष्ट भये ॥ ॥ कैसें विनष्टभये ? इहां दृष्टांतकूं कहैहैः—जैसें लोकविषै आखण (अभेद्य) पाषाणकूं [कुद्दालकआदिक करिबी खनन (भेदन) करनेकूं शक्य नहीं होवैहै ऐसा जो पाषाण सो अखण है। अखण हीं आखण है ऐसे ता पाषाणकूं] पायके साँम-[२००]

२०० अश्रुत लोष्टके इहां ग्रहणविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां

एवं। यथाऽश्मानमाखणमृत्वा वि-
ध्वꣳसत एवꣳ हैव स विध्वꣳसते।

अर्थः—इसप्रकार जैसें आखण पाषा-
णकूं पायके [लोष्ट] विध्वंसकूं पावताहै।

र्थ्यतें औ अन्य[201] श्रुतितें लोष्ट जो पांसुपिंड (धू-
लीका ढींमा) सो पाषाणविषै पाषाणके भेदनके
अभिप्रायसैं फेंक्या हुया तिस पाषाणकूं किं-
चित्बी नकरिके आप विध्वंस (विदारण)कूं
पावताहै। ऐसैं वे असुर विनाशकूं पावतेभये॥७॥

टीकाः—ऐसैं[202] असुरोंकरि अपराभूत होनेतैं

सामर्थ्यतैं। याका ता (लोष्ट)की ध्वंसनकी योग्यतातैं औ
ध्वंसाति क्रियाकूं कर्त्ताकी अपेक्षावाली होनेतैं। यह अर्थ है॥

२०१ ननु तब इसप्रकारके जिसी किसीके बी संभवतैं
लोष्टके ग्रहणसैं अलंहै? यह आशंकाकरिके "जैसैं पाषा-
णकूं पायके लोष्ट (धूलिका पिंड) विध्वंसकूं पावै" इस
बृहदारण्यककी श्रुतितैं तिस लोष्टकाहीं इहां ग्रहण है।
ऐसैं कहैहैं॥

२०२ दृष्टांत अरु दार्ष्टांतिककरि सिद्ध अर्थकूं निगमन
करैहैं॥ इहां प्राणकूं विशुद्ध होनेतैं ताका उपासन कर्त्तव्य
है। यह शेष है॥

प्राण विशुद्ध है। यातें ताका उपासन कर्त्तव्य है। यह कहा ॥ अब[२०३] ऐसें जाननैंवाले प्राणात्मभूतकूं यह फल कहैहैः—"जैसें पाषाणकूं" ऐसा यह हीं दृष्टांत है। ऐसें हीं सो विनाशकूं पावताहै ॥ ॥ कौंन यह? यह कहैहैः—जो ऐसें जाननेवाले उक्त प्राणके वेत्ताविषै ताके अयोग्य पापकूं करनेकूं इच्छताहै औ जो बी या प्राणवेताके प्रति हिंसाकरैहै (आक्रोशताडन आदिक करैहै)। सो बी ऐसेंहीं विनाशकूं पावताहै। यह अर्थ है ॥ [२०४]जातें सो यह प्राणवित् प्राणभूत होनेतें पाषाणरूप आखण (अभेद्य)कीन्यांई पाषाणरूप आषण है। अर्थ यह जोः—धर्षण (पराभव) करनेकूं अयोग्य है ॥ ॥ [२०५]ननु नासिकागत प्राण बी वायुरूप

---

२०३ फलवचनकूं अवतार देके व्याख्यात करैहैं ॥

२०४ प्राणवेत्ताके प्रतिस्पर्धीके विनाशविषै हेतुकूं कहैहैं॥

२०५ नासिकागत प्राणकी अरु मुख्यप्राणकी वायु विकारताकरि प्राणरूपताके अविशेषतें दोनूंके पापकरि वेध अरु अवेध तुल्यहीं होवैंगे? ऐसें पूर्ववादी शंका करैहै ॥

य एवंविदि पापं कामयते । यश्चैन-
मभिदासति । एषोऽश्माखणः ॥ ८ ॥

ऐसेंहीं सो विध्वंसकूं पावताहै जो ऐसें जा-
ननेवालेविषै पापकूं इच्छताहै अरु जो याकूं
हननकरैहै। सो यह (विद्वान्) अश्माखण
(अधर्षणीय) है ॥ ८ ॥

है । जैसें मुखगत प्राण है ॥ तिनमें नासिका-
गत प्राण पापकरि विद्ध भया । प्राणहीं हुया
मुखगतप्राण कैसें पापकरि विद्ध न भया ? यह[२०६]
दोष नहीं है:—काहेतें नासिकागत प्राण तो
स्थानरूप विशिष्ट करणविषै इंद्रियकी जो विगु-
णता है तातें विद्ध भया औ वायुरूप हुयाबी

---

२०६ स्थानविशेषके संबंध अरु असंबंधकरि दोनूंकीबी
पापकरि वेध अवेधकी व्यवस्था युक्त है। ऐसैं सिद्धांती
परिहार करैहैं॥ इहां स्थान अवस्थाकरि अवच्छिन्न करणविषै
विगुणता जो विषयविशेषविषै अशक्तता है । तिसतैं तिसरूप
नासिकागतप्राणकी बी विद्धता होवैहै । यह अर्थ है औ
ताके असंभवतैं। याका विशेष संबंधकी करी विगुणताके अ-
योगतैं । यह अर्थ है । यातैं तिन दोनूंका भेद जो कहा सो
घटित है ॥

नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजाना-
त्यपहतपाप्मा ह्येष तेन यदश्नाति य-

अर्थः—इस (प्राण)करि न सुगन्धिकूं न दुर्गन्धिकूं [लोक] जानताहै। अपहत-

---

मुखगतप्राण स्थानगत देवताकूं अत्यंतबलवान्[२०७] होनेतैं विद्ध न भया। यह युक्त है॥ जैसैं वास्य (बढईके शस्त्रविशेष) जे हैं वे शिक्षावान् पुरुष (बढई) रूप आश्रयवाले हुये कार्यविशेषकूं करतेहैं। अन्य हस्तगत नहीं। ताकी न्यांई दोषवाले प्राणरूप सहाययुक्त होनेतैं प्राणदेवता विद्ध भई। मुख्य (मुखगतप्राण) नहीं ॥८॥

टीकाः—जाँतैं[२०८] मुख्यप्राण असुरोंकरि विद्ध भया

---

२०७ स्थानसंबंधके विशेषतैं घ्राणगतप्राणकूं पापकरि विद्धपना है अरु ताके अभावतैं मुख्य (मुखगत) प्राणकूं तिसपापकरि अविद्धपना है। यह दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं॥ इहां मुख्य प्राण विद्ध नहीं भया। काहेतैं दोषवाले घ्राण इंद्रियरूप सहकारीके अभावतैं। यह शेष है॥

२०८ घ्राणदेवताके विद्ध भये। प्राणदेवता तो विद्ध भई नहीं। इस अर्थविषै प्रमाण होनेकरि अनंतरके वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं॥

नहीं। तातैं इस मुखकरि सुगंधिकूं वा दुर्गंधिकूं लोक जानता नहीं । घ्राणकरि हीं तिन दोनूंकूं जानताहै ॥औ [२०९] यातैं पापके कार्यके अदर्शनतैं [२१०] जातैं यह अपहतपाप्मा है । अपहत कहिये विनाशित (दूरीकिया) है पाप जिसतैं सो यह अपहतपाप्मा है । अर्थ यह जोः—विशुद्ध है ॥ औ [२११] जातैं कल्याणआदिकके आसंगवाले होनेतैं घ्राणआदिक आत्मंभर हैं । तैसैं मुख्यप्राण आत्मंभर नहीं है। किंतु सर्वार्थ है ॥ [२१२] ॥ कैसें है ? यह कहियेहैः—तिस मुखकरि लोक जो खाताहै जो पीताहै । तिस

२०९ मुख्यप्राणके पापकरि वेधके अभावकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां पापका कार्य जो आसंग ताके प्राणविषै अनुपलंभतैं । यह अतः (यातैं) शब्दकाही अर्थ है ॥

२१० "हि" शब्दकरि उक्तपापके अवेधकूं विशुद्धताविषै हेतुकरिके । मुख्यप्राणकी विशुद्धिकूं उपसंहार करैहै ॥

२११ ताकी विशुद्धताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां । यातैं विशुद्ध है ॥ ऐसैं उत्तर वाक्यविषै संबंध है ॥

२१२ प्राणकी सर्वार्थताकूं प्रश्नपूर्वक प्रतिपादन करैहैं ॥ इहां घ्राणादि । इस आदिशब्दकरि कार्यबी कहिये है ॥

त्पिबति तेनेतरान्प्राणानवति । एतमु

पाप्मा जातैं यह (प्राण) है। तिसकरि जो खाताहै जो पीताहै तिसकरि इतर(घ्राणआ-

भक्षित अरु पीतकरि इतर घ्राणादिक प्राणनकूं पालन करैहै । अर्थ यह जोः–तिसक-[213] रिहीं तिनकी स्थिति होवैहै । यातैं सर्वभर प्राण है । यातैं विशुद्ध है ॥ ॥ ननु[214] फेर मुख्य प्राणके भक्षित अरु पीतकरि इनकी स्थिति कैसैं जानियेहै ? यह कहिये हैः–इस मुख्य प्राणकूंहीं कहिये मुख्यप्राणकी वृत्तिकूं । अर्थ यह जोः– अन्नपानकूं[215] । अंततैं कहिये अंत जो मरणकाल

---

२१३ "तिसकरि ये तृप्त होवैहैं ।" इस अन्य श्रुतिकूं आश्रयकरिके कहैहैं ॥ इहां प्राणवृत्तिके हेतु अन्नपानकरि संघातकी स्थिति प्रथम अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है औ सर्वार्थता द्वितीय अतः (यातैं)शब्दका अर्थ है ॥

२१४ अन्नपानोकूं मुख्य प्राणके उपयोगी होनेतैं संघातकी स्थितिकी हेतुता है इस अर्थविषै प्रश्नपूर्वक लिंगकूं दिखावै हैं ॥

२१५ वृत्तिकूंहीं विशेषण देतेहैं ॥ इहां प्रतिदिन उपयोगी हुये अन्नपान प्राणकी स्थितिके हेतु हैं । यह अर्थ है ॥

एवान्ततोऽवित्त्वोत्क्रामति व्याददात्येवान्तत इति ॥ ९ ॥

दिक) प्राणोंकूं रक्षण करैहै। इस (मुख्य प्राणकी वृत्ति)हींकूं अन्ततैं न पायके उत्क्रमणकरैहै। अरु अन्ततैं व्यादान (मुखका विदारण) करैहै। ऐसें॥ ९॥

तिसविषै। न पायके घ्राणादि प्राणोंका समुदाय उत्क्रमण करैहै (देहतैं निकसताहै) यह अर्थ है ॥ जातैं[२१६] प्राणरहित पुरुष खानेकूं वा पीनेकूं शक्त होता नहीं। तिसकरि तब घ्राणादिकके समूहकी उत्क्रांति प्रसिद्ध होवैहै। [२१७]जातैं उत्क्रांतिके हुये प्राणकी अशनकरनेकी

२१६ ननु प्राणकूं उत्क्रमण करनेकी इच्छाके हुयेबी संघात आप भक्षण अरु पानकूं करिकें स्थित होवैगा ? यह आशंकाकरिकें कहैहैं ॥ इहां तदा (तब) याका प्राणके उत्क्रमण करनेकी इच्छाकी अवस्थाविषै। यह अर्थ है ॥

२१७ ननु उत्क्रान्तिअवस्थाविषै भोजन करनेकी इच्छा आदिकके अभावतैं हीं संघातकी उत्क्रान्ति होवैहै। परंतु अशन (भोजन)आदिकके अभावतैं नहीं। तिसविषै प्रमाणके अ-

उद्गीथ आदिकके उपासन १३

तꣳ हाङ्गिरा उद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एवाङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः ॥ १० ॥

अर्थः–अङ्गिरा हुया ताही उद्गीथकूं उपासनकरताभया । इसीहींकूं आङ्गिरस मानतेहैं । जातैं अङ्गनका रस है ॥ १० ॥

अनिच्छा देखियेहै । जातैं व्यादान (मुखका विदारण) करता हीं है । यह अर्थ है ॥ जातैं सो अन्नके अलाभहुये उत्क्रांतका लिंग है ॥९॥

टीकाः–तिसकूं "अंगिरा"[218] कहिये तिसैं[219] मुख्यप्राणकूं "अंगिरा" इसगुणवाले उद्गीथकूं

भावतैं ? यह शंका भई । यातैं कहैहैं ॥ इहां तत् (सो) ऐसैं मुखका खोलना कहिये है औ अन्नका ग्रहण पानके उपलक्षणअर्थ है ॥

२१८ विशुद्धिगुणवाले मुख्यप्राणरूप उद्गाताकी दृष्टिकरि उद्गीथका अवयवभूत ओंकारनामक अक्षर उपास्य है । ऐसैं कहा । अब तहांहीं आङ्गिरस बृहस्पति अरु आस्याय-रूप तीनगुणनके विधानअर्थ उत्तरग्रंथकूं उठावते हैं ॥

२१९ तहां वृत्तिकारके अभिप्रेत संबन्धकूं दिखावैं हैं ॥

बकदाल्भ्य मुनि उपासनकरताभया । ऐसैं वक्ष्यमाणके साथि संबंध करियेहै ॥ तैसैं "बृहस्पति" ऐसैं । अरु "आयास्य" ऐसैं । बकमुनि उपासन करताभया । ऐसैं केईक संबन्धकूं करतेभये "[220]इसी हीं प्राणकूं आंगिरस । बृहस्पति । आयास्य । मानतेहैं" इस वचनतैं [221]यथाश्रुत अर्थके असंभव हुये ऐसैं संभवैहै । परंतु ऋषिनकी चोदना (प्रेरणा)विषैबी यथाश्रुत अर्थ संभवैहै [222]अन्यश्रुतिकी न्यांई । [223]तातैं

२२० पर (वृत्तिकार)के अभिप्रेत संबन्धविषै गमककूं कहैहैं॥

२२१ अव्यवहित (अन्तरायरहित) संबन्धके संभव हुये व्यवहित (अन्तरायसहित) संबन्धकी कल्पना युक्त नहीं है । ऐसैं सिद्धान्ती परिहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः— ऋषिनके अङ्गिरा बृहस्पतिआदिक शब्दनसैं उपदेशके हुये बी। तीन गुणोंकरि विशिष्ट प्राणका उपासन विरोधकूं पावता नहीं औ तातैं प्रधानोंके अबाध हुये प्राणके उपासक ऋषिनका उपदेश त्याग करनेकूं योग्य नहीं है । काहेतैं बृहस्पतिआदिक शब्दनतैं बी प्रथम प्रतीत भये ऋषिनकूं छोडिके यौगिकवृत्तिकरि जाननेयोग्य गुणमात्रकी प्रतिपत्तिके असंभवतैं॥

२२२ प्राणके उपासक ऋषिनके अभिधान (नाम)कूं ऐतरेयक श्रुतिकरि दृढ करैहैं ॥

२२३ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां शतर्चिनाम प्रथममंड-

उद्गीथ आदिकके उपासन १३

प्रथम मंडलकी दृष्टिवाले ऋषि ऐसैं कहतेहैं। इसीहीं प्राणरूप हुयेकूं ऋषि (शरीरविषै स्थित) वी [कहतेहैं]।[२२४] तैसैं मध्यम जे गृत्समद। विश्वा-

---

लके देखनेवाले ऋषि हैं औ यह प्राण जातैं संघातनामक पुरुषकेप्रति शतवर्षपर्य्यन्त प्राप्त होता भया। तातैं इसीहीं ऋषिनके शरीरविषै स्थित वी विद्यमान प्राणकूं "शतर्चि" शब्दका वाच्य कहते हैं। ऐसैं योजना है॥

२२४ "शतर्चि" शब्दकी न्यांई दोनूंकूं विषय करनेवाले अन्य शब्दवी हैं। ऐसैं कहेहैं॥ इहां यह अर्थ है:—आद्यमंडलकूं छोडिके मध्यम मंडलोंके देखनेवाले जे ऋषि हैं वे मध्यम हैं। वे वी प्राण हैं। काहेतैं ताकूं स्वात्माके मध्य सर्व जगत्का विधारक होनेतैं औ गृत्समद तो द्वितीय मंडलका दर्शी है॥ निद्राकालविषै वाक्आदिकनके गिलजानेतैं प्राण गृत्स है। रेतके विसर्गका कारण अरु मदका हेतु होनेतैं अपान मद है। प्राण अपानस्वरूप होनेतैं प्राणवी ऐसा (गृत्समद) कहिये है औ तृतीय मंडलका दर्शी विश्वामित्र है। प्राणवी तैसा कहियेहै। काहेतैं ता प्राणका जातैं भोग्यका समूह विश्वस्थिति हेतुताकरि स्निग्ध होता भया। औ वामदेव तो चतुर्थ मंडलका द्रष्टा है। प्राणवी तिस शब्दका वाच्यहै। काहेतैं ता प्राणकूं वाक्आदिक देवताओंकरि सम्यक् भजनेयोग्य होनेतैं। औ पंचममंडलका द्रष्टा अत्रि ऐसैं कहियेहै। प्राणवी तैसाही कहियेहै। काहेतैं ताकूं अनर्थरूप पापोंकेप्रति सर्वत्र अत्ता (भक्षक) होनेतैं। इहां आदिपदकरि भरद्वाजआदिक पद ग्रहण किये हैं॥

मित्र । वामदेव । अरु अत्रि । इत्यादिक ऋषि हैं । तिनकूंहीं श्रुति प्राणरूप आपादनकरैहै । [२२५]तैसें इन प्राणके उपासक अंगिरा । बृहस्पति । आयास्य नामक ऋषिनकूं श्रुति प्राणरूप करैहै । [२२६]अभेदके विज्ञानअर्थ ॥ औ “[२२७]प्राण प्रसिद्ध पिता है । प्राण माताहै” इत्यादिककी न्यांई । [२२८]तातें अंगिरानाम ऋषि प्राणहीं हुया आत्मा (आप) आंगिरस प्राणरूप उद्गीथकूं उपासनकरता भया। यह अर्थहै ॥ [२२९]जातें सो अंगोंका प्राण हुया रस है तिसकरि यह आंगिरस है ॥ १० ॥

---

२२५ दृष्टान्तकूं ऐसें व्याख्यान करिके अब दार्ष्टान्तिककूं कहै हैं ॥

२२६ ननु अङ्गिराआदिक ऋषिनकूं । श्रुति ऐसें प्राणरूप क्यूं करै है ? यह शंका भई । यातें कहैहैं ॥

२२७ तैसें हुये सप्तमविषै प्राणका सर्वात्मभाव आगे कहियेगा । तैसें इहांबी ताकी तिस तिस ऋषिरूपता विवक्षित है । ऐसें कहै हैं ॥

२२८ अव्यवहित संबन्धके संभव हुये फलित वाक्यार्थकूं कथन करैं हैं ॥

२२९ प्राणके आङ्गिरसपनैंकूं व्युत्पादन करैहैं कहिये व्युत्पत्तियुक्त करैहैं ॥

तेन तँ ह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते। वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः ॥ ११ ॥

तेन तँ हायास्य उद्गीथमुपासाञ्चक्र

अर्थः-जातैं वाक् बृहती है। ताका पति है। तिसकरि बृहस्पति [है। सो हुया] तिसीही उद्गीथकूं उपासन करताभया। तिसीहीकूं बृहस्पति मानतेहैं॥ ११ ॥

अर्थः-जातैं आस्य (मुख)तैं अयन (निर्गमन) कहैहै। तिसकरि आयास्य [है।

टीका-तैसें[230] वाक्[231]रूप बृहतीका पति है तिस करि यह बृहस्पति है। तैसें[232] जातैं[233] आस्य

---

२३० अङ्गिरसशब्दकी न्यांई बृहस्पति शब्दबी दोनूं ठिकाने लगावनेकूं योग्य है। ऐसैं कहै हैं॥

२३१ प्राणके बृहस्पतिपनैकूं साधतेहैं॥

२३२ अङ्गिरस अरु बृहस्पति शब्दकी न्यांई आयास्यशब्द बी दोनूं ठिकाने देखनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं॥

२३३ ता आयास्यशब्दके उभय ठिकाने वर्तनेकूं स्पष्ट करैहैं॥ इहां जातैं आस्य (मुख)तैं अयन (गमन) करैहै

एतमु एवायास्यं मन्यन्त आस्याद्यद-
यते ॥ १२ ॥

तेन तꣳह बको दाल्भ्यो विदाञ्चकार।

सो हुया] तिसींहीं उद्गीथकूं उपासन कर-
ताभया। याहीकूं आयास्य मानतेहैं ॥१२॥

अर्थः—ताहींकूं बकदाल्भ्य जानताभया।

(मुख)तैं निर्गमन करैहै। तिसकरि आ-
यास्य ऋषि प्राणहीं हुया है। यह अर्थ है ॥
तैसैं[234] अन्य बी उपासक आपहीं आंगिरस आ-
दिक गुणवाले प्राणरूप उद्गीथकूं उपासन करै।
यह अर्थ है ॥ ११ ॥ १२ ॥

टीकाः—केवल[235] आंगिरसआदिकउपासनकर-

तिसकरि आयास्य प्राण है। सोई इहां उपासक होनेतैं ऋ-
षिबी तैसा कहियेहै। ऐसैं योजना है ॥

२३४ ननु उक्तऋषिनकाहीं उक्तगुणवाला उपासन है अन्योंका नहीं। विशेष वचनतैं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां विशेषकूं शेषकी निवर्तकता नहीं है। काहेतैं दिखावने-अर्थ होनेतैं। यह अर्थ है ॥

२३५ उक्त उपासनके तीनोविषै नियमके अभावविषै प्र-माणकूं दिखावैहैं ॥

स ह नैमिषीयानामुद्गाता बभूव । स ह स्मैभ्यः कामानागायति ॥ १३ ॥

सोई नैमिषीय ऋषिनका उद्गाता होताभया । सोई इनोंके अर्थ कामोंकूं गायन करैहै । तिसकरि बकदाल्भ्य [है । सो हुया] ताहीकूं जानताभया ॥ १३ ॥

तेभये । ऐसैं नहीं । किंतु ताकूं यथादर्शित प्राण प्रसिद्ध बक नाम दल्भ्यका पुत्र दाल्भ्य जानताभया औ [२३६] जानिके सोई नैमिषीय (नैमिषवनवासी) सत्रिनका उद्गाता होताभया औ सो प्राणके उपासनके सामर्थ्यतें इन नैमिषीय ऋषिनके अर्थ कामोंकूं प्रसिद्ध गायन करताभया । यह अर्थ है । [२३७] तैसैं अन्य बी उद्गाता गायन करै ॥ १३ ॥

२३६ अब विहित उपासनके दृष्ट फलकूं कहनेकूं पातनिका (भूमिका)कूं करैहैं ॥

२३७ भूमिका (अवतरणिका)कूं करिके । कहनेकूं इच्छित उपासनाके फलकूं कथन करै हैं ॥

आगाता ह वै कामानां भवति। य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥ १४ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदि प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥ २ ॥

अर्थः—निश्चित कामोंका आगाता (गायक) होवैहै। जो ऐसें विद्वान्हुया अक्षररूप उद्गीथकूं उपासताहै। ऐसें अध्यात्म यह [उपासन कहा] है ॥ १४ ॥

इति श्री॰मूलमात्रभाषा॰ प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः ॥ २ ॥

निश्चियकरि कामोंका सो आगाता (गायक) होवैहै। जो ऐसें जानता हुया उक्त गुणवाले प्राणरूप उद्गीथ अक्षरकूं उपासता है। ताकूं यह दृष्ट फल कहा। [२३८] प्राणका आत्म-

---

२३८ "दृष्ट" इस विशेषणतैं अभीष्ट (अदृष्ट) अन्यफलकूं कहैहैं ॥ आत्मविषय। याका शरीरवर्त्ती प्राणगोचर। यह अर्थ है ॥

भाव तो अदृष्ट फल है। सो "देव होयके देवनके प्रति पावता है" इस अन्य श्रुतितैं सिद्ध हीं है। यह अभिप्राय है॥ ऐसैं अध्यात्म है कहिये यह आत्मविषयक उद्गीथका उपासन है। इति[२३९] ऐसैं उक्त जो उपसंहार। सो वक्ष्यमाण अधिदैवतरूप उद्गीथके उपासनविषै बुद्धिके समाधान (स्थित होने) अर्थ है॥ १४॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः समाप्तः॥ २॥

---

२३९ उपसंहार (समाप्ति)के प्रयोजनकूं कहैहैं॥

इति श्री० प्रथमप्रपाठकगत द्वितीयखंडस्य टिप्पणं॥ २॥

अथ श्री० प्रथमप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः ॥ ३ ॥

अथाधिदैवतं ॥ य एवासौ तपति

अथ श्री० मूलमात्रभाषा० प्रथमप्रपाठकस्य

तृतीयः खंडः ॥ ३ ॥

अर्थः—अनन्तर अधिदैवत हैः—जोई

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायाः

प्रथमप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ स्वरका उपासन ॥ १२ ॥

टीकाः—[२४०]अनन्तर अधिदैवत है कहिये देवताकूं विषय करनेवाला उद्गीथका उपासन प्रस्तुत है। [२४१]यह अर्थ है। उद्गीथकूं अनेक प्र-

---

अथ श्री०प्रथमप्रपाठकगत-तृतीयखंडस्य टिप्पणं ॥ ३ ॥

२४० इहां अनन्तर। आध्यात्मिक प्राणकी दृष्टिकरि उद्गीथउपासनके वचनतैं। यह शेष है ॥

२४१ ननु ऐसैं देवतारूप विषयवाला उद्गीथका उपासन क्यूं प्रसङ्गविषै प्राप्तकरियेहै? तहां कहैहैं ॥ इहां प्राणरूपसैं

तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य
यह तपताहै तिस उद्गीथकूं उपासन करै।
उदयकूं पाया हुयाहीं यह (सूर्य) प्रजाके-
कारसैं उपास्य होनेतें ॥ जोई यह आदित्य
तपताहै तिस उद्गीथकूं उपासन करै। अ-
र्थयह जोः-[242]आदित्यदृष्टिकरि उद्गीथकूं उपासन
करै ॥ ॥ ननु तिस[243] उद्गीथकूं ॥ यह उद्गीथशब्द
अक्षरका वाची हुया आदित्यविषै कैसैं वर्तताहै?
[244]यहै कहियेहैः-उदयकूं पाया हुया हीं यह प्र-

औ आदित्यरूपसैं उद्गीथकूं उपास्य होनेतैं देवतारूप विषयवाली ता (उद्गीथ) की उपासनाका प्रसङ्ग युक्तहीं है। यह अर्थ है ॥

२४२ "आदित्य आदिककी मतिवाले" इत्यादि न्यायकरि वाक्यके अर्थकूं कथन करै हैं ॥

२४३ ननु "तिस आदित्यरूप उद्गीथकूं उपासन करै" ऐसैं आदित्यशब्दका औ उद्गीथशब्दका सामानाधिकरण्य (एक अर्थविषै स्थितपना) अयुक्त है। काहेतैं उद्गीथश-ब्दकूं प्रकरणतैं अक्षरका वाची होनेतैं औ आदित्यशब्दकूं ज्योतिरूप विषयवाला होनेतैं औ भिन्न अर्थवाले दो शब्द-नके सामानाधिकरण्यके प्रयोगतैं? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

२४४ आदिविषै यद्यपि उद्गीथशब्द रूढिकरि वर्तनेकूं योग्य नहीं है। तथापि गौणीवृत्तिकरि तहां तहां वृत्तिके सामानाधिकरण्यकी सिद्धि है। ऐसैं सिद्धान्ती उत्तरकूं कहैहैं॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

उद्गायति । उद्यꣳस्तमो भयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति । य एवं वेद ॥ १ ॥

अर्थ उद्गायन करताहै । उदयकूं प्राप्त हुया तमकूं अरु भयकूं अपहनन करैहै ॥ जो ऐसैं जानताहै [सो] निश्चित भयका अरु तमका अपहन्ता होवैहै ॥ १ ॥

जाकेअर्थ ([245]प्रजाओंके अन्नकी उत्पत्ति अर्थ) उद्गायन करैहै । [246]जातैं तिसकी अनुदयके हुये ब्रीहिआदिककी पक्ति (पाक) नहीं होवैगी । यातैं [247]उद्गायन करते हुयेकि न्यांई उद्गायन करैहै । [248]जैसैंहीं उद्गाता अन्नके अर्थ [उद्गायन करैहै ।

---

२४५ प्रजाकेअर्थ उद्गायन करैहै । याहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां अन्नकी उत्पत्तिकेअर्थ उद्गायन करैहै । ऐसैं पूर्वसैं संबन्ध है ॥

२४६ ताहीकूं व्यतिरेकद्वारा साधते हैं ॥ इहां आदित्यका अन्नकेअर्थ आगान । अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है ॥

२४७ ता (आदित्य)का उद्गाताकी न्यांई प्रत्यक्ष उद्गान प्रतीत नहीं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२४८ उपमाकूंहीं उपपादन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—

समान उ एवायञ्चासौ चोष्णोऽयमु-

अर्थः-समानहीं यह (प्राण) औ वह

तैसै] [249]यातैं उद्गीथ सविताहै। यह अर्थ है ॥

[250]किंवाः-उदयहुया रात्रिके अन्धकारकूं अरु तिसकरिजन्य प्राणिनके भयकूं हननकरैहै ॥ तिस ऐसैं गुणवाले सविताकूं जो जानताहै सो निश्चित जन्म मरणादिरूप आत्माके भयका अरु ताके कारण अज्ञानरूप अन्धकारका अपहन्ता (नाशयिता) होवैहै ॥ १ ॥

टीकाः-[251]यद्यपि स्थानभेदतैं प्राण अरु आ-

"अनन्तर आत्माके अर्थ अन्नआदिककूं आगान करै" ऐसैं अन्य श्रुतिविषै जैसैं अन्नकेअर्थ उद्गाता आगानकूं करै है। यह जान्या है। तैसैं आदित्यवी प्रजाओंके अन्नकेअर्थ आगानकूं करै है ॥

२४९ उद्गीथशब्दके आदित्यविषै सम्भवकूं विचारिके फलितकूं कहैहैं ॥

२५० आदित्यकी दृष्टिकरि उद्गीथके उपासनकूं उपपादन करिके। अब फलोक्तिकूं कहै हैं ॥ इहां ऐसे गुणवाले। याका तम अरु तिसतैं जन्य भयके निवर्तकपनैरूप गुणसहित। यह अर्थ है ॥

२५१ ननु अध्यात्म अरु अधिदैवत। इस स्थानभेदतैं

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

ष्णोऽसौ स्वर इतीममाचक्षते स्वर इति

(सूर्य) है। उष्ण यह है। उष्ण वह है॥
"स्वर" ऐसैं इस (प्राण)कूं कहतेहैं औ

दित्य भिन्नकिन्यांई लखियेहैं। तथापि तिनके
सतत्व (स्वरूप)का भेद नहीं है॥ [252] ॥ कैसैं
किः—प्राण। गुणतैं सविताकरि समान (तुल्य)
हीं है। औ सविता। प्राणकरि [तुल्य हीं है]॥
[253] जातैं उष्ण यह प्राण है औ उष्ण यह स-
विता (सूर्य) है॥ [254] ॥ किंवाः—"स्वर"
ऐसैं इस प्राणकूं कहते हैं। तैसैं "स्वर"

प्राण अरु आदित्यकूं भिन्न होनेतैं भिन्नहीं तिनका उपासन उपादेय है? यातैं कहैहैं॥

२५२ प्राण अरु आदित्यके स्वरूपके भेदके अभावकूं प्रतिपादन करै हैं॥ इहां "उ" शब्द अपि (बी) अर्थ है। सो स्थानभेदतैं भेदकूं आशा करैहै॥

२५३ गुणतैं समताकूं साधतेहैं॥

२५४ नामतैं समताकूं कहैहैं॥

प्रत्यास्वर इत्यमुं तस्माद्वा एतमिमम-
मुञ्चोद्गीथमुपासीत॥ २॥

"स्वर" ऐसैं अरु "प्रत्यास्वर ऐसैं उस (सूर्य)कूं [कहतेहैं]॥ तातैंहीं इसरूप औ इस उसरूप उद्गीथकूं उपासनकरै ॥ २ ॥

ऐसैं अरु "प्रत्यास्वर" ऐसैं इस सविताकूं कहतेहैं ॥ [255]जांतैं प्राण स्वरता (चलता) हीं है अरु मृत हुया फेर प्रत्यागमन करता नहीं ॥ [256]सविता तो अस्तकूं पायके फेर बी दिनादिनविषै प्रत्यागमन करताहै। यातैं "प्रत्यास्वर है ॥ [257]ईसैंगुणतैं अरु नामतैं परस्पर स-

२५५ सूर्यकीन्यांई प्राणविषै बी "प्रत्यास्वर" शब्दकी प्रवृत्तिकूं आशंका करिके कहै हैं ॥ इहां स्वरताहीं है। याका गमन करताहीं है। यह अर्थ है। तिसींहीं स्थूलदेहविषै फेर आवता नहीं। तातैं प्राणविषै स्वरशब्दकी प्रवृत्तिहीं है। यह अर्थ है ॥

२५६ ननु सूर्यविषैबी तब तिस (स्वर) शब्दकी प्रवृत्तिहीं होवैगीः—यह आशंकाकरिके कहै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अस्तभये आदित्यके प्रतिदिन एकठिकानेहीं आगमनके दर्शनतैं इसविषै प्रत्यास्वर शब्दकीबी प्रवृत्ति है ॥

२५७ यातैं प्राण अरु आदित्यके उक्त साम्यकूं निगमनकरै हैं॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत।

अर्थः—अब निश्चयकरि व्यानरूप हीं उद्गीथकूं उपासन करै। जोई प्राणनकूं करैहै मान प्राण अरु आदित्य हैं। यातैं स्वरूपके अभेदतैं इस उस (आदित्य रूप) उद्गीथकूं उपासनकरै ॥ २ ॥

टीकाः—अनन्तर[259] खलु कहिये प्रकारान्तरकरि उद्गीथका उपासन कहियेहैः—वक्ष्यमाण[260]लक्षणवाले प्राणकेहीं[261] वृत्तिविशेष व्यानरूपहीं

---

२५८ परस्परकी समताके किये फलकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—प्राण अरु आदित्यकूं एककरिके ताकी दृष्टिकरि उद्गीथका अवयवरूप ॐकार नामवाला अक्षर उपास्य है॥

२५९ अबी आध्यात्मिक अरु आधिदैविकरूप उद्गीथके उपासनकूं प्रसङ्गविषै प्राप्त करिके सोई संक्षेप करिके एककरिके कहा। तैसैं हुये आगे कहने योग्यके अभावतैं उत्तरग्रंथसैं क्या है? यह आशंका करिके आध्यात्मिकरूपहीं उद्गीथके उपासनकूं अनुसरिके कहै हैं॥

२६० कौंन यह व्यान है जाकी दृष्टिकरि उद्गीथका उपासन उपदेशकरनेकूं इच्छित है? यातैं कहैहैं॥

२६१ अन्यपक्षकूं निषेध करैहैं॥

यद्वै प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोऽपानोऽथ यः प्राणापानयोः संधिः स

सो प्राण है। जो अपाननकूं करैहै सो अपान है। औ जो प्राण अरु अपानका सन्धि है सो व्यान है। जो व्यान है सा वाक्

उद्गीथकूं उपासकरै ॥ अब[262] ताका स्वरूप निरूपणकरियेहै[263]:—जोई पुरुष प्राणन करैहै कहिये मुख अरु नासिकातैं वायुकूं बाहिरनिकासताहै सो प्राण नामक वायुकी वृत्तिविशेष है। औ जो अपाननकरैहै (अपश्वासकूं लेताहै) कहिये तिन मुखनासिकाकरिहीं वायुकूं भीतर खींचताहै सो अपान है कहिये अपान नामवाली वायुकी वृत्ति है॥ ॥[264] तिसतैं क्या भया? यह क-

२६२ वक्ष्यमाणलक्षणवाले। ऐसैं उक्तकूं स्पष्ट करै हैं ॥

२६३ ता व्यानके निरूपणअर्थ आदिविषै प्राण अरु अपानकूं निरूपण करै हैं ॥ इहां तिनोंकरिहीं । याका मुखनासिकाकरि। यह अर्थ है ॥

२६४ ऐसैं प्राण अरु अपान होवै। इसकरि व्यानका तो क्या आया? ऐसैं शंकाकरिके ताके स्वरूपकूं दिखावैहैं ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

व्यानो यो व्यानः सा वाक्। तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति ॥ ३ ॥

है। तातैं प्राणनकूं न करताहुया अपाननकूं न करताहुया वाणीकूं उच्चारताहै ॥३॥

हियेहैः-अनन्तर जो उक्तलक्षणवाले प्राण अरु अपानका सन्धि कहिये तिनि[265] दोनूंके मध्य वृत्तिविशेष है। सो व्यानहै औ जो[266] सांख्य आदिक शास्त्रविषै प्रसिद्ध है यह व्यान नहीं है काहेतें श्रुतिकरि विशेष (विलक्षणता)के निरूपणतैं। यह अभिप्राय है॥ ॥ फेर[267] प्राण अपा-

---

२६५ सन्धिकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-प्राण अरु अपानरूप वृत्तिनके अभावकी अवस्थारूप मध्यविषै वायुकी वृत्तिविशेष जो है। सो व्यानशब्दका अर्थ है ॥

२६६ सन्धिके स्कंधरूप मर्मदेशविषै वर्तनेवाला व्यान है। ऐसैं सांख्य औ योग कहते हैं। तिनके प्रति जबाब देतहैं ॥ तहां सांख्योंके औ योगोंके शास्त्रविषै प्रसिद्ध जो वायुकी वृत्तिविशेष स्कन्धादि देशगत है यह व्यान नहीं है। काहेतैं श्रुतिकरि विशेषके निरूपणतैं। ऐसैं योजना है ॥

२६७ ननु व्यानकूं प्राण अपानकी अपेक्षासहित होनेतैं

नकूं छोडिके बडे आयासकरि व्यानका हीं उ-पासन काहेतें कहियेहै ? [तहां कहैहैं,] वीर्य-[268]वाले कर्मका हेतु होनेतें व्यानकाहीं उपासन कहियेहै ॥ ॥ [269]ताकूं वीर्यवाले कर्मकी हेतुता कैसें है? यह कहैहैः—जो व्यानहै सो वाक्है। काहेतें [270]वाक्कूं व्यानका कार्य होनेतें ॥ [271]जातें व्यानकरि निर्वाह करनेकूं योग्य वाक् है तातें प्राणनकूं न करता हुया अरु अपाननकूं न करता हुया कहिये प्राणअपानके व्यापारकूं न करता हुया लोक वाणीकूं उच्चारण करैहै ॥ ३ ॥

तिन दोनूंमेंसें अन्यतर (एक)का उपासनहीं उचित है। व्यानका उपासन नहीं ? ऐसें मानता हुया पूर्ववादी शंका करै है ॥ इहां बडे आयासकरि । याका व्यानके स्वरूपके निरूपणकरि । यह अर्थ है ॥

२६८ तिन प्राण अपानतें तिसव्यानकी श्रेष्ठताकूं अङ्गी-कार करिके सिद्धान्ती परिहार करैहैं ॥ इहां व्यानकाहीं उपासन । यह शेष है ॥

२६९ ताहीकूं प्रश्नद्वारा प्रपञ्चन करै हैं ॥

२७० व्यानका वीर्यवाला कर्म प्रसिद्ध कैसें प्रतिज्ञा करि-येहै । कार्य कारणके अभावतें ? यह शंका भई । यातें कहैहैं ॥

२७१ वाणीकी व्यानकरि निर्वाहकरनेकी योग्यताविषै लिंगकूं दिखावैहैं ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

या वाक्सर्क्तस्मादप्राणन्ननपानन्नृचम-
भिव्याहरति। यर्क्तत्साम। तस्मादप्राण-
न्ननपानन् साम गायति। यत्साम स उ-
द्गीथस्तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति॥४॥

अर्थः—जो वाक् है सा ऋक् (ऋचा)
है। तातें प्राणनकूं न करताहुया अपानकूं
न करता हुया ऋचाकूं उच्चारण करैहै ॥
जो ऋचा है सो साम है । तातें प्राणनकूं
न करता हुया अपाननकूं न करता हुया
सामकूं गायन करैहै ॥ जो साम है सो उ-
द्गीथ है। तातें प्राणनकूं न करता हुया अ-
पाननकूं न करता हुया उद्गानकूं करैहै ॥४॥

टीकाः—तैसैं [२७२] वाक्विशेषरूप ऋचाकूं अरु
ऋचाविषै स्थित सामकूं अरु सामके अवयव

---

२७२ "जो वाक् है" इस आदिक वाक्यनके अर्थकूं संक्षे-
पसैं कहैहैं ॥

अतो यान्यन्यानि वीर्य्यवन्ति क-
र्म्माणि । यथाऽग्नेर्मंथनमाजेः सरणं ।

अर्थः—यातें जे अन्य वीर्यवाले कर्म हैं। जैसैंः—अग्निका मन्थन है। आजिका सरण है। दृढ धनुषका आयमनहै ॥ प्राणनकूं न

रूप उद्गीथकूं प्राणनकूं न करता हुया अरु अपाननकूं न करता हुया व्यानकरि हीं निर्वाहकरैहै ॥ यह अभिप्राय है ॥ ४ ॥

टीकाः—केवल[२७३] वाक् आदिकका उच्चारण नहीं होवैहै किन्तु इस (व्यान) तें अन्यबी जे वीर्यवाले कर्म प्रयत्नके आधिक्यतैं निर्वाह करने योग्य हैं॥ जैसैं[२७४] अग्निका मन्थन है ।

२७३ " यातें जे " इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां व्यानसैं निर्वाह करैहै ? ऐसैं पूर्वके साथि संबंध है औ जे अन्यबी उक्तकर्म हैं तिनकूं लोक व्यानकरिहीं करैहै । ऐसैं उत्तरवाक्यविषै संबंध है ॥

२७४ प्रयत्नकी अधिकताकरि निर्वाह करनेयोग्य कर्मनकूंहीं उदाहरण करैहै ॥ इहां जैसे वे कर्म हैं तैसे अन्यबी इसप्रकारके हैं ऐसैं योजना है ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानꣳ तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत ॥ ५ ॥

करताहुया अपाननकूं न करताहुया तिनकूं करैहै। इस हेतुतैं व्यानरूपहीं उद्गीथकूं उपासन करै॥ ५॥

आजि (मर्यादा)का सरण (धावन)है। दृढ धनुषका आयमन (आकर्षण) है। तिनकूं प्राणनकूं न करता हुया अरु अपाननकूं न करता हुया करैहै। [२७५]यातैं प्राणआदिक वृत्तिनतैं विशिष्ट (श्रेष्ठ) व्यान है। [२७६]विशिष्टका उपासन अतिउत्तम है। फलवान् होनेतैं। राजाके उपासनकीन्यांई । [२७७]इसी हेतुतैं कहिये इस

---

२७५ व्यानकूं वीर्यवाले कर्मकी हेतुताके हुये फलितकूं कहै हैं ॥

२७६ श्रेष्ठताके हुये बी क्या होवैगा ? ऐसैं जो कहै। तब कहै हैं ॥

२७७ श्रेष्ठताके फलकूं समाप्त करै हैं ॥

उद्गीथ आदिकके उपासन १३

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति॥प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति । वा-

---

अर्थः—अब निश्चयकरि उद्गीथके अ-क्षरनकूं उपासन करै । "उद्गीथ" ऐसें ॥

कारणतें व्यानरूपहीं उद्गीथकूं उपासन करै। अन्य (अन्यवृत्ति) कूं नहीं । या [278]कर्मका । अतिशयवीर्यवान्पना फल है ॥ ५ ॥

टीकाः—[279]अब प्रसिद्ध उद्गीथके अक्षरनकूं उपासन करै ॥ [280]भक्तिके अक्षर मति होवैं। यातें विशेषण देतेहैंः—उद्गीथ ऐसें । [281]उद्गीथना-

---

२७८ फलवान् होनेतैं । ऐसें उक्त उपासनाके फलकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां व्यानदृष्टिकरि उद्गीथके उपासनकूं अंग-सम्बन्धि होनेतैं । यह शेष है ॥

२७९ उद्गीथके उपासनके प्रसङ्गसैं "उद्गीथ" इन तीन अक्षरोंकी उपासनाकूं प्रसङ्गविषै प्राप्त करैहैं ॥

२८० विशेषणके तात्पर्यकूं दिखावैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—उद्गीथके "अक्षरोंकूं उपासन करै" ऐसें कहे हुये भ-क्तिके अक्षर उपास्य प्राप्त भये । वे मति होवैं । ऐसें जातैं श्रुति मानती है । तातैं विशेषणकूं करैहैं ॥

२८१ विशेषणरूप श्रुतिकूं व्याख्यान करै हैं ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

ग्गीर्वाचा ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने-हीदꣳ सर्वꣳ स्थितम् ॥ ६ ॥

प्राणहीं "उत्" है । प्राणकरि जातैं ऊठता है ॥ वाक् " गी " है । वाक् हीं गीः है ऐसैं कहते हैं ॥ अन्न " थं " है । अन्न-विषै जातैं यह सर्व स्थित है ॥ ६ ॥

मके अक्षर हैं । यह अर्थहै ॥ [२८२]नामके अक्षरोंके उपासनके हुयेबी नामवालेका हीं उपासन किया होवैहै ॥ अमुकमिश्र ॥ ऐसैं । याकी न्यांई ॥ [२८३]प्राणहीं " उत् है "। ऐसैं इस अ-क्षरविषै प्राणकी दृष्टि है ॥ [२८४]प्राणका "उत्" पना

---

२८२ ननु नामके अक्षरोंका उपासन उद्गीथके उपासनकूं अकिञ्चित्करै है ? यह आशंका करिके कहै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं लोकविषै " कृष्णमिश्र " आदिकके वाचक शब्दके प्रयोगके हुये । वाच्य जो पुरुषविशेष ताका उपासन जानिये है । तैसैं इहां बी जानिलेना ॥

२८३ नामके अक्षरोंके उपासनविषै नामकी न्यांई तिन (अक्षरन)के उपासनविषै बी तिन (प्राण आदिक)का उ-पासनहीं कैसैं होवैगा ? यह आशंकाकरिके विभाग करैहैं ॥

२८४ प्राण अरु उत् अक्षरके सादृश्यकूं प्रश्नपूर्वक कहैहैं ॥

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमा-

अर्थः—द्यौः (स्वर्ग) हीं "उत्" है। केसैं है? यह कहैहैं:—प्राणकरि जातैं सर्व ऊठताहै अरु अप्राणके (प्राणरहितके) नाशके दर्शनतैं। यातैं उत् अरु प्राणका सामान्य है॥ वाक्[285] "गीः" है "वाकहीं[286] गिरा हैं" ऐसैं शिष्ट कहतेहैं॥ तैसैं[287] अन्न "थं" है। अन्न[288]विषै जातैं यह सर्व स्थित है। यातैं अन्नका अरु थ अक्षरका सामान्य है॥ ६॥

टीकाः—तीनोंके[289] श्रुति उक्त जे सामान्य हैं

---

२८५ "गीः" ऐसे इस अक्षरविषै वाक्की दृष्टि कर्तव्य है। ऐसैं कहैहैं॥

२८६ वाक्के औ "गीः" इस अक्षरके सादृश्यकूं दिखावैहैं॥

२८७ "उत्" अरु "गीः" इन दो अक्षरनविषै क्रमतैं प्राण अरु वाक्की दृष्टिकी न्यांई "थं" इस अक्षरविषै अन्नकी दृष्टि करनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं॥

२८८ थकार अरु अन्नके अपेक्षित सादृश्यकूं दिखावैहैं॥

२८९ "प्राणहीं उत् है" इत्यादि वाक्यविषै श्रुतिनैंहीं

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

दित्य एवोद्वायुर्गीरग्निस्थꣳ सामवेद ए-
वोद्यजुर्वेदो गीः ऋग्वेदस्थं ॥ दुग्धेऽस्मै

अन्तरिक्ष "गीः" है। पृथिवी "थं" है ॥
आदित्यहीं "उत्" है । वायु "गीः" है ।
अग्नि "थं" है ॥ सामवेद हीं "उत्" है ।
यजुर्वेद "गी" है । ऋग्वेद "थं" है ॥ इसके

वे तिस अनुसारकरि शेषनविषै बी देखनेकूं यो-
ग्यहैंः— द्यौः (स्वर्गलोक) हीं "उत्" है उच्च-
स्थानतैं । अन्तरिक्ष "गीः" है । लोकनके[२९०] गि-
लनेतैं । पृथिवी "थं" है । प्राणिनके स्था-
नतैं ॥ आदित्यहीं "उत्" है । ऊर्ध्व होनेतैं ॥

सादृश्य कहा है । "द्यौः हीं उत् है" इत्यादि वाक्यविषै तो नहीं कहा । तैसैं हुये तहां सादृश्यके अभावके होते दृष्टिका करण कैसै होवैगा ? यह आशंका करिके कहै है ॥

२९० अन्तरिक्ष जो आकाश औ तिसके भीतर स्थित लोक । तिस (अन्तरिक्ष) करि गिले हुयेकीन्यांई हैं । ऐसैं मानिके कहैहैं ॥ इहां अग्निआदिकनके गिलनेतैं । यह संवर्गविद्याविषै देखनेकूं योग्य है ॥

वाग्दोहं । यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो

अर्थ वाक् दोहकूं दोहन करैहै जो वाक्का दोह है॥ अन्नवान् अन्नाद होवैहै जो ऐसें

वायु "गीः" है अग्नि आदिकनके गिलनेतें । अग्नि "थं" है। यज्ञसंबन्धि कर्मके अवस्थानतें ॥ सामवेद हीं "उत्" है [291]स्वर्गरूपकरि संस्तुत होनेतें । यजुर्वेद "गीः" है यजुष् (स्वाहा स्वधादि) करि प्राप्त देवताओंके हविके गिलनेतें । ऋग्वेद "थं" है ऋचाविषै सामकूं स्थितहोनेतें ॥ [292]उद्गीथके अक्षरोंके उपासनका फल अब कहियेहैः दोहन करैहै इस साधकके अर्थ ॥ कौंन सा है ? वाक् है ॥ ॥ किस दोहकूं । कौंन यह दोह है ? यह कहैहैः—

२९१ "सामवेद हीं स्वर्गलोक है" ऐसें स्वर्गलोकरूपताकरि सामवेदकूं सम्यक् स्तुत होनेतें । इस हेतुकूं कहैहैं ॥

२९२ अध्यात्म । अधिलोक । अधिदैव अरु अधिवेदरूप नामके अक्षरोंके उपासनकूं कहिके । अब ताके फलकी उक्तिकूं अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां "जो वाक्का दोह है" या वाक्यविषै षष्ठी जो है सो कर्मविषै देखनेकूं योग्य है ॥

भवति । य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षरा-
ण्युपास्त "उद्गीथ" इति ॥ ७ ॥

विद्वान् हुया इन उद्गीथके अक्षरनकूं उपा-
सताहै "उद्गीथ" ऐसैं ॥ ७ ॥

जो वाक्का (वाक्रूप) दोह है। अभिप्राय
यह है किः—ऋग्[२९३]वेदआदिक शब्दकरि साध्य
फल है। सो (फल) वाक्का दोह है। तिस
[२९४]आत्मा [रूप दोह] कूंहीं आपहीं वाक् दो-

---

२९३ तिसीहीं वाक्रूप दोहकूं प्रगट करैहैं ॥ इहां तिस-
करि साध्य फल स्वाधीन उच्चारणविषै समर्थपनैरूप है। सो
(फल) अनायासकरि इसकूं संभवै है। यह अर्थ है ॥ अरु
इधर " तत् (सो) " ऐसैं प्रकृत फलका स्मरण है औ षष्ठी
पूर्वकीन्यांईं [कर्मविषै] है औ " तं (ताकूं) " ऐसैं दो-
हका कथन है ॥

२९४ वाक्काहीं दोह (दोहन) विषै कर्मपना (दोहन-
रूप क्रियाका विषयपना) औ कर्तापना (दोहनरूप क्रियाका
आश्रयपना) है। ऐसै कहैहैं ॥ इहां जो दोग्धा (दोहनक-
रनेवाला) है सो वाक्हीं है औ सो वाक् तिस (दोह)रूप
आत्माकूंहीं दोहन करै है । ऐसैं योजना है औ यथोक्त।
याका प्राण वाक् अन्न आदिरूपताकरि उक्त । यह अर्थ है

उद्गीथ आदिकके उपासन १३

अथ खल्वाशीःसमृद्धिरुपसरणानी-

अर्थः—अनन्तर शेषभूत आशी (काम) की समृद्धि [जैसें होवै सो कहियेहै]:—उ-

हन करैहै ॥ किंवाः—अन्नवान् (बहुत अन्न-वाला) औ अन्नाद् (प्रदीप्तजठराग्निवाला) सो होवैहै। जो इन उक्त ऐसें (उक्तगुण वाले) उद्गीथरूप तीन अक्षरोंकूं विद्वान् हुया उपासताहै "उद्गीथ"[२९५] ऐसें ॥ ७ ॥

टीकाः—अनन्तर[२९६] अब[२९७] आशी (काम)

औ यथोक्त गुणवाले। याका उत्थान गिरण (गिलना) अरु स्थितिआदिक धर्मवाले। यह अर्थ है ॥

२९५ उद्गीथके अक्षर। ऐसें उक्त अर्थकूं विशेषणके अनु-वादकरि स्पष्ट करै हैं ॥ इहां "उद्गीथ" ऐसें इस रूपवाले नामके अक्षर हैं। यह अर्थ है ॥

२९६ वाक् आदिककी समृद्धिरूप फलवाले उपासनकूं उपदेश करिके। अब फलकी समृद्धि जिस प्रकारसैं होवैहै तिस प्रकारवाला सर्व काम्य उपासनोंका शेषभूत प्रसङ्गप्राप्त ज्ञान (उपासन) विधान करियेहै। ऐसें कहैहैं॥ इहां वाक्आ-दिककी समृद्धिरूप फलवाले उपासनकी अनन्तरता अथशब्दका अर्थ है औ वक्ष्यमाण उपासनोंके सर्व काम्यरूप उपासनाके शेष (उपकारक) पनैके प्रकाशनअर्थ "खलु" ऐसें कहा है ॥

२९७ प्रसङ्गविषै प्राप्तपनैकूं दिखावैहैं ॥ इहां कामशब्द

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

त्युपासीत । येन साम्ना स्तोष्यन् स्यात्तत्सामोपधावेत् ॥ ८ ॥

पसरण (ध्यावनेयोग्य) हैं। ऐसैं उपासन करै। जिस सामकरि स्तुतिकूं करता हुया होवै तिस सामकूं चिन्तन करै ॥ ८ ॥

की समृद्धि [जैसैं होवै सो कहियेहै । यह वाक्यशेषहै ॥] उपसरण (उपगंतव्य) । अर्थ यह जोः—ध्येय है ऐसैं उपासन करै ॥ ॥ [२९८] ऐसैं कैसैं उपासन करै तहां [२९९] इसरीतिसैं उपासन करै । [३००] सो जैसैं जिस सामविशेषकरि उद्गाता स्तुतिकूं करता हुया होवै तिस सामकूं उत्पत्तिआदिककरि चिन्तन करै ॥ ८ ॥

फलरूप विषय (अर्थ)वाला है औ तत् (सो) शब्द प्रकारके ज्ञानका स्मारक है औ कहिये है । याका विधान करियेहै । यह अर्थ है ॥

२९८ ध्यानके प्रकारकूं प्रश्नपूर्वक स्पष्ट करै हैं ॥

२९९ उक्त प्रश्नगत इति (ऐसैं) शब्दके अर्थकूं आकारकरि दिखावै हैं ॥

३०० "एवं" शब्दके अर्थकूं उदाहरणविषै स्थितपनै-

उद्गीथ आदिकके उपासन १३

यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां देवतामभिष्टोष्यन् स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥

अर्थः—जिस ऋचाविषै ता ऋचाकूं। जिस ऋषिसंबन्धि [साम] है ता ऋषिकूं। जा देवताकूं चारि ओरतैं स्तुति करता हुया होवै ता देवताकूं चिंतन करै॥ ९ ॥

टीकाः—जिस ऋचाविषै सो साम है तिस ऋचाकूं देवताआदिककरि चिंतन करै । औ जिस ऋषिसंबंधि साम है तिस ऋषिकूं औ जिस देवताकूं स्तुति करता हुया होवै ता देवताकूं चिंतन करै॥ ९ ॥

करि स्पष्ट करैहैं ॥ इहां उत्पत्ति आदिककरि । इस आदिशब्दसैं छंदकी देवता आदिक ग्रहण करिये है औ देवता आदिककरि । इस आदिपदसैं आर्षेय (ऋषिसम्बन्धि) आदिकका ग्रहण है औ गायत्री आदिककरि । यह आदिपद उष्णिक् । अनुष्टुप् । अरु बृहती । आदिक छंदनके संग्रहअर्थ है औ त्रिवृत । पंचदश । सप्तदश अरु एकविंश । ऐसा प्रसिद्ध सोमयागविषै स्तोम होवैहै ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

येन छन्दसा स्तोष्यन् स्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात् तꣳ स्तोममुपधावेत् ॥ १० ॥

अर्थः-जिस छन्दकरि स्तुति करता हुया होवै ता छन्दकूं चिंतन करै। जिस स्तोमकरि स्तोष्यमाण होवै ता स्तोमकूं चिंतन करै ॥ १० ॥

टीकाः-जिस गायत्रीआदिक छन्दकरि स्तुति करता हुया होवै तिस छन्दकूं चिन्तन करै । जिस स्तोम (स्तोत्र)करि स्तोष्यमाण (स्तुति करनेवाला) होवै ता स्तोमकूं चिंतन करै ॥ [स्तोमरूप अंगके फलकूं कर्ताविषै गामी होनेतैं । इहां स्तोष्यमाण यह [३०१]आत्मनेपद है] ॥ १० ॥

३०१ आत्मनेपदके प्रयोगकरि सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-जहां कर्ताविषै जानेवाला फल होवै तहा

यां दिशमभिष्टोष्यन् स्यात्तां दिश-मुपधावेत् ॥ ११ ॥

अर्थः—जा दिशाके प्रति चारिओरतैं स्तुति करता हुया होवै ता दिशाकूं चिंतन करै ॥ ११ ॥

टीकाः—जिस दिशाके प्रति चारीऔरतैं स्तुति करता हुया होवै ता दिशाकूं अधिष्ठाताआदिककरि चिंतन करै ॥ ११ ॥

आत्मनेपद प्रयोगकरियेहै औ प्रकृतविषै "स्तोष्यमाण" यह आत्मनेपद देखिये है। तातैं इस फलका कर्ताविषै गामिपना जानियेहै। अन्यथा पूर्व उत्तरकीन्यांई परस्मैपदके प्रयोगके प्रसङ्गतैं औ "जिस दिशाकेप्रति अभि" इहां अभिशब्दका अभिव्याप्त होयके (चारि ओरतैं) यह अर्थ है औ स्तुति करता हुया। देवताविशेषकूं। यह शेष है औ अधिष्ठाताश-ब्दकरि इंद्रआदिक ग्रहण करियेहै औ आदिपद तिस तिस दिशाविषै अवस्थित असाधारण धर्मके संग्रह अर्थ है औ आत्माकूं कहिये स्वरूपकूं गोत्र आदिककरि अनुसरिके उ-द्गाता स्तुति करै। ऐसैं सम्बन्ध है औ गोत्र नाम आदिक-करि। इस आदि शब्दसैं वर्ण आश्रम आदिकका ग्रहण है ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

आत्मानमन्तत उपसृत्य स्तुवीत ।
कामं ध्यायन्नप्रमत्तोऽभ्यासो ह यदस्मै

अर्थः—अन्ततैं आत्मा (स्वरूप)कूं अनुसरिके कामकूं ध्यावता हुया अप्रमत्त-हुया स्तुतिकूं करै। तत्कालहीं जहां इसके

टीकाः—[302]सांम आदिकनकूं क्रमसैं [ध्यानक-रिके] औ अन्ततैं (ताके अन्तविषै) आप आत्मा (स्वरूप) कूं गोत्र नाम अनुसरिके कामकूं ध्यावताहुया अप्रमत्त (स्वर ऊष्म अरु व्यंजनआदिकनतैं प्रमादकूं न करता) हुया उद्गाता स्तुति करै । तिसतैं शीघ्रहीं जहां

---

३०२ "अन्ततैं" या वाक्यके अर्थकूं कहैहैं॥ इहां पूर्व उक्त सामआदिक सर्वकूं उक्त क्रमसैं ध्यानकरिके ताके अन्तविषै स्वात्माकूं बी सम्यक् चिन्तनकरिके अपेक्षित फलकूं अनुसं-धान करताहुया अरु स्वरआदिकतैं प्रमादकूं न करता हुया उद्गाता स्तुतिकूं करै। ऐसैं योजना है॥ औ जिस कर्मविषै यह उद्गाता यथोक्त रीतिसैं स्तोता (स्तुतिकर्ता) होवै है । तहां (तिस कर्मविषै) तत्कालहीं इसकेअर्थ सो सो काम

स कामः समृद्धयेत । यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ॥ १२ ॥

इति प्रथमप्रपाठकस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

अर्थ सो काम समृद्धिकूं पावताहै। जिस कामवाला हुया स्तुतिकूं करै ऐसैं । जिस कामवाला हुया स्तुतिकूं करै ऐसैं ॥ १२ ॥

इति श्री० मूलमात्रभाषा० प्रथमप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः समाप्तः ॥ ३ ॥

इस ऐसैं जाननेवालेके अर्थ सो काम समृद्धिकूं पावै ॥ कौंन यह कामहैकिः—जो काम इसकूं है सो यह यत्काम है। ऐसा (जिस कामवाला) हुया सम्यक् स्तुति करै। यत्काम सम्यक् स्तुति करै। ऐसैं दोवार कथन आदरके अर्थ है ॥ १२ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० प्रथमप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः॥३॥

समृद्धिकूं पावै । यत्‌काम (जिस कामवाला) हुया जो स्तुतिकूं करै। ऐसैं अन्वय है औ “ इति ” शब्द प्रसङ्गप्राप्त उपासनकी समाप्तिअर्थ है ॥

इति श्री० प्रथमप्रपाठकगत-तृतीयखंडस्य टिप्पणं ॥ ३ ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य चतुर्थः खंडः॥४॥

ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमि-

अथ श्री॰मूलमात्रभाषा॰प्रथमपाठकस्य चतुर्थःखण्डः।

अर्थः—"ॐ" ऐसे इस अक्षररूप उद्गी-

अथ श्रीभाष्यभाषा॰

प्रथमप्रपाठकस्य चतुर्थः खंडः ॥ ४ ॥

स्वरशब्दके वाच्य ॐकारका उपासन ॥ ५ ॥

टीका—"[३०३] ॐ ऐसें इस" इत्यादि स्थलविषै प्रकृत अक्षरका फेर ग्रहण [३०४] उद्गीथके अक्षरआदिकके उपासनके अंतरित (अंतरायवाला) होनेतैं अन्यठिकाने प्रसङ्ग मति होवै। ऐसें इस

अथ श्री॰ प्रथमप्रपाठकगत-चतुर्थखंडस्यटिप्पणं ४

३०३ अब प्रसङ्गप्राप्त अर्थकूं छोडिके प्रकृतकूं अनुसंधान करैहैं ॥

३०४ फेर ग्रहणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां आदि शब्दकरि पूर्वउक्त उपसरण (ध्येय) ग्रहण करिये है औ उद्गीथकूं तिनोंकरि व्यवहित (अन्तरायवाला) होनेतैं प्रकरणके विच्छेदकी शंकाके हुये तिसतैं अन्य अर्थविषै प्रसङ्ग होवैगा।

ति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥१॥
देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्रा-

थकूं उपासनकरै। “ॐ” ऐसैं जातैं उद्गायन करैहै। ताका उपव्याख्यान है ॥ १ ॥

अर्थः—देवहीं मृत्युतैं भयकूं पावते हुये

अर्थवाला है ॥ [३०५]अकृत हीं अमृत अभय गुणविशिष्ट अक्षरका उपासन करनेकूं योग्य है। यातैं आरंभ है ॥ “[३०६]ॐ” इत्यादि वाक्य व्याख्यान किया है ॥ १ ॥

टीकाः—देव प्रसिद्ध मृत्यु (मारक)तैं डरते हुये ॥ ॥ क्या करते भये? यह कहियेहैः—त्रयी विद्या (त्रयीविहित कर्म)के

सो मति होवै। ऐसैं इस प्रयोजनअर्थ उद्गीथका फेर ग्रहण है। यह अर्थ है ॥

३०५ “देव हीं मृत्युतैं” इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

३०६ अक्षरके व्याख्यानकी प्राप्तिके हुये अनुवाद भागके प्रति कहैहैं ॥ इहां “देव असुर प्रसिद्ध जहां (जिस निमित्तके होते,” इसठिकाने व्याख्यानकिये देव आसुरपापरूप मारक (मृत्यु)तैं। यह अर्थ है ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

विशꣳस्ते छन्दोभिरच्छादयन्यदेभिर-
च्छादयꣳस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ॥२॥

त्रयी विद्याके प्रति प्रवेश करतेभये। वे छ-
न्दनकरि छादन करतेभये। जातैं इन (छ-
न्दन)करि छादन करतेभये तातैं छन्दनका
छन्दपना है ॥ २ ॥

प्रति प्रवेश करते भये । अर्थ यह जोः—ता
(कर्म)कूं मृत्युका त्राण (रक्षण) मानते
हुये वैदिक[307] कर्मकूं प्रारम्भ करते भये ॥ किंवा[308]
वे (देव) कर्मविषै अविनियुक्त छन्दन (मं-

---

३०७ कौंन यह कर्मविषै प्रवेश नाम है । तहां कहैहैं ॥ इहां तत् (सो) ऐसैं वैदिक कर्म कहिये है ॥

३०८ "वे छन्दनकरि" इत्यादिरूप वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं सर्व मंत्र सर्वत्र विनियोग (उपयोग) नहीं करिये हैं। तैसैं हुये अनुष्ठीयमान एक कर्मविषै विनियोगकिये मन्त्रनकूं छोडिके कर्मान्तरोंविषै अवशेष रहे मन्त्रनकरि जप आदिनकूं करते हुये देव स्वात्माकूं आच्छादित (रक्षित) करतेभये । तातैं तिनकूं मृत्युकी वश्यता नहीं है ॥

तान्नु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके प-

अर्थः–तिनकूं बी तहां मृत्यु जैसें म-
त्स्यकूं उदकविषै देखे। ऐसें देखताभया ।

त्रन)करि जपहोमादिककूं करते हुये आत्मा-
कूं कर्मान्तरोंविषै आच्छादन करते भये ॥
जातें इन मन्त्रनकरि आच्छादन करते भये
(ढांपते भये) तातें[३०९] छन्दों (मन्त्रों)का
छादनतें छन्दपना प्रसिद्ध हीं है ॥ २ ॥

टीकाः–तिनैं[३१०] कर्मपर देवनकूं तहां (वै-
दिक कर्मविषै) मृत्यु जैसें[३११] लोकविषै मत्स्य-
घातक। मत्स्यकूं न अतिगम्भीर जलविषै

---

३०९ तिन छन्दोंकरि आच्छादितताके हुये छन्दोंके छ-
न्दभावकी प्रसिद्धिके प्रकारकूं आकारकरि दिखावै हैं ॥

३१० कर्मकूं अनुष्ठान करनेवाले देवनकूं मृत्युकी वश्यता
नहीं निवृत्तभई। ऐसें कहेहैं ॥ इहां " तहां " ऐसें " वैदिक
कर्मके प्रारम्भकी उक्ति है औ " उ " शब्द अपि (बी) अर्थ
है औ यथोक्त कर्मपरबी तिन देवनकूं मृत्यु देखताभया।
ऐसें सम्बन्ध है ॥

३११ कर्मोंकी मृत्युपद गोचरताकूं दृष्टान्तसैं कहेहैं ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

रिपश्येदेवं पर्य्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि। ते नु वित्त्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ॥ ३ ॥

ऋचाविषै सामविषै यजुर्विषै ॥ वे वितर्ककरि जानिके ऋचातें सामतें यजुष्तें ऊर्ध्व (उत्थित) हुये स्वरके प्रतिहीं प्रवेश करतेभये ॥ ३ ॥

बडिश (लोहकंटक) अरु उदकस्रावरूप उपायकरि साध्य मानना हुया देखै। ऐसैं [312] मृत्यु देखता भया। अर्थ यह जोः–कर्मक्षयके उपायकरि साध्य देवनकूं मानताभया ॥ ॥ [313] कहां यह देवनकूं देखता भया? यह कहियेहैः– ऋक्विषै। सामविषै। यजुर्विषै। अर्थ यह

---

३१२ दार्ष्टान्तिक भागके विवक्षित अर्थकूं संग्रह करैहैं ॥

३१३ दार्ष्टान्तिकविषै क्षुद्रोदकस्थानीय क्या होवैगा? ऐसैं प्रश्नपूर्वक दिखावै हैं ॥

जोः—ऋक्[३१४] यजुर् अरु साम सम्बन्धि कर्मविषै [देखता भया] ॥ ॥ वे देव[३१५] वैदिक कर्म करि संस्कारयुक्त शुद्धचित्तवाले हुये मृत्युके करनेकूं इच्छितकूं जानते भये औ जानिके वे ऊर्ध्व (कर्मतैं व्यावृत्त) हुये ऋक्तैं[३१६] सामतैं यजुर्तैं। अर्थ यह जोः—ऋक् यजुर् अरु साम सम्बन्धि कर्मतैं अभ्युत्थान करिके। तिसै[३१७] कर्म-करि मृत्युके भयके निवारणके प्रति निरास हुये ताकूं छोडिके अमृत अभय गुणवाले अक्षर रूप स्वर (स्वरशब्दके वाच्य) के प्रति प्रवेश

---

३१४ ऋक्आदिकनकूं नित्य होनेकरि क्षयके अभावतैं क्षुद्रोदक स्थानीयता नहीं है ? यह आशङ्का करिके विवक्षित अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः—कर्मकूं कृतक (क्रिया साध्य) होनेकरि फलतैं अरु स्वरूपतैं क्षयिता है ॥

३१५ मृत्युकी निवृत्तिके उपायकूं उपदेश करैहैं ॥ इहां कर्मनतैं ऊर्ध्व कहिये व्यावृत्त (निवृत्त) भये । यह अर्थ है औ सर्व कर्मनके संग्रहअर्थ "कर्मनतैं" यह बहुवचन है ॥

३१६ अवैदिक कर्मके त्यागकूं कर्मिनविषैबी सिद्ध होनेतैं वैदिक कर्मके त्यागअर्थ विशेषण देते हैं ॥

३१७ कर्मके त्यागमात्रतैं कृतकृत्यताकी शङ्काकूं निवारते हैं ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवाति-

अर्थः—जबहीं ऋचाकूं पावताहै [तब]

करते भये हीं। ॐ कार[318]के उपासनविषै तत्पर होतेभये ॥ इहां (श्रुतिविषै) "एव (हीं)" शब्द जो है सो अवधारण (निश्चय) रूप अर्थवाला हुया समुच्चयके प्रतिषेध अर्थ है। अर्थ यह जोः—देवता ता(ओंकार) के उपासनके पर होते भये ॥ ३ ॥

टीकाः—ननु[319] फेर अक्षरकूं स्वरशब्दकी वाच्यता कैसैं है ? यह कहियेहैः— जबहीं ऋचाकूं

---

३१८ क्या सो अक्षर है ? सो कहैहैं ॥

३१९ अक्षरकूं उदात्तआदिक रूपके अभावतैं स्वर शब्दकी वाच्यता नहीं है ? यह आशङ्का करिके परिहार करैहैं ॥ इहां ऋचाकूं पावता है। याका अध्ययनकरि स्वाधीन करताहै। यह अर्थ है औ अतिस्वरकूं करता है । याका आदरकी बुद्धिकरि उच्चारता है । यह अर्थ है औ ऋक् यजुर्सामकी प्रत्येककी ॐकारके उच्चारणद्वारा हीं प्राप्तिके देखनेतैं। यह अति शब्दका अर्थ है औ "उ" शब्द अपिका पर्याय है औ संप्रतिपन्न (प्रसिद्ध) स्वरकी न्यांई । यह द-

स्वरत्येवꣳ सामैवं यजुरेष उ स्वरो यदे-
तदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा
अमृता अभया अभवन् ॥ ४ ॥

"ॐ" ऐसैंहीं अतिस्वरकूं करताहै ॥ ऐसैं सामकूं ऐसैं यजुरकूं ॥ यहबी स्वर है जो यह अक्षर है यह अमृत अभय है । ताके प्रति प्रवेश करिके देव अमृत अभय होते भये ॥ ४ ॥

पावताहै [तब] "ॐ" ऐसैं हीं अति स्वरकूं करताहै । ऐसैं सामकूं । ऐसैं यजुरकूं ॥ यह बी स्वर है ॥ ॥ कौंन यहकिः— जो यह अक्षर है यह अमृत अभय है । ताके प्रति प्रवेश करिके देव यथागुण हीं अमृत औ अभय होतेभये ॥ ४ ॥

ष्ठान्तके अर्थ है औ [अक्षर] अमृत अभय है । काहेतैं तिस प्रकारके ब्रह्मका प्रतीक होनेतैं । यह अर्थ है औ ताके प्रति प्रवेश करिके । याका ब्रह्मबुद्धिकरि ता (अक्षर)के ध्यानकूं करिके । यह अर्थ है ॥

आदित्य औ प्राण आदिककी दृष्टिसैं उद्गीथ
स्वरका उपासन १२

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येत-
देवाक्षरꣳ स्वरममृतमभयं प्रविशति ।

अर्थः-जो ऐसैं विद्वान् हुया इस अ-
क्षरकूं स्तुति करैहै। सो इसी हीं अक्षरस्व-
रूप अमृत अभयके प्रति प्रवेश करैहै। ताके

टीकाः-सो जो[320] अन्य बी देवकीन्यांई हीं
इस अक्षरकूं ऐसैं अमृत अभय गुणवाला
जानता हुया स्तुति करैहै [उपासनहीं इहां
स्तुति अभिप्रेत है] सो तैसैं हीं इसींहीं अ-
क्षर स्वर अमृत अभयके प्रति प्रवेशकूं
करैहै औ[321] ताके प्रति प्रवेश करिके राजकु-
लके प्रति प्रविष्ट भये पुरुषनकीन्यांई राजाके
अन्तरङ्ग बहिरङ्गपनैकीन्यांई परब्रह्मके अंतरङ्ग
बहिरङ्गपनैका विशेष (भेद) नहीं है। किन्तु

---

३२० ननु ऐसैं देवनकूं होहु। परन्तु इसकरि हम (म-
नुष्यन)कूं क्या आया? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥

३२१ राजगृहके प्रति प्रविष्टभये पुरुषके विशेषके दर्श-

तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ ५ ॥

इति प्रथमप्रपाठकस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

प्रति प्रवेश करिके जिस अमृतवाले देव होतेभये तिस अमृतवाला होवैहै ॥ ५ ॥

इति श्री०मूलमात्रभा०प्रथमप्र०चतुर्थःखंडः॥४॥

देव जिस अमृतभावकरि जिस अमृतरूप होतेभये तिस अमृतभावकरि विशिष्ट तिस अमृतरूप होवैहै । अर्थ यह जोः—अमृत भावविषै न्यूनता नहीं है अरु अधिकता बी नहीं है ॥ ५ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०प्रथमप्रपाठकस्य चतुर्थःखंडः॥४॥

नतैं अक्षरके प्रति प्रविष्ट पुरुषकूंबी फलविषै विशेष (भेद) होवैगा ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां अमृतभावकरि विशिष्ट हुये । यह शेष है ॥

इति श्री० प्रथमप्रपाठकगत-चतुर्थखंडस्य टिप्पणम् ॥ ४ ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य पंचमः खंडः॥५॥

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः

अथ श्री० मूलमात्रभा० प्रथमपाठकस्य पंचमःखण्डः ५

अर्थः–अनन्तर प्रसिद्ध जो उद्गीथ है

अथ श्री० भाष्यभाषा० प्रथमप्रपाठकस्य पचमःखंडः ५

वाक् आदिक मुख्यप्राण रश्मि औ आदित्यकी अभेददृष्टिसैं उद्गीथोपासनकी निंदापूर्वक फेर तिनकी भेददृष्टिसैं उद्गीथका उपासन ५

टीकाः–[322]प्राण अरु आदित्यकी दृष्टिकरि विशिष्ट

अथ श्री० प्रथमप्रपा० पंचमखण्डस्य टिप्पणम् ॥ ५ ॥

३२२ अन्य (पंचम) खण्डके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः–प्रणवकी औ उद्गीथकी एकताकूं करिके। तिसके होते प्राणदृष्टिकरि अध्यात्मरूप औ आदित्यदृष्टिकरि अधिदैवतरूप विशिष्ट उद्गीथका जो उपासन कहा। ताहीकूं अनुवाद करिके निंदा करिके। प्राणोंका औ रश्मिनका भेदहीं गुण है। तिसगुणविशिष्ट दृष्टिकरि तिसीहीं उद्गीथके अवयवरूप अक्षरका अनेकपुत्ररूप फलवाला उपासन इस ग्रंथकरि कहनेकूं योग्य है। यातैं अब उत्तरग्रंथ प्रस्तुत करियेहै औ इहां अमृत अभयरूप गुणवाले अक्षरके उपासनकी अनन्तरता अथशब्दका अर्थ है औ प्रणव अरु उद्गीथकी एकताविषै वैदिक प्रसिद्धिके प्रदर्शनअर्थ "खलु" ऐसैं कहा॥

प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ॐमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ १ ॥

सो प्रणव है। जो प्रणव है सो उद्गीथ है। ऐसैं यह हीं आदित्य उद्गीथ है यह प्रणव है। "ॐ" ऐसैं जातैं यह स्वरता हुया जाताहै ॥ १ ॥

उद्गीथके उक्त उपासनकूं हीं अनुवाद करिके प्रणव अरु उद्गीथकी एकताकूं करिके तिसविषै प्राण अरु रश्मिके भेदरूप गुणविशिष्ट दृष्टिकरि अक्षरका उपासन अनेक पुत्ररूप फलवाला है। सो अब कहनेकूं योग्य है। यातैं यह ग्रंथ (पंचम खंड) आरम्भ करियेहै ? अनन्तर प्रसिद्ध जो उद्गीथ है सो ऋग्वेदीनका प्रणव है औ जो तिन (ऋग्वेदीन) का प्रणवहै सोई छान्दोग्यविषै उद्गीथ शब्दका वाच्य है।

[323] यह हीं आदित्य उद्गीथ है। यह प्रणव है। कहिये ऋग्वेदीनका प्रणवशब्दका वाच्यबी सोई है। अन्य नहीं ॥ ॥ [324] उद्गीथ आदित्य कैसैं है? [तहां कहैहै] उद्गीथ नामवाला अक्षर "ॐ" ऐसा यह है। यह (सूर्य) जातैं स्वरता (उच्चारता) हुया जाता है। [धा- [325] तुनकूं अनेक अर्थवाले होनेतैं । यह अर्थ बी बनै है]॥ [326] अथवा स्वरता (गमन करता) हुया जाता है। यातैं यह उद्गीथ सविता (सूर्य) है ॥ १ ॥

---

३२३ तिनकी एकताकूं कहिके । आदित्यदृष्टिकरि उक्त उद्गीथकी उपासनाकूं अनुवाद करैहैं ॥

३२४ उद्गीथ अरु आदित्यकी एकताकूं प्रश्नपूर्वक उपपादन करैहैं ॥ इहां उच्चारण करता हुया जाता है । ऐसैं सम्बन्ध है ॥

३२५ ननु "स्वरति" धातुकूं गतिरूप अर्थवाला होनेतैं "उच्चार करता हुया" यह कैसैं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

३२६ गमन करताहुया सूर्य प्राणिनकी प्रवृत्तिअर्थ ॐ ऐसैं अनुज्ञाकूं करतेहुयेकी न्यांई गमन करैहै। तातैं सविताकूं ॐकारपना है ॥

एतमु एवाहमभ्यगासिषं । तस्मा-

अर्थः—इसी हीं मैं अभिमुखताकरि गायन (उपासन) करता भया । तातैं तूं मे-

टीकाः—तिसैं[327] इसकूं हीं मैं आभिमुख्यकरि गायन करता भयाहूं । अर्थ यह जोः—आदित्य अरु रश्मिके अभेदकूं करिके ध्यानकूं करता भयाहूं । तिसकरि तिस कारणतैं मेरा तूं एक पुत्र हैं! ऐसैं हीं कौषीतकि (कुषीतकका सन्तान जो कौषीतकि सो) पुत्रकूं कहता भया । यातैं[328] रश्मिन (सूर्यके किरणों)-कूं औ आदित्यकूं भेदकरि तूं पर्यावर्तन कर (चिंतन कर) । यह अर्थ है । त्वंशब्दके[329] यो-

३२७ आदित्यदृष्टिकरि उपदेश किये उद्गीथकूं अनुवाद करिके निंदते हैं ॥

३२८ निंदाके फलकूं दिखावै हैं ॥

३२९ ननु पर्यावर्तन करता भया । ऐसैं प्रथम पुरुषके सुने हुये । क्यूं ऐसैं मध्यम पुरुष व्याख्यान करिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां युष्मद्रूप उपपदविषै मध्यम पुरुषके विधानतैं । यह अर्थ है ॥

न्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्र-
मुवाच ॥ रश्मीꣳस्त्वं पर्य्यावर्त्तयाद्बह-
वो वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥
अथाध्यात्मं ॥ य एवायं मुख्यः प्रा-

रा एक हैं। ऐसैंहीं कौषीतकि पुत्रकूं क-
हताभया। रश्मिनकूं तूं आवर्जनकर। ब-
हुतहीं तेरे होवैंगे। यह अधिदैवत है ॥२॥
अर्थः—अनन्तर अध्यात्म हैः—जोई यह

गतैं [इहां मध्यम पुरुष व्याख्यान करियेहै]
॥ ऐसैं[330] कियेहुये निश्चयकरि तुजकूं बहुत पुत्र
होवैंगे। यह[331] अधिदैवत है ॥ २ ॥
टीकाः—अनन्तर[332] अध्यात्म कहिये हैः-
जोई यह मुख्य प्राण है। तिस उद्गीथकूं

---

३३० रश्मिनके भेदरूप गुणकी दृष्टिकरि विशिष्ट उद्गी-
थके उपासनके फलकूं कथन करैहैं ॥

३३१ वक्ष्यमाण अध्यात्मविषै बुद्धिके समाधानअर्थ उक्त
देवताविषयक दर्शनकूं उपसंहार करैहैं ॥

३३२ अध्यात्मरूप प्राणकी उक्त उद्गीथकी उपासनाकूं
अनुवाद करैहैं ॥

णस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ ३ ॥

मुख्य प्राण है तिस उद्गीथकूं उपासन करै। "ॐ" ऐसें जातें यह स्वरता हुया जाता है ॥ ३ ॥

उपासनकरै । इत्यादि पूर्वकी न्यांई है ॥ तैसें[३३३] "ॐ" इसप्रकारसें जातें यह प्राण बी स्वरता हुया ॐ ऐसें जातें अनुज्ञाकूं करते हुयेकी न्यांई वाक् आदिककी प्रवृत्ति अर्थ जाताहै जातें[३३४] मरणकालविषै मरनेवालेके समीपस्थित

---

३३३ प्राण अरु उद्गीथकी एकता कैसें है ? यह आशङ्का करिके कहैहैं ॥ इहां जैसें प्राणिनकी प्रवृत्तिअर्थ ॐ ऐसें अनुज्ञा (सम्मति)कूं करते हुयेकी न्यांई आदित्य गमन करैहै। ऐसें कहा । ताकी न्यांई । यह अर्थ है॥

३३४ उक्तकूं हीं व्यतिरेकद्वारा स्पष्ट करैहैं ॥ इहां मरनेवालेके समीपवर्ती बन्धुजन मरणकालविषै प्राणके वाक्आदिककी प्रवृत्तिअर्थ अनुज्ञाकरणकूं नहीं जानते हैं ॥ तैसें हुये जीवत्अवस्थाविषै ॐ ऐसें ताकी अनुज्ञाके वशतैं हीं वाक्आदिकनकी प्रवृत्ति लखिये है । तातैं प्राणका अनुज्ञामात्र ॐकरण है । यह अर्थ है ॥

अभेददृष्टिनिंदा औ भेददृष्टिसैं उद्गीथोपासन ५.

एतमु एवाहमभ्यगासिषं। तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पु-

अर्थः—इसीहींकूं मैं अभिमुखताकरि गायनकरताभया। तातें मेरा तूं एक हैं। ऐसैंहीं कौषीतकि पुत्रकूं कहताभया। प्रा-

पुरुष प्राणके ओङ्करणकूं नहीं सुनतेहैं यातें ईसें[335] सामान्यतें आदित्यविषै बी ओङ्करण अनुज्ञामात्र देखनेकूं योग्य है॥ ३॥

टीकाः—ईसीहींकूं[336] मैं अभिमुखताकरि गायन करता भया हूं। इत्यादि पूर्वकी[337]

३३५ अध्यात्म अरु अधिदैवतरूप प्राण अरु आदित्यकी उद्गीथताके अविशेषतैं (तुल्य होनेतैं) प्राणकी न्यांई आदित्य-विषै बी अनुज्ञामात्र ॐकरण निश्चय करनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं॥

३३६ प्राणदृष्टिकरि उक्त उद्गीथकी उपासनाकूं निन्दाकरिके विवक्षित (कहनेकूं इच्छित) उपासनाकूं उपन्यास करैहैं॥ इहां भूमाकूं। याका बहुभाव (व्यापकता) करि युक्तकूं। यह अर्थ है॥

३३७ मध्यम पुरुषविषै तातङ्के आदेशकी विकलपकारि होनेकी योग्यताके हुये बी प्रथम पुरुषकी शंकाकारि दुष्ट अन्वयकूं निषेध करैहैं॥

त्रमुवाच ॥ प्राणाꣳस्त्वं भूमानमभिगा-
यताद्बहवो वै मे भविष्यन्तीति ॥ ४ ॥

णनकूं तूं [देखता हुया] भूमाकूं अभि-
गायनकर । बहुतहीं मेरे होवैं । ऐसें ॥४॥

न्यांई हीं है । यातैं वाक्आदिकनकूं औ मुख्य प्राणकूं भेदगुणविशिष्ट उद्गीथरूप देखता हुया भूमाकूं मनकरि अभिगायन कर । अर्थ यह जोः—पूर्वकी न्यांईं आवर्तन कर । "बहुत हीं मेरे पुत्रहोवैंगे" ऐसे अभिप्रायवाला हुया [आवर्तन कर] । यह अर्थ है ॥ [338]प्राण अरु आदित्यकी एकताकरि उद्गीथकी दृष्टिकूं एक पुत्रवान्तामय फलरूप दोषकरि निन्दित होनेतैं रश्मि अरु प्राणकी भेददृष्टिकी कर्तव्यता बहुपुत्ररूप फलके होने अर्थ इस कांड (प्रकरण)विषै चोदना करियेहै ॥ ४ ॥

---

३३८ एकताकी दृष्टिकी निन्दाद्वारा सफल प्रधानके उपासनकूं उपसंहार करैहैं ॥

अभेददृष्टिनिंदा औ भेददृष्टिसैं उद्गीथोपासन ५.

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः

अर्थः–अनन्तर प्रसिद्ध जो उद्गीथ है सो प्रणव है। जो प्रणव है सो उद्गीथ है॥

टीकाः–[३३९] अनन्तर प्रसिद्ध जो उद्गीथ है। इत्यादि प्रणव अरु उद्गीथकी एकताका उपासन कहा। ताका यह फल कहियेहैः–होतृषदनतें। होता जहां स्थित हुया शंसन करैहै सो स्थान होतृषदन है तिसतें। अर्थ यह जोः-हौत्र (होता संबन्धि) कर्मतें सम्यक् प्रयोग किये [प्रणव] तें॥ [३४०] जांतें देशमात्रतें फल ग्रहण करनेकूं शक्य नहीं है॥ [३४१] क्या सो है किः–

३३९ पूर्व उत्तर ग्रन्थनकी असङ्गतिकूं आशङ्का करिके। तात्पर्यके दिखावनेपूर्वक उत्तर ग्रन्थकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं॥

३४० ननु यथाश्रुत स्थानहीं होतृषदन क्यूं नहीं अङ्गीकार करिये है ? तहां कहैहैं॥

३४१ हौतृकर्मका जो फल आदर करियेहै। ताकूं प्रश्नपूर्वक अविशेषतैं दिखावैहैं॥ इहां "ह" अरु "एव" ये दो निपात अवधारण अरु अतिशयरूप फलवाले हैं। सो क्रियापदके साथि संबन्धकूं पावैहैं औ अपि शब्दतो निष्ठा (दुष्ट उद्गीत)के अनन्तरभावि होनेकरि लगानेकूं योग्य है॥

प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीतमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीति ॥ ५ ॥

इति प्रथमप्रपाठकस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

ऐसें होतृषदनतें दुष्ट उद्गीतकूंबी निश्चित अतिशयकरि अनुसमाहरण करताहै ऐसें। अनुसमाहरण करता है ऐसें ॥ ५ ॥

इतिश्री॰मूलभाषा॰प्रथमप्रपा॰पंचमः खण्डः ५

दुष्ट ऐसा उद्गीत जो उद्गान सो बी [342]कहिये उद्गातानें स्वकर्मविषै किया क्षत (छिद्र) बी। यह अर्थ है। ताकूं निश्चित अतिशयकरि अनुसमाहरण करैहै। अर्थ यह जोः—अनुसन्धान करैहै। चिकित्सा[343] (औषध)करि क-

---

३४२ दुष्ट उद्गानकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

३४३ ननु अन्यविषै स्थित कर्मका अन्य ठिकाने फल कैसैं ग्रहण करनेकूं शक्य होवै ? यह आशङ्का करिके कहैहैं ॥ इहां उद्गाता। प्रणव अरु उद्गीथकी एकताके विज्ञानके मा-

फादि धातुनकी विषमताके समीकरणकी न्यांई ॥ ५ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां प्रथमप्रपाठकस्य पंचमः खण्डः समाप्तः ॥ ५ ॥

हात्स्यतैं प्रमादजन्य स्वकर्मविषै प्राप्त क्षत (छिद्र)कूं हौतृकर्मतैं सम्यक् प्रयोग किये प्रणवतैं प्रतिसन्धान करैहै । यह अर्थ है ॥

इति श्री० प्रथमप्रपाठकगतपंचमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ५ ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य षष्ठःखंडः ॥ ६ ॥

इयमेवर्गग्निः सामतदेतदेतस्यामृच्य-

अथ श्री०मूलमात्रभाषा०प्रथमप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ६

अर्थः-यह (पृथिवी) ऋक् है । अग्नि साम है। सो यह साम इस ऋक्विषै अ-

---

अथ श्री०भाष्यभाषा०प्रथमप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः॥६॥

अंग प्रधानभेदसैं अपूर्व अधिदैवतरूप

उद्गीथका उपासन ८

टीकाः-अँब[३४४] सर्व फलकी संपत्तिअर्थ उद्गीथका अन्य उपासन विधान करियेहैः-

---

अथ श्री० प्रथमप्रपाठक-गत षष्ठखण्डस्य टिप्पणम् ६

३४४ "यह हीं" इत्यादिग्रन्थरचनाके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-पुत्रादिरूप ऐश्वर्यके एकदेशरूप विषयवाले उपासनके उपदेशतैं अनन्तर अवसरके प्राप्तहुये ज्योतिष्टोम-आदिकविषै अधिकारीनकूं समग्र ऐश्वर्यकी प्राप्तिअर्थ अधिदैव अरु अध्यात्मके विभागकरि उद्गीथविषयकहीं अपूर्व उपासन इसग्रन्थविषै विधान करनेकूं इष्ट है ॥

ध्यूढꣳसाम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते । इयमेव साऽग्निरमस्तत्साम ॥१॥

ध्यूढ है । तातैं ऋक्‌विषै अध्यूढ साम गायन करिये है। यह (पृथिवी)हीं सा है। अग्नि अम है। सो (युगल) साम है ॥ १ ॥

यह[३४५] हीं पृथिवी ऋक् है कहिये ऋचा[३४६]विषै पृथिवीकी दृष्टि करनेकूं योग्य है । तैसैं[३४७] अग्नि साम है कहिये सामविषै अग्निकी दृष्टि [करनेकूं योग्य है] ॥ ॥ ननु[३४८] पृथिवी अरु

---

३४५ तहां ताके अङ्गभूत उपासनकूं आदिविषै विधान करैहैं ॥

३४६ पृथिवीविषै ऋक्‌की दृष्टि इहां इष्ट नहीं है । काहेतैं कर्मके अंगकूं संस्कार करने योग्य होनेतैं । या अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

३४७ ऋक्‌विषै जैसैं पृथिवीकी दृष्टि अनन्तरके वाक्यविषै विहित है । तैसैं "अग्नि साम है" या वाक्यविषै अग्निकी दृष्टि सामविषै विधान करिये है पूर्वकी न्यांई । ऐसैं कहैहैं ॥

३४८ ननु पृथिवीका ऋक्‌पना औ अग्निका सामपना अप्रसिद्ध है ? ऐसैं पूर्ववादी शङ्का करैहै ॥

अग्निका ऋक् अरु सामपना कैसैं है? यह[३४९] कहियेहै:-सो यह अग्निनामवाला साम इस पृथिवीरूप ऋक्‌विषै अध्यूढ (अधिगत) है। अर्थ यह जोः-उपरिभावकरि स्थित है। ऋचाविषै सामकी न्यांई। तातैं[३५०] (इसीहीं कारणतैं) ऋचाविषै अध्यूढहीं साम। अबी बी सामके गायकोंकरि गायन करियेहै॥ औ[३५१] जैसैं ऋक् अरु साम परस्पर अत्यन्त भिन्न नहीं हैं। तैसैं ये पृथिवी अरु अग्नि हैं॥ ॥ कैसैं[३५२] किः-यह हीं पृथिवी "सा" है कहिये सामनामके अर्द्धशब्दकी वाच्यहै औ इतर अर्द्धशब्दका वाच्य अग्नि "अम" है॥ साम यह पृथिवी अरु अग्नि-

३४९ ऋक् सामपनैकी सिद्धिविषै सिद्धान्ती ऐसैं उत्तरकूं कहैहैं॥

३५० तिनके आधार आधेयभावविषै गमककूं दिखावैहैं॥

३५१ ऋक्‌विषै पृथिवीकी दृष्टि औ सामविषै अग्निकी दृष्टि है। इस अर्थविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं॥

३५२ पृथिवी अरु अग्निके अत्यन्त भेदके अभावकूं प्रश्नपूर्वक प्रकट करैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः-कर्मके दो अङ्गनके साथिप्रयोगतैं ऋक् अरु सामका परस्पर अव्यभिचारतैं अत्यंत

अंग प्रधानभेदसैं अपूर्व अधिदैवतरूप उद्गीथका उपासन ८

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम । तदेत-

अर्थः—अन्तरिक्षहीं ऋक् है। वायु साम

का युगल साम है। कहिये एक शब्दकी वाच्य-ताकूं प्राप्तहुया साम है। तातैं पृथिवी अरु अग्नि-का युगल परस्पर भिन्न नहीं किन्तु ऋक् अरु सामकी न्यांईं नित्य संश्लिष्ट (मिलित)है ॥ औ [३५३]तातैं पृथिवी अरु अग्निका ऋक् अरु साम-पना है। यह अर्थ है॥ "[३५४]सा" अरु "अम" इन दो अक्षरनविषै पृथिवी अरु अग्निकी दृ-ष्टिके विधान अर्थ। यह हीं "सा" है अरु अग्नि "अम" है। ऐसै केइक [व्याख्यान क-रते हैं] ॥ १ ॥

टीकाः—अन्तरिक्षहीं ऋक् है वायु साम

भेद नहीं है। तैसैं पृथिवी अरु अग्निकूंबी एकशब्दके वाच्य होनेतैं तिनकी अत्यन्त भिन्नता नहीं है ॥

३५३ तिनके अत्यन्त भेदके अभावके हुये फलितकूं क-हैहैं ॥ इहां पृथिवी "सा" शब्दकी वाच्य है स्त्री होनेतैं औ अग्नि "अम" है पुरुष होनेतैं । ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥

३५४ अन्य पक्षकूं उठायके अङ्गीकार करैहैं ॥

देतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम । तस्मा-
दृच्यध्यूढꣳसाम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा
वायुरमस्तत्साम ॥ २ ॥

द्यौरेवर्गादित्यः साम । तदेतदेत-
स्यामृच्यध्यूढꣳसाम । तस्मादृच्यध्यू-
ढꣳ साम गीयते । द्यौरेव साऽऽदित्यो-
ऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥

है। सो यह साम इस ऋचाविषै अध्यूढ
है। तातैं ऋचाविषै अध्यूढ साम गायन
करियेहै। अन्तरिक्षहीं सा है। वायु अम है।
सो (युगल) साम है ॥ २ ॥

अर्थः—स्वर्गहीं ऋक् है। आदित्य साम
है। सो यह साम इस ऋचाविषै अध्यूढ है।
तातैं ऋचाविषै अध्यूढ साम गायन करिये
है ॥ स्वर्गहीं सा है आदित्य अम है। सो
(युगल) साम है ॥ ३ ॥

है। इत्यादि पूर्वकी न्यांई है ॥ २ ॥ ३ ॥

नक्षत्राण्येवर्क् चंद्रमाः साम । तदेत-देतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम । तस्मादृच्य-ध्यूढꣳसाम गीयते । नक्षत्राण्येव सा चं-द्रमा अमस्तत्साम ॥ ४ ॥

अर्थः–नक्षत्रहीं ऋक् है । चंद्रमा साम है । सो यह साम इस ऋचाविषै अध्यूढ है । तातैं ऋचाविषै अध्यूढ साम गायनकरिये है । नक्षत्रहीं सा है । चंद्रमा अम है । सो साम है ॥ ४ ॥

टीकाः–[355]नक्षत्रनका अधिपति चंद्रमा है । यातैं सो साम है ॥ ४ ॥

---

३५५ ननु फेर नक्षत्रनके पर्यायविषै "सो यह इसविषै" इत्यादि वाक्य कैसै है । जातैं नक्षत्रनविषै चंद्रमाकी स्थिति नहीं है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां नक्षत्रनके अधिपतिपनैतैं इनतैं उपरि भावकारि चंद्रमाकी स्थितितैं । यह अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है औ नक्षत्रसहित चंद्रमाकूं ग्रहण करनेकूं स (सो) शब्द है ॥

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम । तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम । तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते ॥ ५ ॥

अर्थः—अनन्तर जो यह आदित्यकी शुक्ल भाः है सोई ऋक् है । औ जो नील पर कृष्ण है सो साम है । सो यह साम इस ऋचाविषै अध्यूढ है । तातैं ऋचाविषै अध्यूढ साम गायन करिये है ॥ ५ ॥

टीकाः—[356]अनन्तर जो यह आदित्यकी शुक्ल [357]भाः ([358]शुक्ला दीप्ति) है सोई ऋक् है [359]औ जो आदित्यविषै नील पर है कृष्णपर क-

---

३५६ कितनैक अङ्गरूप उपासनोंकूं कहिके । अब तैसैंहीं अन्य उपासनकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—मंडलरूप आदित्यका जो शुक्ल रूप देखियेहै ऋचाविषै ताकी दृष्टि करनेकूं योग्य है ॥

३५७ तिसींहीं रूपकूं विशेषण देते हैं ॥

३५८ ताही भा(प्रभा)कूं व्याख्यान करैहैं ॥

३५९ ऋचाविषै जैसैं पूर्वोक्त रूपकी दृष्टि है । तैसैं सामविषै वक्ष्यमाणरूपकी दृष्टि अनुष्ठेय है । ऐसैं कहैहैं ॥

अंग प्रधानभेदसैं अपूर्व अधिदैवतरूप उद्गीथका उपासन ८

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्त-

---

अर्थः-अनन्तर जोई यह आदित्यकी शुक्ल भाः है सोई सा है। औ जो नीलपर-कृष्ण है सो अम है। सो (युगल) साम

हिये अतिशयकरि कृष्णपना है सो साम है। सो[३६०] (अतिशय कृष्णपना) एकान्तकरि स-माहित (एकाग्र) दृष्टिवालेकूं देखियेहै ॥ ५ ॥

टीकाः-वेई[३६१] ये प्रभारूप शुक्ल अरु कृष्ण-पना सा औ अम रूप साम है॥ अनन्तर[३६२]

---

३६० ननु आदित्यविषै शुक्लताकी न्यांई सर्वसैं अधिक कृ-ष्णता हमोंकरि नहीं अनुभव करिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-एकान्तकरि समाहित अरु शास्त्रसंस्कृत जाकी दृष्टि है। ताकूं आदित्यविषै निरतिशय कृष्णपना देखिये है। तैसैं हुये ता (कृष्णपनै)की दृष्टि सामविषै युक्त है ॥

३६१ "अनन्तर जोई यह" इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

३६२ अङ्गरूप उपासनोंकूं समाप्त करिके अनन्तर आधि-

त्सामाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः
हे ॥ ॥ अनन्तर जो यह आदित्यके मध्य

जो यह आदित्यके मध्य हिरण्मयकीन्यांई हिरण्मय [पुरुष देखियेहै]। [३६३]जौतैं सुवर्णविकारता (सुवर्णकी कार्यता) देवकूं नहीं सम्भवै है। काहेतैं ऋक् साम गेष्णत्व अरु अपहतपाप्मत्वके असम्भवतैं ॥ [३६४]जौतैं सुवर्णरचित अचेतनविषै पाप्म (पाप) आदिककी प्राप्ति नहीं है जिसकरि प्रतिषेध करिये ॥ औ [३६५]चाक्षुषविषै अग्रहणतैं। [३६६]यातैं लुप्त उपमावाला

देवकी प्रधान उपासनाकूं कहनेकूं इच्छतेहुये उपास्यके स्वरूपकूं उपन्यास करैहैं ॥

३६३ ननु ऐसैं हिरण्मयपद उपमारूप अर्थवाला क्यूं व्याख्यानकरियेहै। हिरण्यकी विकारताहीं इहां विवक्षित क्यूं नहीं होवैगी ? यह आशङ्का करिके कहैहैं ॥

३६४ अपहत पाप्मपनैके असम्भवकूं साधतेहैं ॥ इहां पाप्मादि। यह आदिपद ता (पाप)के कार्यके संग्रह अर्थ है ॥

३६५ किंवाः-चक्षुविषै उपास्य जो चाक्षुष पुरुष तिसविषै सुवर्ण विकारताके अग्रहणतैं गौणहीं हिरण्मयपद है। ऐसैं कहैहैं ॥

३६६ औ तहां (चाक्षुष पुरुषविषै)बी अतिदेशका

पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥

हिरण्मय पुरुष देखिये है। [जो] हिरण्यश्मश्रु हिरण्यकेश आप्रणखतैं (नखाग्रसहित) सर्वहीं सुवर्ण है ॥ ६ ॥

हीं हिरण्मय शब्द है। अर्थ यह जोः–ज्योतिर्मय है ॥ उत्तर[367] (पीछले विशेषण)नविषै समान योजना है ॥ पुरीविषै शयनतैं वा अपने स्वरूपकरि जगत्कूं पूरण करैहै यातैं पुरुष है। सो निवृत्त[368] चक्षुवाले समाहित चित्तवाले पुरुषनकरि ब्रह्मचर्यादि[369] साधनोंकी अपेक्षा-

---

किया ता (सुवर्ण विकारता)का ग्रहण है । काहेतैं तैसैं ऋक् साम अरु गेष्णता आदिकके साथि विरोधतैं । तातैं गौणहीं हिरणमयपद है । ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

३६७ हिरण्यश्मश्रु है । इत्यादि विशेषणनविषै बी गौणता तुल्यहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

३६८ ननु आदित्यादि मण्डलविषै जो पुरुष है सो हमोंकरि नहीं देखिये है ? तहां कहैहैं ॥

३६९ विशिष्ट (श्रेष्ठ) अधिकारिनकूं आदित्य पुरुषके दर्शनके प्रति उपपादन करैहैं ॥

तस्य यथा कप्यासं पुंडरीकमेवमक्षिणी। तस्योदिति नाम। स एष स-

अर्थः-ताके जैसें कप्यास (कपिपृष्ठान्तकी-न्यांई स्थित) पुंडरीक है ऐसें दो अक्षि हैं। ताका "उत्" ऐसा नाम है। सो यह

वाला जैसें होवै तैसें देखियेहै ॥ ॥ ननु तेजस्वी पुरुष बी श्मश्रुकेश आदिक वाले कृष्ण होवैहैं? यातें विशेषण देतेहैंः- हिरण्यश्मश्रु अरु हिरण्यकेश है। ऐसें। अर्थ यह जोः-ज्योतिर्मयहीं इस (आदित्यगतपुरुष)के श्मश्रु। (चिबुकगतकेश) औ केश (शिरके बाल) हैं॥ औ आप्रणखतें [प्रणख नाम नखाग्र है।] कहिये नखाग्रकरि सहित सर्व सुवर्णकीन्यांई है। अर्थ यह जोः- प्रभारूप है॥ ६॥

टीकाः-तिस[३७०] ऐसे सर्व ओरतें सुवर्णवर्णवा-

३७० सर्वहीं सुवर्ण है। इस विशेषणतें दो नेत्रनविषै बी सुवर्णभावके प्राप्तहुये प्रत्युत्तर कहैहैं॥

र्वेभ्यः पापेभ्य उदित उदेति ह वै स-
र्वेभ्यः पापेभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥

सर्व पापोंतें उदित (उद्गत) है ॥ जो ऐसैं जानताहै [सो] निश्चित सर्व पापोंतें उदयकूं पावता (ऊंचें जाता) है ॥ ७ ॥

लेबी पुरुषके दो अक्षिनविषै विशेष है ॥ ॥ [371] कैसैंकिः—ताके जैसें कपि जो मर्कट ताका । आस (आसन) रूप कप्यास । [इहां उपवेशन (बैठने) रूप अर्थवाले "[372] आसि" धातुके करणविषै "घञ्" प्रत्यय है] कहिये कपिपृष्ठा[373]न्त है [374] जिसंकरि बैठताहै । [375] कप्यासकीन्यांईं

३७१ विशेषणकूंहीं प्रश्नपूर्वक स्पष्ट करैहैं ॥ इहां जैसैं कप्यास (कपिपृष्ठके अन्त)की न्यांईं स्थित पुण्डरीक है । तैसै ताके दो अक्षि हैं । ऐसैं योजना है ॥

३७२ "आस" शब्दकी सिद्धिके प्रकारकूं सूचन करैहैं ॥

३७३ "घञ्" अन्तवाले शब्दके विवक्षित अर्थकूं कथन करैहैं ॥

३७४ ताकी करणताकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां कपिका आस जो कपिपृष्ठान्त सो कप्यास है । यह शेष है ॥

३७५ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

पुंडरीक (कमल) अतितेजस्वि है । ऐसैं इस देवके दो अक्षि हैं ॥ इहां [376] उपमित उपमानके होनेतैं हीनउपमा नहीं है ॥ [377] तिस ऐसैं गुण-विशिष्टका "उत्" ऐसा यह गौण नाम है ॥ [378] कैसैं गौणपना है ? [तहां कहिये है:] सो यह सर्व पापनतैं । अर्थ यह जोः—[379] पापकरि स-हित ताके कार्यनतैं ["जो [380] आत्मा अपहत पा-

---

३७६ ननु निहीन (निकृष्टजातिवाले)की उपमाकरि दे-वकी चक्षुनकूं उपदेश करनेवाले तुह्मोंकरि तिन दो चक्षुन-कीवी निहीनता उपदेश करी होवैगी ? यह आसङ्का करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—कप्यासकरि उपामित जो पुण्ड-रीक । तिस उपमानकरि उपमित होनेतैं चक्षुनकूं निहीन उपमानका किया निहीनपना नहीं है ॥

३७७ उक्त आदित्यपुरुषके क्षेत्रज्ञ (जीव)पनैकी श-ङ्काकूं निषेध करनेकूं ताके नामकूं उपदेश करैहैं ॥

३७८ नामके गौणपनैकूं शंकाद्वारा व्युत्पादन करैहैं ॥

३७९ ननु ताका सर्व पापनतैं उदय (उद्गमन) नहीं है काहेतैं ताके कार्यकूं भजनेवाला होनेतैं ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥

३८० ननु आदित्यके क्षेत्रज्ञ (जीव)विषैवी सर्व पापनतैं उदय (उद्गमन) सम्भवैहै । काहेतैं "निश्चयकरि देवनके

अंग प्रधानभेपसैं अपूर्व अधिदैवतरूप उद्गीथका उपासन ८

तस्यर्क्च साम च गेष्णौ। तस्मादु-

अर्थः—ताके ऋक् औ साम दो गेष्ण (पर्व) हैं। तातैं उद्गीथ है। तातैंहीं उद्गीता है

प्मा है" इत्यादि आगे यह श्रुतिं कहैगी] उदित है। कहिये उद्इत है। अर्थ यह जोः— उद्गत (निकस्या।) है॥ यातैं यह उत् नामवाला है॥ तिसं[३८१] ऐसैं गुण सम्पन्न उत् नामवालेकूं यथोक्त प्रकारसैं जो जानताहै सो बी ऐसैं हीं सर्व पापोतैं उदित होवैहीं है कहिये उद्गमन करैहै। इहां "ह वा" ऐसे अवधारणरूप अर्थवाले दो निपात हैं। यातैं उदित होवैहीं है। यह अर्थ है॥ ७॥

टीकाः—आदित्यआदिकनकीन्यांई विवक्षित

प्रति पाप नहीं गमन करै है" इस श्रुतितैं? यह आशङ्का करिके [क्षेत्रज्ञरूप जीवतैं भिन्न] परमात्मविषयक वाक्यके शेषकूं उदाहरण करैहैं॥ इहां उक्त अर्थका योग अतः [यातैं] शब्दका यह अर्थ है॥

३८१ उपास्य परमात्माकूं उपन्यासकारिके ताके उपास-

द्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता ।

जातें इसका गाता है। सो यह [देव] है॥ औ जे उस (आदित्य)तें पराक् (ऊर्ध्व)

होनेतें तिसैं[382] देवके उद्गीथपनेकूं कहैहैं:- ताके ऋक् अरु साम गेष्ण हैं कहिये पृथिवी आदिक उक्त लक्षणवाले दो पर्व हैं। जातें[383] सर्वात्मा देव है [तातें ताकूं] परैं[384] अपर लोकके

नकूं अव सफल जैसें होवै तैसें उपन्यास करैहैं॥ इहां यथोक्त प्रकारकरि उत् नामवालेकूं। ऐसें संवन्ध है॥

३८२ ननु परका उपासन कैसें होवैहै? इस अपेक्षाके हुये। उद्गीथविषै संपादन करिके होवैहै। ऐसें दिखावैहैं॥ इहां यह अर्थ है:-जैसें आदित्य आदिकनका उद्गीथविषै सम्पादनकरिके उपासन इहां विवक्षित होवैहै। तैसें परमात्माकेबी तहां (उद्गीथविषै) संपादनकरिके उपासनकूं विवक्षित करिके सर्व ऋक् अरु सामकी स्वरूपताकूं "ताके" इत्यादि वाक्य कहैहै॥

३८३ मण्डलकरि अवच्छिन्न पुरुषका ऋक्आदिक गेष्ण (पर्व)वान्‌पना कैसें है? यह आशङ्काकरिके कहैहैं॥ परमात्माकूं स्वरसताकरि। सर्वात्मा होनेतें चारिओरतें ध्यानअर्थ मण्डलके अवच्छेदतें ऋक् आदिरूप गेष्णवान्‌पना घटित है॥

३८४ तहांहीं अन्यहेतुकूं कहैहैं॥

स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम् ॥८॥

इति प्रथमप्रपाठकस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

लोक हैं तिनका औ देवनके कामोंका ई-शिता होवैहै ॥ यह अधिदैवत है ॥ ८ ॥

इति श्री॰मूलभाषा॰प्रथमप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ६

कामका ईशिता होनेतैं औ [३८५] सर्वका कारण होनेतैं पृथिवी अरु अग्निरूप ऋक् अरु साममय गेष्ण (पर्व)वान्पना सम्भवैहै ॥ [३८६] जातैं ऐसैं "उत्" नामवाला औ ऋक् सामरूप गेष्णवाला यह है। तातैं ऋक् सामरूप गेष्णवान्ताकरि प्राप्त उद्गीथपना परोक्षकरि कहियेहै । [३८७] देवकूं परोक्ष

---

३८५ सर्वात्मभावकूं साधतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सर्वकी कारणताकरि सर्वात्मा होनेतैं ऋक्आदिक पर्ववान्पना युक्तहीं है ॥

३८६ "तातैं उद्गीथ है" इसवाक्यकूं योजना करैहैं ॥ इहां जातैं ऐसैं प्राप्त हुये तात उद्गीथ है । इसवाक्यकरि उद्गीथपना परोक्षनामकरि देवका कहिये है। ऐसैं योजना है ॥

३८७ ननु ऐसैं परोक्षनामकरि देव क्यूं व्यपदेश करिये

प्रिय होनेतैं। तातैं[387] "उद्गीथ है" ऐसैं। तिसी-हीं हेतुतैं उतकूं गायन करैहै यातैं उद्गीता (उद्गाता) है। जातैंहीं[388] इस उक्त उत् नामवालेका गाता (गायक) यह है यातैं उद्गाताकी "उद्गाता" इस नामकी प्रसिद्धि युक्त है॥ सो[390] यह देव "उत्" नामवाला है औ

है? यह आशङ्काकरिके। "परोक्ष प्रियकी न्यांई जातैं देव है [यातैं वे]प्रत्यक्षके द्वेषी हैं" इस अन्यश्रुतिकूं आश्रयकरिके कहैहैं॥

३८८ उत् नामवान्ताकेविषै देवरूप उद्गाताके उद्गाता-पनैकी प्रसिद्धिकूं प्रमाण करैहैं॥

३८९ तत् (तातैं) शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करैहैं॥ इहां प्रकृत उत् नामवाले देवके आगानतैं। यह अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है औ उद्गाताके "उद्गाता" इस नामकी प्रसिद्धि है। यह युक्त है। ऐसैं योजना है॥

३९० सर्व पापके उदय (उल्लंघन)रूप लिङ्गतैं औ ताके अन्यत्र असंभवतैं आदित्यके अन्तर्गत देव परमात्मा है। ऐसैं कहा। तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं॥ इहां देवनके कामोंके आदित्यतैं ऊपरके लोकनविषै अधिष्ठाता जे देव हैं। तिनके काम जे काम्यमान फलविशेष हैं। तिनका ईशिता है। यह अर्थ है॥ जातैं निरङ्कुश लोकनके कामोंका ईशितापना परमातमातैं अन्यत्र नहीं सम्भवैहै "यह सर्वेश्वर है" इस श्रुतितैं। यह भाव है॥

इति श्री० प्रथमप्रपाठकगतषष्ठखण्डस्य टिप्पणम्॥ ६॥

अथ प्रथम प्रपाठ० सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

अथाध्यात्मं ॥ वागेवर्क् प्राणः साम।

अथ श्री० मूलभाषा० प्रथमप्रपाठकस्य सप्तमःखंडः ॥७॥

अर्थः—अब अध्यात्म [कहियेहैः—] वा-

जे उस आदित्यतें पराक्प्रकाशनतें पराक् लोक हैं। तिन लोकनका ईशिता है ॥ औ केवल ईशितापनाहीं नहीं किन्तु "च" शब्द-तें तिनकूं धारण करैहै ॥ "सो पृथिवीकूं अरु इस स्वर्गकूं धारण करैहै" इत्यादि मंत्र वर्णतें ॥ किंवाः—देवनके कामोंका ईशिता होवैहै ॥ ऐसैं यह अधिदैवत कहिये देवतारूप विषय-वाला उद्गीथरूप देवका स्वरूप कहा ॥ ८ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० प्रथमप्रपाठकस्य षष्ठःखण्डः ॥६॥

अथ श्री० भाष्यभाषा० प्रथमप्रपाठकस्यसप्तमःखण्डः.

अंग प्रधानभेदसैं अध्यात्मरूप अपूर्व उद्गीथका उपासन ९

टीकाः—अब अध्यात्म कहियेहैः—वाक्हीं ऋक् है। प्राण साम है। नीचे ऊंपर[३९१] स्थानवान्-

अथ श्रीप्रथमप्रपाठकगतसप्तमखण्डस्य टिप्पणम्॥७

३९१ इहां आधिदैविक उपासनाकी अनन्तरता अथ श-

तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम। तस्मा-
दृच्यध्यूढꣳ साम गीयते । वागेव सा
प्राणोऽमस्तत्साम ॥ १ ॥

चक्षुरेवर्गात्मा साम। तदेतदेतस्यामृ-

कहीं ऋक् है। प्राण साम है। सो यह साम
इस ऋचाविषै अध्यूढ है । तातैं ऋचाविषै
अध्यूढ साम गायन करियेहै ॥ वाक्हीं सा
है। प्राणहीं अम है। सो साम है ॥ १ ॥

अर्थः—चक्षुहीं ऋक् है। आत्मा साम

ताके सामान्यतैं ॥ इहां प्राण[३९२] घ्राण कहियेहै
वायुसहित[३९३] ॥ वाक्हीं सा है। प्राण अम है।
इत्यादि पूर्वकीन्यांई है ॥ १ ॥

टीका:—चक्षुहीं ऋक् है। आत्मा साम

ब्दका अर्थ है औ ऋक्विषै वाक्की दृष्टि औ सामविषै प्राणकी
दृष्टि कर्तव्य है। इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

३९२ ननु ऋक् अरु सामकी न्यांई वाक् अरु प्राणका अ-
धर उपरि स्थानवान्पना कैसैं है? तहां कहैहैं ॥

३९३ स्थानमात्रताकूं (प्राणशब्दकरि घ्राणइंद्रियरूप स्था-
नमात्रके ग्रहणकूं) निषेध करैहैं ॥

च्यध्यूढꣳ साम । तस्माद्दच्यध्यूढꣳ साम गीयते। चक्षुरेव साऽऽत्माऽमस्तत्साम ॥ २ ॥

श्रोत्रमेवर्ग्मनः साम। तदेतदेतस्या-

है। सो यह साम इस ऋचाविषै अध्यूढ है। तातैं ऋचाविषै अध्यूढ साम गायन करियेहै ॥ चक्षुहीं सा है। आत्मा अम है। सो साम है ॥ २ ॥

अर्थः—श्रोत्रहीं ऋक् है। मन साम है। सो यह साम इस ऋचाविषै अध्यूढ है। तातैं

है। इहां "ओंत्मा[३९४]" ऐसैं छायारूप आत्मा कहियेहै काहेतैं ताकूं तिसैं[३९५] (चक्षु) विषै स्थित होनेतैं। सो साम है ॥ २ ॥

टीकाः—श्रोत्रहीं ऋक् है। मन साम है।

---

३९४ भोक्ताकूं निषेध करैहैं ॥

३९५ छायारूप आत्माकी सामरूपताविषै अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—चक्षुविषै छायारूप आत्माकूं स्थित होनेतैं। ऋचाविषै सामकी न्यांई ॥

मृच्यध्यूढꣳ साम । तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते । श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम । तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम । तस्मादृच्यध्यू-

---

ऋचाविषै अध्यूढसाम गायनकरियेहै । श्रोत्रहीं सा है । मन अम है । सो साम है ॥३॥

अर्थः—अनन्तर जो यह अक्षिकी शुक्लभाः है सोई ऋक् है । औ जो नील पर कृष्ण है सो साम है । सो यह साम ऋचा-

---

श्रोत्रका अधिष्ठाता होनेतैं मनकूं सामपनाहै॥३॥

टीकाः—[३९६]अनन्तर जो यह अक्षिकी शुक्ल

---

३९६ आध्यात्मिकरूप कितनैंक अङ्गरूप उपासनोंकूं कहिके । अनन्तर प्रकारान्तरकारि अङ्गरूप उपासनकूंहीं किञ्चित् उपदेश करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अक्षिका जो यह शुक्ल रूप देखियेहै । ऋक्‌विषै ताकी दृष्टि कर्तव्य है ॥

ढꣳ साम गीयते ॥ अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ॥ ४ ॥

विषै अध्यूढ है । तातैं ऋचाविषै अध्यूढ साम गायन करिये है ॥ औ जोई यह अक्षिकी शुक्ल भाः है सोई सा है । अरु जो नील पर कृष्ण है सो अम है। सो (युगल) साम है ॥ ४ ॥

[३९७] भा है सोई ऋक् है । औ[३९८] जो नील पर कृष्ण आदित्यकीन्यांई दृष्टिकी शक्तिका अधिष्ठान है सो साम है ॥ ४ ॥

३९७ तिसींहीं रूपकूं विशेषण देतेहैं ॥

३९८ ऋक्विषै पूर्वोक्त रूपकी दृष्टिकी न्यांई वक्ष्यमाणरूपकी दृष्टिबी सामविषै कर्तव्य है ॥ ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-जैसैं आदित्यमंडलविषै सम्यक् जाननेयोग्य अतिकृष्णरूप कहा । तैसैं चक्षुविषैबी दृक्शक्तिका अधिष्ठान तैसा रूप देखियेहै । ताकी दृष्टि सामविषै कर्तव्य है ॥

अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृ-

अर्थः-अनन्तर जो यह अक्षिके अन्तर पुरुष देखियेहै सोई ऋक् है। सो साम है। सो उक्थ है। सो यजुर् है। सो ब्रह्म (ऋगादि) है॥ तिस इस (चाक्षु-

---

टीकाः [399] अनन्तर जो यह अक्षिके भीतर पुरुष देखियेहै। [400] पूर्वकीन्यांई सोई-[401] ऋक् है। अध्यात्म वाक् आदिक है औ पृथिवी आदिक अधिदैवत है औ प्रसिद्ध ऋक् पाद-

---

३९९ आध्यात्मिकरूप प्रधान (मुख्य) उपासनके शेष (उपकारक) होनेकरि अनेक अङ्गरूप उपासनोंकूं कहिके। अनन्तर प्रधान उपासनके विषयकूं दिखावैहैं॥

४०० "देखियेहैं" इस प्रयोगतैं यह छायात्मा होवैगा? यह आशङ्काकरिके कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:-जैसैं पूर्व आधिदैविक वाक्यविषै समाहित चित्तवाले पुरुषनकरि आदित्यपुरुषका दृश्यपना कहा। जैसैं चाक्षुष पुरुषका बी विशिष्ट अधिकारिनकरिहीं दृश्यपना माननेयोग्य है॥

४०१ छायात्माके पक्षविषै वाक्यशेषके विरोधकूं अभिप्रायका विषयकरिके कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:-जो यह ऋक् जैसैं व्याख्यान करी सा सर्व सोई पुरुष है॥

इयते सैवर्क्तत्साम। तदुक्थं तद्यजुस्त-

ष पुरुष)का सोई रूप है जो उस (आ-

बद्धअक्षरात्मिका है। तैसैं[402] साम है। वौं[403] उ-
क्थके साहचर्यतैं स्तोत्र साम है। उक्थ शस्त्र
है। उक्थतैं अन्य तैसैं (जैसैं) यजुर् है।
स्वाहा स्वधा अरु वषट् आदिक सर्वहीं वाक्
यजुर् है सोई है सर्वात्मा[404] होनेतैं औ सर्वका
योनि होनेतैं। ऐसैं जातैं हम कहते भये ऋक्
आदि प्रकरणतैं। सो ब्रह्म है। ऐसैं तीनवेद

---

४०२ ऋचाविषै उक्तन्यायकूं सामविषै अतिदेश करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-जो कछुक साम है। सो सर्व सोई पुरुष है ॥

४०३ ऋक् अरु सामशब्दके अन्य अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां ऋक् साम जैसैं है ऐसा दृष्टान्त तथाशब्दका अर्थ है ॥

४०४ ननु परकूं ऋक् आदिकरूपता कैसैं है ? यह आशङ्का करिके कहैहैं ॥ इहां ब्रह्मशब्दकी परमात्मारूप विषयवान्ताकूं व्यावर्तन करतेहुये "प्रकरणतैं" ऐसैं उक्त न्यायकरि तीन वेद सोई पुरुष है। ऐसा उपसंहार है। सो जडरूप छायात्माकी व्यावृत्ति अर्थ है ॥

ब्रह्म । तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य

दित्य पुरुष)का रूप है । जे दोनूं उ-

[सोई पुरुष है] ॥ तिसैं[405] इस चाक्षुष पुरुष-
का सोईरूप अति देशकरियेहै ॥ ॥ क्या सो
है? जो उस आदित्य पुरुषका "हिरैंण्मय[406]"
इत्यादि रूप जो अधिदैवत कहा है ॥ जे उँसैं[407]
(आदित्य पुरुष)के गेष्ण [दोपर्व] हैं वेई
इस चाक्षुष पुरुषके गेष्ण हैं। जो[408] उसका
नाम "उत्" ऐसा औ "उद्गीथ" ऐसा है सोई
इसका नाम है ॥ ॥ ननु स्थाँनभेदतैं[409] ॥ औ

---

४०५ रूपके अतिदेशकूं दिखावै हैं ॥

४०६ क्या सो आदित्य पुरुषका रूप है? इस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥

४०७ इसतैंबी यह छायात्मा नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥

४०८ नामका अतिदेश बी इस अर्थकूं बलावान् करैहै। ऐसैं कहैहैं ॥

४०९ आदित्य अरु चाक्षुषरूप दो उपास्योंके भेदतैं उपासना बी भिन्न है? ऐसैं पूर्ववादी शङ्का करैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—आदित्यमण्डल औ चक्षु। ऐसैं दो स्थान। भेदकूं पावतेहैं औ रूप हिरण्मय। हिरण्यश्मश्रु । इत्यादि है औ

रूपं । यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ । यन्नाम तन्नाम ॥ ५ ॥

सके गेष्ण (पर्व) हैं वे गेष्ण हैं । जो नाम है सो नाम है ॥ ५ ॥

रूप गुण नामके अतिदेशतैं औ ईशिता भावरूप विषयवाले भेदके व्यपदेशतैं आदित्य अरु चाक्षुषका भेद है? ऐसैं जो कहै । सो [४१०] बनै

ऋक्आदिक पर्ववान्पनाआदिक गुण है औ "उत्" इत्यादि नाम है। तिनका "तिस इसका सोई रूप है" इत्यादिरूप अतिदेश (कितनैक धर्मनका आक्षेप) है "औ जे उस (सूर्य)तैं पराक् लोक हैं तिनका अरु देवनके कामोंका ईशिता (स्वामी) होवैहै। यह अधिदैवत है ॥ औ जे इस चाक्षुषतैं अर्वाक् लोक हैं तिनका औ मनुष्यनके कामोंका ईशिता है। यह अध्यात्म है" ऐसैं यह ईशितापनैरूप विषयवाला भेदका व्यपदेश है ॥ यातैं इन दोनूंके भेदतैं उपासन बी भिन्नहीं है ॥

४१० उपास्यके भेदतैं उपासनाका भेद नहीं है। ऐसैं सिद्धान्ती दूषण देतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:–उपासक । प्रथम उस आदित्य रूपसैं पराक् (ऊर्ध्व) लोकनकूं औ देवनके कामोंकूं पावताहै। सोई इस चाक्षुषरूपकरि अर्वाचीन लोकनकूं औ मनुष्यनके कामोंकूं पावताहै। ऐसैं सुनियेहै औ एककूं

नहीं:—काहेतें उस रूपसैं अरु इसरूपसैंहीं ऐसैं एक उपासककूं उभय स्वरूपकी प्राप्तिके असम्भवतें ॥ ॥ [411]ननु द्विधाभावकरि सम्भवै है। [412]जातैं यह श्रुति आगे कहैगी "सो एकधा होवैहै त्रिधा होवैहै" इत्यादि ? ऐसैं जो कहै। [413]सो बनै नहीं: काहेतें एक चेतनकूं निरवयव होनेतें द्विधाभावके असम्भवतें। जातैं अध्यात्म अरु अधिदैवतकी एकताहीं है। [414]औ जो रूप आदिकका अतिदेश भेदका कारण है ऐसैं

वस्तुतैं भिन्न उभयरूपताकी प्राप्ति नहीं सम्भवैहै। तातैं उपासनके भेदकी कलपना युक्त नहीं है ॥

४११ ननु एककूंबी विद्याके माहात्म्यतैं द्विधाभावके निश्चयतैं उभयरूपता घटित है ? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

४१२ एककी विद्याके वशतैं अनेकरूपताविषै वाक्यशेषकूं पूर्ववादी प्रमाण करैहै ॥

४१३ एककूं अनेक शरीरनके परिग्रहके हुये बी स्वरूपके भेदका सम्भव नहीं है। ऐसैं सिद्धान्ती परिहार करैहैं॥ इहां एकताके साधकका सद्भाव तत् (तातैं) शब्दका अर्थ है ॥

४१४ पर (पूर्ववादी)करि उक्त भेदककूं सिद्धान्ती अनुवाद करैहैं ॥ इहां भेदका कारण है। तिसतैं ऊपर इति (ऐसैं) शब्द देखनेकूं योग्य है ॥

स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोका-स्तेषां चेष्टे मनुष्यकामानाञ्चेति तद्य इमे

अर्थः—सो यह औ जे इसतैं अर्वाक् लोक हैं तिनका औ मनुष्यनके कामोंका

तुह्म कहते भये। सो[४१५] भेदके ज्ञान अर्थ नहीं है किन्तु स्थानभेदतैं भेदकी आशङ्का मति होवै इस अर्थ है ॥ ५ ॥

टीकाः सो[४१६] यह चाक्षुष पुरुष है औ जे इस आध्यात्मिक आत्मातैं अर्वाक्गत (नीचे) लोक हैं तिनका औ मनुष्य सम्बन्धी कामोंका ईशिता होवैहै। तातैं[४१७] जे ये गायक

---

४१५ अब सिद्धान्तीहीं दूषण देते हैं ॥ इहां तत् (सो) ऐसैं अतिदेश किया रूपादि कहा है ॥

४१६ अधिदैविक पुरुषकी न्यांई आध्यात्मिक पुरुषविषैबी निरतिशय ऐश्वर्यके श्रवणतैंबी तिनकी एकता है। ऐसैं कहैहैं ॥

४१७ तिनदोनूंके भेदके अभावविषै अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—ईश्वरकूंहीं पूर्वोक्त हेतुतैं गायनके विषय होनेकूं योग्य होनेतैं ॥

वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति । त-
स्मात्ते धनसनयः ॥ ६ ॥

अथ य एतदेवं विद्वान्साम गाय-

ईशिता है ऐसें ॥ तातें जे ये वीणाविषै गा-
यन करतेहैं वे इसीकूं गायन करतेहैं। तातें
वे धनवान् होते हैं ॥ ६ ॥

अर्थः—जो ऐसें विद्वान् हुया अनन्तर
इस सामकूं गायन करैहै। सो दोनूं (चा-

वीणाविषै गायनकरैहैं वे याहीकूं गायन
करै हैं। [418]जातें ईश्वरकूं गायन करैहैं तातें वे
धनके लाभकरि युक्त होवैहैं। अर्थ यह जोः
धनवान् होवैहैं ॥ ६ ॥

टीकाः—[419]जो [420]इस यथोक्त देवरूप उद्गीथकूं

---

४१८ तत् (तातें)शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करैहैं ॥

४१९ स्थानभेदकरि उक्त उपासनावालेकूं फल कथनके
अर्थ भूमिकाकूं करैहैं ॥ इहां यह साम। ऐसें सम्बन्ध है ॥

४२० ऐसें विद्वान् हुया। ऐसें कहा। याहींकूं विभाग क-
रैहैं ॥ इहां विद्वान्। इसतैं ऊपर अथशब्द संबन्धकूं पाव-

त्युभौ स गायति । सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताꣳश्चाऽऽप्नोति देवकामाꣳश्च ॥ ७ ॥

क्षुष अरु आदित्य)कूं गायन करैहै । सो उसी(आदित्यरूप)सैंहीं सो यह औ जे उसतैं पराक् लोक हैं तिनकूं औ देवनके कामोंकूं पावताहै ॥ ७ ॥

ऐसैं विद्वान् हुया अनंतर सामकूं गायन करैहै । सो चाक्षुष औ आदित्य दोनूंकूं गायन करैहै ॥ ॥ तिस ऐसैं जाननेवालेकूं फल कहियेहैः सो आदित्यके अंतर्गत पुरुष रूप होयके उसींहीं आदित्यरूपसैं [421]सो यह औ जे उसतैं पराक् (ऊर्ध्व) लोक हैं। तिनकूं पावताहै । [[422]आदित्यके अन्तर्गत जो

ताहै औ सो उस (सूर्य)रूप करिहीं लोकनकूं औ कामोंकूं पावताहै । ऐसैं संबन्ध है ॥

४२१ प्राप्तिके प्रकारकूं विवरण करैहैं ॥

४२२ उपास्यकीन्यांई उपासककूंबी निरतिशय ऐश्वर्य क-

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लो-
कास्ताꣳश्चाऽऽप्नोति मनुष्यकामाꣳश्च ।
तस्माद्दु हैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ॥ ८ ॥
कं ते काममागायानीत्येष ह्येव का-

अर्थः—तैसैं इसी (चाक्षुष पुरुषरूप) करिहीं औ जे इसतैं अवार्क् लोक हैं तिनकूं औ मनुष्यनके कामोंकूं पावताहै । तातैंहीं ऐसैं जाननेवाला उद्गाता [यजमानकूं] कहै:— ॥ ८ ॥

अर्थः—"किस तेरे कामकूं आगानकरूं"

देव है तिसरूप होयके यह अर्थ है] औ देवनके कामोंकूं पावता है ॥ ७ ॥

टीकाः—तब चाक्षुष पुरुषरूप होयके इसीं

हातैं होवैगा । जातैं दोनूंकूं निरङ्कुश ऐश्वर्य युक्त नहीं है ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां उसींहीं आदित्यकरि । ऐसैं उक्त जो अर्थ सोई इहां स्पष्ट किया है औ अष्टम कंडिकाके आरम्भमैं जो अथ शब्द है । सो तथाका पर्याय है औ चाक्षुष होयके तिसींहीं चाक्षुषकरिहीं । ऐसैं सम्बन्ध है ॥

मागानस्येष्टे । य एवं विद्वान्साम गायति । साम गायति ॥ ९ ॥

इति प्रथमप्रपाठकस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

ऐसैं ॥ यह जातैंहीं कामके आगानका ईशिता है जो ऐसैं विद्वान् हुया सामकूं गायन करैहै । सामकूं गायन करैहै ॥ ९ ॥

इति श्री०मूलभाषा०प्रथमप्रपा० सप्तमः खंडः ७

हीं चाक्षुष रूपसैं हीं औ जे इसतैं अर्वाक् (नीचे) लोक हैं तिनकूं औ मनुष्यनके कामोंकूं पावताहै (चाक्षुषरूप होयके । यह अर्थ है) ॥ [423]तातैंहीं ऐसैं जाननेवाला उद्गाता यजमानके प्रति कहैः—"इस तेरे इष्टकामकूं मैं गायन करूं" ऐसैं । [424]यैंहैं जातैं उद्गाता कामके आगानकरि कहिये उद्गानकरि कामके संपादन करनेकूं ईशिता (समर्थ) है । यह अर्थ है ॥ ॥ [425]कौंन यह है किः—जो ऐसैं विद्वान् हुया

---

४२३ उक्त फलके यजमान सम्बन्धिपनैंकूं दिखावैहैं ॥
४२४ तत् (तातैं) शब्दके अर्थकूंहीं कथन करैहैं ॥
४२५ उद्गाताकूं विशेषण देते हैं ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्याष्टमः खंडः ॥८॥

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः

अथ श्री०मूलमात्रभाषा०प्रथमपाठकस्याष्टमः खण्डः ८

अर्थः—तीनहीं उद्गीथविषै कुशल होते

सामकूं गायन करै है। सामकूं गायन करैहै। इहां दोवीर[426] कथन उपासनाकी समाप्ति अर्थ है ॥ ८ ॥ ९ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०प्रथमप्रपाठकस्य सप्तमःखण्डः ॥ ७ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०प्रथमप्रपाठकस्याष्टमःखण्डः॥८॥

शिलक दाल्भ्य जैवलि संवादपूर्वक सामसैं स्वर्ग
औ स्वर्गसैं इस लोकपर्यंत गतिके कथनकरि
परोवरीयगुणकपरमात्मदृष्टिसैं तत्फ-
लके उद्गीथोपासन ॥ ८ ॥

टीकाः—अक्षरकूं[427] अनेक प्रकारसैं उपास्य

---

४२६ उद्गीथविषै परब्रह्मका सम्पादन करनेयोग्य उपासन विभागकरिके कहा। ताकूं उपसंहार करैहैं ॥

इति श्रीप्रथमप्रपाठकगतसप्तमखण्डस्याटिप्पणम् ॥ ७ ॥

अथ श्रीप्रथमप्रपाठकगताष्टमखण्डस्यटिप्पणम्॥८॥

४२७ अध्यात्म अरु अधिदैवतरूप स्थानके भेदकरि अव-

शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्र-

भये ॥ शालावत्य शिलक । चैकितायन दाल्भ्य औ जैवलि प्रवाहण [ऐसैं ये ती-

होनेतैं प्रकारान्तरकरि परोवरीयस्त्व गु-णरूप फलवाले उपासनकूं आम्नाय (वेद) ल्पावता भया । इहां इतिहासितो[428] सुखसैं अ-बोधनअर्थ है । तीन कहिये तीनसंख्यावाले [ह (प्रसिद्ध) ऐसा अक्षर ऐतिह्य (परम्परा प्रमाण)रूपअर्थवाला है] ॥ तीन उद्गीथ-विषै (उद्गीथके ज्ञानके प्रति) कुशल (नि-

च्छिन्न परमात्माकी दृष्टिकरि उद्गीथका उपासन अखिलपापोंके नाशरूप फलवाला कहा । अब स्थानभेदके अवच्छेदकूं छोडिके परोवरीयान् भावरूप गुणवाले परमात्माकी दृष्टिकरि परोवरीयान्भावकी प्राप्तिरूप फलवाले उद्गीथके उपासनकूं आम्नाय (वेद) आनयन करता भया । इस प्रकरणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

४२८ ननु तब विवक्षित उपासनहीं कहनेकूं योग्य है । आख्यायिकासैं क्या है ? यह आशङ्का करिके कहैहैं ॥ इहां इतिहास पूर्ववृत्त है । औ इतिहका जो भाव सो ऐतिह्य है औ मिलितनका । यह षष्ठी निर्धारणविषै है ॥

वाहणो जैवलिरिति ॥ ते होचुरुद्गीथे वै

न] ॥ वेई कहतेभये:-उद्गीथविषैहीं [हम]

पुण) होते भये। किसी बी देशविषै अरु काल-विषै वा निमित्तके होते इकट्ठे हुये पुरुषनकाहीं यह अभिप्राय है ॥ [429]जातैं सर्व जगत्विषै उद्गीथआदिकके विज्ञानविषै तीनकाहीं कौशल नहीं है। जातैं उषस्ति जानश्रुति अरु कैकेय आदिक सर्वज्ञकल्प सुनियेहैं ॥ ॥ कौंन वे तीन हैं? यह कहैहैं:-शिलावान्का अपत्य (पुत्र) शालावत्य ऐसा नामतैं शिलक औ चिकितायनका अपत्य चैकितायन ऐसा द-ल्भगोत्रवाला दाल्भ्य। वा इन दोनूंका अपत्य

---

४२९ ननु सर्व जगत्विषै तीनकाहीं उद्गीथआदिकके ज्ञानविषै कौशल है। ऐसैं क्यूं नहीं कहियेहै। तिनकेमध्य तीनकाहीं सो नैपुण्य है। ऐसैं क्यूं प्रतिज्ञा करिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां उस प्रसिद्धका अपत्य जो है सो आमुष्यायण कहियेहै औ दोनूंका जो आमुष्यायण सो द्यामुष्यायण (दोनूंका अपत्य) है। अर्थ यहजो:-तेरा औ मेरा यह है। ऐसैं संकेतकारि धर्मतैं परिग्रहण किया है ॥

कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथा वदाम इति ॥ १ ॥

कुशल हैं। जो संमति होवै तो उद्गीथविषै कथाकूं कहैं ऐसैं ॥ १ ॥

औ जीवलका अपत्य जैवलि ऐसा नामतैं प्रवाहण। ऐसैं ये तीन थे ॥ वे परस्पर कहते भयेः—उद्गीथविषैहीं [हम तीन] कुशल हैं कहिये निपुण ऐसैं प्रसिद्ध हैं ॥ यातैं जो तुह्मारी अनुमति होवै तो उद्गीथविषै कहिये उद्गीथके विज्ञानरूपनिमित्तवाली कथा (विचारणा)कूं पक्षप्रतिपक्षके उपन्यास(कहनेके आरंभ)करि कहैं। अर्थ यह जोः—वादकूं करैं ॥ ४३० तैसैं तिसकी विद्यावानोंके संवादके हुये विपरीत

---

४३० किसअर्थ वादका आरम्भ है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां वादके प्रवृत्तभये तिस विवक्षित अर्थविषै है विद्या जिनकूं वे तद्विद्य हैं। तिनके साथि संवादके हुये दृष्ट (प्रत्यक्ष) हीं फल है। यह अर्थ है। औ इतिशब्दका प्रयोजन इति (ऐसैं) इसके साथि सम्बन्ध है ॥

तथेति ह समुपविविशुः सह प्रवाहणो

अर्थः-तथाऽस्तु। ऐसेंहीं [कहिके] सम्यक् बैठतेभये॥ ॥ सोई प्रवाहण जै-

---

ग्रहणका नाश। अपूर्वविज्ञानकी उत्पत्ति औ संशयकी निवृत्ति होवैहै ऐसें है। याँतें[431] तिसकी विद्यावानोंका संयोग कर्तव्य है। यह इतिहासका प्रयोजन है। जाँतें[432] शिलकआदिकनकूं देखियेहै ॥ १ ॥

टीकाः-तथाऽस्तु ऐसें कहिके वे सम्यक् बैठते भये। तहां [संवादके निर्धारणके हुये] राजाकी प्रगल्भताके सम्भवतें सो प्रसिद्ध प्रवाहण जैवलि[राजा] इतर दोनूंके प्रति

---

४३१ वादके आरम्भकी दृष्टफलताके हुये फलितकूं कहैहैं॥ इहां इतिहास तो सुखसैं अवबोधन अर्थ है। ऐसैं पूर्व उक्तके साथि मिलावनेके अर्थ चकार है॥

४३२ यथोक्तफल दृष्ट कैसैं है? यह आशङ्काकरिके कहैहैं॥ इहां शिलकआदिकनकूं तद्विद्यके संयोगके हुये विपरीत बुद्धिका ध्वंसआदिक फल। यह शेष है औ तहां यह निर्धारणअर्थ सप्तमी है॥

जैवलिरुवाच ॥ भगवन्तावग्रे वदतां । ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचꣳश्रोष्यामीति ॥२॥

वलि [राजा] कहताभया ॥ जैवलिरुवाचः– भगवान् (आप दो) आगे कथन करो । कहनेवाले दो ब्राह्मणोंकी वाक्कूं [मैं] श्रवण करूंगा ! ऐसैं ॥ २ ॥

कहताभया ॥ जैवलिरुवाचः–भगवान् [पूजावान्] आप दो आगे [पूर्व] कथन करो । [इहां "दो [४३३] ब्राह्मणनके" इसलिंगतैं । राजा यह है । ऐसैं जानियेहै] तुमदो ब्राह्मणरूप वादकरनेवालेकी वाक् (वाणी)कूं मैं सुनूंगा । [४३४] अर्थरहित वाक्कूं सुनूंगा ऐसैं "वाक्" इस विशेषणतैं अपर कहतेहैं ॥ २ ॥

---

४३३ ननु राजाकी प्रगल्भताके सम्भवतैं । यह जो कहा । सो अयुक्त है । काहेतैं ताके राजापनैंविषै हेतुके अभावतैं ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥

४३४ विशेषणके सामर्थ्यतैं पक्षान्तरकूं उठायके अङ्गीकार करैहैं ॥ इहां राजाकरि यथोक्त प्रकारसैं उक्त दो ब्रा-

स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच ॥ हन्तत्वा पृच्छानीति ॥ पृच्छेति होवाच ॥ ३ ॥

अर्थः–सोई शिलक शालावत्य । चैकितायन दाल्भ्यकूं कहताभया ॥ शिलक उवाचः–जो सम्मति देताहै तो तुजकूं पूंछताहूं ! ऐसें ॥ ॥ [दाल्भ्य] "पूंछ" ऐसेंहीं कहता भया ॥ ३ ॥

टीकाः–उक्त दोनूंके मध्य सो प्रसिद्ध शिलक शालावत्य । चैकितायन दाल्भ्यके प्रति कहताभया। शिलक उवाचः–जो अनुमति देताहै तो तुजकूं पूंछताहूं ॥ ऐसें उक्त इतर [दाल्भ्य] " पूंछ " ऐसेंहीं कहता भया ॥ ३ ॥

ह्मणोंकेमध्य शालावत्य दाल्भ्यके प्रति कहता भया । ऐसें सम्बन्ध है औ सामकी गति है । ऐसें अन्वय है ॥

का साम्नो गतिरिति? स्वर इति हो-
वाच ॥ स्वरस्य का गतिरिति? प्राण

अर्थः—शिलक उवाचः—कौंन सामकी ग-
ति है? ऐसें ॥ ॥ "स्वर है" ऐसेंहीं
कहताभया ॥ ॥ शिलक उवाचः—स्वरकी
कौंन गति है? ऐसें ॥ ॥"प्राण है" ऐसें

टीकाः—प्राप्त भई है अनुमति (संमति)
जिसकूं ऐसा हुया शिलक कहैहै ॥ शिलक उ-
वाचः—कौंन प्रकृत[४३५] होनेतैं उद्गीथरूप साम-
की गति है? उद्गीथ[४३६] जातैं इहां उपास्य होनें
करि प्रकृत है औ "परोवरीयान्रूप उद्गीथकूं
ऐसें आगे यह श्रुति कहैगी ॥ गति कहिये
आश्रय[४३७] परायण[४३८]। यह अर्थ है॥ ऐसें पूंछ्या हुया

---

४३५ सामशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

४३६ ता (उद्गीथ)के पूर्व उत्तरग्रन्थविषै प्रकृतपनैकूं प्रकट करैहैं ॥

४३७ गति शब्दके क्रियारूप विषय (अर्थ)वान्‌ताकूं निषेध करैहैं ॥

४३८ औपचारिक (गौण) आश्रयकूं निरसन करैहैं ॥

इति होवाच ॥ प्राणस्य का गतिरित्य-
कहताभया ॥ ॥ शिलक उवाचः—प्रा-
णकी कौंन गति है? ऐसैं ॥ ॥ "अन्न है"
ऐसैंहीं कहताभया ॥ ॥ शिलक उवाचः—
दाल्भ्य कहैहै ॥ दाल्भ्य उवाचः—" स्वर है
ऐसैं ॥ [४३९]सामकूं स्वरस्वरूप होनेतैं । जो जिसै[४४०]का
स्वरूप है सो ताकी गति औ ताका आश्रय
होवैहै । यह युक्त है । मृत्तिकारूप आश्रयवाले
घटादिककीन्यांई ॥ ॥ शिलक उवाचः—
स्वरकी कौंन गति है? ऐसैं पूंछया हुया दाल्भ्य
"प्राण है" ऐसैंहीं कहता भया । प्राणतैं
उत्पाद्य जातैं स्वर है तातैं स्वरका प्राण गति
है ॥ ॥ शिलक उवाचः—प्राणकी कौंन

४३९ ननु स्वर जो है सो ध्वनिका भेद है । सो उद्गी-थकी गतिरूप कैसैं होवैगा? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ता सामका प्रकाशक होनेकरि ताका आश्रय होनैसैं ताके साथि तादात्म्यतैं स्वर ताकी गति होवैहै ॥

४४० सामकूं स्वररूपताके हुयेबी तिस (स्वर)की गति रूपवान्पना कैसैं है? यह आशङ्काकरिके । दृष्टान्तकरि परिहार करैहैं ॥

न्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच ॥ ४ ॥

अन्नकी कौंन गति है? ऐसें ॥ ॥ "आप-(जल) हैं" ऐसेंहीं कहताभया ॥ ४ ॥

गति है? ऐसें पूंछया हुया दाल्भ्यः–"अन्न है" ऐसेंहीं कहता भया। अन्नरूप आश्रयवाला जातें प्राण है "[४४१]अन्नतें विना प्राण सूकताहीं है" इसीहीं श्रुतितें औ "अन्न दाम है" इस श्रुतिवचनतें [तातें प्राणका अन्न गति है] ॥ ॥ शिलक उवाचः–अन्नकी कौंन गति है? ऐसें पूंछया हुया दाल्भ्यः–"आप (जल) हैं" ऐसेंहीं कहता भया। अन्नकूं जलतें सम्भव-वाला होनेतें ॥ ४ ॥

---

४४१ प्राणकी अन्नरूप आश्रयवान्‌ताविषै वाजसनेय (बृहदारण्यक) श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां "वत्सस्थानीयप्राणका अन्नरूपदाम बन्धन है" यह बी श्रुति है। यह अर्थ है औ "वे (आप) अन्नकूं सृजतीभई" इस श्रुतितें अन्नकी जलतें सम्भववान्‌ता देखनेकूं योग्य है ॥

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति ? न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच ॥

अर्थः-शिलक उवाचः-आपकी कौंन गति है? ऐसैं ॥ ॥ "वह (स्वर्ग) लोक है" ऐसैंहीं कहताभया ॥ ॥ शिलक उवाचः-उस लोककी कौंन गति है ? ऐसैं ॥ ॥

टीकाः-शिलक उवाचः-जलोंकी कौंन गति है ? ऐसैं पूंछया हुया दाल्भ्यः-"वह लोक है" ऐसैंहीं कहता भया । [४४२]उस (स्वर्ग) लोकतैं वृष्टि सम्भवै है ॥ ॥ शिलक उवाचः-उस लोककी कौंन गति है ? ऐसैं पूंछया हुया दाल्भ्य कहैहै ॥ दाल्भ्य उवाचः-कोई बी स्वर्गरूप उस लोककूं अतिक्रमण करिके अन्य आश्रयके प्रति सामकूं नहीं ले

---

४४२ आप (जल) का वह (स्वर्ग) लोक गति कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां पूंछया हुया दाल्भ्य कहता भया । ऐसैं सम्बन्ध है ॥

स्वर्गं वयं लोकꣳसामाभिसंस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳहि सामेति ॥ ५ ॥

"स्वर्ग लोककूं" अति क्रमणकरिके [सामकूं] नहीं लेजावै । यातैंहीं हम स्वर्ग लोकके प्रति सामकूं स्थापन करै हैं । स्वर्गसंस्ताव जातें साम है ऐसें कहताभया ॥५॥

जाताहै। ऐसैंहीं [443]कहैहै। [444]यातैं हम बी स्वर्गलोकके प्रति सामकूं चारिओरतैं संस्थापन करैहैं। अर्थ यह जोः–[445]स्वर्ग लोकरूप प्रतिष्ठावाला सामकूं जानतेहैं ॥ स्वर्गसंस्ताव कहिये स्वर्गभावकरि संस्तवन (संस्ताव) है जिसका

---

४४३ तहां छन्द (वेद)विषै कालके नियमके अभावकूं अभिप्रेत करिके क्रियापदकूं व्याख्यान करैहै ॥

४४४ यद्यपि पर (अन्य)। सामके अन्यआश्रयकूं नहीं पावताहै (जानताहै) तथापि तुजकरि सो (अन्य आश्रय) कहनेकूं योग्यहीं है ? यह आशङ्काकरिके कहैहै ॥

४४५ अतः (यातैं) शब्दके अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां तातैं स्वर्गलोकरूप प्रतिष्ठावाला सामकूं। ऐसैं पूर्वसैं सम्बन्ध है ॥

तꣳह शिलकः शालावत्यश्चैकिता-

अर्थः-तिसीँहीँ चैकितायनदाल्भ्यकेप्र-

ऐसा सो साम स्वर्गसंस्ताव जातैं है "स्वर्ग[४४६] रूपहीं लोक सामवेद है" यह श्रुति है ॥ ५ ॥

टीकाः-तिसचैकितायन दाल्भ्यके प्रति इतर शिलक शालावत्य कहताभया ॥ शिलक उवाचः-न्याय अरु आगमकरि अप्रतिष्ठित (असंस्थित) कहिये परोवरीयान् भावकरि असमाप्तगतिवाला हे दाल्भ्य[४४७] ! तेरा साम है। यह अर्थ है ॥ इहां "वै" ऐसैं आगमकूं स्मरण करावैहै औ "किल[४४८]" ऐसैं न्यायकूं सूचन करैहै ॥

---

४४६ स्वर्गसंस्ताव साम है। इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां उपदेशका परंपरापना आगम है ॥

४४७ जो क्रियासाध्य है सो अनित्य है। ऐसैं स्वर्गकूं अन्तवाला होनेतैं परायणपना नहीं संभवै है। इस आशयकरि कहैहै ॥ इहां "किल" ऐसा अव्यय। उक्त न्यायकूं सूचन करैहै। यह शेष है ॥

४४८ न्याय अरु आगमकरि अप्रतिष्ठित तेरा साम है। ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

यनं दाल्भ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते

ति शिलक शालावत्य कहताभया ॥ शि-
लक उवाचः—हे दाल्भ्य ! न्याय अरु आ-

[४४९]जो तो असहिष्णु (नहीं सहन करनेवाला)
हुया कोई बी सामका वेत्ता इस कालविषै [४५०]अप्रति-
ष्ठित सामकूं "प्रातिष्ठित है" ऐसैं विपरीत ज्ञा-
नवालेके प्रति कहै किः—[४५१]ऐसैं वादविषै अपरा-
धीकेतांई "मूर्धा (शिर) तेरा विस्पष्ट पतन
होवैगा" [४५२]ऐसैं । उक्त तुज अपराधीका तैसैंहीं

---

४४९ स्वर्गविषै प्रतिष्ठित साम है । इस ज्ञानविषै दोषकूं दिखावै है ॥ इहां असहिष्णु । याका मिथ्या वचनकूं असहमान हुया । यह अर्थ है औ इसकालविषै । याका मिथ्यावचनकी अवस्थाविषै । यह अर्थ है औ विपरीत है विज्ञान जिसकूं सो विपरीतविज्ञान है ताकेप्रति । ऐसैं विग्रह है ॥

४५० तिसींहीं विपरीतज्ञानकूं आकारकरि दिखावै हैं ॥ इहां अप्रतिष्ठित सामकेप्रति "प्रतिष्ठित है" ऐसै विपरीतज्ञानवालेकेप्रति कोइक कहै । ऐसैं संबन्ध है ॥

४५१ ताहीके वचनकूंहीं दिखावै हैं ॥

४५२ सो तैसैं कथन करहु । तिसकरि मेरेकूं तो क्या

दाल्भ्य ! साम ॥ यस्त्वेतर्हि ब्रूया-

गमकरि अप्रतिष्ठित तेरा साम है ॥ जो

सो (शिर) विस्पष्ट पतन होवै । संशय नहीं है । [४५३]परन्तु मैं नहीं कहताहूं । यह अभिप्राय है ॥ ॥ [४५४]ननु मूर्धापातके योग्य अपराधकूं जब करताभया । यातें परकरि अनुक्तका बी मूर्धा पडैगा । जब अपराधी न होवै तब उसका बी मूर्धा नहीं पडताहै । [४५५]अन्यथा अकृताभ्यागम औ [४५६]कृतनाशरूप दो दोष होवैंगे? [४५७]यहँ दोष

होवैगा ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां तैसैंहीं । याका विद्वानके शापरूप वाक्यके अनुसारकरि । यह अर्थ है औ "सो" ऐसैं शिरकी उक्ति है ॥

४५३ शापदानके अर्थ यह (शिलक) तो प्रवर्त भया?। इस शंकाकूं निवारते हैं ॥

४५४ मूर्धपातके कथनके आरम्भकी व्यर्थताकूं पूर्ववादी आशंका करैहै ॥

४५५ अपराधके अभाव हुयेबी परोक्तिके वशतैं मूर्धपात-विषै पूर्ववादी दोषकूं कहैहै ॥

४५६ औ अपराधके होते परोक्तिके राहित्यतैं मूर्धपातके अभावविषै पूर्ववादी दोषकूं कथन करैहै ॥

४५७ मूर्धपातके हेतु अपराधकूंबी वचनरूप सहकारीकी

न्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते वि-
पतेदिति ॥ ६ ॥

[कोइक] तो इसकालविषै कहैः—मूर्धा तेरा विस्पष्ट पडैगा ऐसैं । [तौ] मूर्धा तेरा विस्पष्ट पतन होवै ऐसैं ॥ ६ ॥

नहीं हैः—काहेतैं किये शुभाशुभ कर्मके फलकी प्राप्तिकूं देश कालरूप निमित्तकी अपेक्षावाली होनेतैं । तैंहीं ऐसैं हुये मूर्धापातके निमित्तरूप अज्ञानकूं बी पर (अन्य)के वचनरूप निमित्तकी अपेक्षावान्पना है ऐसैं ॥ ६ ॥

अपेक्षावाला होनेतैं शापका वचन व्यर्थ नहीं है। ऐसैं सिद्धान्ती उत्तरकूं कहैहैं ॥

४५८ शुभादि आचरितरूप कर्मकूं निमित्तकी अपेक्षाकरि फलहेतुताके हुयेबी प्रकृत अपराधिविषै वचनकी अपेक्षा काहेतैं है ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां "तहां" याका शुभादिक कर्मकेहीं निमित्तकी अपेक्षाकरि फलप्रद हुये । यह अर्थ है । ऐसैं परका वचन अर्थवाला है । यह शेष है ॥

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति ? वि-
द्धीति होवाचामुष्य लोकस्य का गति-

अर्थः—दाल्भ्य उवाचः—अब मैं इसकूं भगवान् (आप)तें जानूं ? ऐसें ॥ [शालावत्य] जान ऐसेंहीं कहताभया ॥ ॥दा-

---

टीकाः—ऐसें[459] उक्त हुया दाल्भ्य कहैहै ॥ दाल्भ्य उवाचः—अब मैं भगवान् (आप) तें इस (जिसविषै प्रतिष्ठावाला साम है तिस)कूं जानूं ? ऐसें उक्त हुया शालावत्य। "जान" ऐसें कहताभया ॥ ॥ दाल्भ्य उवाचः—उस (स्वर्ग) लोककी कौंन गति है ? ऐसें दाल्भ्यकरि पूंछ्याहुया शालावत्यः—"यह[460] लोक है" ऐसें कहताभया। जातें यह लोक याग दान

---

४५९ "हन्त (अब)" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

४६० उस लोककूं इस लोकरूप प्रतिष्ठा (गति)वान्पना कैसें है ? सो कहैहैं ॥ इहां आदिशब्द श्राद्धआदिकके संग्रहअर्थ है ॥

रित्ययं लोक इति होवाचास्य लो-
कस्य का गतिरिति? न प्रतिष्ठां लो-

ल्भ्य उवाचः—उस (स्वर्ग) लोककी कौंन गति है? ऐसें॥ ॥ यह लोक है। ऐसैंहीं कहताभया॥ ॥ दाल्भ्य उवाचः—इस लोककी कौंन गति है? ऐसें॥ ॥ प्र-

---

होम आदिककरि उस लोककूं पोषण करैहै।
[४६१] "याहीतैं प्रदानकप्रति देव उपजीवनकूं करैहैं" ऐसी प्रसिद्ध श्रुतियां हैं। [४६२] प्रत्यक्ष जातैं सर्व भूतनकी धरणी प्रतिष्ठा (आधार) है ऐसें है। [४६३] यातैं सामका बी यह लोक प्रति-

---

४६१ तिसविषैहीं श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—इस लोकतैं प्रदीयमान चरु पुरोडाश आदिकके तांई अग्निद्वारा देव उपजीवन करैहैं। ऐसी श्रुतिकी प्रसिद्धि है॥

४६२ ननु परलोकके प्रति इसलोकका प्रतिष्ठापना होहु। तथापि यह लोक सामकी प्रतिष्ठा कैसें है? यह आशङ्काकरिके कहैहैं॥

४६३ पृथिवीके सर्व भूतनके प्रति प्रतिष्ठापनैके हुये फलितकूं कहैहैं॥ इहां सामकेवी सर्वान्तरभावतैं। यह अर्थ है॥

कमतिनयेदिति होवाच ॥ प्रतिष्ठां वयं

तिष्ठारूप लोककूं अतिक्रमणकरिके [सा-
मकूं] नहीं लेजावैं। यातैंहीं हम प्रतिष्ठा-
रूप लोककेप्रति सामकूं स्थापन करैंहैं।

ष्ठाहीं है। यह युक्त है॥ ॥ दाल्भ्य उ-
वाचः—इस लोककी कौंन गति है? ऐसैं
उक्त हुया शालावत्य कहैहै॥ शालावत्य उ-
वाचः—प्रतिष्ठारूप इस लोककूं अतिक्रमण
करिके कोई बी सामकूं नहीं ले जाता है।
[४६४]यातैं हम प्रतिष्ठारूप लोकके तांई सा-
मकूं चारिओरतैं संस्थापन करैंहैं। जातैं
प्रतिष्ठासंस्ताव। अर्थ यह जोः—प्रतिष्ठाभाव-
करि संस्तुत साम जातैं है। औ "[४६५]यैंहैं (पृ-

---

४६४ तथापि तुजकरि अन्य प्रतिष्ठा कहनेकूं योग्य है? यह आशङ्काकरिके कहैहै॥ इहां जातैं इसलोकरूप प्रतिष्ठावान् होनेकरि सम्यक् स्तुत साम है। तातैं इस सामकेप्रति इसीहीं लोककूं प्रतिष्ठा हम जानते हैं। ऐसैं योजना है॥

४६५ प्रतिष्ठापनैंकरि सामपनैंके अविशेषतैं पृथिवीकरि

लोकꣳसामाभिसꣳस्थापयामः प्रतिष्ठासꣳस्तावꣳहि सामेति ॥ ७ ॥

तꣳह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै

प्रतिष्ठासंस्ताव जातैं साम है। ऐसैं कहताभया ॥ ७ ॥

अर्थः–ताहीकूं प्रवाहण जैवलि कहताभयाः–जैवलिरुवाचः–हे शालावत्य! न्याय

थिवी)हीं रथन्तर (सामविशेष) है" यह श्रुति है ॥ ७ ॥

टीकाः–तिस ऐसैं कहनेवालेके प्रतिहीं प्रवाहण जैवलि [राजा] कहताभया॥जैवलिरुवाचः–हे शालावत्य! न्याय अरु आगमकरि अन्तवाला तेरा साम है। इत्यादि पू-

---

साम कैसैं संस्तुत है? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः– यहहीं। ऐसैं रथन्तर शब्दके वाच्य सामविशेषकूं पृथिवीभावकरि स्तुत होनेतैं उद्गीथकीबी सामभावके अविशेषतैं पृथिवीस्वरूपता संभवै है "अब मैं यह" इसवाक्यविषै अनन्त साम "यह है" ऐसैं कहिये है ॥

इति श्री॰ प्रथमप्रपाठकगताष्टमखण्डस्य टिप्पणम् ॥ ८ ॥

किल ते शालावत्य ! साम ॥ यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति मूर्द्धा ते विपतेदिति ॥ हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति ? विद्धीति होवाच ॥ ८ ॥

इति प्रथमप्रपाठकस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अरु आगमकरि अन्तवाला तेरा साम है। जो [कोईक] तो अबी कहैः—मूर्धा तेरा विस्पष्ट पडैगा ऐसैं [तौ] मूर्धा तेरा विस्पष्ट पतन होवै ऐसैं [कहताभया] ॥ ॥ शिलक उवाचः—अब मैं इसकूं भगवान् (आप)तैं जानूं ? ऐसैं ॥ ॥ [तब जैवलिः—] "जान" ऐसैंहीं कहताभया ॥ ८ ॥

इति श्री०मूल०भाषा०प्रथमप्र०अष्टमःखण्डः ८

वैकी न्यांई है ॥ ॥ तदनन्तर शालावत्य कहैहै ॥ शालावत्य उवाचः—अब मैं इस अनन्तसाम)कूं भगवान् (आप)तैं जानूं ? ऐसैं

अथ प्रथमप्रपाठकस्य नवमः खंडः ॥९॥
अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश

अथ श्री॰मूलभाषा॰प्रथमप्रपा॰ नवमः खंडः ॥ ९ ॥

अर्थः—शिलक उवाचः—इस लोककी कौंन गति है? ऐसैं॥ ॥"आकाश है"

पूंछता भया ॥ तब जैवलिः—"जान" ऐसैहीं कहताभया ॥ तब इतर (शालावत्य) अनुज्ञात (आज्ञाकूं प्राप्त) हुया कहैहै ॥ ८ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰प्रथमप्रपा॰अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ॰श्री॰भाष्यभाषा॰प्रथमप्रपा॰ नवमः खण्डः ॥९॥

इस लोककी गति (आकाश) औ फलके कथनकरि परोवरीयगुणकपरमात्मदृष्टिसैं तत्फलक उद्गीथोपासन ४

टीकाः—शालावत्य उवाचः—इस लोककी कौंन गति है? ऐसैं [पूंछ्या हुयाः—] "आ[४६६]-

---

अथ श्री॰ प्रथमप्रपाठकगतनवमख॰ टिप्प॰ ॥९॥

४६६ आकाशशब्दकी भूताकाशरूप विषय(अर्थ)वान्-

इति होवाच ॥ सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आ-

---

ऐसैंहीं [प्रवाहण जैवलि] कहताभया ॥ सर्वहीं ये भूत आकाशतैंहीं सम्यक् उपजतेहैं। आकाशकेप्रति अस्तकूं पावतेहैं ।

काश है" ऐसैंहीं प्रवाहण कहताभया ॥ औ इहां "आकाश" ऐसैं पर आत्मा कहियेहै। काहेतैं "आकाश प्रसिद्ध [परमात्मा]का नाम है" इस श्रुतितैं। ताहींका[467] कर्म सर्व भूतनका उत्पादकपना है औ तिसविषैहीं[468] जातैं भूतनका

ताकूं निषेध करिके परमात्मारूप विषयवान्ताकूं वाक्यशेषके वशतैं दिखावैहैं ॥

४६७ किंवाः—परमात्माका सर्व भूतनका उत्पादकपना कर्म है। यह वेदांतकी मर्य्यादा है। सो (कर्म) इहां आकाशविषै सुन्या है। तैसैं हुये परमात्माहीं आकाशशब्द (आकाशशब्दका वाच्य) है। ऐसैं कहैहैं ॥

४६८ किंवाः—परमात्माविषैहीं भूतनका प्रलय होवैहै औ सो इहां (इसप्रसङ्गमैं) आकाशविषै सुन्या है। तातैं परमात्माहीं आकाश है। ऐसैं कहैहैं ॥

काशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम् ॥ १ ॥

जातैं आकाश हीं इनतैं ज्यायान् (बडा) है [यातैं] आकाश परायण है ॥ १ ॥

प्रलय होवैहै। जातैं "सो[४६९] (ब्रह्म) तेजकूं सृजताभया। तेज[४७०] परदेवताविषै" ऐसैं यह श्रुति आगे (षष्ठविषै) कहैगी ॥ [४७१]सर्वहीं ये स्थावर जंगमरूप भूत आकाशतैंहीं तेज जल अरु अन्नआदिकके क्रमसैं सम्यक् उवजतेहैं [४७२]सो-

---

४६९ सर्वका उत्पादकपना परमात्माका कर्म है। इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

४७० परमात्माविषैहीं भूतनका लय होवैहै। इस अर्थविषैबी प्रमाणकूं कहैहैं ॥

४७१ ननु परमात्माका सर्वोत्पादकपना कर्म होहू। तथापि तिसकरि आकाशकूं क्या आया? ऐसैं जो कहै। तहां कहैहैं ॥

४७२ ननु यह उत्पत्तिका क्रम कैसैं जानियेहै। अविशेष (अक्रम)सैंहीं तिससैं सर्वकी उत्पत्ति सुनी है? यह

स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषो-

अर्थः-[जातैं] सो यह परोवरीयान् उ-

मर्थ्यतैं। औ [४७३]आकाशके प्रति प्रलयकालविषै अस्तकूं पावतेहैं तिसींहीं विपरीत[४७४] क्रमसैं। [४७५]जातैं आकाशहीं इन सर्व भूतनतैं ज्यायान् (महत्तर) है। [४७६]यातैं सो सर्व भूतनका पर अयन ऐसा परायण है। अर्थ यह जोः-तीन कालविषै प्रतिष्ठा (आश्रय) है ॥ १ ॥

टीकाः-[४७७]जातैं पर पर वरीयः कहिये वरी-

आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां सामर्थ्यतैं। याका "आत्मातैं आकाश भया। सो तेजकूं स्रजता भया" इत्यादि श्रुतिके बलतैं। यह अर्थ है ॥

४७३ तथापि आकाशविषै सर्व भूतनका लय कैसैं होवैहै? तहां कहैहैं ॥

४७४ "विपर्य्ययकरि तो क्रम है। यातैं" इस न्याय (अधिकरण) करि कहैहैं ॥

४७५ आकाशकी परमात्मारूपताविषै अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥

४७६ परायणपनाबी तहांहीं (परमात्मभावविषैहीं) लिङ्ग हैं। ऐसैं कहैहैं ॥

४७७ "आकाशरूप है। तिस (परमात्मा)के लिङ्गतैं"

ऽनन्तः परोवरीयो हास्य भवति। परो-

द्गीथ है [यातैंहीं] सो यह अनन्त है ॥ जो इसकूं ऐसैं जानताहुया परोवरीयानूरूप

यस (अतिश्रेष्ठ) तैंबी यह वर है। औ पर ऐसा जो वरीयान् सो परोवरीयान् है। अर्थ यह जो:—ऐसा उद्गीथरूप पै[४७८]रमात्मा सिद्धभया। या[४७९]हीतैं सो यह अनन्त (अविद्यमान अन्त-

इस न्याय (अधिकरण)करि आकाशकी परमात्मरूपता कही। अब ताके उद्गीथविषै सम्पादित परोवरीयानूपनैंरूप गुणकूं उपदेश करैहैं ॥ इहां उत्तर उत्तर श्रेष्ठतैंबी श्रेष्ठ यह है। यह अर्थ है ॥

४७८ साममात्रका यह गुण कैसैं होवैगा ? यह आश-ङ्काकरिके कहैहैं ॥

४७९ आकाशकी परमात्मरूपताविषै अन्य लिङ्गकूं कहैहैं॥ इहां याहीतैं। याका परमात्मारूप सिद्ध होनेतैं ॥ यह अर्थ है औ आकाशहीं प्रकृत उद्गीथविषै सम्पादित अनन्त सुन्या है औ अनन्तता ब्रह्मतैं अन्य ठिकाने युक्त नहीं है। काहेतैं "सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म है"। इस श्रुतितैं । तातैं आकाश ब्रह्म है। यह अर्थ है ॥

वरीयसो ह लोकाञ्जयति। य एतदेवं विद्वान् परोवरीयाꣳसमुद्गीथमुपास्ते॥२॥

उद्गीथकूं उपासताहै परोवरीय हीं याका [जीवन] होवैहै औ परोवरीयान्‌रूप लोकनकूं जय करैहै ॥ २ ॥

वाला) है। तिसैं इसकूं परोवरीयान् परमात्मभूत अनन्त ऐसैं विद्वान हुया परोवरीयान् उद्गीथकूं उपासताहै। ताकूं यह फल कहैहैः— परोवरीयः कहिये पर पर वरीयः (विशिष्टतर) जीवनहीं इस विद्वानका होवैहै। यह दृष्ट फल है। औ अदृष्ट फलः—परोवरीयान् (उत्तर उत्तर विशिष्टतर) हीं ब्रह्म आकाशपर्य्यन्त लोकनकूं जय करैहै। जो इसकूं ऐसै जानताहुया उद्गीथकूं उपासताहै ॥ २ ॥

---

४८० अब आकाशशब्दित उद्गीथविषै सम्पादित परोवरीयान्‌पनैंरूप गुणविशिष्ट परमात्माकी उपासनाकूं विधान करैहैं ॥ इहां परंपरं (पर पर) याका उपरि उपरि (उत्तर उत्तर) यह अर्थ है। तातैं ऐसैं उपासन करै। यह भाव है ॥

तं हैतमतिधन्वा शौनक उदरशा-
ण्डिल्यायोक्त्वोवाच ॥ यावत्त एनं प्र-
जायामुद्गीथं वेदिष्यन्ते । परोवरीयो

अर्थः—तिस इसकूं अतिधन्वा शौनक उदर शाण्डिल्यके अर्थ कहिके कहताभयाः- यावत् तेरी प्रजाविषै इस उद्गीथकूं जानेंगे

टीकाः—किंवा[४८१]:—तिस इस उद्गीथकूं विद्वान् (जाननेवाला) नामतैं अतिधन्वा ऐसा शुनकका अपत्य शौनक। उदरशांडिल्य शिष्यकेअर्थ इस उद्गीथके दर्शनकूं कहिके कहताभयाः—यावत् तेरी प्रजाविषै। अर्थ यह जोः—प्रजाकी सन्ततिविषै। इस उद्गीथकूं तेरीसन्तति-

---

४८१ विधिशेष (विधिके उपकारक) अर्थवादकूं दिखावै हैं ॥ इहां किंच। याका इसतैंबी इहां विधि है। यह अर्थ है। औ तिनके अर्थ। याका तिसकी सन्ततिविषै जन्य जे यथोक्त उद्गीथविषै जाननेवाले हैं। तिनके अर्थ। यह अर्थ है ॥ औ तथा (तैसैं) । याका दृष्टविशिष्टतर जीवनकी न्यांई। यह अर्थ है औ अदृष्टविषैबी। ऐसा पदच्छेद है ॥

हैभ्यस्तावदस्मिँल्लोके जीवनं भवि-
ष्यति ॥ ३ ॥

तथाऽमुष्मिँल्लोके लोक इति ॥ स

तावत् इस लोकविषै इनतैं परोवरीयान् जी-
वन होवैगा ॥ ३ ॥

अर्थः—तैसैं उस लोकविषै लोक हो-
वैगा। ऐसैं [कहताभया] ॥ सो जो इ-

विषै जन्य (तेरेवंशज) जानेंगे। तावत्काल
इन प्रसिद्ध लौकिक जीवनोंतैं परोवरीयः क-
हिये उत्तरोत्तरविशिष्टतर जीवन। तिनके अर्थ
होवैगा ॥ ३ ॥

टीका:—तैसैं अदृष्टरूपबी उस परलोक-
विषै परोवरीयान् (उत्तर उत्तर श्रेष्ठतर)
लोक होवैगा। ऐसैं शांडिल्यके अर्थ अतिध-
न्वा शौनक कहताभया ॥ ॥ ४८२नु यह फल

---

४८२ "सो जो इसकूं" इत्यादि उत्तरवाक्यकूं शङ्का
अरु उत्तरवाला होनेकरि उठायके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां

य एतमेवं विद्वानुपास्ते परोवरीय एव हास्यास्मिँल्लोके जीवनं भवति। तथाऽमुष्मिँल्लोके लोक इति। लोके लोक इति ४

इति प्रथमप्रपाठकस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

सकूं ऐसैं जानताहुया उपासताहै। परोवरीयस्हीं इसका इस लोकविषै जीवन होवैहै। तैसैं उस लोकविषै लोक होवैहै ऐसैं। लोकविषै लोक होवैहै। ऐसैं [प्रवाहण जैवलि कहताभया] ॥ ४ ॥

इति श्री॰ मूलभाषा॰ प्रथमप्रपा॰ नवमः खंडः॥९॥

पूर्वके महाभाग्यनकूं हुवा होवैगा। इस युगविषै होनेवालेनकूं नहीं होवैगा ? इस आशङ्काकी निवृत्तिअर्थ कहैहैं:—सो जो कोईकबी इसकूं

इस युगविषै जे होवैहैं वे ऐदंयुगीन हैं। तिन ऐदंयुगीनकूं लोक परोवरीयान् [नहीं होवैहै] यह शेष है औ पुनरुक्ति जो है सो उद्गीथकी उपासनाकी समाप्तिरूप अर्थवाली है ॥

इति श्री॰ प्रथमप्रपाठकगत-नवमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ९ ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य दशमः खंडः १०

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जा-

अथ श्री॰मूलभाषा॰प्रथमप्रपा॰दशमः खंडः ॥ १० ॥

अर्थः—कुरूनके मटचीनकरि हतहुये

ऐसैं जानताहुया उद्गीथकूं इस कालविषै उपासताहै ताकूंबी ऐसैंहीं फल होवैहै ॥ क्याकिः—परोपरीयहीं याका इस लोकविषै जीवन होवैहै। तैसैं उसलोकविषै लोक होवैहै ऐसैं। लोकविषै लोक होवैहै ऐसैं ॥ ४ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰ प्रथमप्रपा॰ नवमः खंडः ॥ ९ ॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰प्रथमप्रपा॰ दशमः खंडः॥१०॥

दुर्भिक्षुकालमैं उषस्तिका देशांतरमैं गमन। हस्तिपतिके उच्छिष्टभोजनआदिकके प्रसंगपूर्वक राजयज्ञदर्शन औ ऋत्विकनसैं संवाद ११

टीकाः—उद्गीथ[४८३] उपासनके प्रसङ्गसैं प्रस्ताव

अथ श्री॰प्रथमप्रपाठकगत-दशमखण्डस्य टिप्पणं१०

४८३ अब उद्गीथरूप अक्षरके उपासनकूं अनेकप्रकारकरि

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥ १ ॥

मटची कहिये अशनि (वज्र) वा पाषाण की वृष्टिनकरि हते कुरुदेशनविषै आटिकी जायाकरि सहित उषस्तिहीं चाक्रायण। इभ्यके ग्रामविषै प्रद्राणक हुया वास करताभया ॥ १ ॥

प्रतिहारकूं विषयकरनेवालावी उपासन कर्तव्य है। यातैं यह खण्ड आरम्भकरियेहैः—४८४

उक्त होनेतैं आगे कहने योग्यके अनवशेषतैं प्रपाठक (इस अध्याय)की परिसमाप्ति हीं युक्त है ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां "इदं" शब्दकरि अन्यखण्ड ग्रहण करिये है ॥

४८४ प्रस्ताव आदिकका उपासन जब विवक्षित है तब सोई कहनेकूं योग्य है। इस कथासैं क्या है ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां मटची कहिये मर्दनके हेतु अशनि (इंद्रके वज्र) वा पाषाणकी वृष्टियां हैं। तिनकरि औ "तिसतैं" याका सस्य (धान्यवृक्ष)नके नाशतैं। यह अर्थ है औ सर्व ओरतैं स्वेच्छासैं संचारके हुयेबी व्यभिचारकी शङ्का नहीं है। ऐसैं दिखावनेकूं स्त्रीका "आटिकी" ऐसा विशेषण है औ "प्रद्राणक" पदका क्रियापदसैं सबन्ध है औ कुत्सितगतिकी प्राप्तिविषै हेतु "अन्नके अलाभतैं" यह है ॥

यिकातो सुखसैं अवबोधनअर्थ है ॥ ॥ कुरु-नके। अर्थ यह जोः—कुरुदेशके। सस्य (धान्यवृक्ष)नके। मटची जे अशनि (पाषाणकी वृष्टियां)। तिनकरि हत (नाशित) हुये। तिस (सस्यके नाश)तैं दुर्भिक्ष (दुष्काल)के हुये। आटिकी (नहीं भये पयोधरआदिक स्त्रीके चिन्ह जिसके ऐसी) जायाकरि सहित नामतैं उषस्ति ऐसा चक्रका अपत्य (पुत्र) चाक्रायणमुनि इभ जो हस्ती ताकूं योग्य होवै ऐसा इभ्य जो ईश्वर (राजा)। वा हस्तीविषै आरोहवाला। ताका जो ग्राम सो इभ्यग्राम है तिसविषै अन्नके अलाभतैं प्रद्राणक हुया कहिये "द्रा" धातु [४८५] कुत्सितगतिविषै है। यातैं कुत्सितगतिकूं गत। अर्थ यह जोः—अंत्य अवस्थाकूं प्राप्त हुया। किसीकेबी गृहकूं आश्रयकरिके वास करतभया ॥ १ ॥

४८५ प्रद्राणकशब्दके अर्थकूं धातुके उपन्यासद्वारा कथन करैहैं॥ इहां यदृच्छासैं। याका सहसा (विना विचार तत्काल) यह अर्थ है ॥

स हेभ्यं कुल्माषान् खादन्तं बि-

अर्थः—सोई कुल्माषोंकूं खातेहुये इभ्यके प्रति याञ्चना करताभया ॥ ताहीकूं [इभ्य] कहताभया॥ इभ्य उवाचः—इसतैं अन्य [कुल्माष] विद्यामान नहीं हैं औ जे जे मेरे

टीकाः—सो (उक्तमुनि) अन्नकेअर्थ अटन करता हुया कुल्माष (कुत्सितउडद)नकूं खानैं (भक्षणकरनैं)वाले इभ्यकेप्रति यदृच्छासैं (तत्काल) देखिके याञ्चाकरताभया ॥ तिस उषस्तिकूंहीं इभ्य कहताभयाः—ईसैं[४८६] मुजकरि भक्ष्यमाण उच्छिष्टकी राशितैं अन्य कुल्माष विद्यमान नहीं हैं। औ जे राशिविषै हैं वे

---

४८६ "इसतैं अन्य नहीं हैं" या वाक्यका ग्रहण है। ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यत् (जो) ऐसा अव्यय बहुवचनान्त है औ उपनिहित (समीपस्थित) कुल्माष हैं। यह शेष है औ तिनके मध्य प्रसिद्ध ये भाजन (भोजनपात्र) विषै राखे हैं। ऐसैं योजना है औ हन्त। याका कुल्माष जब भक्षण किये तब। यह अर्थ है ॥

भिक्षे ॥ तꣳ होवाच । नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति ॥ २ ॥

एतेषां मे देहीति होवाच ॥ तानस्मै

उपनिहित [समीपस्थित कुल्माष] हैं ये [भोजनपात्रविषै डाले] हैं। ऐसें [कहता-भया] ॥ २ ॥

अर्थः—इनोंमेंसें (इनकूं) मेरेअर्थ देदे। ऐसैंहीं [उषस्ति] कहताभया ॥ [इभ्य]

मेरे उपनिहित (समीपस्थित) कुल्माष हैं। वे ये भाजनविषै राखे हैं। मैं क्या करों! ऐसैं उक्तहुया उषस्ति प्रत्त्युर कैहहै ॥ २ ॥

टीकाः—उषस्ति इनोकेमध्य। अर्थ यह जोः— इन (पात्रविषै राखे हुये उडदन)कूं मेरेअर्थ दे दे? ऐसैंहीं कहताभया ॥ तिनकूं सो इभ्य इस उषास्तिकेअर्थ देताभया ॥ पीछे समीपस्थित उदकरूप अनुपानकूं जब कुल्माष भक्षित भये तब ग्रहण कर? ऐसैं इभ्यकरि उक्त-

प्रददौ ॥ हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतꣳ स्यादिति होवाच ॥ ३ ॥

न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति ॥ न वा

तिनकूं इसकेअर्थ देताभया । औ जब ऐसैं किया । तब अनुपान (उदक)कूं [ग्रहण कर]? ऐसैं [इभ्य कहताभया] ॥ ॥ तब उच्छिष्टहीं मेरा पीत होवैगा । ऐसैंहीं [उषस्ति] कहताभया ॥ ३ ॥

अर्थः–इभ्य उवाचः–ये (कुल्माष)बी

हुया उषस्ति प्रत्युत्तर कहैहै ॥ उषस्तिरुवाचः– उच्छिष्टहीं मेरा यह उदक पीत होवै जो पान करूं तो ॥ ३ ॥

टीकाः–ऐसैं कहनेवालेके प्रति इतर (इभ्य)। ४८७ प्रत्युर कहैहै ॥ इभ्य उवाचः–ये कुल्माषबी क्या उच्छिष्ट नहीं थे? ऐसैं उक्त हुया उषस्ति

---

४८७ क्या प्रत्युत्तर देताभया? यह आकांक्षापूर्वक कहैहैं ॥

अजीविष्यमिमा न खादन्निति होवाच॥ कामो म उदपानमिति ॥ ४ ॥

उच्छिष्ट क्या नहीं थे ? ऐसैं [इभ्यकरि उक्तहुया उषस्ति ॥] इनोंकूं न खाताहुया नहीं जीवूंगा । ऐसैंहीं कहताभया औ काम (इच्छातैं) मेरेकूं उदकपान [मिलता] है। ऐसैं [कहताभया] ॥ ४ ॥

कहैहै॥उषस्तिरुवाचः—इन कुल्माषोंकूं न भक्षणकरता हुया मैं नहीं जीवूंगा। ऐसैं कहताभया। औ [488]काम कहिये इच्छातैं [कूप आदिकद्वारा] मुजकूं उदकपान प्राप्त होवैहै । यह अर्थ है ॥ औ [489]यातैं इस अवस्थाकूं प्राप्त भये विद्या

---

४८८ ननु अनुपानके अभावके हुयेबी जीवनतैं रहितपना तुल्यहीं है ? यह आशङ्का करिके कहैहैं ॥

४८९ ऋषिके अन्यके उच्छिष्ट कुल्माषोंके भक्षणकूं कहनेवाली श्रुतिके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यातैं । याका चाक्रायण विद्वान्के अभक्ष्यके भक्षणके दर्शनतैं। यह अर्थ है औ इस अवस्थाकूं प्राप्तभयेकूं। याका जीवितके संदेहकेताईं प्राप्तभयेकूं। यह

धर्म अरु यशवाले स्वात्माके अरु परके उपकारविषै समर्थ हुये इसींबी कर्मकूं करनेवाले मुनिकूं अघ (पाप)का स्पर्श नहीं भया । यह अभिप्राय है ॥ [४९०]तांकूंबी जीवितके प्रति अनन्दित अन्यउपायके होते निन्दित यह कर्म दोषके अर्थ होवै । अभिप्राय यह है किः [४९१]ज्ञांनके अवलेप (अभिमान) करि करनेवालेकूं नरकपात होवैगाहीं । काहेतैं [४९२]प्रद्राणक शब्दके श्रवणतैं ॥ ४ ॥

अर्थ है औ विद्या धर्म अरु यशवालेकूं । याका ज्ञानआदिककरि कृत ख्यातिकेतांई प्राप्तभयेकूं । यह अर्थ है औ स्वात्माके उपकारविषै अरु परोपकारविषै सामर्थ्य जो है सो निग्रह अरु अनुग्रहकी शक्तिमान्पना है औ इस कर्मकूं । याका जीवनमात्रके कारण कुत्सित चेष्टितकूं । यह अर्थ है ॥

४९० उच्छिष्ट उदकपानके प्रतिषेधकी श्रुतिके अभिप्रायकूं कहैहैं ॥ इहां यह कर्म । ऐसैं अभक्ष्यके भक्षणकी उक्ति है ॥

४९१ ननु ज्ञानीकूं यथेष्टचेष्टा (यथेष्टाचरण) इहां अनुज्ञा करियेहै ? ऐसैं मति कहो । काहेतैं "औ सर्व पुरुषनकूं अनुमाति (अभक्ष्यके भक्षणकी संमति) नहीं है" इत्यादि न्याय (सूत्रविशेष)के विरोधतैं । ऐसैं कहैहैं ॥

४९२ तिस अभिप्रायविषै लिङ्गकूं दिखावैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—चाक्रायणविषै प्रद्राणक शब्दके प्रयोगतैं परम आ-

सह खादित्वाऽतिशेषान् जायाया आजहार । साऽग्र एव सुभिक्षा बभूव । तान् प्रतिगृह्य निदधौ ॥ ९ ॥

अर्थः—सोई खायके शेषरहेकूं जायाके-अर्थ देताभया । सो (जाया) आगेतैंहीं सुभिक्षा होतीभई [तथापि] तिनकूं ग्रहण करिके राखतीभई ॥ ९ ॥

टीकाः—औ तिनकूं सो खायके अवशेष रहेकूं जायाकेअर्थ करुणाभावतैं देताभया । सा आटिकी कुल्माषनकी प्राप्तितैं आगेहीं सुभिक्षा कहिये शोभनभिक्षावाली । अर्थ यह जोः—लब्ध अन्नवाली होतीभई । तथापि पतिकी आज्ञाके कारणरूप स्त्रीस्वभावतैं अवज्ञा

पतकूं प्राप्त हुया उच्छिष्ट कुल्माषनकूं भक्षण करताभया । ऐसैं भासताहै । तैसैं हुये ज्ञानीके यथेष्टाचारविषै प्रमाणके अभावतैं अरु अनेक प्रमाणोंके विरोधतैं यह (यथेष्टाचार) इहां विवक्षित नहीं है औ स्त्रीका स्वभाव पतिकी आज्ञाका करण है औ ताका कर्म कुल्माषनका परिरक्षण है ॥

स ह प्रातः सञ्जिहान उवाच ॥ यद्बताऽन्नस्य लभेमहि । लभेमहि धन-

अर्थः—सोई [मुनि] प्रातःकालविषै [निद्राकूं] परित्याग करताहुया जब खिद्यमान हुया तब कहताभया:—[जो] अन्नके [अल्पकूं] प्राप्त होवैं। [तो] धनकी

(अनादर) न करिके तिन कुल्माषनकूं पतिके हस्ततैं ग्रहणकरिके राखतीभई ॥ ५ ॥

टीकाः—सो उषस्ति ता (स्त्री)के कर्मकूं जानता हुया प्रातःकालविषै शयनकूं वा निद्राकूं परित्याग करता हुया खिद्यमान हुया पत्नीके सुनते हुये कहताभया:—जब अन्नके अल्पकूं प्राप्त होवैं तब । ता अन्नकूं भोजनकरिके समर्थ हुया जायके धनके अल्पकूं प्राप्त होवैं। तातैं हमारा जीवन होवैगा ऐसैं [कहताभया] ॥ औ धनके लाभविषै कारणकूं कहैहैः—राजा यह नातिदूर (समीप) स्थानविषै यजन क-

मात्रा॑ राजाऽसौ यक्ष्यते। स मा सर्वै-
रार्त्विज्यैर्वृणीतेति ॥ ६ ॥

मात्राकूं प्राप्त होवैं ॥ राजा यह यजन क-
रताहै। सो मुजकूं सर्व ऋत्विकनके कर्मौं-
करि वरैगा। ऐसैं [कहताभया] ॥ ६ ॥

रताहै । [इहां यजमान[४९३] होनेतैं ताका आत्म-
नेपद है] औ सो राजा[४९४] मुजकूं पात्र जानिके
सर्व ऋत्विजोंके कर्मौंकरि। अर्थ यह जोः-
ऋत्विजनके प्रयोजनअर्थ। वरैगा (वरण क-
रैगा) ऐसैं ॥ ६ ॥

---

४९३ ननु "यक्ष्यति" ऐसैं परस्मैपद काहेतैं नहीं कहा? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-राजाकूं यजमान (यज्ञका कर्ता) होनेतैं यागके फलकूं आत्मगामी होनेतैं "यक्ष्यते" ऐसैं आत्मनेपद प्रयोग किया है ॥

४९४ अन्योके उपद्रष्टापनैके संभवहुये तेरेकूंहीं राजा कैसैं मानेगा? यह आशङ्का करिके कहैहै ॥ इहां "हन्त" याका अन्नलेशका लाभ जब ऐसैं धनकी प्राप्तिद्वारा जीवनका हेतु है तब। यह अर्थ है औ राजाका यज्ञ "तहां" ऐसैं कहिये है ॥

तं जायोवाच ॥ हन्त पत इम एव कुल्माषा इति ॥ तान् खादित्वाऽमुं यज्ञं विततमेयाय ॥ ७ ॥

तत्रोद्गातॄनास्तावे स्तोष्यमाणानुपो-

अर्थः—ताकूं जाया कहतीभईः—हे पते! जब [ऐसैं है तब ग्रहण कर] येहीं कुल्माष हैं ॥ ॥ ऐसैं [कहा। तब] तिनकूं खायके इस वितत यज्ञके प्रति जाताभया ॥ ७ ॥

अर्थः—तहां आस्तावविषै स्तोष्यमाण

टीकाः—तिस ऐसैं कहनेवालेके प्रति जाया कहतीभईः—ग्रहण कर। हे पते! येई जे मेरे हस्तविषै तुह्मनैं रखेहुये कुल्माष हैं ॥ ऐसैं तिनकूं खायके इस राजाके वितत कहिये ऋत्विजोंकरि विस्तारित यज्ञके प्रति जाता भया ॥ ७ ॥

टीकाः—औ तहां जायके । आयके स्तुति

पविवेश । स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥
प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता ।

उद्गाताओंके प्रति समीप बैठताभया । सोई प्रस्तोताकूं कहताभया ॥ ८ ॥

अर्थः–उषस्तिरुवाचः–हे प्रस्तोतः !

करते हैं इस (संवादकेदेश)विषै सो आस्ताव है । तिस आस्तावविषै स्तोष्यमाण उद्गाता[४९५] पुरुषनके समीप बैठताभया ॥ बैठिके सोई प्रस्तोताकूं कहताभया ॥ ८ ॥

टीकाः–उषस्तिरुवाचः–हे प्रस्तोतः ! ऐसैं [४९६]अभिमुखी करणके अर्थ आमन्त्रण करिके । जो देवता प्रस्ताव (प्रस्तावरूप भक्ति)के

---

४९५ ननु उद्गाताकी एकताके हुये बहुवचन किसकारणतैं कहा ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां आस्ताव शब्दसैं स्तुति वा स्तुति करते हैं इसविषै । इस सप्तमीकरि संवादका देश (स्थान) कीर्तनकरियेहै ॥

४९६ आमंत्रण किसअर्थ है ? सो कहैहैं ॥ इहां विद्वान्के समीपविषै देवताकूं अविद्वान् हुया जब प्रस्तुत करैगा तब मूर्द्धा तेरा विस्पष्ट पडेगा । ऐसैं आगे संबन्ध है ॥

ताञ्चेदविद्वान् प्रस्तोष्यसि । मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥

जो देवता प्रस्तावकेप्रति अनुगत है। ताकूं जब अविद्वान् हुया प्रस्तुत करैगा [तब] मूर्द्धा तेरा विस्पष्ट पतन होवैगा। ऐसैं ॥९॥

प्रति अनुगत है। ता देवताकूं जब प्रस्ताव-रूप भक्तिका अविद्वान्हुया मुज विद्वान्के समीप। स्तुति करताहैं ॥ ॥ ताँ[४९७] (विद्वा-न्)के परोक्षविषैबी जब ताका मूर्धा विस्पष्ट पडै। तब कर्ममात्रके वेत्ताओंका अनधिकारहीं कर्मविषै होवैगा औ[४९८] सो अनिष्ट है। काहेतैं अ-

---

४९७ ननु अविद्वान्की निन्दाकूं विवक्षित होनेतैं विद्वा-न्के समीपका वचन अकिञ्चित्कर है? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहै हैं ॥ इहां "ताका" ऐसैं अविद्वान् प्र-स्तोता कहिये है ॥

४९८ ननु कर्ममात्रके वेत्ताओंका कर्मविषै अधिकार मति होहू? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसै कहैहैं ॥ इहां "तिसकरि दोनूं (विद्वान् अरु अविद्वान्) कर्मकूं करते हैं" इत्यादि श्रुतिविषै। यह शेष है ॥

विद्वानोंकेबी कर्मके देखनेतैं औ [४९९] दक्षिणमार्गकी श्रुतितैं औ [५००] अनधिकारके हुये अविद्वानोंका एक उत्तरमार्गहीं सुनियेथा औ [५०१] स्मार्तकर्मरूप निमित्तवाला हीं दक्षिणमार्ग नहीं है। काहेतैं "[५०२] यज्ञकरि दानकरि" इत्यादि श्रुतितैं। [५०३] तैसैं

---

४९९ अविद्वानोंकेबी कर्मके अधिकारविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

५०० ताहीकूं व्यतिरेकद्वारा स्पष्ट करैहैं ॥ इहां ताहीकूं समुच्चय फलवाला होनेतैं। यह अर्थ है ॥

५०१ ननु दक्षिणमार्गकूं वापी कूप तटाक आदिक स्मार्तकर्मका किया होनेतैं वैदिक कर्मविषै विद्वान्हीं अधिकारकूं पावता है? तहां नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

५०२ "यज्ञकरि दानकरि लोकनकूं जय करैहै" ऐसैं अज्ञानीहीं वैदिककर्मनिष्ठनके दक्षिणमार्गके श्रवणतैं। इस हेतुकूं कहैहैं ॥

५०३ इस वक्ष्यमाण हेतुतैंबी अविद्वानोंकूं विद्वान्के समीपविषै कर्मका अधिकार नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—देवताके विज्ञानसैं शून्य जो तूं हैं। तिस तेरा मूर्द्धा विस्पष्ट पडेगा। इस प्रकारसैं मुजकरि उक्तका मूर्द्धा पडेगा। इस विशेषके श्रवणतैं। विद्वान्के समीपविषै ताकी अनुज्ञाविना कर्म करनेवालेकूं अपराधी होनेतैं ताका कर्मविषै अनधिकार हीं है ॥

"मुजकरि उक्तका" इस विशेषणतैं विद्वान्के[५०४] समक्षहीं कर्मविषै अनधिकार है औ सर्वत्र अग्निहोत्र स्मार्तकर्म अरु अध्ययन आदिकनविषै नहीं । काहेतैं [५०५]अनुज्ञाके तहां देखनेतैं । [५०६]कर्ममात्रके वेत्ताओंकाबी कर्मविषै अधिकार सिद्ध भया । इति "[५०७]मूर्धा तेरा विस्पष्ट पडैगा" ऐसैं ॥ ९ ॥

---

५०४ विद्वान्के असमीपविषै फेर अविद्वान्कूं बी कर्मविषै अधिकार है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अग्निहोत्रादिरूप श्रौतकर्मविषै औ वापी कूप तटाक आदिक स्मार्तकर्मनविषै औ अध्ययन अरु जप आदिकनाविषै विद्वान्की सन्निधिविना बी सर्वकालविषै कर्ममात्रके वेत्ता अविद्वान्कूं अधिकार नहीं है । ऐसैं कहनेकूं अशक्य है ॥

५०५ तहां हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—"भगवान् (आप)कूं हीं मैं जाननेकूं इच्छताहूं" इत्यादि वाक्यसैं राजाकरि स्वकीय कर्मके निर्वाह करनेविषै प्रार्थनाके दर्शनतैं औ "येहीं मुजकरि स्तुति करनेवालोंके मध्य सम्यक् अतिसृष्ट हैं" ऐसीं अनुज्ञाके उपलंभतैं अविद्वानोंकूंबी कर्मविषै अधिकार है हीं ॥

५०६ उक्त अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां विद्वान्के समीपविषै ताकी अनुमतिकूं न पायके कर्मका अनुष्ठान नहीं है। यह निगमन करनेकूं इतिशब्द है ॥

५०७ "मूर्द्धा तेरा विस्पष्ट पडैगा" इस अन्तवाला

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतो-द्गीथमन्वायत्ता । तांश्चेदविद्वानुपास्यसि । मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति ॥ १० ॥

एवमेव प्रतिहर्त्तारमुवाच ॥ प्रतिहर्त्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता । ता-

---

अर्थः—ऐसैं हीं उद्गाताकूं कहता भयाः—उषस्तिरुवाचः—हे उद्गातः! जो देवता उद्गीथकेप्रति अनुगत है। ताकूं जब अविद्वान् हुया उद्गान करैगा [तब] तेरा मूर्द्धा विपतन होवैगा ऐसैं ॥ १० ॥

अर्थः—ऐसैहीं प्रतिहर्ताकूं कहताभयाः—उषस्तिरुवाचः—हे प्रतिहर्तः! जो देवता प्रतिहारकेप्रति अनुगत है। ताकूं जब अवि-

---

टीकाः—ऐसैंहीं उद्गाताकूं औ प्रतिहर्ताकूं कहताभया । इत्यादि अन्य समान है ॥ वे प्रस्तोता आदिक कर्मनतैं उपरत हुये मूर्धपातके

ञ्चेदविद्वान् प्रतिहरिष्यसि । मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ते ह समारतास्तूष्णी-मासाञ्चक्रिरे ॥ ११ ॥

इति प्रथमप्रपाठकस्य दशमः खंडः ॥ १० ॥

द्वान् हुया प्रतिहरण करैगा [तब] तेरा मूर्धा विपतन होवैगा ऐसैं ॥ वेहीं उपर-त हुये तूष्णीं होते भये ॥११॥

इति श्रीमूलभाषा० प्रथमप्रपा० दशमःखंडः॥१०॥

भयतैं तूष्णीं होतेभये । ५०८अन्य कर्मकूं न करते-हुये । ५०९अर्थी होनेतैं ॥ १० ॥ ११ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० प्रथमप्रपाठकस्य दशमः खंडः ॥१०

प्रस्तोताकूं विषयकरनेवाला वाक्य व्याख्यान किया । ऐसैं अनुवाद करैहैं ॥

५०८ " तूष्णीं " ऐसैं इस वाक्यके अर्थकूं कहैहैं ॥

५०९ तहां हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिस तिस देवतारूप विषयवाले विज्ञानके अर्थी होनेकरि अन्य कर्मकूं न करतेहुये चाक्रायणके अभिमुख स्थितभये ॥

इति श्री० प्रथमप्रपाठकगत-दशमखंडस्य टिप्पणम् ॥ १० ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११

अथ हैनं यजमान उवाच ॥ भग-

अथ श्री०मूलभाषा०प्रथमप्रपा०एकादशः खंडः॥११॥

अर्थः–अनन्तर हीं इस (उषस्ति)कूं यजमान कहताभया ॥ राजोवाचः–भग-

अथ श्री०भाष्यभाषा०प्रथमप्रपाठकस्यैकादशःखंडः ११

राजा उषस्तिके प्रसंगपूर्वक ऋत्विक्कर्मके प्रसंगकरि प्रस्ताव उद्गीथ औ प्रतिहारके क्रमतें प्राण आदित्य अरु अन्नरूप देवताका परिज्ञान ९

टीकाः–अनन्तरहीं इस उषस्तिकूं यजमान राजा कहताभयाः–भगवान् (पूजावान् आप)कूंहीं मैं जाननेकूं इच्छताहूं? ऐसैं उक्तहुया उषस्ति चाक्रायण मैं हूं। तेरेबी

अथ श्री०प्रथमप्रपा०एकादशखण्डस्य टिप्पणम् ११

५१० "अनन्तरहीं इसकूं" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां प्रस्तोताआदिकनके तूष्णींभावतें [अनन्तर] यह शेष है ॥

वन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति होवाच ॥ १ ॥

स होवाच ॥ भगवन्तं वा अहमेभिः

वान् (आप)कूं हीं मैं जाननेकूं इच्छताहूं? ऐसैं ॥ ॥ [मैं] उषस्ति चाक्रायण हूं। ऐसैं हीं कहताभया ॥ १ ॥

अर्थः—सोई (राजा) कहताभया ॥ रा-

श्रोत्रके मार्गकेप्रति आयाहूं । जब । ऐसैंहीं कहताभया ॥ १ ॥

टीकाः—सोई यजमान कहताभयाः—सत्य[५११] ऐसैं हीं[५१२] मैं भगवान्कूं बहुगुणवाला सुनताभयाहूं। औ सर्व ऋत्विजोंके कर्मरूप आर्त्विज्यनकरि पर्य्येषण (खोजन) करताभयाहूं।

---

५११ चाक्रायणके वचनकूं राजा अङ्गीकार करैहै ॥

५१२ अङ्गीकारकूंहीं स्पष्ट करैहै ॥ इहां आर्त्विज्यनकरि। याका व्याख्यानः—ऋत्विजोंके कर्मोंकरि। यह है। अर्थ यह जोः—ता (कर्म)के अर्थ ॥

सर्वैरार्त्विज्यैः पर्य्यैशिषं। भगवतो वा अहमवित्त्याऽन्यानवृषि ॥ २ ॥

भगवाꣳस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरि-

जोवाचः—भगवान् (आप)कूं हीं मैं इन सर्व आर्त्विज्योंकरि खोजताभयाहूं । भगवान्के हीं अलाभतैं मैं अन्योंकूं वरताभया हूं ॥ २ ॥

अर्थः—भगवान्हीं तो मेरे सर्व ऋत्वि-

---

५१३ खोजिके भगवान् (पूजावान् आप)केहीं अलाभतैं मैं इन अन्योंकूं वरताभया (वरण करताभया)हूं ॥ २ ॥

टीकाः—५१४ अद्यापि (अबीबी) भगवान् (आप)हीं तो मेरे सर्व ऋत्विजोंके कर्मअर्थ

---

५१३ जब मुजकूं आर्त्विज्यके अर्थ खोजताभया हैं । तब क्यूं इन अन्योंकूं वरताभया हैं? यह आशङ्का करिके कहैहैं ॥

५१४ ऐसैं प्राप्तहुये अब क्या कर्तव्य है ? यह आशंका करिके कहैहै ॥

ति॥ तथेत्यथ तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्ताव-

जनके कर्मोंकरि (कर्मोंकेअर्थ) [होहू] ऐसें ॥ ॥ तथाऽस्तु ऐसें [उषस्ति कहिके] ॥ अनन्तर तब येई अनुमत हुये स्तुतिकूं करहू। इनकेअर्थ जितना तो धन दे-

होहू॥ ऐसें उक्त हुया उषस्ति "तथाऽस्तु" ऐसें कहताभया॥ किंतु जब[515] ऐसें है तब[516] येहीं तुजकरि पूर्व व्रत जे हैं वे सम्यक् प्रसन्नभये मुजकरि अनुज्ञातहुये[517] स्तुतिकूं करहू। तुजे-[518]

५१५ चाक्रायणकी अनुमतिकूं सुनिके। यह क्या भया। ऐसें प्रस्तोताआदिकनके व्याकुलित हुये उषस्ति कहैहै॥ इहां उभयकी अनुमतिकी अपेक्षासैं अनन्तरता अथशब्दका अर्थ है॥

५१६ मेरे अलाभकरि भये इनोंके वृतपनैकी निवृत्तिकी अवस्थाके हुये। ऐसें कहैहै॥

५१७ मेरेकरि अनुज्ञात हुये प्रस्तोताआदिक स्तुतिकूं करहूं। ऐसें उषस्ति कहैहै॥

५१८ ऐसें होहू। परन्तु तेरेअर्थ फेर मुजकरि क्या कर्तव्य है? यह राजाकी आशङ्काकरिके उषस्ति कहैहै॥

न्मम दद्या इति ॥ तथेति ह यजमान उवाच ॥ ३ ॥

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद ॥ "प्रस्तो-

वैगा तितना मेरेकूं देना । ऐसैं [कहताभया] ॥ ॥ तथाऽस्तु ऐसैं हीं यजमान कहताभया ॥ ३ ॥

अर्थः—अनन्तर इसके प्रति प्रस्तोता

करि तो यह करनेकूं योग्य हैः—इन प्रस्तोता आदिक सर्वकेअर्थ जितना धन देवैगा तितना मुजकूं देना ॥ ऐसैं उक्त हुया यजमान "तथाऽस्तु" ऐसैंहीं कहताभया ॥ ३ ॥

टीकाः—[५१९] अनन्तरहीं उषस्तिके वचनकूंसुनिके या उषस्तिकेप्रति प्रस्तोता विनयकरि उपसत्तिकूं करताभया (समीपजाताभया) ॥

---

५१९ यजमानकेप्रति उषस्तिकरि उक्तवचनकूं सुनिके अनन्तर इस उषस्तिकूं प्रस्तोता त्यक्तव्याकुलतावाला हुया शिष्यभावकरि उपसन्न (उपगत) भया । ऐसैं कहैहैं ॥

तर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता । तांचे-दविद्वान् प्रस्तोष्यसि । मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति" मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ४ ॥

उपगमन करताभया:–प्रस्तोतोवाच:–"हे प्रस्तोतः ! जो देवता प्रस्तावके प्रति अनुगत है । ताकूं जब अविद्वान्हुया प्रस्तवन करैगा [तब] तेरा मूर्द्धा विपतन होवैगा" ऐसैं मुजकूं भगवान् (आप) कहतेभये । कौंनसी सो देवता है ? ऐसैं [पूंछ्या हुया उषस्ति] ॥ ४ ॥

"हे प्रस्तोतः[520] ! जो देवता" इत्यादि मेरेप्रति भगवान् पूर्वे कहतेभये । कौंनसी सो देवता है । जो प्रस्तावरूप भक्तिके प्रति अनुगत है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ४ ॥

५२० उपगमनके प्रकारकूं आकारकरि दिखावैहैं ॥

प्राण इति होवाच ॥ सर्व्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति । प्राणमभ्युज्जिहते । सैषा देवता

अर्थः—"प्राण है" ऐसैं हीं कहताभया। सर्वहीं ये भूत प्राणके प्रति हीं च्यारीओरतें प्रवेश करते हैं औ प्राणकूं लक्षित करिके उपजते हैं। सो यह देवता प्रस्ता-

---

टीकाः—ऐसैं पूंछ्याहुया[५२१] उषस्ति "प्राण है" ऐसैंहीं कहताभया। प्रस्तावकी प्राणरूप देवता है। यह युक्त है ॥ ॥ कैसैंकि[५२२]:—सर्व

---

५२१ प्रतिवचनकूं लेके प्रशब्दके सामान्यतैं ग्रहणकरिके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

५२२ इहां प्राणशब्दका अर्थ कैसैं निश्चय करनेकूं योग्य है? यह आशङ्काकरिके "याहींतैं प्राण है" इस न्याय (अधिकरणसूत्र)करि कहैहैं॥ इहां प्राणरूपसैंहीं सम्यक् प्रवेश करते हैं। ऐसैं पूर्वसैं संबंध है औ प्राणशब्दके अर्थका परमात्मभावकरि निर्णीतपना। यातैं शब्दका अर्थ है औ चेत् शब्दका अर्थ यदि (जब) ऐसैं कहा औ मुजकरि तथोक्तका कहिये "मूर्द्धा तेरा विपतन होवैगा" ऐसैं मेरेकरि उक्त भये तेरा तिसका-

प्रस्तावमन्वायत्ता । ताञ्चेदविद्वान् प्रा-
स्तोष्यो मूर्द्धा ते विपतिष्यत्तथोक्तस्य
मयेति ॥ ५ ॥

वके प्रति अनुगत है। ताकूं जब अविद्वान्
हुया प्रस्तवन करता [तब] मुजकरि त-
थोक्त (तैसें कहे हुये) तेरा मूर्द्धा विपतित
होता। ऐसें ॥ ५ ॥

स्थावरजंगमरूप भूत प्रलयकालविषै प्राणके प्र-
तिहीं प्राणरूपसैंहीं चारिओरतें सम्यक् प्रवेश
करतेहैं औ उत्पत्तिकालविषै प्राणकूं लखा-
यके प्राणतैंहीं उपजते हैं। यातें सो यह दे-
वता प्रस्तावके प्रति अनुगत है। ताकूं
जब अविद्वान्हुया तूं प्रस्तवन (प्रस्ताव-
भक्ति)कूं करताहैं जब तेरा मूर्धा (शिर)

लविषै (स्वअपराध अवस्थाविषै) मूर्द्धा विपतन होताहीं।
ऐसें योजना है औ बडे प्रमादकूं तुजकरि परिहार किया हो-
नेतैं। यह द्वितीय यातैं शब्दका अर्थ है ॥

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता। ताञ्चेदविद्वानुद्गास्यसि। मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति" मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ६ ॥

अर्थः–अनन्तरहीं इसके प्रति उद्गाता उपगमन करताभयाः–उद्गातोवाचः–"हे-उद्गातः! जो देवता उद्गीथके प्रति अनुगत है। ताकूं जब अविद्वान्हुया उद्गान करैगा [तब] तेरा मूर्द्धा विपतित होवैगा" ऐसैं मुजकूं भगवान् कहतेभये । कौंनसी सो देवता है? [पूंछ्याहुया उषस्ति] ॥ ६ ॥

विपतित होता कहिये मुजकरि तथोक्तका नाम "तेरा मूर्द्धा विपतन होवैगा" ऐसैं मुजकरि उक्त भये तेरा तिसकालविषे (स्वअपराधकी अवस्थाविषे) मूर्द्धा पडताहीं ॥ यातैं तुजनैं श्रेष्ठकिया। अभिप्राय है किः–मुजकरि निषिद्ध हुया तूं कर्मतैं जो उपरमकूं करताभया ॥ ५ ॥

टीकाः–तैसैं उद्गाता पूंछताभयाः–कौं-

आदित्य इति होवाच ॥ सर्व्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं

अर्थः—" आदित्य है " ऐसैंहीं कहताभया। सर्वहीं ये भूत उच्चहुये आदित्यकूं

नसी सो उद्गीथभक्तिके प्रति अनुगत देवता है? ऐसैं ॥ ६ ॥

टीकाः—पूंछ्या हुया "आदित्य है" ऐसैंहीं कहताभया। सर्वहीं ये भूत ऊर्ध्व हुये आदित्यकूं गावते हैं (शब्द करते हैं) अभिप्राय यह है किः—स्तुतिकरतेहैं ॥ "उत्[523]" शब्दके सामान्यतैं। "प्र"शब्दके सामान्यतैं

---

५२३ जैसैं प्रशब्दके सामान्यतैं प्राण प्रस्तावकी देवता है यह कहा। ऐसैं आदित्य अरु उद्गीथविषै " उत् " शब्दके सामान्यतैं उद्गीथकी देवता आदित्य है। ऐसैं कहेहैं॥ इहां उक्त सामान्यके ग्रहणअर्थ अतः (यातैं) शब्द है औ ऐसैंहीं। याका प्रस्तोताकी न्याई अरु उद्गाताकी न्याई। यह अर्थ है औ दो ऋत्विजोंकारि प्रस्ताव अरु उद्गीथकी देवताओंके विज्ञानके अनन्तर अथशब्दका अर्थ है ॥

गायन्ति । सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता । ताञ्चेदविद्वानुदगास्यो मूर्द्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ७ ॥

अथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद ॥ "प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता । ता-

---

गायन करते हैं । सो यह देवता उद्गीथके-प्रति अनुगत है । ताकूं जब अविद्वान्हुया उद्गानकरता [तब] मुजकरि तथोक्तभये तेरा मूर्द्धा विपतित होता । ऐसें ॥ ७ ॥

अर्थः—अनन्तरहीं याके प्रति प्रतिहर्ता उपगमन करताभया:—प्रतिहर्त्तोवाचः—"हे प्रतिहर्तः ! जो देवता प्रतिहारकेप्रति अनुगत है। ताकूं जब अविद्वान्हुया प्रति-

---

प्राणकीन्यांई । यातैं सो यह देवता । इत्यादि पूर्वकी न्यांई है ॥ ७ ॥

टीका:—ऐसैंहीं अनन्तर याकूं प्रतिहर्ता

श्चेदविद्वान् प्रतिहरिष्यसि। मूर्द्धा ते वि-
पतिष्यतीति" मा भगवानवोचत्कतमा
सा देवतेति ॥ ८ ॥

अन्नमिति होवाच ॥ सर्वाणि ह वा-

हरण करैगा [तब] तेरा मूर्द्धा विपतित
होवैगा" ऐसें मुजकूं भगवान् कहतेभये।
कौंनसी सो देवता है? ऐसें [पूंछ्याहुया
उषस्ति] ॥ ८ ॥

अर्थः—"अन्न है" ऐसेंहीं कहताभया।

(उद्गाताके हाथनीचे रहनेवाला ऋत्विक्) उप-
सत्ति करताभयाः—कौंनसी सो देवता प्र-
तिहारकेप्रति अनुगत है? ऐसें ॥ ८ ॥

टीकाः—पूंछ्याहुया उषस्ति "अन्न है" ऐसें-
हीं कहताभया। [५२४] सर्वहीं ये भूत अन्नरूप हीं

---

५२४ अन्नका प्रतिहारपना कैसें है? सो कहैहैं ॥ इहां "ताकूं जब अविद्वान् हुया" इत्यादि "अन्य" ऐसें कहिये है अरु "मुजकरि तथोक्त (तैसें कहनेके विषयभये) तेरा" इस-पर्य्यन्त। यह शेष है ॥

उद्गीथ आदिकके उपासन १३

इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति। सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता। ताञ्चेदविद्वान् प्रत्यहरिष्यो मूर्द्धा

सर्वहीं ये भूत अन्नकूंहीं प्रतिहरण (ग्रहण) करतेहुये जीवते हैं। सो यह देवता प्रतिहारके प्रति अनुगत है। ताकूं जब अविद्वान्हुया प्रतिहरणकरता [तब] मुजकरि

आत्माके प्रति सर्व ओरतें ग्रहण करते हुये जीवतेहैं। सो यह देवता। प्रतिशब्दके सामान्यतें प्रतिहाररूप भक्तिके प्रति अनुगत है "मुजकरि तैसें उक्तका" इहांपर्य्यन्त अन्य समान है ॥ [५२५] प्रस्ताव उद्गीथ अरु प्रतिहाररूप भक्तिनकूं [५२६] प्राण आदित्य अरु अन्नकी दृष्टिकरि उपसनकरै। यह समुदायका अर्थ है औ प्रा-

---

५२५ कैसा उपासन इस प्रकरणविषै विवक्षित है? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥

५२६ तीन उपासनाके फलकूं दिखावैहैं ॥

इति श्री० प्रथमप्रपाठकगतैकादशखण्डस्य टिप्पणम् ॥ १० ॥

ते विपातिष्यत्तथोक्तस्य मयेति । तथोक्तस्य मयेति ॥ ९ ॥

इति प्रथमप्रपाठकस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य द्वादशः खंडः १२

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दा-

तथोक्त भये ऐसें । मुजकरि तथोक्त भये ऐसें तेरा मूर्द्धा विपतित होता ॥ ९ ॥

इति श्री॰मूलभा॰प्रथमप्र॰एकादशः खण्डः ११

अथ श्री॰मूलमात्रभाषा॰प्रथमप्रपा॰द्वादशः खण्डः १२

अर्थः—अनन्तर यातैं शौव उद्गीथ हैः—

णआदिककी प्राप्ति वा कर्मकी समृद्धि फल है । इति ॥ ९ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰प्रथमप्रपाठकस्यैकादशःखंडः॥११॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा प्रथमप्रपा॰द्वादशः खण्डः॥१२॥

श्वानोंकरि उद्गीथके उपासनका उपदेश ९

टीकाः—[५२७]अतीत खंडविषै अन्नकी अप्राप्तिरूप

अथ श्री॰ प्रथमप्रपाठकगत-द्वादशखंडस्य टिप्पणम्

५२७ पूर्व अरु उत्तर दोखण्डनकी संगति (संबध)कूं

लभ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्व-व्राज ॥ १ ॥

तहां प्रसिद्ध बक दाल्भ्य। वा ग्लाव मैत्रेय। स्वाध्यायकूं [करनेकूं] उद्गमन करताभया ॥ १ ॥

निमित्तवाली उच्छिष्टके अरु उच्छिष्ट हुये पर्युषित (रात्रिवासी अन्न)का भक्षणरूप कष्टावस्था कही। सो मति होवै। यातैं अन्नके लाभअर्थ। अनन्तर शौव (श्वानोंकरि दृष्ट) उद्गीथ (उद्गानरूप साम) यातैं प्रस्तुत करिये है:-तहां प्रसिद्ध नामतैं बक ऐसा दल्भ्यका

दिखावते हुये अन्य उपासनाकूं प्रस्तुत (प्रसङ्गविषै प्राप्त) करैहैं ॥ इहां अन्नके लाभका अपेक्षितपना। यातैं शब्दका अर्थ है ॥

५२८ अन्नके कामवालेकूं प्रकारान्तरकरि उद्गीथके उपासनके प्रति प्रस्तुतकरिके ज्ञानकी सुकरताअर्थ आख्यायिकाकूं ग्रहण करैहैं ॥ इहां केवल दल्भका अपत्य नहीं किंतु मित्राका बी है। यह चकारका अर्थ है औ सो (मित्रा) दल्भकी पत्नीथी यह कहना युक्त नहीं है। काहेतैं ऐसैं हुये मैत्रेयपदकी व्यर्थतातैं ॥ जो कहो अन्य पत्नीके अपत्यप-

अपत्य दाल्भ्य। वा नामतैं ग्लाव औ मित्राका अपत्य मैत्रेय। [इहां वाँ[529]शब्द च के अर्थ है। जातैं द्व्यामु[530]ष्यायण (दोनूं इनका यह) है। व[531]स्तुरूप विषयविषै क्रियाओंकी न्यांई विकल्पके असंभवतैं औ जातैं "दो [532]नामवाला दो गोत्रवाला है" इत्यादि स्मृति है औ दे-

---

नैकी व्यावृत्तिअर्थ मैत्रेयपद है? सो बनै नहीं:—काहेतैं प्रयोजनके अभावतैं ॥

५२९ ननु इहां वा शब्दतैं दोऋषि विवक्षित हैं? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥

५३० ननु फेर दल्भका अपत्य जो बक सो ताकी अभार्या मित्राकाबी अपत्य होनेकूं कैसैं उत्साह करता है? तहां कहैहैं ॥ इहां "चैकितायन दाल्भ्य" इस पूर्व उक्त वाक्यविषै यह (याका दोका पुत्रपना) कहा है। यह सूचन करनेकूं "हि" शब्द है ॥

५३१ ननु उदित (सूर्य उदयके अनन्तर किये) अरु अनुदित (सूर्यउदयतैं प्रथमकिये) होमकीन्यांई तिनोंकी दृष्टिकरि यह बक है औ अन्योंकी दृष्टिकरि ग्लाव है। ऐसैं एकविषैबी विकल्प होवैगा? तहां सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥

५३२ ननु फेर प्रमाणविना एकहींका दोनामवान्पना आदिक कैसैं अङ्गीकार करियेहै? तहां कहैहैं ॥ इहां इत्यादि वाक्य स्मृतिरूप है सो धर्मशास्त्रविषै प्रसिद्ध है। यह अर्थ है॥

खियेहै[533] उभयतैं[534] पिंडका भजनेपना । वा उ-द्गीथविषै[535] बद्धचित्तवाला होनेतैं ऋषिविषै अ-नादरतैं यह कहा है। औ वां[536] शब्द। स्वा-ध्याय (पाठ)के अर्थ है]। स्वाध्यायकूं[537] करनेकूं ग्रामतैं बाहिर उद्गमन करताभया कहिये विवि-क्त (एकान्त) देशविषै स्थित उदकके समीप प्रति

---

५३३ एकका द्विगोत्रवानूपना लोकविषैवी प्रसिद्ध है। ऐसैं कहैहैं॥

५३४ जिसतैं सुत जन्मता है औ जिसकरि धर्मतैं ग्रहण-करिये है तिन दोनूंका यह है। ऐसैं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:-"दोनूंकावी यह ऋक्थी (वडिलोपार्जित धनादिकका ग्राहकरूप वारस) औ धर्मतैं पिंडका दाता है" ऐसैं स्मरण करतेहैं॥

५३५ दाल्भ्यतैं अन्य मैत्रेय है। ऐसैं अङ्गीकार करिके कहै-हैं॥ इहां ताकी उपासनाविषै जो तात्पर्य है सो ऋषिविषै अ-नादरमैं हेतु है। तातैं ऋषिनका त्रय वा ऋषिनका द्वय विवक्षित है। यह अर्थ है औ अन्यपक्षके प्रकाशनअर्थ "वा" शब्द है॥

५३६ ननु तव श्रुतिगत वाशब्द किस अर्थ है? यह आशङ्काकरिके। पाठ (उच्चारण)तैं अन्य ताका फल नहीं है। ऐसैं कहैहैं॥

५३७ मैत्रेयपदपर्यन्त वाक्यकूं व्याख्यान करिके। अव "स्वाध्यायकूं" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं॥

तस्मै श्वा: श्वेत: प्रादुर्बभूव।तमन्ये

अर्थ:-एक श्वेतश्वान तिसके अर्थ प्रा-

पालन करताभया औ "उद्गमन[538] करता भया" ऐसैं एकवचनरूप लिङ्गतैं एक यह ऋषि था। औ श्वानोंके[539] उद्गीथके कालके प्रतिपालनतैं ऋषिका स्वाध्यायका करण जो है सो अन्नकी कामनासैं है॥ इस अभिप्रायतैं[540] है। ऐसैं लक्षणासैं जानियेहै॥१॥

टीका:-स्वाध्यायकरि[541] तोषित (तुष्ट) देवता वा ऋषि। श्वानके रूपकूं ग्रहण करिके श्वेत श्वा (श्वान) हुया तिस ऋषिकेअर्थ (ताके अनुग्रहअर्थ) प्रादुर्भावकूं पावताभया। ता

---

५३८ जो कहा कि:-ऋषि एक बकआदिक शब्दनकरि कहिये है ऐसैं। तिसविषै लिङ्गकूं कहैहैं॥

५३९ श्वानोंका जो उद्गीथ सो श्वोद्गीथ है तिसके कालका प्रतिपालन जो प्रतीक्षण ऋषिका देखियेहै औ तिन (श्वानों)का उद्गान अन्नके अर्थ है। सो ऋषिकाबी स्वाध्यायका करण तिस अर्थ है। ऐसैं कहैहैं॥

५४० उक्त अर्थके वाची शब्दके अभावके हुयेबी सामर्थ्यतैं यह अर्थ भासता है [वा होवैहै] ऐसैं कहैहैं॥

५४१ "तिसके अर्थ" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं॥ इहां क्षुल्लक कहिये क्षुद्र। अर्थ यह जो:-शिशु ऐसैं॥

श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवाना-
गायत्वशनायाम वा इति ॥ २ ॥

दुर्भावकूं पाया । ताकूं अन्यअनेकश्वान समीप आयके कहतेभये:—हमारेअर्थ भगवान् अन्नकूं आगानकरहू । [हम] भूंखेहीं हैं ऐसैं ॥ २ ॥

शुक्लश्वानके प्रति अन्य क्षुद्र (छोटे) श्वान समीप आयके कहतेभये:—हमारेअर्थ भगवान् अन्नकूं आगानकरहू । अर्थ यह जोः—आगानकरि संपादन करहू ॥ [इहां वा मुख्य[542] प्राणके प्रति वाक्आदिक जे प्राणके[543] पीछे अन्नभुक् हैं । वे स्वाध्यायकरि[544] परितोषित

---

५४२ श्वेत श्वान कोइक ऋषि वा देवता था औ अन्य श्वान देवता वा ऋषि थे । ऐसैं कहा । अब विवक्षित पक्षकूं कहैहैं ॥ इहां ताकूं कहतेभये । ऐसैं संबन्ध है ॥

५४३ तिनहींकूं विशेषण देते हैं ॥

५४४ मुख्य प्राणसहित वाक् आदिकके ग्रहणविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां अन्यथा वाक्य अनिर्द्धारित अर्थवाला होवैगा । यह भाव है ॥

तान् होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीया-

अर्थः—[१श्वेतश्वान]तिनकूं कहताभयाः-

हुये इस श्वानके रूपकूं ग्रहण करिके अनुग्रह करतेभये । यह ऐसैं जाननेकूं युक्त है] हम बुभुक्षित[545] (भूंखे) हैं हीं ऐसैं ॥ २ ॥

टीकाः—ऐसैं उक्त हुये तिन क्षुद्र (शिशुरूप) श्वानोंकेप्रति श्वेतश्वा कहताभयाः—इहां (इसींही देशविषै) मेरेप्रति प्रातः[546]कालमैं समीप आना ऐसैं । [इहां "समीयात" यह दीर्घभाव छान्दस है । वा प्रमादपाठ है । औ प्रातःकालका करण जो है सो तिस प्रातःकालविषैहीं उ-

५४५ ननु ऐसैं तुह्मारे अर्थ मुजकारि अन्न क्यूं संपादन करिये है । जातैं न भोजन करनेवाले तुह्मारा तिसकरि कार्य नहीं है ? यह आशङ्काकरिके । तुजविषै स्थित चेतनरूपद्वारकरि हमारेकूंबी भोगकी सिद्धितैं । ऐसैं मतिकहो । यह कहैहैं ॥

५४६ ननु ऐसैं प्रातःकालका प्रतीक्षण क्यूं किया ? तहां कहैहैं ॥ इहां उद्गानके । यह शेष है ॥

तेति ॥ तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयाञ्चकार ॥ ३ ॥

ते ह यथैवेदं बहिष्पवमानेन स्तो-

इहांहीं मेरेप्रति प्रातःकालविषै समीप आवना ऐसें ॥ तहांहीं बकदाल्भ्य । वा ग्लाव मैत्रेय । प्रतिपालन करताभया ॥ ३ ॥

अर्थः—वेई (अन्यश्वान) जैसेंहीं बहि-

द्गानके कर्तव्यअर्थ है । [५४७] वाँ अन्नके दाता सूर्य्यके अपराह्णकालविषै अभिमुखपनेंके अभावतें है] । [५४८] तहांहीं बक दाल्भ्य वा ग्लाव मैत्रेय ऋषि प्रतिपालन करताभया । अर्थ यह जोः—प्रतीक्षणकूं करताभया ॥ ३ ॥

टीकाः—वे[५४९] श्वान तहांहीं आयके ऋषिके स-

५४७ प्रातःकालमैं प्रतीक्षणके करणविषै अन्यकारणकूं कहैहैं ॥ इहां ता सूर्यका वृष्टिद्वारा अन्नका दातापना देखनेकूं योग्य है ॥

५४८ "तहांहीं" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां ऋषिका अन्नकामवान्पना इसतैं जान्या है ॥

५४९ "वेई" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां

ष्यमाणाः सꣳरब्धाः सर्पन्तीत्येवमा-
ससृपुस्ते ह समुपविश्य हिङ्चक्रुः ॥ ४ ॥

ष्पवमानकरि स्तोष्यमाण संलग्न हुये इस (यज्ञकर्म)के प्रति सर्पते हैं । ऐसें सर्पते-भये । वेई सम्यक् बैठिके हिङ्कारकूं करते-भये ॥ ४ ॥

मक्ष [परिभ्रमण करतेभये] जैसैं हीं इहां कर्म-विषै बहिष्पवमानस्तोत्रकरि स्तोष्यमाण उ-द्गाता [आदिक यजमानपर्यंत] पुरुष परस्पर संलग्न हुये यज्ञकी क्रियाकूं करतेहैं । ऐसैं मु-खसैं परस्परके पुच्छकूं ग्रहण करिके परिभ्रम-णकूं करतेभये । यह अर्थ है ॥ वेई ऐसैं परि-भ्रमणकरिके सम्यक् बैठिके (बैठेहुये) हिं-कारकूं करतेभये ॥ ४ ॥

समक्ष (सन्मुख) भ्रमण करतेभये। ऐसैं संबन्ध है औ उद्गताके पुरुष । ऐसैं अध्वर्युसैं आदिलेके यजमानपर्यन्त ग्रहण क-रियेहैं औ अन्योन्य (परस्पर) संलग्न हुये सर्पते हैं (यज्ञकी क्रियाकूं करते हैं) यह शेष है ॥

ओ ३ मदा ३ मों ३ पिबा ३ मों ३
देवो वरुणः प्रजापतिः सविता २ऽन्न-

अर्थः—श्वान ऊचुः—ॐ खावेङ्ग । ॐ
पीवेङ्ग। ॐ देव वरुण प्रजापतिरूप सवि-

टीकाः—ॐ अँदनकरें (खावें)। ॐपा-
नकरें (पीवें)। ॐ द्योतनतें देव अरु जगत्के
वर्षणतें वरुण अरु प्रजाओंके पालनतें प्रजा-
पति अरु सर्वका प्रसविता (जनक) होनेतें
सविता (आदित्य) कहियेहै ॥ इन पर्य्या-
योंकरि सो इसप्रकारका आदित्य । हमारेअर्थ
इहां अन्नकूं आहरणकरहू (ल्यावहू) ! ऐसैं ॥
वे इसप्रकारसैं हिंकारकूं करिके फेरबी कहते-
भयेः—सो तूं हे अन्नपते ! सो जातें सर्व अन्नका
प्रसविता (वृष्टिद्वारा जनक) होनेतें पति है।

---

५५० हिंकारके स्वरूपकूं कहैहैं ॥ इहां तीनवार ओंकार गानकेअर्थ उच्चारण किया है औ इतिशब्द हिंकारकी समाप्तिअर्थ है ॥

मिहा २ ऽऽहरदन्नपते ! ३ ऽन्नमिहा २ ऽऽहरा २ ऽऽहरो ३ मिति ॥ ५ ॥

इति प्रथमप्रपाठकस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

ता । इहां अन्नकूं ल्यावहू । हे अन्नपते ! इहां अन्नकूं ल्याव । ल्याव ॐ इति ॥ ५ ॥

इति श्री०मूलभाषा०प्रथमप्रपा०द्वादशःखण्डः१२

---

५५१ ओंतैं ताके पाकविना उपज्या अन्न प्राणिनकूं अणुमात्रबी नहीं उपजताहै । यातैं यह अन्न-का पति है । हे अन्नपते ! हमारे अर्थ अन्नकूं इहां (इसदेशविषै) आहरणकर । आहर-णकर ऐसैं ॥ इहां [अभ्यास (दोवार कथन) आदरकेअर्थ है] ॐ इति ॥ ५ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० प्रथमप्रपा० द्वादशः खंडः ॥ १२ ॥

---

५५१ सूर्यके अन्नके प्रसवितापनैंकूं साधते हैं ॥ इधर "इहां" ऐसैं प्रकृतदेशकी उक्ति है औ अन्तविषै ओङ्कार जो है सो सूर्यकी प्रार्थनाके मंत्रकी समाप्तिअर्थ है औ भक्तिरूप विषयवाली उपासनाकी समाप्ति अर्थ "इति" पद है ॥

इति श्री०प्रथमप्रपाठकगत-द्वादशखण्डस्य टिप्पणम् ॥ १२ ॥

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदस्त्रयोदशः खंडः प्रारभ्यते ॥ १३ ॥

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हा-

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायाः प्रथमप्रपाठकस्य त्रयोदशःखंडः प्रारभ्यते ॥ १३ ॥

अर्थः—यहहीं लोक हा उकार है ॥

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायाः प्रथमप्रपाठकस्य त्रयोदशः खंडः प्रारभ्यते ॥१३॥

सामके अवयवस्तोभाक्षरविषयक उपासन ४

टीकाः—भक्तिविषयक[५५२] उपासन सामके अवयवसैं संबद्ध है । यातैं सामके अन्य अवयवरूप स्तोभ (अर्थरहित अरु गायनकी सिद्धि-

---

अथ श्री०प्रथमप्रपाठ०त्रयोदशखण्डस्य टिप्पणं १३

५५२ ननु भक्तिसैं संबंधवाले उपासनोंकूं गृहीत होनेतैं "समस्तका" इत्यादि वक्तव्यके हुये। अनन्तरके खण्डसैं क्या है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यातैं । याका इसप्रसङ्गतैं । यह अर्थ है औ ऋक्के अक्षर गायन करियेहैं अरु तिनतैं व्यतिरिक्त वाच्य अर्थकरि शून्य गीतिकी सिद्धिरूप अर्थवाले स्तोभरूप अक्षर परिभाषित करियेहैं अरु वे कर्मके अपूर्वकी निर्वृत्ति (सिद्धि)रूपद्वारकरि फलवाले होनेतैं उपास्य हैं । तिनकी उपासनाके विधिपर उत्तर वाक्य है । यह अर्थ है ॥

इकारश्चंद्रमा अथकार आत्मेहकारो-
ऽग्निरीकारः ॥ १ ॥

वायु हाइकार है । चंद्रमा अथकार है ।
आत्मा इहकार है । अग्नि ईकार है ॥ १ ॥

रूप अर्थवाले) अक्षरनकूं विषयकरनेवाले मि-
लित[553] अन्य उपासन अनन्तर उपदेश करि-
येहैं । काहेतैं सामके[554] अवयवसैं संबद्धपनेंके अ-
विशेषतैं ॥ ॥ यहहीं लोक हाउकार स्तोभ
है [सो] रथन्तररूप[555] सामविषै प्रसिद्धहै "यहं[556]
(पृथिवी) रथन्तर है" ऐसैं इस संबंधके सामान्यतैं

५५३ वक्ष्यमाण उपासनोंके मध्य एक एककी स्वतंत्रता नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

५५४ तिनके अनन्तर उपदेशविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

५५५ औ इस प्रकारका स्तोभ नहीं है । ऐसैं कहनेकूं योग्य नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

५५६ तथापि पृथिवीकी दृष्टिकरि यथोक्त स्तोभकी उपास्यता कैसैं है ? सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"यह (पृथिवी)हीं रथन्तर [नामक साम] है" इस वाक्यविषै पृथिवीका रथन्तरपना सुन्या है औ प्रस्तुत स्तोभ रथन्तरविषै है ऐसैं कहा है । तैसैं हुये यथोक्त संबन्धरूप सादृश्यतैं पृथिवीकी दृष्टिकरि हाउकार उपास्य है ॥

हाउकाररूप स्तोभ यह लोक है। ऐसैं उपासन करै॥ वायु हाइकार है। वामदेवसंबन्धि सामविषै हाइकार प्रसिद्ध है। औ वायु[557] अरु जलका संबन्ध वामदेवसम्बन्धि सामकी योनि है ऐसैं। इस सामान्यतैं हाइकारकूं वायुदृष्टिकरि उपासनकरै॥ चंद्रमा अथकार है। चंद्रदृष्टिकरि अथकारकूं उपासन करै। अन्न[558]विषै जातैं यह स्थित है। अन्नस्वरूप चंद्र है। औ थ[559]कारकीन्यांई आकारके सामान्यतैं [उक्त उपासन करै]॥ आत्मा इहकार है "इह"

---

५५७ ननु फेर वायुकी दृष्टिकरि हाइकारका उपास्यपना कैसैं है? तहां कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः-हाइकार वामदेव संबन्धि सामविषै प्रसिद्ध है औ ताका वायुका अरु जलोंका संम्बन्ध योनि है। काहेतैं "मैथुनकी इच्छावाली आप (जल)के पृष्ठविषै वायु प्रवर्त होताभया। तिसतैं वामदेवसंबंधि साम होताभया" इस श्रुतितैं। तातैं यथोक्त वामदेवसम्बन्धि सामके सम्बन्धरूप सामान्यतैं वायुदृष्टिकरि हाइकारकूं उपासन करै॥

५५८ अथकारका चंद्रदृष्टिकरि उपासन कैसैं है? तहां कहैहैं॥ इहां तैसैं हुये थकारके सामान्यतैं। यथोक्त उपासनाकी सिद्धि है। यह शेष है॥

५५९ थकारकीन्यांई अकारके सामान्यतैंबी चंद्रदृष्टिकरि अथकारकूं उपासन करै। ऐसैं कहैहैं॥ इहां अथकारविषै

आदित्य ऊकारो निहव एकारो वि-

अर्थः—आदित्य ऊकार है। निहव (आ-

ऐसा स्तोभ प्रत्यक्ष है। जातैं आत्मा "इह" ऐसैं व्यपदेश करियेहै औ इह ऐसा स्तोभ है। तौके[५६०] सामान्यतैं ॥ अग्नि ईकार है। औ ई-निधन[५६१] (ईकारके आश्रय) अग्नि सन्बान्धि सर्व साम हैं। यातैं तिस सामान्यतैं ॥ १ ॥

टीकाः—आदित्य ऊकार है। ऊंच[५६२] (ऊर्ध्व)

प्रथम स्पष्ट अकार है अरु अन्नस्वरूप चंद्रमाविषैबी सो (अ-कार) है। यातैं सो यथोक्त उपासन युक्त है। यह अर्थ है औ प्रथम अप्रत्यक्ष पीछे प्रत्यक्ष होताभया। यह शेष है ॥

५६० सो सामान्य इह ऐसैं व्यपदिश्यमानपना है । तातैं आत्मदृष्टि इह ऐसे स्तोमविषै कर्तव्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

५६१ अग्निकी दृष्टि ईकार नामक स्तोभरूप अक्षरविषै क-र्तव्य है। इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—ईकार निधान (स्थापन) करियेहै जिन सामोंविषै वे साम आग्नेय (अग्निसम्बन्धि) प्रसिद्ध हैं। तैसैं हुये तिनोंविषै अग्नि अरु ईकार इन दोनूंके भावतैं इस सादृश्यतैं ईकारकूं अग्निदृष्टिकरि उपासन करै ॥

५६२ ऊकारकूं आदित्यदृष्टिकरि कैसैं उपासन करै ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥

श्वेदेवा औहोइकारः प्रजापतिर्हिङ्कारः प्राणः स्वरोऽन्नं या वाग्विराट् ॥ २ ॥

ह्वान) एकार है। विश्वेदेव औहोयिकार है। प्रजापति हिङ्कार है। प्राण स्वर है। अन्न या है। वाक् विराट् है॥ २ ॥

होते आदित्यकूं गायन करेहैं औ ऊकाररूप यह स्तोभ है। [५६३]आदित्यरूप दैवत्यवाले सामविषै स्तोभ "ऊ" है। यातैं आदित्य ऊकार है॥ [५६४]निहव ऐसा आह्वान एकाररूप स्तोभ है औ एहि (आओ) ऐसें आह्वानकूं करतेहैं यातैं तिस सामान्यतैं॥ विश्वेदेव औहोयिकार है। [५६५]विश्वेदेवसम्बन्धि सामविषै स्तोभके देखनेतैं॥

---

५६३ ऊकार अरु आदित्यके अन्य प्रकारसैं सादृश्यकूं कहैहैं॥

५६४ एकारके सामान्यतैं निवहकी दृष्टि एकाररूप स्तोभविषै करनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं॥

५६५ औहोयिकारकी विश्वेदेवनकी दृष्टिकरि उपासनाविषै हेतुकूं कहैहैं॥

प्रजापति हिङ्कार है । काहेतें प्रजापतिकूं नि-[५६६]रुक्तिका अविषय होनेतें औ हिङ्कारकूं अव्यक्त होनेतें ॥ प्राण स्वर है । कहिये "स्वर" ऐसा स्तोभ है । काहेतें प्राणकूं औ (स्वरकूं) स्वरहेतुताके सामान्यतें ॥ अन्न या है। कहिये "[५६७]या" ऐसा स्तोभ अन्न है । [५६८]अन्नकरि जातें यह जाताहे । यातें तिस सामान्यतें ॥ वाक् ऐसा स्तोभ विराट् (अन्नरूप वा देवताविशेष) है । काहेतें [५६९]विराट् संबंधि सामविषै स्तोभके देखनेतें ॥ २ ॥

---

५६६ प्रजापतिकी दृष्टिकरि हिंकारकी उपास्यताविषै हे-तुकूं कहैहैं ॥ इहां प्रजापतिकूं नील पीतादिरूपसैं निरुक्तिका अविषय होनेतें । यह अर्थ है औ अव्यक्त होनेतें । याका रू-पादिरहित होनेतें । यह अथ है ॥ अरु प्राणके । इस चकारतें अरु स्वरके । यह अर्थ है औ स्वरकी हेतुता कहिये ताकी निर्वाहकताकरि तदात्मकता है ॥

५६७ "अन्न या है" या वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

५६८ अन्नकी दृष्टि "या" इस स्तोभविषै कर्तव्य है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

५६९ विराट्की दृष्टि वाक् इस स्तोभविषै करनेकूं योग्य है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः सञ्चरो हुंकारः ॥ ३ ॥

अर्थः–अनिरुक्त सञ्चर त्रयोदश स्तोम हुंकार है ॥ ३ ॥

टीकाः–अनिरुक्त है [570]अव्यक्त होनेतैं। यह है अरु यह है ऐसैं निर्वचन करनेकूं शक्य नहीं होवैहै यातैं सञ्चर है । अर्थ यह जोः–विकल्पमान स्वरूपवाला है ॥ ॥ कौंन यह है? यह कहैहैंः–त्रयोदश स्तोभरूप हुंकार है। [571]अव्यक्तरूप जातैं यह है। यातैं आनिरुक्तविशेषहीं उपास्य है। यह अभिप्राय है ॥ ३ ॥

---

५७० अनिरुक्त जो कारणात्मा है । ताके अनिरुक्तपनैकूं साधते हैं ॥ इहां औ सो अनेकप्रकारकरि कार्यरूपसैं सञ्चरता है यातैं सञ्चर है औ हुंकार बी है औ शाखाभेदकरि विकल्प्यमानस्वरूपवाला त्रयोदश है कहिये "यह हीं लोक" ऐसैं आरंभकरिके गण्यमान (परिगणित) है औ तातैं कारण दृष्टिकरि हुंकारकूं उपासन करै। यह अर्थ है ॥

५७१ उक्त अर्थकूंहीं उपपादन करै हैं ॥ इधर तहां विकल्प्यमानका रूप हेतु है ॥

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं । यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति । य एतामेवँ

अर्थः—इसके अर्थ वाक् दोहकूं दोहन करैहै । जो वाक्का दोह है । अन्नदान् अन्नाद होवैहै । जो इस ऐसी सामोंकी उप-

---

टीका:— [572]स्तोभरूप अक्षरोंकी उपासनाके फलकूं कहैहैः—इसकेअर्थ वाक् दोहकूं दोहन करैहै । यह वाक्य पूर्व उक्त अर्थवाला है ॥ जो इस ऐसी उक्त लक्षणवाली सामोंकी सामके अवयवरूप स्तोभरूप अक्षरोंकूं विषय करनेवाली उपनिषत् (दर्शन)कूं जानताहै । ताकूं यह यथोक्त (जैसा कहा तैसा) फल होवैहै । यह अर्थ है ॥ इहां दो[573] अभ्यास अध्यायकी परिसमाप्ति

---

५७२ ये व्यस्त उपासन नहीं हैं । काहेतैं प्रत्येकके फलके अश्रवणतैं । किन्तु समस्तरूप फेर एक यह उपासन है। काहेतैं एक फलवाला होनेतैं । इस अभिप्रायकरिके कहैहैं ॥

५७३ उपनिषत्कूं जानताहै । उपनिषत्कूं जानताहै ।

सान्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद ॥ ४ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदि प्रथमप्रपाठकस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥ १३ ॥

समाप्तोऽयं प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥

निषत्कूं जानताहै । उपनिषत्कूं जानता है ॥ ४ ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां प्रथमप्रपाठकस्य त्रयोदशः खण्डः समाप्तः ॥१३॥

अर्थ है । वा सामके अवयवविषयक उपसन विशेषकी परिसमाप्तिके अर्थ है । इति ॥ ४ ॥

इति श्री छान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां प्रथमप्रपाठकस्य त्रयोदशः खंडः समाप्तः ॥ १३ ॥

समाप्तेयं प्रथमप्रपाठकभाष्यभाषादीपिका ॥ १ ॥

इस आवृत्तिके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां प्रथमप्रपाठक (अध्याय)के व्याख्यानकी समाप्तिविषै "इति" शब्द है ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां प्रथमप्रपाठकगत-त्रयोदशखंडस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

समाप्तोयं प्रथमप्रपाठकस्य टिप्पणिका ॥ १ ॥

अथ श्रीद्वितीयप्रपाठकारंभः २

समस्तसामके उपासन २४

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदो द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥१॥

ॐ समस्तस्य खलु साम्न उपासनꣳ

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थः—समस्त सामका उपासन साधु

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायाः द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥१॥

साधुदृष्टिसैं समस्त सामकी उपासना ४

टीकाः—"ॐ ऐसा यह अक्षर है" इत्यादि वाक्यकरि सामके अवयवविषयक अनेकफलवाला उपासन उपदेश किया औ अनन्तर स्तोभके अक्षरोंकूं विषयकरनेवाला उपासन कहा। सर्वथा बी सामके एकदेशसैं सम्बन्धवालाहीं सो

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायाः द्वितीयप्रपाठकगतप्रथमखंडस्य टिप्पणं प्रारभ्यते १

१ पूर्व उत्तर प्रपाठक (अध्याय)नकी सङ्गतिकूं दिखावै-

साधु । यत्खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते। यदसाधु तदसामेति ॥ १ ॥

है । जो साधु है सो साम है । ऐसें कहते हैं:--जो असाधु है सो असाम है । ऐसें ॥१॥

है इति ॥ अनन्तर अब समस्त सामविषै समस्तसामकूं विषयकरनेवाले उपासनोंकूं कहूंगी । ऐसें श्रुति आरंभ करैहै ॥ [2]जातैं एकदेशके उपासनके अनन्तर एकदेशीकूं विषयकरनेवाला उपासन कहियेहै । यह युक्त है:--[3]समस्तका कहिये सर्व अवयवोंकरि विशिष्टका । अर्थ यह

है ॥ इहां सर्वथावी । याका सामके अवयवरूप विषयवान्ताके हुये अरु स्तोभके अक्षररूप विषयवान्ताके हुये । यह अर्थ है औ इति शब्द हेतुके अर्थ है:--कहिये जातैं एकदेशविषयक उपासन कहे तातैं वे समस्तविषयक कहनेकूं योग्य हैं । यह इति शब्दका अर्थ है ॥ औ एकदेशके उपासनके व्याख्यानकी अनन्तरता अथशब्दका अर्थ है ॥

२ उक्त अरु वक्ष्यमाण उपासनोंका यह पूर्व अपरपना कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥

३ ननु समस्तका उपासन साधु (श्रेष्ठ) है । इस वचनतैं जो अवयवका उपासन है सो निन्दित होनेतैं अनुष्ठान करनेकूं योग्य नहीं है ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥

जोः—पांच भक्तिवालेका अरु सात भक्तिवालेका । [इहां "खलु" यह शब्द वाक्यके अलङ्कारअर्थ है] उक्तप्रकारके सामका उपासन साधु (शोभन) है । इहां समस्त सामविषै साधु दृष्टिके विधिपर होनेतैं साधुशब्दकूं पूर्वउक्त उपासनोंकी निंदारूप अर्थवान्ता नहीं है ॥ ॥ नँनु पूर्वत्र अविद्यमान जो साधुपना सो समस्त सामविषै कहियेहै [यातैं अर्थात् निन्दा है] ? येंह कथन बनै नहींः—काहेतैं "साधु साम है । ऐसैं उपासताहै" ऐसैं उपसंहारतैं साधु शब्द शोभनरूप अर्थका वाची है ॥ ॥ नँनु यह कैसैं जानियेहै ? यह कहैहैंः—जो लोकविषै साधु कहिये शोभन (अनवद्य) प्रसिद्ध है । सो साम

---

४ अर्थतैं साधुशब्दका अर्थ पूर्व उक्त उपासनकी निन्दा है ? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

५ पूर्वविषैबी विद्यमानहीं साधुपनैके विशेषणभावकारि अग्रहणतैं अर्थतैंबी निन्दा नहीं है । ऐसैं सिद्धान्ती परिहार करैहैं ॥

६ "जो खलु" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करनेकूं पातनिकाकूं कहैहैं ॥

७ वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥

तद्धुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव तदाहुरसाम्नैन-

अर्थः–तहांहीं बी कहतेहैंः–सामकरि इसके प्रति उपगमन करताभया ऐसें। साधुकरि इसके प्रति उपगमन करताभया

है। ऐसें कुशल पुरुष कहतेहैं औ जो असाधु कहिये विपरीत है। सो असाम है। ऐसें [कहतेहैं] ॥ १ ॥

टीकाः–तहांहीं साधु अरु असाधुके विवेकके करणविषै उपायभेदके विकल्पअर्थ बी कहतेहैंः–सामकरि इस राजाके प्रति अरु सामन्तके प्राति उपगमन करताभया ॥ कौन यह किः–जिसतें असाधुभावकी प्राप्तिकी आशंका है सो। यह अभिप्राय है ॥ शोभन अ-

८ फेर ऐसे विवेकके करणविषै कारण क्या है ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥ इहां विवेककरणके उपायके भेदके विकल्पअर्थ "उत" ऐसा उभयत्र (दोनूं वाक्यनविषै) पद है ॥

९ "सामकरि इसके प्रति" इत्यादि वाक्यकरि "साधु-

मुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव त-
दाहुः ॥ २ ॥

ऐसैंहीं ताकूं कहतेहैं ॥ औ असामकरि इ-
सके प्रति उपगमन करताभया ऐसें । अ-
साधुकरि इसके प्रति उपगमन करताभया
ऐसैंहीं ताकूं कहतेहैं ॥ २ ॥

भिप्रायसैं साधुकरि इसके प्रति उपगमन
करताभया । ऐसैंहीं है ॥ तहां लौकिकजन
बंन्धन आदिक असाधु कार्यकूं नहीं देखतेहुये
कहतेहैं ॥ ¹¹जैंहां फेर विपर्यय है किः—बन्धन
आदिक असाधुकार्यकूं देखतेहैं । तहां असा-
मकरि इसके प्रति उपगमन करताभया ।

करि" इत्यादि वाक्यकी पुनरुक्तिकूं आशङ्काकरिके । व्याख्यान अरु व्याख्यान करनेयोग्यके भावतैं ऐसैं मति कहो । यह कहैहैं ॥ इहां शोभनाभिप्रायकरि । याका शोभन कार्यके दर्शनके होते । यह अर्थ है ॥

१० तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

११ "असामकरि" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

अथोताप्याहुः साम नो बतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुरसा·

अर्थः—अनन्तरहीं बी कहतेहैं:—साम हमारेकूं प्राप्तभया ऐसैं। जो साधु होवैहै। साधु है। ऐसैंहीं ताकूं कहतेहैं। असाम ऐसैं असाधुकरि इसके प्रति उमगमन करताभया। ऐसैंहीं ताकूं कहतेहैं ॥ २ ॥

टीकाः—[12]अनन्तर उपायभेदके विकल्प अर्थ बी कहतेहैं:—[13]स्वसंवेद्य साम हमारेकूं बत है कहिये अनुकंपाकरनेवालेतैं प्राप्तभया है। ऐसैं कहतेहैं ॥ [14]यह तिनोंकरि उक्त होवैहैः—जो साधु

१२ कार्यकरि गम्य साधुपनैकूं अरु असाधुपनैकूं कहिके। अब स्वानुभवकरि गम्य तिस उभयकूं उपन्यास करैहैं॥ इहां कार्यतैं तिसके साधुपनैं आदिकके विवेककी अनन्तरता अथ शब्दका अर्थ है औ स्वसंवेद्य (स्वानुभवगम्य)। साधुपना अरु असाधुपना। यह शेष है ॥

१३ तहां साधुपना स्वानुभवकरि सिद्ध है। इस अर्थकूं व्युत्पादन करैहैं ॥

१४ "जो साधु" इत्यादि वाक्यकी पूर्ववाक्यसैं पुनरुक्तिकूं आशङ्काकरिके कहैहैं ॥

म नो बतेति यदसाधु भवत्यसाधु बते-
त्येव तदाहुः ॥ ३ ॥

स य एतदेवं विद्वान् साधु सामेत्यु-

हमारेकूं प्राप्तभया ऐसैं। जो असाधु हो-
वैहै। असाधु है। ऐसैंहीं ताकूं कहतेहैं॥३॥

अर्थः—सो जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया

होवैहै सो साधु है ऐसैंहीं ताकूं कहतेहैं॥
औ विपर्ययके[15] भये असाम हमकूं भया ऐसैं।
[16]जो असाधु होवैहै असाधु भया ऐसैंहीं
ताकूं कहते हैं। [17]जातैं साम अरु साधु इन दो
शब्दनकी एकार्थता सिद्ध है ॥ ३ ॥

टीकाः—यातैं सो जो कोई बी"साधु साम

---

१५ "असाम" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं॥ इहां बत (खेद है) ऐसैं कहते हैं। इस रीतिसैं सम्बन्ध है॥

१६ तिनोंकरि क्या उक्त होवैहै ? सो कहैहैं॥

१७ साधु शब्द शोभनका वाची है। ऐसैं उक्त अर्थकूं उपसंहार करैहैं॥ इहां तिन (साम अरु साधु) इन दो शब्दनकी एकअर्थवानूता "यातैं" शब्दका अर्थ है॥

पास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳसाधवो धर्म्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः ॥ ४ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदि द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः समाप्तः ॥ १ ॥

साधु साम है ऐसैं उपासताहै । इसकूं साधु धर्म आवतेहैं औ भोग्यभावकरि उपस्थित होतेहैं। ऐसा जो है सो अभ्यासहीं (शीघ्रहीं) होवैहै ॥ ४ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः समाप्तः॥१॥

है" ऐसैं सामकूं साधुगुणवाला जानता हुया [१८] समस्त साधुगुणवाले सामकूं उपासताहै ताकूं यह फल होवैहैः—इस उपासकके प्रति साधु (शोभन) श्रुति स्मृतिसैं अविरुद्ध धर्म आवते-

---

१८ उपासककूंहीं विशेषण देते हैं ॥ इहां आवते हैं ऐसा जो है सो क्षिप्र (शीघ्र) है । ऐसैं क्रियाका विशेषणपना यत् (जो) इस पदका देखनेकूं योग्य है ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत-प्रथमखण्डस्य टिप्पणं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः॥
लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत ॥

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वि॰प्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः२

अर्थः—लोकनविषै पञ्चविध सामकूं उ-

हैं ॥ केवल आवतेहैं ऐसैं नहीं किन्तु भोग्यभा-वकरि उपस्थित होवैहैं। ऐसा जो (फल) है सो अभ्यास (शीघ्र) हीं होवैहै ॥ यह अर्थ है ॥४॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
द्वितीय प्रपाठकस्य प्रथमः खंडः समाप्तः ॥१॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपा॰ द्वितीयः खंडः २

लोकदृष्टिसैं पञ्चविधसामोपासना २

टीकाः—कौंन फेर वे साधुदृष्टिकरि विशिष्ट समस्त साम उपास्य हैं? यातैं वे कहियेहैं:— लोकनविषै पञ्चविध सामकूं उपासन करै। इत्यादिक ॥ ॥ [१९] ननु लोक आदिककी दृष्टि-

अथ द्वितीयप्रपाठकगत-द्वितीयखण्डस्य टिप्पणम् १

१९ ननु एककूं उभयदृष्टिकी विषयता अयुक्त है। जातैं घटदृष्टिका गोचरहुया पटदृष्टिका बी गोचर नहीं होवैगा? ऐसैं पूर्ववादी शङ्का करैहै ॥

पृथिवी हिङ्कारोऽग्निःप्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्द्ध्वेषु ॥ १ ॥

पासन करै। पृथिवी हिङ्कार है। अग्नि प्रस्ताव है। अन्तरिक्ष उद्गीथ है। आदित्य प्रतिहार है। द्यौः निधन है। ऐसैं ऊर्ध्वनविषै ॥ १ ॥

करि वे (साम) उपास्य हैं औ साधुदृष्टिकरि [उपास्य हैं] यह विरुद्ध है? यह कथन बनै नहीं:—काहेतैं लोकादि कार्यनविषै साधु शब्दके अर्थरूप कारणकूं अनुगत होनेतैं घटादि विकारनविषै मृतिकाआदिककीन्यांई ॥ साधु श-

---

२० एकविषैवी प्रस्तुतदृष्टिकाद्वय अविरुद्ध है। ऐसैं सिद्धान्ती समाधान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं घटआदिकनविषै मृत्तिकाआदिक अनुगत है। ऐसैं साधु शब्दके अर्थरूप कारणकूं लोक आदिक कार्यनविषै अनुगत होनेतैं ताकी दृष्टिविषै साधुकी दृष्टिके अनुगमतैं एक ठिकानैं दो दृष्टिका विरोध नहीं है ॥

२१ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां साधु शब्दके अर्थकी

ब्दका वाच्यअर्थ धर्म है वा ब्रह्म है। सर्वथा वी लोकादिकार्यनविषै अनुगत है॥ यातें जैसैं जहां घटादि दृष्टि है तहां सो (घटादि दृष्टि) मृतिकाआदिककी दृष्टिकरि अनुगत हीं है॥ ऐसैं लोकआदिककी जो दृष्टि है सो साधुदृष्टिकरि अनुगतहीं है। काहेतें लोकआदिकनकूं धर्मआदिकका कार्य होनेतें॥ ॥ [22]यद्यपि ब्रह्म अरु धर्मका कारणपना समान है। तथापि धर्महीं साधुशब्दका वाच्य है। ऐसैं युक्त है।

लोकनविषै अनुगति अपि (वी) शब्दका अर्थ है औ "जहां" ऐसैं देवदत्तकी उक्ति है औ सो घटादिककी दृष्टि है। तहां। यह शेष है॥

२२ ननु साधु शब्दके अर्थरूप धर्म अरु ब्रह्मका तुल्यकारणपना है। तैसैं हुये इहां साधुशब्दका अर्थ व्यवस्थित नहीं होवैगा औ अनेक अर्थवान्तारूप अन्याय होवैगा? यह आशङ्काकरिके कहैहैं॥ इहां धर्महीं। इसठिकाने तथापि ऐसैं कहनेकूं योग्य है। औ परमानंदरूप ब्रह्मविषैतौ साधुशब्द भक्तिकरि जाननेकूं योग्य है औ धर्मकी निमित्तकारण होनेतैं कार्यविषै अनुगति नहीं है ऐसैं कहनेकूं योग्य नहीं है। काहेतैं कर्मके अपूर्वसहित दधि दुग्धआदिकनके अवयवनके समुदायकूं धर्म होनेतैं औ कार्यकूं ताका परिणाम होनेतैं। तिस कार्यविषै ताकी अनुगतिकी सिद्धितैं। ऐसैं देखनेकूं योग्य है॥

काहेतैं "साधुकारी साधु होवैहै" ऐसैं धर्मविषै साधुशब्दके प्रयोगतैं ॥ ॥ [23]ननु लोकआदिक कार्यनविषै कारणकूं अनुगत होनेतैं अर्थतैं प्राप्तहीं ता (साधु)की दृष्टि है। यातैं "साधु साम है। ऐसैं उपासताहै" ऐसैं कहनेकूं योग्य नहीं है? सो बनै नहीं:—काहेतैं [24]तौ(साधु)की दृष्टिकूं शास्त्रगम्य होनेतैं। [25]जातैं सर्वत्र शास्त्रकरि प्रापितहीं धर्म उपास्य हैं। विद्यामान बी अशास्त्रीय [धर्म उपास्य] नहीं ॥ ॥ पृथिवी आदिक लोकनविषै पञ्चविध कहिये पंचभक्तिके भेदकरि पांचप्रकारके साधु समस्त सामकूं उपासनकरै ॥ ॥ कैसैं कि:—पृथिवी हिङ्कार है ॥ इहां "लोक[26]नविषै" ऐसी

२३ अपूर्वपनैके अभावकरि पूर्ववादी विधिके प्रति आक्षेप करैहै ॥

२४ कारणके अनुगमकी अनुमानकरि सिद्धताके हुयेबी ताकी दृष्टिका कर्तापना अपूर्व हीं है। ऐसैं सिद्धान्ती परिहार करैहैं ॥

२५ "औ जो अर्थतैं अर्थ है सो चोदना(विधि)रूप अर्थवाला नहीं है" इस न्यायकरि उक्तकूं विवरण करैहैं ॥

२६ "लोकनविषै" इत्यादि वाक्यमैं पञ्चविध सामकी

जो सप्तमी है ताकूं प्रथमापनैकरि पलटायके पृथिवीदृष्टिकरि हिङ्काररूप ध्येयके होते। पृथिवी हिङ्कार है। ऐसैं उपासनकरै॥ वा लो[27]कविषयक सप्तमीकी श्रुतिकूं पलटायके हिङ्कार आदिकनविषै पृथिवीआदिककी दृष्टिकूं करिके उपासनकरै॥ [28]तहां पृथिवी हिङ्कार है।

दृष्टिकरि लोकनकी उपास्यताकी प्रतीतितैं इहांबी हिङ्कारकी दृष्टिकरि पृथिवीकी ध्येयताके प्राप्तहुये प्रत्युत्तर कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—लोक जे हैं सो पञ्चविध साम है। ऐसैं उपासन करै। इस रीतिसैं विभक्तिके विपरिणामसैं प्रथमवाक्यके अर्थके पर्यवसानतैं ताके अनुसारकरि इहांबी पृथिवीकी दृष्टिकरि हिङ्काररूप ध्येयके हुये। पृथिवी हिङ्कार है ऐसैं पृथिवीकी दृष्टिकूं आरोप करिके हिङ्कारकूं उपासन करै। ऐसैं द्वितीय वाक्य पर्यवसानकूं पावता है॥

२७ लोकनसैं सम्बन्धवाली सप्तमी हिङ्कार आदिकनविषै अरु तिनसैं सम्बधवाली द्वितीया लोकनाविषै लगावनेकूं योग्य है। तैसैं हुये लोकविषयक सप्तमीकी श्रुति हिङ्कार आदिकनविषै औ तिनसैं सम्बधवाली द्वितीया लोकनविषै व्यत्यय (स्परस्परविषै परस्परका आरोप)करिके पृथिवी आदिककी दृष्टिकूं हिङ्कार आदिकनविषै करिके उपासन करै। ऐसैं अन्यपक्षकूं कहैहैं॥

२८ "ब्रह्मदृष्टि उत्कर्षतैं है" इस न्यायकरि पक्षद्वयकूं कहिके। अब प्रतिवाकयकूं व्याख्यान करैहैं॥ इहां "तहां"

[२९]प्रथमताके सामान्यतैं॥ अग्नि प्रस्ताव है। [३०]अग्निविषै जातैं कर्म प्रस्तुत करियेहै औ प्रस्ताव भक्ति है॥ अन्तरिक्ष उद्गीथ है। [३१]अन्तरिक्ष जातैं गगन है औ गकारविशिष्ट उद्गीथ है॥ आदित्य प्रतिहार है। मेरे प्रति मेरे प्रति ऐसैं [३२]प्रति प्राणिनकूं अभिमुख होनेतैं॥ द्यौः (स्वर्ग) निधन है। [३३]जातैं इहांतैं गये प्राणी

इस सप्तमीका उक्त रीतिसैं अन्यउपासनके प्रस्तुत हुये। यह अर्थ है॥

२९ अभ्यासकूं सादृश्यका कारण होनेतैं स्पष्ट सादृश्यके अभाव हुयेबी जिस किस प्रकासैं सादृश्य कल्पना करनेकूं योग्य है ऐसैं मानिके कहैहैं॥ इहां लोकनविषै पृथिवीकी औ सामोंविषै हिङ्कारकी प्रथमता है। तिस सामान्यतैं। यह उक्त हेतुका अर्थ है॥

३० अग्निकी दृष्टिकरि प्रस्तावके उपासनविषै प्रस्तावपनैंरूप सामान्यकूं कहैहैं॥

३१ अन्तरिक्षकी दृष्टिकरि उद्गीथके उपासनविषै गकारसैं सम्बंधरूप सादृश्यकूं दिखावै हैं॥

३२ आदित्यकी दृष्टिकरि प्रतिहारकी उपासनाविषै प्रतिशब्दके सामान्यरूप हेतुकूं कहैहैं॥

३३ स्वर्गकी दृष्टिकरि निधनके उपासनविषै निधनतारूप सामान्यकूं कहैहैं॥

अथाऽऽवृत्तेषु ॥ द्यौर्हिङ्कार आदित्यः

अर्थः—अनन्तर आवृत्तनविषै। द्यौः हिङ्कार है। आदित्य प्रस्ताव है। अन्तरिक्ष

स्वर्गविषै निधान (स्थापन) करियेहैं ॥ [34]इस रीतिसैं ऊर्ध्वगत लोकनविषै लोकदृष्टिकरि सामका उपासन है ॥ १ ॥

टीकाः—[35]अनन्तर आवृत्तनविषै कहिये नीचे मुखवाले लोकनविषै पांच प्रकारका सामका उपासन कहियेहै । [36]जातैं गति अरु आगति

---

३४ उक्त उपासनकूं उपसंहार करैहैं ॥

३५ "अनन्तर आवृत्तनविषै" या वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां पृथिवीआदिक स्वर्गपर्यन्त लोकनविषै पञ्चविधसामके उपासनके कथनतैं अनन्तरता अथशब्दका अर्थ है ॥

३६ पूर्व उत्तर ग्रन्थनके परस्परतैं विरोधकूं शङ्काकरिके परिहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—वा जैसैं वे लोक गति (गमन) विशिष्ट हैं तैसी दृष्टिकरिहीं हिङ्कारआदिकका उपासन विधानकिया औ जैसैं आगति (परलोकतैं आगमन) विशिष्ट वे लोक हैं तैसी दृष्टिकरिहीं तिनका उपासन विधान करिये है। तैसैंहुये शास्त्र अनुसारकरि क्रियमाण दो उपासनोंका विरोध नहीं है ॥

प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ॥ २ ॥

उद्गीथ है। अग्नि प्रतिहार है। पृथिवी निधन है ॥ २ ॥

(गमनागमन) करि विशिष्ट लोक हैं। जैसैं वे हैं तैसी दृष्टिकरिहीं सामका उपासन विधान करियेहै:-[३७]जातैं ऐसैं है यातैं आवृत्त लोकनविषै। द्यौः (स्वर्गलोक) हिङ्कार है। [३८]प्रथम होनेतैं॥ आदित्य प्रस्ताव है। [३९]जातैं आदित्यके उदित हुये प्राणीनके कर्म प्रस्तुत करिये

३७ दो प्रकारकी उपासनारूप विषयवाले पूर्व अपररूप दोग्रन्थनके विरोधके अभावकूं अनुवादकरि फलित उपासनकूं दिखावैहैं ॥

३८ स्वर्गलोककी दृष्टिकरि हिङ्कारकी उपास्यताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां आवृत्तिविषै औ स्वर्गलोकके आरम्भविषै हिङ्कारकी प्रथमता देखनेकूं योग्य है ॥

३९ आदित्यकी दृष्टिकरि प्रस्तावकी उपास्यताविषै हेतुकूं कहैहैं॥ इहां पूर्ववत्। ऐसैं गकार अक्षरका सामान्य विवक्षित है ॥

कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृ-

अर्थः—इसकेअर्थ ऊर्ध्व औ आवृत्त लोक समर्थ होतेहैं। जो इसकूं ऐसैं विद्वान्

हैं ॥ अन्तरिक्ष उद्गीथ है। पूर्ववत् [गकारका सामान्य है] ॥ अग्नि प्रतिहार है। ⁴⁰प्राणीनकरि अग्निके प्रतिहरणतैं ॥ पृथिवी निधन है। तहां (स्वर्ग)तैं आगत प्राणीनके इहां (पृथिवीविषै) निधन (स्थापन)तैं ॥ २ ॥

टीकाः—उपासनका फलः—इसके अर्थ ऊर्ध्व औ आवृत्त गति आगति विशिष्ट लोक समर्थ होतेहैं। अर्थ यह जोः—भोग्यभावकरि व्यवस्थित होतेहैं। जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया लोकनविषै "पञ्चविध समस्त साधु साम

---

४० अग्निकी दृष्टिकरि प्रतिहारकी उपासनाविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां प्रतिहरण कहिये इहांतैं तहांतैं यज्ञसंबंधि वस्तुकूं लेजाना है। सोई प्रतिहार शब्दका अर्थ है । ताके कर्ताकूं प्रतिहर्ता कहैहैं ॥

त्ताश्च। य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः३

वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपासीत ॥ पुरो

हुया लोकनविषै पञ्चविध सामकूं उपासता-है ॥ ३ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्र०द्वितीयःखण्डः२

अथ श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०तृतीयः खण्डः ॥३॥

अर्थः–वृष्टिविषै पञ्चविधसामकूं उपा-

है" ऐसें उपसताहै ॥ ऐसें[41] सर्वत्र कहिये[42] पञ्च-विधविषै अरु सप्तविधविषै योजना है ॥ ३ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपाठकस्य द्वितीयः खण्डः२

अथ श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा० तृतीयः खण्डः ३

वृष्टिदृष्टिसैं पञ्चविधसामोपासना २

टीकाः–वृष्टिविषै पञ्चविध सामकूं उपा-

४१ साधु । यह पद सर्वत्र देखनेकूं योग्य है । ऐसें कहैहैं ॥

४२ यह सर्वत्र । इस पदकी व्याख्या है ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत-द्वितीयखण्डस्य टिप्पणं ॥ २ ॥

वातो हिङ्कारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ॥ १ ॥

सन करैः—पुरोवात हिङ्कार है । मेघ उपजताहै सो प्रस्ताव है । वर्षताहै सो उद्गीथ है । विद्योतन करैहै गर्जन करैहै सो प्रतिहार है ॥ १ ॥

सन करैः—इहां लोकैंनकी[43] स्थितिकूं वृष्टिरूप निमित्तवाली होनेतैं या (तदुपयोगी वृष्टि)की अनन्तरता है ॥ पुरोवात हिङ्कार है । जैंतैं[44] पुरोवातसैं आदिलेके उद्ग्रहणपर्यन्त वृष्टि है । जैसैं साम हिङ्कारसैं आदिलेके निधनपर्यन्त है ।

अथ द्वितीयप्रपाठकगत तृतीयखण्डस्य टिप्पणम् ३

४३ ननु लोकदृष्टिकरि सामकी उपासनाके अनन्तर वृष्टिकी दृष्टिकरि ता सामकी उपासना क्यूं उपन्यास करियेहै ? तहां कहैहैं ॥

४४ पुरोवातकी दृष्टिकरि हिङ्कारके उपासनविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां उद्ग्रहण कहिये वर्षाका उपसंहरण (समाप्ति) है ॥

उद्गृह्णाति तन्निधनं । वर्षति हास्मै

अर्थः—उद्ग्रहण करैहै सो निधन (अन्त) है ॥ इसके अर्थ वर्षताहै । वर्षावताहै । यातैं पुरोवात हिङ्कार है । प्रथम[45] होनेतैं ॥ मेघ उपजताहै सो प्रस्ताव है । जातैं[46] वर्षाकालविषै मेघके जननमैं वृष्टिका प्रस्ताव है ऐसी प्रसिद्धि है ॥ वर्षताहै सो उद्गीथ है । श्रेष्ठ[47] होनेतैं । विद्योतन करैहै अरु गर्जन करैहै सो प्रतिहार है प्रतिहृत[48] (विप्रकीर्ण) होनेतैं ॥१॥

टीकाः—उद्ग्रहण करैहै सो निधन है । संमा[49]

४५ अतः (यातैं) शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

४६ मेघके जन्मकी दृष्टिकरि प्रस्तावकी उपासनाविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

४७ वर्षणकी दृष्टिकरि उद्गीथके उपासनविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

४८ विद्योतन (बीजली) अरु स्तनयित्नु (मेघशब्द)की दृष्टिकरि प्रतिहारके उपासनविषै कारणकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विद्युतनका अरु स्तनयित्नुनका प्रतिहृतपना कहिये विप्रकीर्णपना (फैलना) है । तिसकरि प्रतिशब्दके सादृश्यतैं विद्योतन आदिककी दृष्टिकरि प्रतिहारकी उपासना कर्तव्य है ॥

४९ उद्ग्रहणकी दृष्टिकरि निधनके उपासनविषै कारणकूं कहैहैं ॥

वर्षयति ह । य एतदेवं विद्वान् वृष्टौ प-
ञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया वृष्टिविषै पं-
चविधसामकूं उपासताहै ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभा०द्वितीयप्रपा०तृतीयः खण्डः ३

भिके सामान्यतैं ॥ उपासनका फलः—इसके
अर्थ इच्छातैं (इच्छाके अनुसार) वर्षताहै ।
तैसैं वृष्टिके नँ होते बी आप वर्षावताहै । जो
इसकूं । इत्यादि पूर्वकी न्यांई है ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वि०प्रपाठकस्य तृतीयःखण्डः ॥ ३ ॥

---

५० ननु मेघके वर्षते हुये ताका अनुमन्तापना अकिञ्चि-
त्कर है ? यह आशङ्काकरिके कहैहैं ॥

इति द्वितीयप्रपाठकंगत तृतीयखण्डस्य टिप्पणं ॥ ३ ॥

समस्तसामके उपासन २४

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्थः खंडः४

सर्व्वास्वप्सु पञ्चविधꣳसामोपासीत॥ मेघो यत् सम्प्लवते स हिङ्कारो यद्वर्षति

अथ श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०चतुर्थः खंडः ॥४॥

अर्थः—सर्व जलोंविषै पंचविध सामकूं उपासन करैः—मेघ जो संप्लव करैहै सो हिंकार है। जो वर्षताहै सो प्रस्ताव है। जे

अथ श्री० भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा० चतुर्थः खण्डः॥४॥

जलदृष्टिसैं पञ्चविधसामोपासना २

टीकाः—सर्व जलोंविषै पञ्चविध सामकूं उपासन करैः—वृष्टिपूर्वक[51] होनेतैं सर्व जलोंकी अनन्तरता है॥ मेघै[52] जो संप्लवन करैहै कहिये मेघ जब उन्नत (उंचा) हुया एकीभाव-

---

अथ द्वितीयप्रपाठकगत चतुर्थखंडस्य टिप्पणं॥४॥

५१ ननु वृष्टिकी दृष्टिके अनन्तर जलोंकी दृष्टि सामविषै क्यूं धारण करियेहै? तहां कहैहैं॥

५२ मेघके संलपवकी दृष्टिकरि हिंकारकूं आरंभके सामान्यतैं उपासन करै। ऐसैं कहैहैं॥

स प्रस्तावो याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतीहारः समुद्रो निधनम् ॥ १ ॥

प्राची स्यंदन (वहन) करैहैं सो उद्गीथ है। जे प्रतीचीयां हैं सो प्रतिहार है । समुद्र निधन है ॥ १ ॥

वकरि परस्पर घनी होवैहै। तब संप्लवन करैहै ऐसैं कहियेहै। मेघ [जब संप्लवन करैहै] तब जलोंका आरंभ होवैहै। सो हिंकार है ॥ जो वर्षताहै सो प्रस्ताव है। आप[५३] (जल) सर्व ओरतैं व्याप्त होनेकूं प्रस्तुत हैं ॥ जे प्राची नदीयां वहन करैहैं सो उद्गीथ है। श्रेष्ठ होनेतैं ॥ जे प्रतीची नदीयां हैं सो प्रतिहार

---

५३ वर्षणकी दृष्टिकरि प्रस्तावकी उपास्यताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां पूर्वदिशाके तरफ जानेवालीयां प्राचीरूप नदियां गंगादिक हैं। पश्चिमदिशाके तरफ जानेवालियां प्रतीचीरूप नादीयां तो नर्मदा आदिक हैं। यह भेद है ॥

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान् भवति। य एतदेवं विद्वान् सर्व्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अर्थः—जलोंविषै मरता नहीं। जलवान् होवैहै। जो इसकूं ऐसें विद्वान् हुया सर्व जलोंविषै पंचविध सामकूं उपासता है ॥ २ ॥

इति श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰चतुर्थः खंडः४

है। प्रतिशब्दके सामान्यतैं ॥ समुद्र निधन है। जलोंकूं तिस निधनवाले होनेतैं ॥ १ ॥

टीकाः—जलोंविषै मरता नहीं [५४]जो नहीं इच्छताहै तो। जलवाला होवैहै। यह फल है ॥ २ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपा॰चतुर्थः खंडः ॥ ४ ॥

५४ तब गंगाआदिकाविषै अपेक्षितबी मरण नहीं होवैगा? ऐसें जो कहे। तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—यह उपासक मरुस्थलीनविषैबी यथा इच्छा उदकवान् होवैहै ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत चतुर्थखंडस्य टिप्पणं ॥ ४ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य पंचमः खंडः ५

ऋतुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत ॥ वसन्तो हिङ्कारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा

अथ श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०पंचमः खंडः ॥ ५ ॥

अर्थः—ऋतुनविषै पंचविध सामकूं उपासन करैः—वसन्त हिंकार है । ग्रीष्म

अथ श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा०पंचमःखण्डः ॥५॥

ऋतुदृष्टिसैं पञ्चविधसामोपासना २

टीकाः—ऋतुनविषै पंचविध सामकूं उपासन करैः—ऋँतुनकी व्यवस्थाकूं यथोक्त निमित्तवाली होनेतैं याकी अनन्तरता है ॥ वसंत हिंकार है । प्रथम होनेतैं ॥ ग्रीष्म प्रस्ताव है । यवादिकका संग्रह जातैं वर्षाके अर्थ प्रस्तुत करियेहै ॥ वर्षा उद्गीथ है । प्रधान होनेतैं ॥

अथ द्वितीयप्रप्राठकगत पंममखंडस्य टिप्पणं ॥५॥

५५ जलकी दृष्टिके अनंतर ऋतुनकी दृष्टि सामविषै क्यूं आरोप करियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां ऋतुनकी व्यवस्थाके अनुसार तहां क्रियाका विशेषण है ॥

उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ॥ १ ॥

कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान् भवति । य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

प्रस्ताव है । वर्षा उद्गीथ है । शरत् प्रतिहार है । हेमन्त निधन है ॥ १ ॥

अर्थः—इसकेअर्थ ऋतुआं समर्थ होवैहैं । ऋतुमान् होवैहै । जो इसकूं ऐसैं विद्वान्हुया ऋतुनविषै पंचविध सामकूं उपासताहै ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०पंचमःखंडः ५

शरत् प्रतिहार है । रोगीनके अरु मृतनके प्रतिहरणतैं ॥ हेमंत निधन है । निवात (शीतता)विषै प्राणिनके निधन (मरण)तैं ॥ १ ॥

टीकाः—फल कहियेहैः—इस उपासककेअर्थ ऋतुआं ऋतुव्यवस्थाके अनुसार भोग्य होनेकरि

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥६॥

पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीताजा

अथ श्री० मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥

अर्थः—पशुनविषै पंचविध सामकूं उ-

समर्थ होवैहैं औ ऋतुमान् होवैहै । अर्थ यह जोः—[५६]ऋतुनविषै होनेवाले भोगनकरि संपन्न होवैहै ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा० पंचमः खंडः ॥ ५ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा० द्वितीयप्रपा० षष्ठः खण्डः ॥६॥

पशुदृष्टिसैं पञ्चविधसामोपासना २

टीकाः—पशुनविषै पंचविध सामकूं उपासन करैः—[५७]ऋतुनके सम्यक् व्यतीत भये पशु-

---

५६ किसीवी नहीं उपासना करनेवालेकूंबी क्रमसैं तिस तिस ऋतुके फलके भोगके भागीपनैके संभवतैं यह उपासनके अनुसार फल नहीं है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां संपन्न । सर्वदा स्व इच्छाके वशतैं । यह शेष है ॥

इति द्वितीप्रपाठकगतपंचमखंडस्य टिप्पणं ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकगत षष्ठखंडस्य टिप्पणं ॥ ६ ॥

५७ ऋतुदृष्टिके अनंतर सामविषै पशुदृष्टिके आरोपविषै कारणकूं कहैहैं ॥

हिङ्कारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथो-
ऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ॥ १ ॥

पासन करैः-अजा हिंकार है । अवियां प्र-
स्ताव है । गौआं उद्गीथ है । अश्व प्रतिहार
है । पुरुष निधन है ॥ १ ॥

नके योग्य संबंधि काल होवैहै । यातें इनकी
अनंतरता है ॥ अजा हिंकार है । [58]प्रधान हो-
नेतें वा प्रथम होनेतें । "[59]अज पशुनके मध्य प्र-
थम है" इस श्रुतितें ॥ अवियां (मेष) प्रस्ताव
है । अजा अरु अविनके साहचर्यके देखनेतें ॥
गौआं उद्गीथ है । श्रेष्ठ होनेतें ॥ अश्व प्र-

---

५८ अजादृष्टिकरि हिंकारके उपासनविषै दो हेतुनकूं क-
हैहैं ॥ इहां अजाकी यज्ञसैं संबंधतैं प्रधानता है । प्रथमता तो
प्रथमपाठतैं है । ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥

५९ "मनुष्यनके मध्य ब्राह्मण । पशुनके मध्य अज । जातैं
मुखतैं सृजे हैं। तातैं वे मुख्य हैं" या श्रुतिकूं अजाकी प्रधान-
ताविषै प्रमाण करैहैं ॥ इहां "तातैं अजा अरु सवियां भये ॥
इस श्रुतितैं अजाओंका अरु अविनका साहचर्य है औ हिंकार
अरु प्रस्तावका साहचर्य प्रसिद्ध है ॥

भवन्ति हास्य पशवः पशुमान् भवति । य एतदेवं विद्वान् पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥

अर्थः—इसकूं पशु होवैहैं । पशुमान् होवैहै । जो इसकूं ऐसैं विद्वान्हुया पशुनविषै पंचविध सामकूं उपासताहै ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०षष्ठःखंडः ॥६॥

तिहार है । पुरुषनके प्रतिहरणतैं ॥ पुरुष निधन (आश्रय) है । पशुनकूं पुरुषरूप आश्रयवाले होनेतैं ॥ १ ॥

टीकाः—फल कहियेहैः—इसके पशु होवैहैं। पशुमान् होवैहै । अर्थ यह जोः—[६०]पशुनके फलरूप भोग अरु त्यागआदिकनकरि जुडताहै॥२॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा० षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥

---

६० "पशुमान् होवैहै" इसका पूर्वसैं पुनरुक्तिपनैंकूं परिहार करैहैं ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत-षष्ठखंडस्य टिपणम् ॥ ६ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः ७

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत ॥ प्राणो हिङ्कारो वाक् प्रस्ता-

---

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

अर्थः—प्राणोंविषै पंचविध परोवरीयसामकूं उपासन करैः—प्राण (घ्राण) हिंकार है।

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठकस्य सप्तमःखंडः७

प्राणादिदृष्टिसैं पंचविधसामोपासना २

टीकाः—[६१]प्राणोंविषै पंचविध परोवरीयः सामकूं उपासन करै। अर्थ यह जोः—पर पर वरीयसपनेरूप गुणवाले प्राणकी दृष्टिकरि विशिष्ट सामकूं उपासन करैः—प्राण ([६२]घ्राण)

अथ द्वितीयप्रपाठकगत सप्तमखंडस्य टिप्पणं ॥७॥

६१ प्राणोंकी स्थितिकूं पशुनतैं उत्पन्न दुग्ध घृतआदिक निमित्तवाली होनेतैं ताकी दृष्टिके अनन्तर प्राणदृष्टिकरि सामकी उपासनाकूं प्रसङ्गविषै प्राप्त करैहैं ॥

६२ प्राणशब्दकी मुख्यप्राणरूप विषयवान्‌ताकूं व्यावृत्तन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—मुख्यप्राणतैं पीछलोंकी श्रेष्ठताके

वक्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो नि-
धनं। परोवरीयाꣳसि वा एतानि ॥ १ ॥

वाक् प्रस्ताव है । चक्षु उद्गीथ है । श्रोत्र प्रतिहार है । मन निधन है । ये परोवरीय हीं हैं ॥ १ ॥

हिंकार है। उत्तर उत्तर अतिश्रेष्ठनके मध्य प्रथम होनेतें ॥ वाक् प्रस्ताव है। [63] वाक्करि जातें सर्व प्रस्तुत करियेहै [यातैं] प्राण (घ्राण) तैं वाक् अतिशय श्रेष्ठ है । वाक्करि अप्राप्त बी कहियेहै। प्राप्तहीं गंधका तो ग्राहक घ्राण है ॥ चक्षु उद्गीथ है। चक्षु [64] वाक्के अत्यन्त

असंभवतैं ताकी सर्वतैं श्रेष्ठताकूं निर्धारित होनेतैं अतिशय श्रेष्ठ वाक्आदिकनके मध्य प्रथम भावि होनेकरि उक्त होनेतैं घ्राणहीं इहां प्राणशब्दका वाच्य है ॥

६३ प्राण (घ्राण)तैं वाक्का श्रेष्ठपना कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां अप्राप्तपना कहिये व्यवहितपना (अंतरायसहित पना) ॥

६४ चक्षुकी श्रेष्ठताकूं साधतेहैं ॥ इहां वाक्के । याका शब्दके । यह अर्थ है ॥ औ वाक्तैं । याका शब्दतैं । यह अर्थ है ॥

परोवरीयो हास्य भवति परोवरी-

अर्थः–इसका परोवरीय [जीवन] हो-

बहुत विषयकूं प्रकाशताहै यातें वाक्तें अतिशय श्रेष्ठ है अरु श्रेष्ठ[६५] होनेतें उद्गीथ है॥ श्रोत्र प्रतिहार है प्रतिहृत होनेतें। औ सर्वओरकरि श्रवणतें श्रोत्र चक्षुतें अतिशय श्रेष्ठ है॥ मन निधन है। मनविषै जातें पुरुषके भोग्य होनेकरि सर्व इंद्रियनकरि ग्रहण किये विषय स्थापन करियेहैं। औ श्रोत्रतैं मनका अतिशय श्रेष्ठपना है। काहेतें सर्व इंद्रियनके विषयनविषै मनकूं व्यापक होनेतें।[६६] अतींद्रिय (इंद्रिय अगोचर) विषय बी मनका गोचर हीं होवैहै। यातें मनका अतिशय श्रेष्ठपना है॥ यथोक्त हेतुनतें ये प्राण आदिक अतिशय श्रेष्ठ हीं हैं॥ १॥

टीकाः–जो इस दृष्टिकरि विशिष्ट परोव-

---

६५ चक्षुकी उद्गीथताविषै हेतुकूं कहैहैं॥
६६ मनकी अतिश्रेष्ठताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं॥ इहां

यसो ह लोकाञ्जयाति । य एतदेवं विद्वान् प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्त इति तु पञ्चविधस्य ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः॥ ७ ॥

वैहै। परोवरीय (अतिश्रेष्ठ) हीं लोकनकूं जय करैहै। जो इसकूं ऐसें विद्वान्हुया प्राणोंविषै पंचविध परोवरीय (अतिश्रेष्ठ) सामकूं उपासताहै । ऐसें तो पंचविधका [उपासन कहा] ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०सप्तमःखंडः ७

रीयः सामकूं उपासताहै इसका परोवरीयः (सर्वतैं श्रेष्ठ) जीवन होवैहै । यह वाक्य उक्त अर्थवाला है ॥ ऐसें तो पंचविध सामका उपासन कहा ॥ इस रीतिसैं सप्तविध वक्ष्यमाण विषयविषै बुद्धिके समाधान अर्थ है। जातैं पंच-

---

यातैं अतिशय श्रेष्ठपना है । ऐसैं पूर्वसैं संबंध हैऔ वाकूकरि अप्राप्त बी कहिये है । इत्यादि यथोक्त हेतु है ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकस्याष्टमः खंडः॥८॥

अथ सप्तविधस्य ॥ वाचि सप्तवि-
धꣳ सामोपासीत ॥ यत्किञ्च वाचो हु-

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰स्याष्टमःखंडः ॥ ८ ॥

अर्थः—अनंतर सप्तविधका:—वाक्‌विषै
सप्तविध सामकूं उपासनकरैः—जो कछुक

विधविषै निरपेक्ष[६७] हुया पुरुष वक्ष्यमाणविषै
बुद्धिकूं समाधान (स्थापन) करताहै ॥ २ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठकस्य सप्तमःखण्डः॥७॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठकस्याष्टमःखंडः ८

वाक्‌दृष्टिसैं सप्तविधसामोपासना ३

टीकाः—अनंतर[६८] सप्तविध समस्त सामका

---

६७ उक्त उपसंहारके अभावके हुयेबी वक्ष्यमाण अर्थविषै बुद्धिका समाधान क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत सप्तमखंडस्य टिप्पणं ॥ ७ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकगताष्टमखंडस्य टिप्पणम् ॥८॥

६८ अधिक संख्याके ज्ञानकूं अल्पसंख्याके ज्ञानपूर्वक होनेतैं पंचविध उपासनाके अनंतर सप्तविध उपासनकूं प्र-

मिति स हिङ्कारो यत्प्रेति स प्रस्तावो यदेति स आदिः ॥ १ ॥

वाक्का "हुं" ऐसैं है सो हिंकार है। जो "प्र" ऐसैं है सो प्रस्ताव है। जो "आ" ऐसैं है सो आदि है॥ १ ॥

साधुरूप यह उपासन आरंभ करियेहैः—इहां "वाक्विषै" यह सप्तमी पूर्ववत् है। अर्थ यह जोः—वाक्दृष्टिकरि[६९] विशिष्ट सप्तविध सामकूं उपासन करै ॥ जो कछु वाक् (शब्द) का "हुं" ऐसा जो विशेष है सो हिंकार है। हकारके सामान्यतैं ॥ जो "प्र" ऐसा श-

---

स्तुत करैहैं ॥ इहां पूर्ववत् । याका लोकनविषै । याकी न्यांई सप्तमी लगानेकूं योग्य है । यह अर्थ है ॥

६९ वाक्शब्दकरि शब्दका सामान्य जाति कहियेहै ताकूं सप्तप्रकारसैं विभागकिये सामके अवयवोंविषै आरोपकरिके उपासन कर्तव्य है । ऐसैं वाक्यके अर्थकूं कहैहैं ॥

७० "जो कछु वाक्का" या वाक्यका ग्रहण है । ताके अर्थकूं कहैहैं ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगताष्टमखंडस्य टिप्पणं ॥ ८ ॥

यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ॥ २ ॥

अर्थः—जो "उत्" ऐसें है सो उद्गीथ है। जो "प्रति" ऐसें है सो प्रतिहार है। जो "उप" ऐसें है सो उपद्रव है। जो "नि" ऐसें है सो निधन है ॥ २ ॥

ब्दका रूप है सो प्रस्ताव है। प्रके सामान्यतैं जो "आ" ऐसें है सो आदि है। आकारके सामान्यतैं ॥ इहां "आदि" ऐसें ॐकार कहियेहै। सर्वका आदि होनेतैं ॥ १ ॥

टीकाः—जो "उत्" ऐसें है सो उद्गीथ है। उद्गीथकूं उत् पूर्वक होनेतैं ॥ जो "प्रति" ऐसें है सो प्रतिहार है। प्रतिके सामान्यतैं ॥ जो "उप" ऐसें है सो उपद्रव है। उपद्रवकूं उपसैं आरंभवाला होनेतैं ॥ जो "नि" ऐसें है सो निधन है। नि—शब्दके सामान्यतैं ॥ २ ॥

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं । यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति । य एतदेवं विद्वान्वाचि सप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अर्थः–इसकेअर्थ वाक् दोहकूं दोहन करैहै । जो वाक्का दोह है । अन्नवान् अन्नाद होवैहै । जो ऐसैं इसकूं विद्वान् हुया वाक्विषै सप्तविध सामकूं उपासताहै ॥ ३ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०अष्टमःखण्डः८

टीकाः–इसके अर्थ दोहन करैहै" इत्यादिरूप वाक्य पूर्वउक्तअर्थवाला है ॥ ३ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपाठकस्याष्टमः खण्डः॥८॥

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य नवमः खंडः ॥९॥

अथ खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपासीत ॥ सर्वदा समस्तेन साम ।

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपाठ॰नवमः खण्डः ॥९॥

अर्थः—अनंतर प्रसिद्ध उस आदित्यरूप सप्तविध सामकूं उपासन करैः—सर्वदा सम है। तिस करि साम है। "मेरे

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठ॰नवमः खण्डः॥९॥

आदित्यदृष्टिसैं सप्तविध सामोपासना ८

टीकाः—[71]अवयवमात्र सामविषै आदित्यदृष्टि पंचविधपदार्थनविषै प्रथम अध्यायमैं कही। अब प्रसिद्ध उस आदित्यकूं समस्त सामविषै अवयवनके विभागसैं आरोप करिके सप्तविध

अथ द्वितीयप्रपाठकगत नवमखंडस्य टिप्पणं ॥ ९॥

७१ ननु वाक्दृष्टिके अनन्तर आदित्यकी दृष्टि विधान करियेहै ताकूं वाक्मय होनेतैं औ ताका विधान युक्त नहीं है। काहेतैं पूर्वबी आदित्यदृष्टिकरि विशिष्ट उपासनकूं उपदिष्ट होनेतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

मा प्रति मा प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥ १ ॥

प्रति मेरेप्रति" ऐसैं सर्वकरि सम है। तिसकरि साम है ॥ १ ॥

सामकूं उपासन करै ॥ ॥ फेर[72] आदित्यकूं सामपना कैसैं है? यँह[73] कहियेहै:—उद्गीथपनैं-विषै हेतुकीन्यांई आदित्यके सामपनैंविषै हेतु है ॥ ॥ कौंन[74] यह है कि:—सर्वदा सम है। वृद्धि अरु क्षयके अभावतैं ॥ तिस हेतुकरि साम आदित्य है। सो मेरेप्रति[75] मेरेप्रति ऐसैं तुल्य बुद्धिकूं उत्पादन करैहै यातैं सर्वसैं सम

७२ ताकी सामरूपताविषै हेतुकूं पूर्ववादी पूंछताहै ॥

७३ "सर्वदा" इत्यादि वाक्यकूं उत्तर होनेकरि सिद्धान्ती ग्रहण करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"उच्च हुये आदित्यकूं गावतेहैं" यह आदित्यकी उद्गीथरूपताविषैहेतु श्रुतिमैं कहा है। तैसैं ताकी सामरूपताविषैबी हेतु कहियेहै ॥

७४ ताहीकूं प्रश्नपूर्वक विवरण करैहैं ॥ इहां "न उदेता (न उदय होनेवाला) है। न अस्तमेता (न अस्तकूं पावनेवाला) है" इत्यादि देखनेतैं। यह अर्थ है ॥

७५ "मेरे प्रति" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

है। यातैं।अर्थ यह जोः-सम होनेतैं साम है॥ ७६उद्गीथ भक्तिके सामान्य वचनतैं हीं लोक आदिकनविषै उक्त सामान्यतैं हिंकार आदिकपना जानियेहै। यातैं हिंकार आदिकपनैविषै कारण नहीं कहा। ७७सामपनैविषै फेर सविताका अनुक्त कारण सुबोध नहीं है। यातैं समपना कहा॥ १॥

---

७६ अन्य शब्दकी अन्यत्र वृत्ति किंचित् निमित्तविना नहीं होवैहै। यातैं आदित्यकी सामरूपताविषै हेतु जब कहियेहै तब ताके भेदनकी हिंकारादिरूपताविषैबी काहेतैं श्रुतिनैं निमित्त नहीं कहा? यह आशंका करिके कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः-आदित्यका उद्गीथके साथि ऊर्ध्वभावरूप सामान्य श्रुतिनैं कहा। ताके अनुसारकरि अस्मदुक्त प्रथमताआदिक सामान्य है॥ जैसैं पृथिवीआदिकनविषै हिंकारआदिकपना जानियेहै। तैसैं आदित्यके प्रभेदनकावी हिंकारआदिकपना जाननेकूं शक्य है। यातैं श्रुतिनैं तिनके तिस भावविषै कारण नहीं कहा॥

७७ तब सामभावविषैबी कारणकी कल्पनाके संभवतैं कारण कहनेकूं योग्य नहीं है? यह आशंका करिके कहैहैं॥ इहां समपना। याका तहां निमित्त। यह अर्थ है॥

तस्मिन्निमानि सर्व्वाणि भूतान्य-
न्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदया-

अर्थः—तिसविषै ये सर्वभूत अनुगत हैं ऐसैं जानना। ताका जो उदयतैं पूर्व

टीकाः—तिंस आदित्यविषै अवयवनके विभागसैं ये वक्ष्यमाण सर्व भूत आदित्यके प्रति उपजीव्य (आश्रित) भावकरि अनुगत हैं। ऐसैं जानना॥ ॥[७९] कैसैं किः—तिस आदित्यका जो उदयतैं पूर्व धर्मरूप है सो हिंकार भक्ति है। तहां यह सामान्य हैः—जो ताका हिंकार भक्तिरूप है इस आदित्यरूप सामके तारूपके प्रति गाआदिक पशु अनुगत हैं। अर्थ यह जोः—तिस भक्तिरूपके प्रति उपजी-

७८ "सर्वसैं सम" ऐसैं उक्तकूं स्पष्ट करैहैं॥

७९ वेदन(ज्ञान)के प्रकारकूं प्रश्नपूर्वक प्रकट करैहैं॥ इहां धर्मरूप है। सुखकर होनेतैं। अर्थ यह जोः—धर्मका कार्यस्वरूप है। ताकी दृष्टिकरि हिंकारके उपासनविषै प्रथमता हेतु है॥

समस्तसामके उपासन २४

त्स हिङ्कारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिंकुर्वन्ति हिंकारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ २ ॥

[रूप] है सो हिंकार है। इसके ता (रूप) के प्रति पशु अनुगत हैं। तातैं वे हिंकारकूं करतेहैं। जातैं इस सामके हिंकारके भाजी हैं ॥ २ ॥

वन करैहैं ॥ जांतैं ऐसैं है तांतैं उदयतैं पूर्व वे पशु हिंकार करतेहैं। तातैं इस आदित्य नामक सामके हिंकारके भजनेवाले हैं । तिस भक्तिरूप भजनशील होनेतैं हीं वे ऐसैं वर्तते हैं ॥ २ ॥

---

८० पशु जे हैं वे यथोक्त आदित्यके रूपकेप्रति उपजीवन करैहैं। इस अर्थविषै क्या प्रमाण है ? सो कहैहैं ॥

८१ तिन पशुनके हिंकरणकूं साधते हैं ॥ इहां ताकी भक्तिरूप भजनशील होनेतैं इसतैं पूर्वहीं तातैं याका संबंध है ॥ औ सविताके प्रथम उदित होते जो ताका रूप है ताकी दृष्टिकरि प्रस्तावकी उपास्यताविषै पूर्वतैं अनन्तरता हेतु है ॥

अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्त-
दस्य मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते

अर्थः—अनंतर जो प्रथम उदितके हुये है सो प्रस्ताव है। इसके ता (रूप)के प्रति मनुष्य अनुगत हैं। तातैं वे प्रस्तुतिकाम

टीकाः—अनंतर जो प्रथम उदित हुये सविताका रूप है सो इस आदित्य नामक सामका सो प्रस्ताव है। इसके ता रूपके प्रति मनुष्य अनुगत हैं। पूर्वकी[82] न्यांई[83]। तातैं वे

८२ जैसैं उदयतैं प्राचीन (पूर्व)के रूपके प्रति पशुनकरि उपजीवन करिये है तैसैं। यह कहैहैं॥

८३ उदयतैं पराचीन (पीछेके) वा आदित्यके रूपके प्रति मनुष्य उपजीवन करैहैं। इस अर्थविषै लिंगकूं कहैहैं॥ इहां प्रत्यक्ष अरु परोक्षभावकरि प्रस्तुति अरु प्रशंसाका भेद है औ गोशब्दके वाच्य सूर्यकी किरणोंका जगत्‌रूप मंडलके साथि संगमन कहिये संबंधका गमन। यह अर्थ है औ वत्सनके साथि संगमन ऐसे संबंध है औ संगवकालके आदित्यके रूपकूं आरोपकरिके आदिभक्तिरूप ओंकारकी उपास्यताविषै दोनूंके आकारका सामान्य हेतु है॥

प्रस्तुतिकामाः प्रशꣳसाकामाः प्रस्ता-
वभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ३ ॥
अथ यत्संगववेलायाꣳ स आदि-

अरु प्रशंसाकाम हैं। जातैं इस सामके प्र-
स्तावके भाजी हैं ॥ ३ ॥
अर्थः—अनंतर जो संगववेलाविषै है

प्रस्तुति अरु प्रशंसाकूं कामनाकरतेहैं ।
जातैं इस सामके प्रस्तावके भजनेवाले हैं ३॥
टीकाः—अनंतर जो संगववेलाविषै । गौ
जे सूर्यकी रश्मियां तिनका संगमन । गौव-
नका वत्सनके साथि संगम जिसवेलाविषै हो-
वैहै सो संगववेला है । तिस कालविषै जो सू-
र्यका रूप है सो आदि भक्तिविशेष ओंकार
है । इसके ता रूपके प्रति पक्षी अनुगत हैं॥
जातैं ऐसैं है तातैं वे पक्षी अंतरिक्षविषै अ-

---

८४ पक्षिनका यथोक्त आदित्यका रूप उपजीव्य है । तिस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां ऋजु मध्यन्दिनविषै जो आदित्यका रूप है ताकी दृष्टिकरि उद्गीथके उपासनविषै श्रेष्ठता हेतु है ॥

स्तदस्य वया१ँस्यन्वायत्तानि । तस्मा-त्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्बणान्यादायाऽऽ-त्मानं परिपतन्त्यादिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ॥ ४ ॥

अथ यत्सम्प्रति मध्यन्दिने स उ-

सो आदि है । इसके ता(रूप)के प्रति पक्षी अनुगत हैं । तातैं वे अंतरिक्षविषै आलंबन रहित हुये आत्मा (शरीर)कूं लेके परिपतन करते (उडते) हैं । जातैं इस सामके आदिके भाजी हैं ॥ ४ ॥

अर्थः—अनन्तर जो अबी मध्यंदिन-

नारंबण (अनालंबन) हुये आत्माकूं हीं आलंबनपनैंकरि ग्रहण करिके गमन करतेहैं । [जातैं ऐसैं है] यातैं आकारके सामान्यतैं इस सामकी आदि भक्तिके भजनेवाले हैं ॥ ४ ॥

टीकाः—अनंतर अब मध्यंदिनविषै । अर्थ यह जोः—ऋजु मध्यंदिनविषै है । सो उद्गीथ

द्गीथस्तदस्य देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्यानामुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ५ ॥

विषै है सो उद्गीथ है। इसके ता(रूप)के प्रति देव अनुगत हैं। तातैं वे प्राजापत्यनके मध्य सत्तम हैं। जातैं इस सामके उद्गीथके भाजी हैं ॥ ५ ॥

भक्ति है। इसके ता रूपके प्रति देव अनुगत हैं। तिसँ कालविषै द्योतन (प्रकाशन)के अतिशयतैं। तातैं वे प्रजापतिके संतानोंके मध्य सत्तम (विशिष्टतम) हैं। जातैं इस सामके उद्गीथके भाजी हैं ॥ ५ ॥

---

८५ तिसकाल संबंधि आदित्यके रूपकी देवनकरि उपजीव्यताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

८६ तथापि ताकी देवनकरि उपजीव्यता (आश्रयता) कैसैं है? ऐसैं जो कहै। तहां कहैहैं ॥

आदित्यदृष्टिसैं सप्तविधसामोपासना ८

अथ यदूर्ध्वं मध्यन्दिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वाय-

---

अर्थः—अनंतर जो मध्यन्दिनतैं ऊर्ध्व अरु अपराह्णतैं पूर्व है सो प्रतिहार है। इसके ता(रूप)के प्रति गर्भ अनुगत हैं।

टीकाः—अनंतर मैंध्यंदिनतैं ऊर्ध्व अरु अपराह्णतैं पूर्व जो सविताका रूप है सो प्रतिहार है इसके ता रूपके प्रति गर्भ अनुगत हैं। यांतैं वे सविताके प्रतिहार भक्तिरूपसैं ऊर्ध्व

---

८७ "अनंतर जो ऊर्ध्व" या वाक्यकूं लेके व्याख्यान करैहैं॥ इहां ताकी दृष्टिकरि प्रतिहारके उपासनाविषै प्रति-शब्दका सामान्य हेतु है। काहेतैं तिस कालविषै सविताके अस्तगिरिके प्रति हरणतैं॥

८८ यथोक्त आदित्यका रूप गर्भौंकरि उपजीव्य है इस अर्थविषै गमककूं कहैहैं॥ इहां ऊर्ध्व। याका योनितैं उपर जठरके प्रति। यह अर्थ है औ यातैं। याका जातैं गर्भ पूर्वोक्त विशेषणवाले हैं यातैं। यह अर्थ है औ तिसके द्वार कहिये पतनके द्वार॥

त्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नावपद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ६ ॥

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्यारण्या अन्वायत्तास्त-

---

तातैं वे प्रतिहृत हुये नीचे पडते नहीं जातैं इस सामके प्रतिहारके भाजी (भजनेवाले) हैं ॥ ६ ॥

अर्थः—अनंतर जो अपराह्णतैं ऊर्ध्व अरु अस्तमयतैं पूर्व [सूर्यका रूप] है सो उपद्रव है। इसके ता(रूप)के प्रति अर-

---

प्रतिहृत हुये अधःपतन होते नहीं। अर्थ यह जोः—तिस द्वारके होते बी ॥ जातैं गर्भ इस सामके प्रतिहारके भाजी हैं ॥ ६ ॥

टीकाः—अनन्तर अपराह्णतैं ऊर्ध्व अरु

---

८९ तहां इस कालसंबंधि आदित्यकी दृष्टिकरि उपद्रवकूं उपासन करै। काहेतैं ताके तब अस्ताचलके प्रति उपद्रवणतैं। ऐसैं कहैहैं ॥

स्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षꣳ श्वभ्रमित्युपद्र-
वन्त्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥७॥

ण्यके पशु अनुगत हैं। तातैं वे पुरुषकूं दे-
खिके कक्ष (वन) के प्रति श्वभ्र (गुहा)
के प्रति ऐसैं (भयशून्य जानिके) उपगमन
करतेहैं। जातैं इस सामके उपद्रवके भाजी
हैं ॥ ७ ॥

अस्तमयतैं पूर्व जो रूप है सो उपद्रव है।
इसके ता रूपके प्रति अरण्यके पशु अनु-
गत हैं। ^(१०) तातैं वे पुरुषकूं देखिके भयभीत
होते हैं। कक्ष (अरण्य)के प्रति श्वभ्र (गुहा)
के प्रति "भय शून्य है" ऐसैं जानिके उपद्रवण
(उपगमन)करतेहैं। जातैं देखिके उपद्रवणतैं वे
इस सामके उपद्रवके भाजी हैं ॥ ७ ॥

१० अरण्यके पशुनके यथोक्तरूपमय उपजीवनकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां श्वभ्र कहिये गर्त (खड्डा)। अर्थ यह जोः— गुहा ॥ औ सो सविताका रूप यह शेष है औ ताकी दृष्टिकरि निधनके उपासनविषै समाप्तिका सामान्य हेतु है ॥

अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं। तदस्य पितरोऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्न

अर्थः—अनंतर जो प्रथम अस्तमितके हुयेहै सो निधन(अंत)है।इसके ता(रूप)के प्रति पितर अनुगत हैं। तातैं तिनकूं स्थापन करतेहैं। जातैं इस सामके निधनके

टीकाः—अनंतर प्रथम अस्तमित हुये कहिये सविताके अदर्शनके प्रति गमन करनेकी इच्छावान् हुये जो रूप है सो निधन है। इसके ता रूपके प्रति पितर अनुगत हैं। [९१]तातैं तिनकूं पिता पितामह अरु प्रपितामहरूपसैं वा तिनके अर्थ पिंडनकूं दर्भनविषै स्थापन करैहैं। जातैं निधनके सम्बंधतैं वे

---

९१ यथोक्त आदित्यका रूप पितरनकरि उपजीव्य है। इस अर्थविषै गमककूं कहैहैं॥ इधर तहां तहां जो अथशब्द है सो तिस तिस उपासनकी अनन्तरतारूप अर्थवाला व्याख्यान करनेकूं योग्य है॥

एवं खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥ ८ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

भाजी हैं ॥ ऐसैं प्रसिद्ध उस आदित्यरूप सप्तविध सामकूं उपासताहै ॥ ८ ॥

इति श्री० मूलभाषा० द्वितीयप्रपा० नवमःखंडः ९

पितर इस सामके विधनके भाजी हैं । [९२]ऐसैं अवयवकरि सप्तधा विभक्त प्रसिद्ध उस आदित्यरूप सप्तविध सामकूं उपासताहै जो । ताकूं ताकी प्राप्तिरूप फल होवैहै । यह वाक्यशेष है ॥ ८ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० द्वितीयप्रपा० नवमः खंडः ॥ ९ ॥

---

९२ "ऐसैं खलु (प्रसिद्ध)" इत्यादि वाक्यकेप्रति अपेक्षितकूं पूरणकरते हुये व्याख्यान करैहैं ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगतनवमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ९ ॥

अथ द्वितीयप्रपा॰दशमः खंडः ॥ १० ॥

अथ खल्वात्मसम्मितमतिमृत्यु स-

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰ दशमःखंडः॥ १० ॥

अर्थः–अनंतर प्रसिद्ध अतिमृत्यरूप

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपा॰दशमः खंडः ॥१०॥

आदित्य(रूप मृत्यु)केजयकरि सप्तविधसामोपासना ६

टीकाः–[९३]मृत्यु आदित्य है। काहेतैं अहोरात्रादि कालकरि जगत्का प्रमापयिता होनेतैं। ताके अतितरण अर्थ यह सामका उपासन उपदेश करियेहैः– अनंतर प्रसिद्ध [९४]आदित्यरूप मृत्युविषयक सामके उपासनके। आत्मसंमित कहिये अपने अवयवनकी तुल्य-

---

अथ द्वितीयप्रपाठकगतदशमखण्डस्य टिप्पणम् १०

९३ "अनंतर प्रसिद्ध आत्मसंमित" इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

९४ अनंतर। इसपदके अपेक्षितकूं डालते हैं ॥ इहां स्व (अपने) शब्दकरि साम कहिये है। ताके अवयव जे हिंकारआदिक हैं तिनके नामके अक्षरोंकी तीनपनैकरि तीनपनैकरि तुल्यतासैं मित (ज्ञात) साम है ॥ यह अर्थ है ॥

प्तविधꣳ सामोपासीत। हिंकार इति त्र्य-
क्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ॥१॥

सप्तविध सामकूं उपासन करैः—" हिंकार" यह तीन अक्षरवाला [नाम] है। "प्रस्ताव" यह तीन अक्षरवाला है। सो सम है ॥ १ ॥

ताकरि मित वा परमात्मासैं[९५] तुल्यताकरि संमित ऐसैं मृत्युके जयका हेतु होनेतैं अतिमृत्युरूप [[९६]जैसैं प्रथम अध्यायविषै उद्गीथ भक्तिके ना-

९५ जैसैं परमात्माका ज्ञान मृत्युतैं मोक्षण (छूटने)का हेतु है। तैसैं यह उपासन बी है। यातैं अन्य अर्थकूं कहैहैं ॥

९६ इहां कैसा उपासन विवक्षित है ? इस अपेक्षाके हुये दृष्टांतसहित उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां उद्गीथ ऐसा उद्गीथरूप भक्ति (भाग)का नाम है ताके अक्षर। यह अर्थ है औ सामपनैकूं तिन नामके अक्षरोंके। ऐसैं अध्याहार करनेकूं योग्य है औ ताका उपासन। याका तिन अक्षरनका आदित्यकी दृष्टिकरि उपासन। यह अर्थ है औ मृत्युगोचर अक्षरनकी संख्याकरि एकविंशतिपनैरूप सो एक है। अनेक अक्षरनविषै तिनके सामान्यकरि तिन अक्षरनविषै आदित्यदृष्टिकरि मृत्युरूप आदित्यकूं। यह अर्थ है अरु अतिक्रमणकेअर्थ ताका साधन उपासन। यह शेष है ॥

मके अक्षर "उद्गीथ" ऐसैं उपास्यपनैंकरि कहे। तैसैं इहां सामके सप्तविध भक्तिवाले नामके अक्षर तिनकूं मिलायके तीन तीनकरि समतासैं सामपनैंकूं परिकल्पना करिके उपास्यपनैकरि कहियेहैं। ताके उपासनकरि मृत्युगोचर अक्षरनकी संख्याके सामान्यकरि तिसमृत्युकूं पायके तिसतैं अतिरिक्त अक्षरसैं तिस आदित्यरूप मृत्युके अतिक्रमणअर्थहीं संक्रमणकूं कल्पताहै]। अतिमृत्युरूप सप्तविध सामकूं उपासन करै ॥ मृत्युकूं[९७] अतिरिक्त अक्षरोंकी संख्याकरि अतिक्रांत है यातैं अतिमृत्यु साम है। ताकी प्रथम भक्ति (विभाग)के नामके अक्षर कहियेहैं ॥ "हिंकार" यह तीन अक्षरवाला भक्तिका नाम है औ "प्रस्ताव" ऐसा

९७ अतिमृत्यु है मृत्युके अत्यय (नाश)का हेतु होनेतैं। ऐसैं उक्तकूं हीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां नामके अक्षर कहियेहैं। यह शेष है औ आदिके अक्षरनाविषै। याका आदिभक्तिके नामके दोअक्षरनविषै। यह अर्थ है औ तिस प्रक्षेप (डालने)करि सो आदिभक्तिका नाम प्रतिहारके नामसैं तुल्य हीं है। यह अर्थ है ॥

आदिरिति द्व्यक्षरं । प्रतिहार इति चतुरक्षरं । तत इहैकं तत्समम् ॥ २ ॥

अर्थः–“आदि” यह दो अक्षरवाला है। “प्रतिहार” यह च्यारी अक्षरवाला है। जिनतैं इहां एककूं [मिलायके] सो सम है ॥ २ ॥

इस भक्तिका तीन अक्षरवालाहीं नाम है। सो पूर्वसैं सम है ॥ १ ॥

टीकाः–“आदि” यह दोअक्षरवाला नाम है। सप्तविध सामकी संख्याका पूरण ओंकार “आदि” ऐसैं कहियेहै ॥“प्रतिहार” यह च्यारीअक्षरवाला नाम है। तिसतैं इहां एक अक्षरकूं अवच्छेदकरिके आदि भक्तिके नामके दो अक्षरनाविषै डालियेहै। तिसकरि सो सम हीं होवैहै ॥ २ ॥

समस्तसामके उपासन २४

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ ३ ॥
निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भ-

अर्थः—"उद्गीथ" यह तीन अक्षरवाला है। "उपद्रव" यह च्यारी अक्षरवाला है। तीन तीनकरि सम होवैहै। अक्षर अधिक होवैहै। तीनअक्षरवाला है। सो सम है ॥३॥
अर्थः—"निधन" यह तीन अक्षरवाला

टीकाः—"उद्गीथ" यह तीन अक्षरवाला। "उपद्रव" यह च्यारी अक्षरवाला नाम तीन तीनकरि सम होवैहै। एक अक्षर अधिक होवैहै। तिसकरि विषमताके प्राप्तहुये सामकी समताके करणअर्थ कहैहैं:—सो एकबी हुया "अक्षर" ऐसैं तीन अक्षरवालाहीं। होवैहै यातैं सो सम है ॥ ३ ॥
टीकाः—"निधन" ऐसा तीन अक्षरवाला

वति । तानि ह वा एतानि द्वाविंशति-
रक्षराणि ॥ ४ ॥

एकविंशत्यादित्यमाप्नोत्येकविं-

है। सो सम हीं होवैहै। वे प्रसिद्ध ये द्वा-
विंशति अक्षर हैं ॥ ४ ॥

अर्थः—एकविंशतिकरि आदित्यकूं पा-

नाम है सो समहीं होवैहै ॥ ऐसैं[९८] तीन अ-
क्षरनकी समताकरि सामपनैंकूं संपादनकरिके
यथाप्राप्तहीं अक्षर संख्याके विषय करियेहैं
(गिनियेहैं):—वे प्रसिद्ध ये सप्त भक्तिनके
नामके अक्षर द्वाविंशति (बावीश) हैं ॥ ४ ॥

टीकाः—तहां एकविंशति अक्षरनकी सं-
ख्याकरि आदित्यरूप मृत्युकूं पावताहै । जातैं
एकविंश (एकवीशवां) इस लोकतैं संख्याकरि

---

९८ ननु उक्तरीतिकरि चतुर्विंशति (चोवीश) अक्षर हैं। तातैं "वे प्रसिद्ध ये द्वाविंशति (बावीश) अक्षर हैं यह कैसैं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

शो वा इतोऽसावादित्यो द्वाविꣳशेन परमादित्याज्जयति तन्नाकं तद्विशोकम् ॥ ५ ॥

वताहै। एकविंश हीं इसतैं यह आदित्य है॥ द्वाविंशकरि आदित्यतैं परकूं जय करैहै सो नाक है सो विशोक है ॥ ५ ॥

यह आदित्य है ॥ "[९९]द्वादशमास। पांच ऋतु औ तीन ये लोक हैं। यह आदित्य एकविंश है", इस श्रुतितैं अवशिष्ट बावीशवें एक अक्षरकरि मृत्युरूप आदित्यतैं परकूं जय करैहै। अर्थ यह जोः—पावताहै ॥ ॥ औ जो आदित्यतैं पर है सो क्या है? सो नाक है। क जो सुख ताका जो प्रतिषेध सो अक (दुःख) है सो नहीं होवैहै ऐसा नाक है। अर्थ यह जोः—क

---

९९ आदित्यकी इसलोकतैं एकविंशताविषै अन्यश्रुतिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां हेमंत अरु शिशिरकूं ऐककरिके पांचऋतुआं हैं यह कहा ॥

आदित्यकेजयकरि सप्तविधसामोपासना ६

आप्नोतीहादित्यस्य जयं परो हा-

अर्थः—आदित्यके जयकूं पावताहै। इ-

(सुखरूप) हीं है । [100] दुःखकूं मृत्युका विषय होनेतैं औ फेर सो विशोक है कहिये विगत-शोक है। अर्थ यह जोः—मानस दुःखसैं रहित है। ताकूं पावताहै ॥ ५ ॥

टीकाः—[101] उक्तके हीं मिलित अर्थकूं कहैहैंः— एकविंशति संख्याकरि आदित्यके जयकूं पा-वताहै। इस [102] ऐसैं जाननेवालेका मृत्युगोचर

---

१०० आदित्यकूं अहोरात्रकरि वारंवार मृत्युकी हेतुता इसलोकविषै देखियेहै । तातैं यह लोक मृत्युका विषय हो-नेतैं दुःखस्वरूप है औ ताके अभावतैं ब्रह्मलोक सुखस्वरूप है। ऐसैं मानिके कहैहैं ॥

१०१ पूर्वग्रंथकरि उत्तरग्रंथकी पुनरुक्तिकूं आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां व्याख्यान कियेहीं ग्रंथके समुदायकाअर्थ संक्षे-पकरिके बुद्धिकी सुकरताअर्थ अनंतर (उत्तर) ग्रंथसैं क-हियेहै। तातैं पुनरुक्तिपना नहीं है । यह अर्थ है औ जयके पीछे पर (उत्कृष्ट) जय होवैहै। ऐसैं संबंध है ॥

१०२ "इसका पर" ऐसैं ग्रहणकिये वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां फल यह शेष है। यह अर्थ है औ साप्तविध्य

स्यादित्यजयाज्जयो भवति य एतदेवं विद्वानात्मसंस्मितमतिमृत्यु सप्तविधँ सामोपास्ते सामोपास्ते ॥ ६ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

सका आदित्यके जयतैं पर जय होवैहै। जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया आत्मसंमित अतिमृत्युरूप सप्तविध सामकूं उपासताहै। सामकूं उपासताहै ॥ ६ ॥

इति श्री० मूलभाषा० द्वितीयप्रपा० दशमः खंडः १०

आदित्यके जयतैं पर जय होवैहै बावीश अक्षरनकी संख्याकरि । यह अर्थ है ॥ "जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया" इत्यादि वाक्य उक्तअर्थवाला है ॥ ताकूं यह यथोक्त फल होवैहै । ऐसैं औ दोवार कथनरूप जो अभ्यास है । सो सप्तविधपनैकी समाप्ति अर्थ है ॥ ६ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० द्वितीय प्रपा० दशमःखंडः ॥ १० ॥

कहिये सप्तविधपना तिसकरि युक्त सामके उपासनकी समाप्तिअर्थ अभ्यास (दोवार कथन) है । यह अर्थ है ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगतदशमखंडस्य टिप्पणम् ॥ १० ॥

अथ द्वितीयप्रपा० एकादशः खंडः॥ ११॥
मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः

अथ श्री० मूलभाषा० द्वितीयप्रपा० एकादशःखंडः॥ ११॥

अर्थः—मन हिंकार है। वाक् प्रस्ताव है। चक्षु उद्गीथ है। श्रोत्र प्रतिहार है। प्राण

अथ श्री० भाष्यभाषा० द्वितीयप्रपा० एकादशः खंडः ११

प्राणोंविषै गायत्रसामोपासना २

टीकाः—[१०३]नामके ग्रहण विना पञ्चविध औ सप्तविध सामका उपासन कहा। अनंतर अब गायत्र आदिक नामके ग्रहणपूर्वक विशिष्ट फलवाले सामके अन्य उपासन कहियेहैंः—[इहां [१०४]यथाक्रम गायत्र आदिकनका कर्मविषै प्रयोग

अथ द्वितीयप्रपाठकगतैकादशखंडस्य टिप्पणम् ११

१०३ ननु पंचविध अरु सप्तविध सामका ध्यान व्याख्यान किया। ऐसैं हुये ज्ञातविषयविषै वक्तव्यके अभावतैं अनन्तर ग्रंथसैं अलं (बहुत) भया ? यह आशंकाकरिके। पूर्व उत्तर दोग्रंथनके अर्थके भेदकूं कहैहैं ॥ इहांः—गायत्र। रथंतर। इत्यादि नामके ग्रहणकरि विशिष्ट औ विशिष्टफलवाले। यह अर्थ है ॥

१०४ फेर वक्ष्यमाण उपासनोंविषै निर्देशके क्रमकी सिद्धि

श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ॥ १ ॥

निधन है ॥ यह गायत्र प्राणोंविषै प्रोत है ॥ १ ॥

है। तैसैं हीं दिखावैहैं] मॅन[१०५] हिंकार है। काहेतैं मनकूं सर्व करणरूप वृत्तिनके मध्य प्रथम होनेतैं ॥ तिसतैं अनंतर होनेतैं वाक् प्रस्ताव है। चक्षु उद्गीथ है श्रेष्ठ होनेतैं। श्रोत्र प्रतिहार है प्रतिहृत (फैल्या) होनेतैं। प्राण निधन है स्वापकालविषै यथोक्तनके प्राणविषै नि-

---

कैसैं है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:–जैसैं क्रमकूं आश्रयकरिके तिनका कर्मविषै प्रयोग कर्मिनकूं इष्ट है। इसीहीं क्रमसैं तिनके उपासनकी उक्ति है ॥

१०५ तहां अप्राणकूं क्रिया अरु ज्ञानके असंभवतैं प्राणकूं प्रधान होनेतैं ताकी दृष्टिकरि गायत्र नाम सामकी उपासनाकूं आदिविषै दिखावै हैं ॥ इहां "प्राणके प्रतिहीं वाक् लयकूं पावती है" इत्यादिश्रुतिकरि निद्राकालमैं प्राणविषै वाक्आदिकनका निधन (नाश) जाननेकूं योग्य है औ प्रोत कहिये प्रगत। अर्थ यह जो प्रतिष्ठित ॥

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति सर्वमायुरेति ज्योग् जी-

अर्थः—सो जो ऐसैं इस गायत्रकूं प्राणों-विषै प्रोत जानताहै [सो] प्राणी होवैहै । सर्व आयुकूं पावताहै । ज्योक् (उज्वल) जीवताहै । प्रजाकरि पशुनकरि महान् अरु

धन (लयरूप नाश)तैं ॥ यह गायत्र साम प्राणोंविषै प्रोत है ॥ १ ॥

टीका:—गायत्रीकूं[106] प्राणकरि संस्तुत होनेतैं सो जो ऐसैं इस गायत्र सामकूं प्राणोंविषै प्रोत जानताहै [सो] प्राणी([107]अविकल करण-वाला) होवैहै । यह अर्थ है ॥ सर्व आयुकूं पावताहै "[108]शतवर्ष पुरुषका सर्व आयु है"

---

१०६ गायत्रसामके प्राणोंविषै प्रतिष्ठितपनैमैं हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां "प्राणहीं गायत्री है" ऐसी जातैं श्रुति है ॥

१०७ अविद्वान्कूंबी प्राणीपनैकी सिद्धितैं यह विद्याका फल नहीं है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

१०८ फेर नानाजनसंबंधि सर्व आयुकूं एकध्याता पावनेकूं

वति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या । महामनाः स्यात्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

कीर्तिकरि महान् होवैहै ॥ महामना होवै सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०एकादशः खंडः

इस श्रुतितैं औ ज्योग् (उज्वल) जीवताहै औ प्रजा आदिककरि महान् होवैहै अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै । गायत्र सामके उपासकका यह व्रत होवैहैः—जो बडे मनवाला (अक्षुद्रचित्तवाला) होवै । यह अर्थ है ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा० द्वितीयप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११

कैसैं पूर्ण होवैहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां "शत आयुषवालाहीं पुरुष है" इस श्रुतितैं यह कहियेहै औ ज्योक् शब्द निपात है औ सो उज्वलनरूप अर्थवाला है औ उज्वल । याका स्वपरके उपकारविषै समर्थ । यह अर्थ है ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगतैकादशखंडस्य टिप्पणं ॥ ११ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठ० द्वादशः खंडः ॥१२॥

अभिमन्थति स हिङ्कारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथो-

---

अथ श्री० मूलभाषा० द्वितीयप्रपा० द्वादशःखण्डः॥१२॥

अर्थः—अभिमंथन करै है सो हिंकार है। धूम उपजाताहै सो प्रस्ताव है। जलताहै

अथ श्री० भाष्यभाषा० द्वितीयप्रपा० द्वादशःखंडः॥१२॥

अग्निविषै गायत्रसामोपासना २

टीकाः—[१०९]अभिमंथन करैहै सो हिंकार है प्रथम होनेतैं। अग्नितैं धूम उपजाताहै सो प्रस्ताव है अनंतर होनेतैं। जलताहै सो उद्गीथ है। हविके संबंधतैं जलनेकी श्रेष्ठता है॥ अंगार होवैहैं सो प्रतिहार है अंगारनकूं प्रतिहृत (विखरे) होनेतैं [११०]उपशम जो अग्निकूं

अथ द्वितीयप्रपाठकगतद्वादशखंडस्य टिप्पणं॥१२॥

१०९ समग्र प्राणवालेकूं मंथनके कर्तापनैके संभवतैं प्राणदृष्टिके अनंतर मंथनादिककी दृष्टिकूं अवतार देते हैं॥

११० उपशम अरु संशम ऐसैं अर्थभेदके अभावतैं पुनरु-

ऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनꣳ सꣳशाम्यति तन्निधनमेतद्र-थन्तरमग्नौ प्रोतम् ॥ १ ॥

सो उद्गीथ है। अंगार होवैहैं सो प्रतिहार है। उपशम होवैहै सो निधन है। संशम होवैहै सो निधन है॥ यह रथंतर अग्नि-विषै प्रोत है॥ १॥

सावशेष होनेतैं है औ संशम जो अग्निका निःशेष उपशम है सो समाप्तिके सामान्यतैं निधन है॥ यह रथंतर नामक साम अग्नि-विषै प्रोत है।[१११] जातैं अग्निके मंथनाविषै गायन करियेहै ॥ १ ॥

क्तिकूं आशंकाकरिके। सावशेषता अरु निरवशेषताकरि विशेष (भेद)कूं कहैहैं॥

१११ फेर रथन्तर सामका अग्निविषै प्रतिष्ठितपना कैसैं है। जातैं तहां किंचित् निमित्त प्रतीत होता नहीं? यातैं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—मंथनकूं निमित्तकरिके अग्निकी उत्पत्तिविषै रथंतर सामकी गीयमानताके देखनेतैं अग्निविषै ताके प्रतिष्ठितपनैकी सिद्धि है॥

स य एवमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भ-

अर्थः—सो जो ऐसैं इस रथन्तरकूं अग्निविषै प्रोत जानताहै। ब्रह्मवर्चसी अन्नाद होवैहै। सर्व आयुकूं पावताहै। ज्योक् (उज्वल) जीवताहै। प्रजाकरि पशुनकरि

टीकाः—"सो जो" इत्यादि पूर्ववत् है॥ ब्रह्मवर्चसी होवैहै। [112] वृत्त अरु स्वाध्यायरूप निमित्तवाला जो तेज सो ब्रह्मवर्चस है। अरु तेज तो केवल कांतिभाव है। औ अन्नाद (दीप्त अग्निवाला) होवैहै॥ अग्निके अभिमुख न आचमन करै न किंचित् भक्षण करै औ नि-

११२ ननु इहां "ब्रह्मवर्चसी" ऐसा फल कहा। बृहत्के उपासनविषै तो "तेजस्वी होवैहै" ऐसैं आगे कहियेगा औ ब्रह्मवर्चस अरु तेजका भेद नहीं है। तैसैं हुये बृहत् अरु रथंतरके उपासनविषै फलकी विषमता (विलक्षणता) नहीं है? यातैं कहैहैं॥

इति द्वितीयप्रपाठकगतद्वादशखंडस्य टिप्पणं॥ १२॥

वति महान् कीर्त्या। न प्रत्यङग्निमाचा-
मेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥
इति द्वितीयप्रपाठकस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२॥
अथ द्वितीयप्रपा॰त्रयोदशः खंडः॥१३॥
उपमन्त्रयते स हिङ्कारो ज्ञपयते स

महान् अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै ॥ अ-
ग्निके अभिमुख न आचमन करै। न नि-
ष्ठीवन करै। यह व्रत है ॥ २ ॥
इति श्री॰मूलभा॰द्वितीयप्रपा॰ द्वादशः खंडः १२
अथश्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰त्रयोदशःखंडः ॥१३॥
अर्थः—उपमंत्रण करैहै सो हिंकार है।

ष्ठीवन (श्लेष्मके निरसन)कूं न करै। सो
व्रत है ॥ २ ॥
इति श्री॰ भाष्यभाषा॰ द्वितीयप्रपा॰ द्वादशः खंडः॥ १२॥
अथ श्री॰ भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठ॰त्रयोदशःखंडः १३
मिथुनविषै वामदेव्य सामोपासना २
टीकाः—उपमंत्रण[११३] (संकेत)कूं करैहै प्रथम

अथ द्वितीयप्रपाठकगत-त्रयोदशखण्डस्य टिप्पणं १३
११३ उत्तर (ऊपरकी) अरु अधर (नीचेकी) अरणि

मिथुनविषै वामदेव्य सामोपासना ३

प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीँ सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥ १ ॥

ज्ञपन करैहै सो प्रस्ताव है। स्त्रीके साथि शयन करैहै सो उद्गीथ है। स्त्रीके प्रति शयन करैहै सो प्रतिहार है। कालकूं गमन करैहै सो निधन है। पारकूं गमन करैहै सो निधन है॥ यह वामदेव्य मिथुनविषै प्रोत है॥ १॥

होनेतैं सो हिंकार है। ज्ञपन[११४] (तोषण)कूं करैहै सो प्रस्ताव है। साथि शयन (एक पर्यंकविषै गमन) है सो उद्गीथ है श्रेष्ठ हो-

---

स्थानीय अरु अवाच्य कर्मविषै प्रवृत्त स्त्रीपुरुषके मंथनके सामान्यतैं मंथनादि दृष्टिके अनंतर मैथुनदृष्टिकूं विधान करैहैं॥

११४ पुरुषहीं पशुकर्मकेअर्थ स्त्रीकूं वस्त्रआदिकसैं प्रीणन (प्रसन्न) करैहै। तिसविषै प्रारंभके सामान्यतैं प्रस्तावकी दृष्टि है। ऐसैं कहैहैं॥

समस्तसामके उपासन २४

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुना-

अर्थः-सो जो ऐसैं इस वामदेव्यकूं मिथुनविषै प्रोत जानता है। मिथुनी होनेतैं। स्त्रीके प्रति शयन (स्त्रीका अभिमुखीभाव) है सो प्रतिहार है। कालके प्रति (मैथुनकरि पार जो समाप्ति ताके प्रति) गमन करैहै सो निधन है॥ यह वामदेव्य नामक साम मिथुनविषै प्रोत है। वायु[११५] जलके मिथुनके संबंधतैं ॥ १ ॥

टीकाः-"सो जो" इत्यादि पूर्ववत् है ॥ इहां मिथुनी होवैहै। याका अविधुर (स्त्रीसैं अवियुक्त) होवैहै। यह अर्थ है औ मिथुनतैं मिथुनतैं उपजताहै। ऐसैं अमोघ रेतवान्-

११५ वामदेव्य नामक सामका मिथुनविषै प्रोतपना कैसैं है? तहां कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः-वायुके अरु जलके मिथुनभावकरि संबंधतैं वामदेव्य सामकी उत्पत्तिकूं उक्त होनेतैं ताका मिथुनविषै प्रतिष्ठितपना युक्त है॥

त्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या। न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम् ॥२॥
इति द्वितीयप्रपाठकस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

वैहै मिथुनतैं मिथुनतैं उपजताहै। सर्व आयुकूं पावताहै। ज्योक् जीवताहै। प्रजाकरि पशुनकरि महान् अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै। किसी (स्त्री)कूंबी परिहार करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥
इतिश्री॰मूलभा॰द्वितीयप्र॰त्रयोदशः खण्डः १३

पना कहियेहै औ [116] किसीबी आपकी शय्याके तांई प्राप्त समागमकी अर्थिनी स्त्रीकूं परिहार (त्याग) करै नहीं। काहेतैं [117] वामदेव्य सामके उपासनके अंग होनेकरि विधानतैं। इसतैं अ-

११६ "किसीकूंबी नहीं" इस वाक्यकूं लेके व्याख्यान करैहैं॥
११७ "परांगना (परस्त्री)कूं उपगमन करै नहीं" इस स्मृतिके विरोधकूं आशंकाकारिके कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—विधिनिषेधकी सामान्य अरु विशेषविषयवान्ताकरि व्यवस्था प्रसिद्ध है ॥

अथ द्वितीयप्रपा॰ चतुर्दशः खंडः॥१४॥

उद्यन्हिङ्कार उदितः प्रस्तावो मध्य-

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वि॰प्रपा॰ चतुर्दशः खण्डः १४

अर्थः–उदयकूं पावता हुया हिंकार है।

न्यत्र प्रतिषेधकी स्मृतियां हैं औ ११८वचनके प्रा-
माण्यतैं इस धर्मके निश्चयका प्रतिषेध शास्त्रसैं
विरोध नहीं है ॥ २ ॥

इति श्री॰ भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपा॰त्रयोदशः खण्डः १३

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठ॰चतुर्दशःखंडः १४

आदित्यविषै बृहत्सामोपासना २

टीकाः–११९उदयकूं पावता हुया सविता सो

---

११८ किंवाः–शास्त्रके प्रामाण्यतैं इहां धर्म जानियेहै औ "किसीकूंबी परिहार करै नहीं" ऐसैं इहां शास्त्रकरि निश्चित होनेतैं अवाच्यबी कर्म धर्म होनेकूं योग्य होवैहै। तैसैं हुये श्रौत अर्थविषै दुर्बलस्मृतिका प्रतिस्पर्द्धीपना नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः–यथोक्त उपासनावालेकूं ब्रह्मचर्यके नियमका अभाव व्रत होनैंकरि विवक्षित है [सर्वकूं नहीं] तातैं प्रतिषेधशास्त्रके विरोधकी आशंका नहीं है ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत त्रयोदशखंडस्य टिप्पणं॥ १३ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकगतचतुर्दशखंडस्य टिप्पणं॥१४॥

११९ आदित्यकूं प्रजाके प्रसव (जन्म)का हेतु होनेतैं

न्दिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

उदित प्रस्ताव है। मध्यंदिन उद्गीथ है। अपराह्ण प्रतिहार है। अस्तकूं पावता हुया निधन है॥ यह बृहत् [साम] आदित्यविषै प्रोत है॥ १॥

हिंकार है दर्शनकूं प्रथम होनेतैं। उदित प्रस्ताव है कर्मोंके प्रस्तवनका हेतु होनेतैं। मध्यन्दिन उद्गीथ है श्रेष्ठ होनेतैं। अपराह्ण प्रतिहार है पशु आदिकनके गृहोंकेतांई प्रतिहरणतैं। जो अस्तकूं पावताहै सो निधन है रात्रिविषै गृहमैं प्राणिनके निधनतैं ॥ यह बृहत् साम आदित्यविषै प्रोत है काहेतैं बृहत् सामकूं आदित्यरूप दैवत्यवाला होनेतैं ॥ १ ॥

ता (प्रसव)के हेतु मैथुनकी दृष्टिके अनंतर आदित्यकी दृष्टिकूं उठावते हैं ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगतचतुर्दशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १४ ॥

स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या । तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

अर्थः—जो ऐसैं इस बृहत्कूं आदित्यविषै प्रोत जानताहै । सो तेजस्वी अन्नाद होवैहै । सर्व आयुकूं पावताहै । ज्योक् जीवताहै । प्रजाकरि पशुनकरि महान् अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै । तपनेवालेकूं निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वि०प्रपा०चतुर्दशः खंडः१४

टीकाः—“सो जो” इत्यादि पूर्ववत् है ॥ तपनेवालेके प्रति निंदा करै नहीं । सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा० चतुर्दशः खण्डः॥१४॥

अथ द्वितीयप्रपाठ॰ पञ्चदशः खंडः १५
अभ्राणि सम्प्लवन्ते स हिङ्कारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰पंचदशः खण्डः १५

अर्थः—अभ्र (बादल) संप्लवन करते (चलते) हैं सो हिंकार है। मेघ उपजता है सो प्रस्ताव है। वर्षताहै सो उद्गीथ है।

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठ॰पंचदशःखंडः१५

पर्जन्यविषै वैरूप सामोपासन २

टीकाः—[120]अभ्र अप् (जल)के भरणतैं हैं। मेघ उदकका सेचक होनेतैं है। अन्य वाक्य उक्त अर्थवाला है॥ ॥ यह वैरूप नाम साम पर्जन्य (मेघ) विषै प्रोत है। अनेक[121]रूप

अथ द्वितीयप्रपाठकगतपंचदशखंडस्य टिप्पणं॥१५॥

१२० "आदित्यतैं वृष्टि होवैहै" इस स्मृतितैं पर्जन्यकूं आदित्यका कार्य होनेतैं आदित्यकी दृष्टिके अनंतर पर्जन्यकी दृष्टिकूं दिखावै हैं॥

१२१ वैरूप साम तिसविषै कैसैं प्रतिष्ठित है? तहां कहैहैं॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत-पंचदशखंडस्य टिप्पणम्॥ १५॥

विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥१॥ स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपाꣳश्च सुरूपाꣳश्च पशूनवरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति म-

---

विद्योतन करैहै अरु गर्जताहै सो प्रतिहार है। उद्ग्रहण (वर्षाकी समाप्ति) करैहै सो निधन है॥ यह वैरूप [साम] पर्जन्यविषै प्रोत है॥ १॥

अर्थः—जो ऐसैं इस वैरूपकूं पर्जन्यविषै प्रोत जानताहै। सो विरूप अरु सुरूप पशुनकूं अवरोध करैहै। सर्व आयुकूं पावताहै। ज्योक् जीवताहै। प्रजाकरि

होनेतैं अभ्र आदिकनकरि पर्जन्यका वैरूप्य (विपरीत रूपवान्‌पना) है॥ १॥

टीकाः—विरूप औ सुरूप अज अवि आदिक पशुनकूं अवरोध करताहै। अर्थ

हान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या। वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य पंचदशः खण्डः॥१५॥

अथ द्वितीयप्रपाठ॰षोडशः खंडः॥१६॥

वसन्तो हिङ्कारो ग्रीष्मः प्रस्तावो

पशुनकरि महान् अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै ॥ वर्षनेवालेके प्रति निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री॰मूलभा॰द्वि॰प्रपा॰ पंचदशः खंडः १५

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰षोडशः खण्डः १६॥

अर्थः—वसंत हिंकार है। ग्रीष्म प्रस्ताव

यह जो:—पावताहै ॥ वर्षणेवालेके प्रति निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठकस्य पंचदशःखंडः१५

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठ॰षोडशःखंडः १६

ऋतुनविषै वैराजसामोपासन २

टीकाः—वसन्त[122] हिंकार है प्रथम होनेतैं।

अथ द्वितीयप्रपाठकगतषोडशखंडस्य टिप्पणम् १६

१२२ ऋतुनकी व्यवस्थाकूं पर्जन्य (वृष्टि)के अधीन हो-

वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ॥ १ ॥

स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद

है। वर्षा उद्गीथ है। शरत् प्रतिहार है। हेमंत निधन है। यह वैराज [साम] ऋतुनविषै प्रोत है ॥ १ ॥

अर्थः-जो ऐसैं इस वैराजकूं ऋतुनवि-

ग्रीष्म प्रस्ताव है। इत्यादि पूर्ववत् है॥ १ ॥

टीकाः-ईसैं[123] वैराज नाम सामकूं ऋतुनविषै प्रोत जानताहै । ऋतुनकीन्यांई वि-

---

नेतैं ता पर्जन्यकी दृष्टिके अनंतर ऋतुनकी दृष्टिकूं कहैहैं ॥

१२३ वैराज नाम सामका ऋतुनविषै प्रोतपना युक्त है। काहेतैं तिन ऋतुनकूं स्वधर्मोंकरि विराजनेतैं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:-यद्वा ऋतुनकूं अन्नकी उत्पत्तिकी निमित्त होनेतैं औ विराडात्माकूं अन्नरूप होनेतैं ता विराट्कूं तिन ऋतुनविषै प्रतिष्ठित होनेतैं तिस विराट्द्वारा वैराज (विराट्का संबंधि) साम बी तिन ऋतुनविषै प्रोत है। यह भाव है॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत-षोडशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १६ ॥

विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्यर्तून्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

षै प्रोत जानताहै । सो प्रजाकरि पशुनकरि ब्रह्मवर्चसकरि विराजताहै । सर्व आयुकूं पावताहै । ज्योक जीवताहै । प्रजाकरि पशुनकरि महान् अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै । ऋतुनकूं निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री० मूलभाषा० द्वितीयप्रपा० षोडशः खंडः १६

राजताहै कहिये जैसें ऋतुआं ऋतुनके धर्मोंकरि विराजतियां हैं ऐसें विद्वान् प्रजा आदिकनकरि विराजताहै । अन्य अर्थ कहा है ॥ ऋतुनकूं निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० द्वितीयप्रपाठकस्य षोडशः खंडः १६

समस्तसामके उपासन २४

अथ द्वितीयप्रपाठ॰सप्तदशः खंडः १७

पृथिवी हिङ्कारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः ॥ १ ॥

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰सप्तदशःखण्डः॥१७॥

अर्थः–पृथिवी हिंकार है। अंतरिक्ष प्रस्ताव है। द्यौः उद्गीथ है। दिशा प्रतिहार है। समुद्र निधन है॥ ये शक्करीयां [नामक साम] लोकनविषै प्रोत हैं॥ १ ॥

अथ भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपाठकस्य सप्तदशःखंडः१७

पृथिवीआदिककी दृष्टिसैं शक्करी सामोपासन २

टीकाः–पृथिवी[124] हिंकार है। इत्यादि पूर्ववत् है॥ इहां "शक्करी[125]" यह नित्य बहुवचन

अथ द्वितीयप्रपाठकगतसप्तदशखंडस्य टिप्पणम् १७

१२४ ऋतुनके सम्यक् व्यतीत हुये लोकनकी स्थितिकूं प्रसिद्ध होनेतें ऋतुनकी दृष्टिके अनंतर लोकदृष्टिकूं कहैहैं॥

१२५ ननु "शक्करीयां" ऐसा एकहीं सामका नाम कैसैं है। जातैं बहुवचनतैं बहुत साम प्रतीत होवैहैं ? तहां कहैहैं॥

स य एवमेताः शक्कर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या। लोकान्न निन्देत्तद्व्रतम्॥२॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

अर्थः—जो ऐसैं इन शक्करीनकूं लोकनविषै प्रोत जानताहै । सो लोकी होवैहै । सर्व आयुकूं पावताहै । ज्योक् जीवताहै । प्रजाकरि पशुनकरि महान् अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै ॥ लोकनकूं निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वि०प्रपा०सप्तदशःखंडः१७

है[१२६] । वे रेवतीनकी न्यांई[१२७] लोकनविषै प्रोतहै १

टीकाः—लोकी होवैहै । अर्थ यह जोः—लो-

---

१२६ नित्यबहुवचनपना दोनूंठिकाने तुल्य है। ऐसैं जनावनेअर्थ वक्ष्यमाणकूं दृष्टांत करैहैं ॥

१२७ महानामवाली ऋचाओंविषै शक्करीयां (नामक साम) गायन करिये हैं औ तिनका "आपूहीं महानामवालीयां हैं"

अथ द्वितीयप्रपाठ० अष्टादशःखंडः १८
अजा हिङ्कारोऽवयः प्रस्तावो गाव

अथ श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपाठ०अष्टादशःखंडः१७

अर्थः—अजा (छेलीयां) हिंकार है। अवियां (मेषियां) प्रस्ताव है। गौवां उद्गीथ

करूप फलसैं जुडताहै। लोकनकूं निंदा करै नहीं सो व्रत है॥ २॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा०सप्तदशः खंडः॥१७॥

अथ श्री० भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा०अष्टादशःखण्डः१८

पशुदृष्टिसैं रेवती सामोपासन २

टीकाः—[128]अजा हिंकार है। इत्यादि पूर्ववत्

ऐसैं आपूके साथि संबंध स्मरण किया है अरु "आपूविषै लोक प्रतिष्ठित हैं" ऐसैं सुन्या है। ऐसैं हुये इस संबंधतैं लोकनविषै शक्करीयां प्रतिष्ठित हैं। ऐसैं कहैहैं॥

इति श्री० द्वितीयप्रपाठकगतसप्तदशखंडस्य टिप्पणम्॥ १७॥

अथ द्वितीयप्रपाठकगताष्टादशखंडस्य टिप्पणम्१८

१२८ पशुनकूं लोकनके कार्य होनेतैं लोकदृष्टिके अनंतर पशुदृष्टिकूं उपन्यास करैहैं॥ इहां "रेवतीयां" ऐसा सामका नाम है। सो पूर्व(शक्करीन)कीन्यांई नित्यबहुवचनांत है॥

उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधन-
मेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥ १ ॥

स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान् भवति सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति म-

---

है। अश्व प्रतिहार है। पुरुष निधन है ॥ ये रेवतीयां [नामक साम] पशुनविषै प्रोत हैं ॥ १ ॥

अर्थः—जो ऐसैं इन रेवतीनकूं पशुनविषै प्रोत जानताहै। सो पशुमान् होवैहै। सर्व आयुकरि महान् अरु कीर्तिकारि महान्

है। [वे रेवतीयां नामक सामविशेष) पशुनें-[129]
विषै प्रोत हैं ॥ १ ॥

---

१२९ "पशुहीं रेवतीयां हैं" इस अन्य श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

इति श्री० द्वितीयप्रपाठकगताष्टादशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १८ ॥

हान् कीर्त्या पशून्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥२॥
इति द्वितीयप्रपाठ० अष्टादशः खण्डः ॥१८॥
अथ द्वितीयप्रपाठ०एकोनविंशः खण्डः
लोम हिङ्कारस्त्वक् प्रस्तावो माꣳस-

होवैहै । पशुनकूं निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्र०अष्टादशःखंडः१८

अथ श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०एकोनविंशःखंडः१९

अर्थः—लोम हिंकार है । त्वक् प्रस्ताव

टीकाः—पशुनकूं निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा० द्वितीयप्रपा०अष्टादशः खण्डः १८

अथ श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्र०एकोनविंशः खंडः१९

अङ्गदृष्टिसैं यज्ञायज्ञीयसामोपासन २

टीकाः—लोम[१३०] हिंकार है । देहके अवय-

अथ द्वितीयप्रपाठकगतैकोनविंशखंडस्यटिप्पणं१९

१३० पशुनके विकार दुग्ध दधिआदिककरि अंगनकी पुष्टि देखियेहै यातैं पशुदृष्टिके अनंतर अंगनकी दृष्टिकूं कहैहैं ॥

मुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधन-
मेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ॥ १ ॥
स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं

है। मांस उद्गीथ है। अस्थि प्रतिहार है॥ यह यज्ञायज्ञीय [साम] अंगनविषै प्रोत है ॥ १ ॥

अर्थः—जो ऐसैं इस यज्ञायज्ञीयकूं अंग-

वनके मध्य प्रथम होनेतैं। त्वक् प्रस्ताव है लोमके अनंतर होनेतैं। मांस उद्गीथ है श्रेष्ठ होनेतैं। अस्थि प्रतिहार है प्रतिहृत (विखरे) होनेतैं।मज्जा निधन है अंतविषै होनेतैं॥ [१३१] यह यज्ञायज्ञीय नाम साम देहके अवयवनविषै प्रोत है ॥ १ ॥

टीकाः—अंगी होवैहै। अर्थ यह जोः—स-

१३१ "रसहीं यज्ञायज्ञीय है" इस श्रुतितैं अन्नरसके विकारसैं लोमआदिकनके संबंधतैं यज्ञायज्ञीयसाम अंगनविषै प्रतिष्ठित है। ऐसैं कहैहैं। इहां कुणि कहिये श्मश्रुरहित॥

इति श्री० द्वितीयप्रपाठकगतैकोनविंशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १९ ॥

वेदाङ्गी भवति नाङ्गेन विहूर्छति सर्व-मायुरेति ज्योग् जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या । संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद्व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्यैकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

नविषै प्रोत जानताहै । सो अंगी होवैहै । अंगसैं कुटिल होता नहीं । सर्व आयुकूं पावताहै ज्योक् जीवताहै । प्रजाकरि पशुनकरि महान् अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै ॥ संवत्सर मांसनकूं भक्षण करै नहीं । मांसनकूं भक्षण करै नहीं । ऐसा वा सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभा०द्वि०प्र०एकोनविंशःखण्डः १९

मग्र अंगवाला होवैहै । हस्तपादादि अंगकरि कुटिल (वक्र) नहीं होवैहै । अर्थ यह जोः- पंगु वा कुणी (कुत्सितकरवाला अरु श्मश्रुर-

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य विंशः खंडः२०
अग्निर्हिङ्कारो वायुः प्रस्ताव आदि-

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपाठ॰विंशः खण्डः॥२०॥

अर्थः—अग्नि हिंकार है। वायु प्रस्ताव है। आदित्य उद्गीथ है। नक्षत्र प्रतिहार

हित) नहीं होवैहै ॥ संवत्सरमात्र मांसनकूं भक्षण करै नहीं। इहां बहुवचन मत्स्यनके उपलक्षणअर्थ है । मांसनकूं सर्वदाहीं भक्षण करै नहीं ऐसा वा। सो व्रत है ॥ २ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपा॰ एकोनविंशःखण्डः१९

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपा॰ विंशःखण्डः॥२०॥

देवतादृष्टिसैं राजन सामोपासन २

टीकाः—[१३२]अग्नि हिंकार है। प्रथमस्थानवाला होनेतैं। वायु प्रस्ताव है अनंतरताके सामान्यतैं। आदित्य उद्गीथ है श्रेष्ठ होनेतैं।

अथ द्वितीयप्रपाठकगत विंशखंडस्य टिप्पणम् २०

१३२ अग्निआदिकनकूं अंगनविषै प्रतिष्ठित होनेतैं अंगदृष्टिके अनंतर अग्निआदिककी दृष्टिकूं उठावते हैं ॥

त्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम् ॥ १ ॥

स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं

है। चंद्रमा निधन है ॥ यह राजन [नाम साम] देवताओंविषै प्रोत है ॥ १ ॥

अर्थः—जो ऐसैं इस राजनकूं देवताओंविषै प्रोत जानताहै। सो इनहीं देवता-

---

नक्षत्र प्रतिहार है प्रतिहृत (बिखरे) होनेतैं। चंद्रमा निधन है कर्मिनके तिसविषै निधन (मरिके प्रवेश) तैं ॥ यह राजन नाम साम देवताओंविषै प्रोत है देवताओंकूं[१२३] दीप्तिमान् होनेतैं ॥ १ ॥

टीकाः—विद्वान्कूं फलः—इनहीं अग्निआदिक देवताओंकी सलोकता (समानलोकता) कूं वा सार्ष्टिता (समानऋद्धिमान्ता) कूं सायुज्य

---

१२३ राजन नामक सामके देवताओंविषै प्रोतपनैमैं हेतुकूं कहैहैं ॥

वेदैतासामेव देवतानाꣳ सलोकताꣳसा-
र्ष्टिताꣳसायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति
ज्योग् जीवति महान् प्रजया पशुभि-

ओंकी सलोकताकूं वा सार्ष्टिताकूं वा सा-
युज्यकूं पावताहै । सर्व आयुकूं पावताहै ।
ज्योक् जीवताहै । प्रजाकरि पशुनकरि म-

(सयुग्भाव)कूं अर्थ यह जोः—एकदेहदेहीभा-
वकूं [वा शब्द इहां लुप्त देखनेकूं योग्य है ।
[134]सलोकताकूं वा इत्यादि । [135]भावनाके विशेष
(भेद)तें फल विशेषके संभवतें] पावताहै
औ [136]समुच्चयके असंभवतें [वा शब्दके अर्थरूप

१३४ फलके विकल्पअर्थ वा शब्दके इहां असद्भावके हुये कैसैं वाक्य होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१३५ फेर एकउपासनविषै फलत्रय कैसैं विकल्प करिये है ? तहां कहैहैं ॥

१३६ ननु तीन फल इहां समुच्चित अंगीकार करनेकूं योग्य हैं । ऐसैं वा शब्दकूं ग्रहण करिके क्यूं विकल्प करिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं परस्पर विरुद्ध फलत्रय एकत्र समुच्चित (मिलित) करनेकूं शक्य नहीं है । यातैंबी विकल्पकी सिद्धि है ॥

र्भवति महान् कीर्त्या । ब्राह्मणान्न नि-
न्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य विंशः खण्डः ॥ २० ॥

हान् अरु कीर्तिकरि महान् होवैहै ॥ ब्रा-
ह्मणोंकूं निंदा करै नहीं सो व्रत है ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्र०विंशःखंडः॥२०॥

विकल्पकी सिद्धि है] ॥ ब्राह्मणोंकूं निंदा
करै नहीं सो व्रत है । "[१३७]येई प्रत्यक्ष देव हैं
जे ब्राह्मण हैं" इसश्रुतितैं ब्राह्मणोंकी जो निंदा
सो देवताओंकी निंदाहीं है ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपाठ०विंशः खंडः ॥२०॥

---

१३७ ननु देवताओंकी दृष्टिकरि राजननाम सामके ध्यानतैं "देवताओंकूं निंदा करै नहीं" ऐसैं कहनेकूं योग्य हुये अन्यथा कैसैं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

इति श्री०द्वितीयप्रपाठकगतविंशखंडस्य टिप्पणम् ॥ २० ॥

अथ द्वितीयप्रपाठ॰एकविंशः खंडः २१

त्रयी विद्या हिङ्कारस्त्रय इमे लोकाः

अथ श्री॰मूलभाषा॰द्वितीयप्रपा॰एकविंशःखंडः ॥२१॥

अर्थः—त्रयी विद्या हिंकार है। तीन ये लोक सो प्रस्ताव है। अग्नि वायु आदित्य

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰द्वितीयप्रपा॰एकविंशःखंडः २१

त्रयीविद्यादिदृष्टिसैं सामोपासन ४

टीकाः—त्रयी विद्या हिंकार है। [१३८] अग्नि आदिक सामतैं त्रयीविद्याकी अनंतरता त्रयीविद्याकूं अग्निआदिकके कार्यताकी श्रुतितैं घटे है। हिंकार सर्व कर्तव्योंके मध्य प्रथम होनेतैं

अथ द्वितीयप्रपाठकगतैकविंशखंडस्य टिप्पणम् २१

१३८ अग्निआदिककी दृष्टिके अनंतर त्रयीविद्याकी दृष्टिके विधानविषै कारणकूं कहैहैं ॥ इहां जो अग्निआदिकस्वरूप साम उपास्य कहा। तिसतैं अनंतरता त्रयीविद्यारूप उपास्यकी घटती है। काहेतैं "अग्नितैं ऋग्वेद। वायुतैं यजुर्वेद। आदित्यतैं सामवेद होवैहै" इस श्रुतितैं त्रयी (वेदविद्या)कूं तिनकी कार्यताके निश्चयतैं। यह अर्थ है:—औ ताका कार्य होनेतैं। याका त्रयीविद्याकरि साध्य कर्मका फल होनेतैं। यह अर्थ है ॥

स प्रस्तावोऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गी-
थो नक्षत्राणि वयाꣳसि मरीचयः स

सो उद्गीथ है। नक्षत्र पक्षी मरीचियां (किरण) सो प्रतिहार है। सर्प गंधर्व पितर

है। तीन ये लोक ताके कार्य होनेतैं अनंतर हैं यातैं सो प्रस्ताव है। अग्नि आदिका उद्गीथपना श्रेष्ठतातैं है। नक्षत्र आदिकनका प्रतिहृत होनेतैं प्रतिहारपना है। सर्प आदिकनका धकारके सामान्यतैं निधनपना है॥ यह साम नामविशेषके अभावतैं सामका समूह (सामान्यरूप) सामशब्द सर्वविषै प्रोत है। [139] त्रयीविद्या आदिक जातैं सर्व है [यातैं] [140] त्रयी विद्या आदिककी दृष्टिकरि हिंकार आदिक सामकी भक्तियां (विभाग) उपास्य हैं।

---

१३९ सर्वविषै प्रोत है यह कैसैं कहा। त्रयीविद्या आदिकविषै प्रोत है ऐसैं कहनेकूं योग्य होनेतैं? यातैं कहैहैं॥

१४० फेर इहां त्रयीविद्याकी दृष्टिकरि सामका ध्येयपना कैसैं जानिये है? तहां कहैहैं॥

प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्निध-
नमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतम् ॥ १ ॥

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन् प्रोतं
वेद सर्वꣳह भवति ॥ २ ॥

सो निधन है ॥ यह साम सर्वविषै प्रोत
है ॥ १ ॥

अर्थः—जो ऐसैं इस सामकूं सर्वविषै प्रोत
जानताहै। सो सर्वहीं होवैहै ॥ २ ॥

---

[141]अतीतसामोंके उपासनोंविषैबी जिन जिनविषै
जो जो साम प्रोत है तिसकी दृष्टिकरि सो उ-
पास्य है। काहेतैं [142]कर्मके अंगोंकूं दृष्टिरूप वि-
शेषणवाले (दृष्टियुक्त) घृतकी न्यांई संस्कार-
युक्त करनेकूं योग्य होनेतैं ॥ १ ॥

टीकाः—सर्व विषयक सामके वेत्ताकूं फल

---

१४१ औ इस प्रतिज्ञाके हुये पूर्वग्रंथसैं विरोध शंकाकूं
योग्य होता नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

१४२ तहां हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—दर्श पूर्ण-
मासके अधिकारविषै पत्नीकरि अवेक्षित आज्य (घृत) हो-
वैहै। ऐसैं दृष्टिरूप विशेषणवाला आज्य संस्कारयुक्त करिये

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥ ३ ॥

अर्थः–तिसविषै यह श्लोक है:–जे पंचप्रकारसैं तीन तीन हैं तिनतैं ज्याय पर अन्य नहीं है ॥ ३ ॥

कहिये है:–सर्वहीं होवैहै। अर्थ यह जो:–सर्वेश्वर होवैहै। जांतैं[143] उपचार (आरोप) रहित सर्व भावके हुये दिशाओंविषै स्थित प्राणीनतैं बलिदानकी प्राप्तिका असंभव है ॥ २ ॥

टीका:–तिस[144] इस अर्थविषै यह श्लोक (मंत्र)बी है:–जे पंचप्रकारसैं हिंकारादि

है ऐसैं सामके प्रभेदनके दृष्टिरूप विशेषणवान्ताके अविशेषतैं तिन कर्मके अंगनकूं तिस तिस अंगकी दृष्टिकरि संस्कारयुक्त करनेकूं योग्य होनेतैं ॥

१४३ अनंतर यथाश्रुत सर्वात्मभावहीं क्यूं नहीं होवैगा? यातैं कहैहैं ॥

१४४ सर्व विषयक सामके वेत्ताकूं सर्वेश्वरपना होवैहै। इस अर्थविषै मंत्रकूं कथन करैहैं ॥ इहां "पर" इसींहीं पदका व्याख्यान अन्यत् (अन्य) यह है ॥

यस्तद्वेद स वेद सर्वꣳ सर्वा दिशो

अर्थः–जो तिसकूं जानताहै सो सर्वकूं जानताहै। सर्व दिशा इसकेअर्थ बलिकूं विभागोंकरि उक्त तीन तीन त्रयीविद्या आदिक हैं। तिन पांचत्रिकनतैं ज्याय (महत्तर) अरु पर (व्यतिरिक्त) कहिये अन्यवस्तु नहीं है। अर्थ यह जोः–विद्यमान नहीं है। [145]जातैं तिनविषैहीं सर्वका अंतर्भाव है ॥ ३ ॥

टीकाः–जो तिस यथोक्त सर्वात्मक सामकूं जानताहै। सो सर्वकूं जानताहै। अर्थ यह जोः–सो सर्वज्ञ होवैहै। सर्व दिशा कहिये सर्व दिशाओंविषै स्थित। इस ऐसैं जाननेवालेके अर्थ बलि (भोग)कूं प्राप्त करै हैं। यह अर्थ है ॥ "सर्व मैं हूं" ऐसैं इस सामकूं उपासन करै ताका यहहीं व्रत है।

१४५ अन्यवस्तुके अभावविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां सर्वज्ञपना औ सर्वेश्वरपना तत् (ताका इस) शब्दका अर्थ है॥

इति श्री० द्वितीयप्रपाठकगतैकविंशखंडस्य टिप्पणम् ॥ २१ ॥

बलिमस्मै हरंति। सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतं तद्व्रतम् ॥ ४ ॥

इति द्वितीयप्रपाठ० एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठ० द्वाविंशः खंडः २२

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्ने-

प्राप्त करैहैं ॥ "सर्व हूं" ऐसैं उपासन करै सो व्रत है। सो व्रत है ॥ ४ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्र०एकविंशःखंडः२१

अथ श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०द्वाविंशः खंडः॥२२॥

अर्थः—विनर्दि सामका [संबंधि] पशव्य

इहां दोवार उक्ति जो है। सो सामके उपासनकी समाप्ति अर्थ है ॥ ४ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्र० एकविंशः खंडः ॥२१॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्र०द्वाविंशःखंडः ॥२२॥

विनर्दिगुणविशिष्टसामोपासन ५

टीकाः—[१४६]सामके उपासनके प्रसंगसैं गानवि-

अथ द्वितीयप्रपाठकगतद्वाविंशखंडस्य टिप्पणम् २२

१४६ ननु सामका उपासन जब समाप्त भया तब उत्तर

रुद्गीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरु-

---

(पशुनका हितरूप) अग्निका उद्गीथ है [ताकूं मैं] प्रार्थना करताहूं। ऐसैं [मानताहै]। अनिरुक्त प्रजापतिका है। निरुक्त सोमका है। मृदु श्लक्ष्ण वायुका है। श्लक्ष्ण

शेष आदिक संपत् उद्गाताकूं उपदेश करियेहै। [१४७] फलविशेषके संबंधतैं:—विशिष्ट नर्द (ऋषभके कूजितके सम स्वरविशेष) इसका है सो विनर्दि गान है। यह वाक्यशेष है औ सो सामका संबंधि पशुनकेअर्थ हितरूप पशव्य है अरु अग्निका (अग्निरूप दैवत्यवाला) उ-

---

ग्रंथसैं क्या है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां आदिशब्दकरि स्वर आदिक वर्ण ग्रहण करिये हैं ॥

१४७ ऐसैं उद्गाताकूं यथोक्त उपासना कैसैं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां मृत्युका परिहारआदिक फलविशेष है। ताके संबंधतैं अनुष्ठान करनेकूं योग्य है। यह अर्थ है औ पशुनकेअर्थ हितपना याके वचनतैं जाननेकूं योग्य है॥

णस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणन्त्वेव वर्जयेत् ॥ १ ॥

बलवान् इंद्रका है। क्रौंच बृहस्पतिका है। अपध्वांत वरुणका है॥ तिन सर्वकूंहीं उपसेवन करै। वारुणहींकूंतो वर्जे ॥ १ ॥

द्गीथ (उद्गान) है। तिस ऐसे विशेषणवालेकूं मैं प्रार्थना करताहूं ऐसैं[१४८] कोईकबी यजमान वा उद्गाता मानताहै औ अनिरुक्त कहिये अमुकके सम है ऐसैं अविशेषित प्रजापतिका (प्रजापतिरूप दैवत्यवाला सो गान विशेष) है [१४९]अनिरुक्त (निरुक्तिका अविषय होनेतैं) प्रजापतिका है ॥ औ निरुक्त (स्पष्ट) सो-

१४८ वाक्यविषै स्थित इति शब्दकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां ऐसैं अविशेषित । याका इस प्रकारसैं यह है ऐसैं विशेषित कहिये भिन्नताकरिके ज्ञात नहीं होवैहै। यह अर्थ है ॥

१४९ ताके प्राजापत्यपनैंविषै हेतुकूं कहैहैं॥ इहां अनिरुक्त होनेतैं। याका नील पीत आदिककरि निश्चयकरिके अवचनतैं। यह अर्थ है ॥

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागा

अर्थः–"अमृतपनैकूं देवनकेअर्थ आगान करताहूं" ऐसें आगान करै। "स्वधाकूं पितर-

मका। अर्थ यह जोः–सोमदैवत्यवाला सो उद्गीथ है औ मृदु अरु श्लक्ष्ण (सूक्ष्म) गान वायुका है कहिये सो वायु दैवत्यवाला है औ श्लक्ष्ण अरु बलवान् प्रयत्नकी अधिकताकरि युक्त) इंद्रका है कहिये इंद्रसंबंधि सो गान है औ क्रौंच (क्रौंचपक्षीके नादके सम) बृहस्पतिका है कहिये बृहस्पतिसंबंधि सो गान है औ अपध्वांत (फूटेकांस्यके स्वरसम) वरुणका यह गान है॥ तिन सर्वकूंहीं उपसेवन (उच्चारण) करै परंतु एक वारुण (वरुणसंबंधि) कूंहीं तो वर्जना करै॥ १॥

टीकाः–[४५०]अमृतभाव देवनकेअर्थ आगा-

४५० स्वरविशेषके ज्ञानपूर्वक उद्गानकालविषै ध्यानकरने योग्य अर्थकूं कहैहैं। इहां स्वर ऊष्म व्यंजनआदिकनतैं॥

येतस्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्य-
स्तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यज-
मानायान्नमात्मन आगायानीत्येतानि
मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥ २ ॥

नकेअर्थ । आशाकूं मनुष्यनकेअर्थ । तृणो-
दककूं पशुनकेअर्थ । स्वर्गलोककूं यजमा-
नकेअर्थ । अन्नकूं आत्माकेअर्थ आगान
करताहूं । ऐसें इनकूं मनसें ध्यावता हुया
अप्रमत्त हुया स्तुतिकूं करै ॥ २ ॥

नकरता (साधता)हूं । स्वधाकूं पितरनके
अर्थ आगान करताहूं । आशा (प्रार्थना) कूं
मनुष्यनकेअर्थ । अर्थ यह जोः—प्रार्थितकूं
[आगान करता हूं] । तृणोदककूं पशुनके
अर्थ । स्वर्गलोककूं यजमानकेअर्थ । अ-
न्नकूं आत्मा (मेरे)अर्थ आगानकरताहूं ।

या वाक्यविषै आदिशब्दकरिं स्थान अरु प्रयत्न आदिकका
ग्रहण है ॥

सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मानः सर्व ऊ-

अर्थः—सर्व स्वर इंद्रके आत्मा हैं। सर्व ऊष्माण प्रजापतिके आत्मा हैं। सर्व स्पर्श

ऐसैं इनकूं मनसैं चितवता (ध्यावता) हुया स्वर ऊष्म अरु व्यंजनआदिकनतैं अप्रमत्त हुया स्तुतिकूं करै ॥ २ ॥

टीकाः—[151]अकारादिक सर्व स्वर बलरूप कर्मवाले प्राणरूप इंद्रके आत्मा (देहकेअवयवस्थानीय) हैं शषसह आदिक सर्व उष्माण विराट्रूप वा कश्यपरूप प्रजापतिके आत्मा हैं। क आदिक व्यंजनरूप सर्व स्पर्श मृत्युके आत्मा हैं॥ तिस ऐसैं जाननेवाले उद्गाताके प्रति जब कोईबी स्वरनविषै उपालंभ देवै

१५१ तिसीकरिबी आक्षिप्त उद्गाताकूं उद्गानकालविषै प्रतीकारके ज्ञानअर्थ स्वरआदिककी देवताके ज्ञानकूं उपन्यास करैहैं॥ इहां शषसह आदिक। यह आदिशब्द तिनके अवान्तरभेदविषै अभिप्रायवाला है औ जो तुजकूं वक्तव्य है इसतैं ऊर्ध्व तत् (सो) शब्द देखनेकूं योग्य है औ तैसैंहीं। याका स्वरोंविषै जैसैं है तैसैं। यह अर्थ है॥

ष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रँ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रतिवक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ३ ॥

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिँ

मृत्युके आत्मा हैं ॥ ताकूं जब स्वरोंविषै उपालंभ देवै [तब] इंद्रके प्रति शरण प्रपन्न भयाहूं। सो तेरे प्रति कहैगा । ऐसें इसकूं कहै ॥ ३ ॥

अर्थः—अनंतर जब इसकूं ऊष्माणोंविषै

किः—"स्वर तैंनें दुष्ट प्रयोग किया" तब ऐसें उपालब्ध हुया। इंद्र (प्राणरूप ईश्वर) स्वरूप शरण (आश्रय) के प्रति मैं प्रपन्न भयाहूं। स्वरनकूं प्रयोगकरता भयाहूं। सो इंद्र जो तुजकूं वक्तव्य है सो तेरे प्रति कहैगा कहिये सोई देव उत्तर देवैगा। ऐसें इसकूं कहै ॥ ३॥

टीकाः—अनंतर जब इसकूं उष्माणों-

शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनꣳस्पर्शेषूपालभेत मृत्युꣳ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति धक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ४ ॥

उपालंभ देवै [तब] प्रजापतिके प्रति शरण प्रपन्न भयाहूं। सो तेरे प्रति पेषण करैगा। ऐसें इसकूं कहै ॥ अनंतर जब इसकूं स्पर्शोंविषै उपालंभ देवै। [तब] मृत्युके प्रति शरण प्रपन्न भयाहूं। सो तेरे प्रति धक्षण करैगा। ऐसें इसकूं कहै ॥४॥

विषै तैसैंहीं उपालंभ देवै। तब प्रजापतिके प्रति शरण प्रपन्न (प्राप्त) भयाहूं। सो तेरे प्रति पेषण करैगा कहिये सम्यक् चूर्ण करैगा। ऐसें इसकूं कहै ॥ अनंतर जब इसकूं स्पर्शनविषै उपालंभ देवै। तब मृत्युकेप्रति शरण प्रपन्न भयाहूं। सो तेरे प्रति धक्षण (भस्म) करैगा। ऐसें इसकूं कहै ॥ ४॥

समस्तसामके उपासन २४

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति सर्व ऊष्माणो अग्रस्ता निरस्ता विवृत्ता वक्तव्याः

अर्थः—सर्व स्वर घोषवाले अरु बलवाले कहनेकूं योग्य हैं। इंद्रविषै बलकूं देताहूं। ऐसें [चिंतन करै]॥ सर्व उष्माण अग्रस्त

टीकाः—जौंतैं[152] इंद्र आदिकके आत्मा स्वर आदिक हैं। यातैं सर्व स्वर घोषवाले अरु बलवाले कहनेकूं योग्य हैं॥ तैसैं[153] मैं इंद्र-

---

१५२ देवताके ज्ञानके बलसैं उद्गाताकरि प्रमत्त होनेकूं योग्य नहीं है। काहेतैं स्वर आदिकनके अन्यथा उच्चारणविषै देवताभेदके प्रसंगतैं। यातैं स्वर आदिकके उच्चारणविषै तात्पर्य करनेकूं योग्य है। ऐसैं उद्गाताके प्रति शिक्षा देते हैं॥

१५३ प्रयोगकालविषै चिंतन करने योग्य अर्थकूं कथन करैहैं॥ इहां तथा (तैसैं)। याका उक्त रीतिकरि स्वरोंके प्रयोगकी अवस्थाविषै। यह अर्थ है औ आधान करताहूं ऐसैं चिंतन करै। यह शेष है औ द्वितीय तथा (तैसैं) शब्दका ऊष्माणोंके प्रयोगकी अवस्थाविषै। यह अर्थ है औ खुले प्रयत्नकरि युक्त प्रयोगकरनेकूं योग्य हैं। यह शेष है॥

प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे

अनिरस्त अरु विवृत (खुल्ले) कहनेकूं योग्य हैं। प्रजापतिके आत्माकूं परिदान करताहूं ऐसें [चिंतन करै]॥ सर्व स्पर्श लेशकरि (धीरेसैं) अनभिनिहित कह-

---

विषै बलकूं देताहूं कहिये बलकूं आधान करताहूं ऐसें॥ तैसैं सर्व ऊष्माण अग्रस्त (भीतर अप्रवेशित) अनिरस्त (बाहिर अप्रक्षिप्त) अरु विवृत (खुल्ले प्रयत्नकरि युक्त) प्रयोग करनेकूं योग्य हैं। [१५४] प्रजापतिके आत्माकूं देताहूं ऐसें॥ सर्व स्पर्श लेशकरि (शनैः) अनभिनिहित (अभिनिक्षेपसैं रहित) कहनेकूं योग्य हैं। मृत्युके आत्माकूं परिहार करताहूं। कहिये शनैः परिहार करनेहारे पु-

---

१५४ तहांबी ध्यान करने योग्यकूं दिखावै हैं॥ अतिशीघ्र उच्चारणसैं एक वर्ण अन्यवर्णविषै जैसैं निक्षिप्त (स्थापित) नहीं होवै तैसैं प्रयोग करनेपना अभिनिक्षेपसैं रहितपना है॥

स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिहराणीति ॥ ५ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य द्वाविंशः खंडः ॥ २२ ॥

नेकूं योग्य हैं । मृत्युके आत्माकूं परिहार करताहूं । ऐसें [चिंतन करै] ॥ ५ ॥

इति श्री०मूलभाषा०द्वितीयप्रपा०द्वाविंशःखंडः२२

रुषनकरि [155] बालकनकी न्याईं मृत्युके आत्माकूं परिहार करताहूं ऐसें ॥ ५ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपा० द्वाविंशः खंडः ॥२२॥

---

१५५ मृत्युके आत्माकूं । ऐसें वाक्यका ग्रहण है । ताके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसें लोक शनैः (धीरेसें) जलआदिकनतैं बालकनकूं परिहार करैहै (निकासता है)। तैसें मृत्युके आत्माकूं मैं परिहार करताहूं । ऐसें ध्यान करिकें ककारादि स्पर्शनका प्रयोग कर्तव्य है ॥

इति श्री०द्वितीयप्रपाठकगतद्वाविंशखंडस्य टिप्पणम् ॥ २२ ॥

अथ द्वितीयप्रपा० त्रयोविंशः खंडः ॥ २३ ॥

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दा-

अथ श्री० मूलभाषा० द्वितीयप्रपा० त्रयोविंशः खण्डः २३

अर्थः—तीन धर्मके स्कंध (विभाग) हैं:—यज्ञ अध्ययन अरु दान। यह प्रथम

अथश्री० भाष्यभाषा० द्वितीयप्रपा० त्रयोविंशः खण्डः २३

तीन धर्मस्कंध औ ब्रह्मसंस्थकूं अमृतकी प्राप्तिपूर्वक
ॐकारकी ब्रह्मरूपता ३.

टीका:—ॐकार[१५६]के उपासनके विधिअर्थ तीन धर्मस्कंध हैं। इत्यादि आरंभ करियेहै । तहां [१५७]ऐसैं नहीं मान्या चाहियेकि:—सामके अवयव-

---

अथ श्री० द्वितीयप्रपाठकगतत्रयोविंशखंड० टि० २३

१५६ अधिकारीके अधिकाररूप अंगावबाद्ध (अंगसंबंधि) उपासन कहे। अब स्वतंत्र अधिकारी गोचर ओंकारके उपासनकूं विधान करनेकूं आरंभ करैहैं ॥

२५७ अंगावबद्ध उपासनके अधिकार (प्रकरण)विषै यथोक्त स्वतंत्र उपासनके विधानविषै श्रुतिका कौंन अभिप्राय है ? यह आशंकाकारिके कहैहैं ॥ इहां स्वतंत्र तिसके उपासनतैं नहीं । यह एवकारका अर्थ है ॥

नमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्म-
चार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमा-

है। तपहीं द्वितीय है। आचार्य कुलवासी
ब्रह्मचारी आचार्य कुलविषै आत्माकूं अ-
त्यंत क्षपण करता हुया तृतीय है ॥ सर्व ये

भूतहीं उद्गीथादिरूप ॐकारके उपासनतैं फल
प्राप्त होवैहै ऐसें ॥ १५८ तव क्या मान्या चाहिये
किः—जो सर्वबी सामके उपासनोंकरि अरु क-
र्मोंकरि अप्राप्यफल अमृतभाव है । सो केवल
ॐकारके उपासनतैं प्राप्त होवैहै । यातैं ताकी
स्तुतिअर्थ सामके प्रकरणविषै ताका उपन्यास
हैः—तीन संख्यावाले धर्मके स्कंध हैं । अर्थ यह
जोः—धर्मके प्रविभाग हैं ॥ ॥ वे कौंन हैं ? यह
कहैहैंः—अग्निहोत्रादिरूप यज्ञ है ॥ नियमस-

१५८ तव कैसैं माननेकूं योग्य है ? तिस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥ इहां सनियमकूं । याका पूर्वमुखताआदिक नियमकरि सहित पुरुषकूं । यह अर्थ है औ अभ्यास जो है सो स्वीकरण । विचार । जप । शिष्यनके अर्थ दान अरु आवृत्ति। इस भेदतैं पंचविध है ॥

त्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसँस्थोऽमृतत्वमेति ॥ १ ॥

पुण्यलोक होवैहैं । ब्रह्मसंस्थ अमृतभावकूं पावताहै ॥ १ ॥

हित पुरुषकूं ऋग्वेदआदिकका अभ्यासरूप अध्ययन है । औ बहिर्वेदि[१५९] कहिये यज्ञकी वेदीतैं बाहिर जैसैं होवै तैसैं । भिक्षुकोंकेअर्थ यथाशक्ति द्रव्यका सम्यक् विभागरूप दान है ॥ ऐसा यह प्रथम धर्मस्कंध है । काहेतैं गृहस्थसैं समवेत (संबद्ध) होनेतैं ताके निर्वाहक गृहस्थकरि प्रथम निर्देश करियेहै । अर्थ यह जोः—एक[१६०] है । द्वितीय[१६१] अरु तृतीयके श्रवणतैं

१५९ वेदीविषै जो देईता है ताकूं यज्ञका अंग होनेतैं यज्ञतैं पृथक् फलवान्‌पना नहीं है । ऐसैं मानते हुये दानकूं विशेषण देते हैं ॥ इहां गृहस्थकरि । याका तिस स्वरूपकरि । यह अर्थ है ॥

१६० गृहस्थकूं प्रथमपना कैसैं है । ब्रह्मचारीकूं तैसा होनेतैं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

१६१ उक्त व्याख्यानविषै वाक्यशेषकी प्रमाणताकूं कहैहैं ॥

समस्तसामके उपासन २४

[१६२] आद्य अर्थवाला यह प्रथमशब्द नहीं है ॥ तप हीं द्वितीय है । इहां "तप" ऐसैं कृच्छ्र अरु चांद्रायण आदिक कहियेहैं । तिसवाला तापस (वानप्रस्थ) वा परिव्राट् (संन्यासी) है । (सो संन्यासी) [१६३] ब्रह्मसंस्थ नहीं [किंतु] आश्रमके धर्ममात्रविषै स्थित है । काहेतैं [१६४] ब्रह्मसंस्थ (ब्रह्मनिष्ठ)कूं तो अमृतभावके श्रवणतैं॥ यह द्वितीय धर्मस्कंध है ॥ औ आचार्यके कुलविषै वसनेकूं है शील(स्वभाव)इसकूं सो आचार्य कुलवासी है । ऐसा जो ब्रह्मचारी सो अत्यंत (जीवनपर्यंत) आत्मा (देह)कूं नियमोंकरि आचार्यके कुल (गृह)विषै क्षपण करता हुया तृतीय धर्मस्कंध है ॥ "[१६५]अत्यंत" इत्यादिरूप विशे-

१६२ प्रथमपनाहीं प्रथमशब्दका अर्थ नहीं है । काहेतैं ब्रह्मचारीकी प्रथमताकी प्रसिद्धिके विरोधतैं । ऐसैं कहैहैं ॥

१६३ इहां कैसा परिव्राट् (संन्यासी) ग्रहण करिये है ? तहां कहैहैं ॥

१६४ इहां ब्रह्मसंस्थ संन्यासी किस कारणतैं नहीं ग्रहण करिये है ? तहां कहैहैं । तहां वानप्रस्थका ग्रहण जो है सो अमुख्य (गौण) संन्यासीकेबी दिखावनेअर्थ है ॥

१६५ " ब्रह्मचारी " इत्यादि वाक्यकी नैष्ठिकब्रह्मचारीरूप अर्थवान्ताकूं विशेषणके सामर्थ्यतैं दिखावै हैं ॥

षणतैं यह "नैष्ठिक ब्रह्मचारी है" ऐसैं जानियेहै। काहेतैं [166] उपकुर्वाण ब्रह्मचारीकूं स्वाध्याय (वेद-अध्ययन)के ग्रहणअर्थ होनेतैं [ताकूं] ब्रह्मचर्यकरि पुण्यलोकवान्पना नहीं है॥ [167] सर्व ये तीनबी आश्रमी यथोक्त धर्मोंकरि पुण्यलोक होवैहैं। पुण्य[168]रूप लोक होवैगा जिनकूं वे ये पुण्य लोक आश्रमी होवैहैं॥ [169] अवशिष्ट तो अनुक्त जो परिव्राट् ब्रह्मसंस्थ (ब्रह्मविषै सम्यक् स्थित)है सो पुण्यलोकनतैं विलक्षण [170] आंत्यंतिक अमृतभाव (अमरणभाव)कूं पावताहै। देवआदिकके अमृतभावकीन्यांई आपेक्षिक अमृत-

---

१६६ अनंतर उपकुर्वाणका इहां ब्रह्मचारीपनैके अविशेषतैं क्यूं ग्रहण नहीं होवैगा? तहां कहैहैं॥

१६७ ननु ब्रह्मचारीकूं ब्रह्मचर्यकरि पुण्यलोक नहीं सुनियेहै? तहां कहैहैं॥

१६८ ननु पुण्यलोकवान्तारूप विशेषवाले आश्रमीनकी तिसरूपता (पुण्यलोकवान्रूपता) कैसैं कहियेहै? तहां कहैहैं॥

१६९ ननु दिखाये हुये आश्रमीनविषै संन्यासी मुख्य क्यूं नहीं दिखायेहैं? तहां कहैहैं॥

१७० अमृतभावका पुण्यलोकनतैं विलक्षणपना किस कारणतैंहीं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

भावकूं नहीं। काहेतैं [१७१]पुण्यलोकतैं पृथक् अमृतभावके विभागके करनेतैं। औ [१७२]जब पुण्यलोकका अतिशयमात्र अमृतभाव होवै तब पुण्यलोकरूप होनेतैं तिनतैं विभक्त श्रुति नहीं कहती औ विभक्तके उपदेशतैं आत्यंतिक (निरपेक्ष) अमृतभाव है ऐसैं जानियेहै ॥ [१७३]औ इहां आश्रमधर्मके फलका उपन्यास जो है सो [१७४]प्र-

---

१७१ ताके आपेक्षिकपनैके अभावविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां अमृतभावकूं पुण्यलोकतैं पृथक् विभागके करनेतैं तिसतैं अन्य होनेतैं आत्यंतिकताकी सिद्धि है। ऐसैं योजना है॥

१७२ उक्त अर्थकूंहीं व्यतिरेकद्वारा साधतेहैं ॥ इहां ब्रह्मशब्दके यथाश्रुत मुख्य अर्थकूं ग्रहणकरिके परब्रह्मस्वरूपसैं साक्षात्कारवान्‌का निरंकुश अमृतभाव कहा । प्रकरणकी आलोचनासैं तो प्रणवरूप प्रतीकविषै ब्रह्मके उपासकका क्रमसैं अमृतभाव भेदबुद्धिके अनाशतैं देखनेकूं योग्य है ॥

१७३ कर्मिनकी अंतवाले फलवान्‌ताके कथनसैं तिनकी निंदाकरि ब्रह्मसंस्थताकी स्तुतिके देखनेतैं औ ता स्तुतिकूं विधिअर्थ होनेतैं अमृतभावकी कामनावाला ब्रह्मसंस्थ होवै इस एक अर्थपर होनेतैं एक यह वाक्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

१७४ ननु स्तुतिकेअर्थ औ फलविधिकेअर्थ यह वाक्य क्यूं नहीं होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अर्थकी एकताके होनेतैं सो एक वाक्य है। काहेतैं इस (अर्थ)के भेदके होते तिस (वाक्य)के भेदके नियमतैं ॥

णवकी सेवा (उपासना)की स्तुतिअर्थ है । तिस फलके विधिअर्थ नहीं ॥ औ प्रणवसेवाकी स्तुति अर्थ है अरु आश्रमधर्मके फलके विधि-अर्थ है । ऐसैं [अर्थका भेद होवै तो] जातैं वाक्य भेदकूं पावै [अरु भेदकूं पावता नहीं] [175]तातैं स्मृतिकरि सिद्ध आश्रमफलके अनुवाद-करि प्रणवसेवाके फल अमृतभावकूं कहता हुया प्रणवकी सेवाकूं यह वाक्य स्तुति करैहै ॥ जैसैं पूर्णवर्म[176] (पूरे कवच)की सेवा भक्तके परिधान (पहिरने) मात्र फलवाली है अरु राजवर्मकी सेवा तो राज्यतुल्य फलवाली है ऐसैं । ताकी न्यांई । [177]औ प्रणव सो सत्य

१७५ तब यह वाक्य किस अर्थपर है ? तहां कहैहैं ॥ इहां श्रुतिकूं स्मृतिके अर्थकी अनुवादरूपताके हुये विपरीत होनेतैं तिसकारि अनुमित श्रुतिकरि सिद्ध यह स्तुति है । ऐसैं योजना करनेकूं योग्य है ॥

१७६ स्तुतिकूंहीं दृष्टांतके आश्रयकरि स्पष्ट करैहैं ॥ इहां इतिशब्द अध्याहृत (बाहिरसैं ग्रहण किये). "स्तुतिअर्थ है" इस अर्थके साथि संबंधकूं पावताहै ॥

१७७ ननु ब्रह्मतत्वकी सेवातैं अमृतभाव होवैहै । प्रण-वकी सेवातैं नहीं । तातैं ऐसैं ताकी स्तुति क्यूं करिये है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

परब्रह्म है ताका प्रतीक होनेतैं। काहेतैं "[१७८] यँहि (प्रणवरूप) हीं अक्षर ब्रह्म है। यह हीं अक्षर पर है" कठोपनिषद् विषै इत्यादि आम्नायतैं। ता (प्रणव) की सेवातैं अमृतभाव युक्त है॥ ॥
[१७९] ईहां केईक (वृत्तिकारके अनुसारी) कहतेहैं किः—ज्ञानवर्जित च्यारी आश्रमिनकूं अविशेष (तुल्यता) करि स्वकर्मके अनुष्ठानतैं सर्व ये पुण्यलोक (पुण्यलोकवान्) होवैहैं ऐसैं पुण्यलोकता (पुण्यलोकवान्ता) हीं कही है। इहां परिव्राट् (संन्यासी) अवशेषित नहीं है। [१८०] परिव्राजक (संन्यासी) का बी ज्ञान औ ताके

१७८ तहां प्रमाणकूं दिखावते हुये फलितकूं कहैहैं॥

१७९ स्वव्याख्यानकूं दोषवर्जित कहिके। अब "ब्रह्मसंस्थ अमृतभावकूं पावताहै" इस वाक्यविषै प्राचीनवृत्तिकारके (भर्तृप्रपंचके) व्याख्यानकूं उठावतेहैं॥ इहां जे प्रसिद्ध च्यारी आश्रमी ज्ञानवर्जित हैं तिन सर्वकी बी समानताकरि स्वआश्रमविहित धर्मके अनुष्ठानसैं पुण्यलोककी भागिता "सर्व ये पुण्यलोक होवैहैं" इस वाक्यविषै कही। परंतु पूर्वग्रंथविषै परिव्राट् अनुक्त हुया अवशेषित नहीं है। ऐसैं योजना है॥

१८० ननु पूर्व ग्रंथविषै परिव्राट्का वाचकपद नहीं प्रतीत होवैहै। तैसैं हुये यह अवशेषित है? तहां कहैहै॥ इहां ज्ञान औ यम नियम 'याका उपायभूत' यह अर्थ है॥

उपायभूत यम अरु नियम तपहीं है। यातैं "तपहीं द्वितीय है" इस वाक्यविषै तपःशब्द-करि परिव्राट् (संन्यासी) अरु तापस (वा-नप्रस्थ) ये दो ग्रहण किये हैं । [१८१]यातैं तिन हीं च्यारी आश्रमिनके मध्य जो ब्रह्मसंस्थ प्रण-वका सेवक है सो अमृतभावकूं पावताहै। ऐसैं [१८२]च्यारी आश्रमिनकूं अधिकारीपनैके अविशेषतैं औ ब्रह्मसंस्थताविषै अप्रतिषेधतैं औ [१८३]स्वकर्म-विषै छिद्र (अवकाश)के हुये ब्रह्मसंस्थताविषै सामर्थ्यके संभवतैं औ [१८४]यर्वे वराहआदिक श-

१८१ ननु परिव्राट्बी पूर्वत्र (पूर्वविषै) जब कहाहै तब ब्रह्मसंस्थवाक्यका कौंन अर्थ होवैगा ॥ इहां परिव्राजककूं अनवशिष्ट (अनवशेषित) होनेकरि च्यारीनके उपदिष्टपनैका अविशेष अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है ॥

१८२ सामान्यनिर्देशविषै हेतुकूं कहैहै ॥ इहां औ अप्र-तिषेधतैं । ऐसैं पदच्छेद है ॥

१८३ ननु अन्य आश्रमोंकूं कर्मअर्थ होनेतैं तिस कर्मवि-षैहीं व्यापारवाले होनेतैं ब्रह्मसंस्थताविषै सामर्थ्य नहीं है औ व्यापाररहित परिव्राजककूं तो ब्रह्मसंस्थता सुकर (सु-लभ) है ? यातैं कहैहै ॥

१८४ ननु परिव्राजकविषै ब्रह्मसंस्थशब्द रूढ है । गो

ब्दनकीन्यांई ब्रह्मसंस्थशब्द परिव्राजकविषै रूढ नहीं है । काहेतैं ब्रह्मविषै सम्यक् स्थितिरूप निमित्तकूं लेके प्रवर्त होनेतैं । १८५जातैं रूढि शब्द निमित्तकूं ग्रहण करते नहीं औ १८६सर्व आश्रमीनकी ब्रह्मविषै स्थिति संभवैहै । १८७जहां जहां ब्रह्मविषै संस्थितिरूप निमित्त है तिस तिस निमित्तवालेके वाचकके होते परिव्राट्रूप एक विषयमैं संकोचविषै कारणके अभावतैं ब्रह्मसंस्थ-

---

आदिक शब्दकीन्यांई । तातैं यह शब्द अन्य आश्रमकूं विषय करता नहीं ? तहां कहैहै ॥

१८५ ननु निमित्तकूं लेके प्रवर्तपनैके हुये बी क्यूं ऐसैं रूढि नहीं होवैगी ? यह आशंकाकरिके कहैहै ॥

१८६ ननु यह शब्द नैमित्तिक हुया बी परिव्राजकमात्रकूं आश्रय (विषय) करैहै । काहेतैं तिसविषैहीं निमित्तके सद्भावतैं ? तहां कहैहै ॥

१८७ ननु पंकज आदिक शब्द निमित्त है इतनैकरि इंदीवर (श्यामकमल) आदिकविषै वर्तते नहीं किंतु तामरस (साधारणकमल) आदिमात्रकूं विषय करते हैं । तैसैं ब्रह्मसंस्थशब्द निमित्तवाले गृहस्थ आदिकविषै अनवस्थित (अवर्तमान) हुया केवल परिव्राजककूंहीं विषय करैगा ? यातैं कहैहै ॥ इहां ब्रह्मसंस्थशब्द निरोध करनेकूं अयुक्त है । ऐसैं संबंध है ॥

शब्द निरोध करनेकूं अयुक्त है ॥ ॥ औ संन्यास[188] आश्रमके धर्ममात्रसैं अमृतभाव नहीं होवैहै। ज्ञानकी व्यर्थताके प्रसंगतैं । संन्यासके[189] धर्म-करि युक्त हीं ज्ञान अमृतभावका साधन है? ऐसैं जो सिद्धांती कहैं। सो[190] बनै नहीं:—काहेतैं आश्रमधर्मताके अविशेषतैं । वो[191] ज्ञानविशिष्ट धर्म अमृतभावका साधन है! यह बी सर्व आश्रमके धर्मोंके मध्य समान है औ[192] ब्रह्मसंस्थ

---

१८८ रूढिपक्षविषै अन्य दोषकूं कहैहै ॥

१८९ धर्मसहित ज्ञानकूं वा ज्ञानसहित धर्मकूं अमृतभावका साधन होनेतैं ज्ञानकी व्यर्थता नहीं है? यह आशंका-करिके प्रथम पक्षकूं अनुवाद करैहै ॥

१९० पारिव्राज्य (संन्यास)के धर्मकरिहीं । ऐसा यह नियम नहीं है । काहेतैं गृहस्थआदिके धर्मनकूं बी आश्रमके धर्म होनेकरि तुल्य होनेतैं तिसकरि विशिष्ट ज्ञान अमृतभावका हेतु है । ऐसैं बी कहनेकूं सुलभहोनेतैं । ऐसैं कहैहै ॥

१९१ द्वितीयपक्षकूं दूषण देताहै ॥ इहां यह अर्थ है:— जब परिव्राजकका धर्म ज्ञानविशिष्ट हुया मुक्तिका हेतु है ऐसैं कहियेहै । तब यह बी मुक्तिका हेतुपना ज्ञानविशिष्ट सर्व आश्रमोंकूं समान है । तैसैं हुये रूढिपक्षविषै बी परि-व्राजककूंहीं ज्ञानतैं मुक्ति नहीं होवैहै [किंतु सर्वकूं होवैहै]

१९२ इस कहनेके हेतुतैं बी परिव्राजककूंहीं मुक्तिका भागीपना असिद्ध है। ऐसैं कहैहै ॥

परिव्राजककूं हीं मोक्ष होवैहै । अन्योंकूं नहीं । ऐसा शास्त्रका वचन नहीं है औ [193] ज्ञानतैं मोक्ष होवैहै । ऐसा सर्व उपनिषदनका सिद्धान्त है । [194] जातैं स्व आश्रमविहित कर्मवालोंके मध्य जोई ब्रह्मसंस्थ होवै सो अमृतभावकूं पावताहै ? ऐसा भर्तृप्रपंचनामक वृत्तिकारका मत है ॥ सो बनै नहीं:—काहेतैं [195] कर्मके निमित्तके अरु विद्याके प्रत्ययनके विरोधतैं । [196] जातैं कर्ताआ-

१९३ ननु तब किसीकूं बी मुक्ति मति होवै ? ऐसैं कहैं । तहां कहैहै ॥

१९४ अब ब्रह्मसंस्थ वाक्यके अर्थकूं वृत्तिकार उपसंहार करैहै ॥ इहां तातैं । याका परिव्राजककूंहीं अमृतपना होवैहै इस अनियमतैं औ ज्ञानतैंहीं सो होवैहै इस नियमतैं । यह अर्थ है ॥

१९५ ब्रह्मसंस्थ (ब्रह्मनिष्ठ) समुच्चय (मिलितज्ञान कर्म)-का अनुष्ठायी (अनुष्ठाता) है । ऐसे वृत्तिकार (भर्तृप्रपंच)के मतकूं आचार्य निराकरण करैहैं ॥ इहां कर्मके निमित्त (कारकादि कारण)के ज्ञानके औ शुद्धब्रह्मात्मभावके साक्षात्कारके परस्पर विरोधतैं समुच्चयकी सिद्धि नहीं है । यह अर्थ है ॥

१९६ वस्तुके संग्रहरूप वाक्यकूं विवरण करैहैं ॥ इहां कर्मविधियां औ प्रतिषेध । ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥

दिक कारक क्रिया अरु फलकी भेदज्ञानवान्-तारूप निमित्तकूं लेके "इसकूं कर इसकूं मति-कर" ऐसैं कर्मके विधियां प्रवर्त होवैहैं औ[१९७] सो निमित्त शास्त्रका किया नहीं है। काहेतैं सर्व प्राणीनविषै देखनेतैं ॥औ "सत् है। एकहीं अद्वि-तीय है। आत्माहीं यह सर्व है। ब्रह्म हीं यह सर्व है" इस शास्त्रकरि जन्य विद्यारूप प्रत्यय (ज्ञान) है सो[१९८] स्वाभाविक क्रिया कारक अरु फलके भेदज्ञा-नरूप कर्मविधिके निमित्तकूं न बाध करिके उप-जता नहीं। काहेतैं भेद[१९९] अरु अभेदके ज्ञानोंके वि-रोधतैं॥ [२००]जैंतैं तिमिरके दूरीभये तिमिरदोषजनित दोचंद्रआदिकके भेदके ज्ञानकूं न बाध करिके चंद्र-आदिककी एकताका ज्ञान नहीं उपजताहै। का-

---

१९७ तथापि प्रत्यय (ज्ञान)पनैंके अविशेषतैं कारक अरु अकारकरूप विधिनिषेधका विरोध नहीं है? यह आशंकाक-रिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-प्रत्ययपनैंके हुये बी शास्त्रीय अरु अशास्त्रीयपनैंकरि विद्या अविद्या भावसैं विरोध है ॥

१९८ ननु विरोधके हुये क्या होवैगा? इहां कहैहैं ॥ इहां विद्यारूप प्रत्यय। ऐसैं पूर्वसैं संबंध है ॥

१९९ तहां उक्तहीं हेतुकूं सरण करावै हैं ॥

२०० तिसविषै लोकप्रसिद्ध उदाहरणकूं कहैहैं ॥

हेतैं विद्या अरु अविद्याके ज्ञानोंके विरोधतैं ॥ [२०१] तैंहां ऐसैं हुये जिस भेदज्ञानकूं लेके कर्मके विधियां प्रवर्त भयेहैं । सो भेदज्ञान "सत् एकहीं अद्वितीय है। सो सत्य है। विकाररूप भेद अनृत है" इस प्रकारके इस वाक्यरूप प्रमाणसैं जनित एकताके ज्ञानसैं जिसका उपमर्दित (बाधित) भया है सो सर्व कर्मोंतैं निमित्तकी निवृत्तितैं निवृत्त भया है औ सो निवृत्तकर्मा ब्रह्मसंस्थ कहियेहै औ सो परिव्राट्हीं है । अन्यके असंभवतैं॥ [२०२] जातैं अन्य अनिवृत्तभेदज्ञानवाला है [यातैं]

---

२०१ ननु विद्या अविद्यास्वरूप भेद अभेद ज्ञानोंके समुच्चयके असंभवतैं ताका अनुष्ठायी जब ब्रह्मसंस्थ नहीं होवैहै । तब कौन ब्रह्मसंस्थ होवैगा ? इहां कहैहैं ॥ इधर तहां ऐसैं हुये । याका उक्त रीतिकरि ज्ञानकर्मके समुच्चयके अयोगके हुये । यह अर्थ है ॥

२०२ अन्य गृहस्थ आदिकके उक्त ब्रह्मसंस्थताके असंभवकूं साधते हैं ॥ इहां वाणीका उच्चारणमात्र विकार अनृतरूप शरीर आदिकविषै "मैं ब्राह्मण हूं" इत्यादि अभिसंधानरूप मिथ्या अभिनिवेशस्वरूप जो प्रत्यय (विपरीतज्ञान) है । तिसवाला होनेतैं । यह भाष्यउक्त हेतुका अर्थ है ॥ [इहां समुच्चयवादके खंडनअर्थ अरु बहिर्मुख गृहस्थ आदिकनके ज्ञानविषै अनधिकारके सूचन अर्थ औ वरगोटकन्या-

सो अन्यकूं देखता हुया सुनता हुया मानता हुया जानता हुया "इसकूं करिके इसकूं प्राप्त-होउंगा" ऐसैंहीं मानताहै। तिस ऐसैं करनेवा-लेकूं ब्रह्मसंस्थता नहीं है। काहेतैं वाणीका आ-रंभणमात्र विकाररूप अनृत (मिथ्या)की अ-भिसंधिके ज्ञानवाला होनेतैं ॥ [२०३]औ "असत्य

यकरि प्रकृत संन्यासकी स्तुति अर्थ भाष्यकारनैं गृहस्थआ-दिक तीन आश्रमीनकूं ज्ञानका असंभव कहा है। स्वरसता-करि नहीं। अन्यथा "स्त्रीयां वैश्य तथा शूद्र वे बी पराग-तिकूं पावते हैं" इत्यादि अनेक शास्त्रके वचनोंकी व्यर्थता होवैगी औ वसिष्ठ राम कृष्ण जनक आदिक अनेक गृहस्थ ज्ञानी-नके विषयक अरु स्वप्रणीत मनीषापंचकविषै उक्त चांडालपर्यंत ज्ञानीनके विषयक शास्त्रवाक्यनका विरोध होवैगा। यह अनेक अनुभवी पुरुषनका निश्चित अभिप्राय है। सो इहां उत्तम अधिकारी गृहस्थआदिकनकूं संदेहकी अनुत्पत्तिअर्थ प्रसंगसैं हमनैं सूचन कियाहै]॥

२०३ ननु ब्रह्मवेत्ताकूं बी संस्कारके वशतैं सत्यताकेअभि-निवेशपूर्वक कर्मविषै प्रवृत्तिके संभवतैं ब्रह्मसंस्थता सुष्ठुप्रका-रसैं प्रतिपादनकरनेकूं योग्य नहीं है? यातैं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:–यह असत्य है ऐसैं विवेककरि सत्यताके अभिनि-वेश (आग्रह)के शिथिल किये हुये फेर सत्यताके अभिनि-वेशकरि प्रवृत्ति नहीं संभवै है। औ आभासरूप भेदबुद्धि तो कर्मविषै प्रवृत्तिकी हेतु नहीं है॥

है" ऐसैं भेदज्ञानके उपमर्दित हुये "यह सत्य है ॥ इससैं मुजकरि कर्तव्य है" ऐसी प्रमाणसैं जन्यरु प्रमेयकी बुद्धि आकाशविषै तलमलकी बुद्धिकीन्यांई विवेकीकूं नहीं संभवैहै ॥ औ [२०४] भेदज्ञानके उपमर्दित हुयेबी जब कर्मोंतैं नहीं निवृत्त होवैहै । तब पूर्वकी न्यांईं भेदज्ञानकरि उपमर्दनतैं एकताके ज्ञानका विधायक वाक्य अप्रमाणीकृत होवैगा औ [२०५] अभक्ष्यभक्षण आदिकके प्रतिषेधरूप वाक्यनकी प्रमाणताकी न्यांईं एकताके वाक्यकी बी प्रमाणता युक्त है। काहेतैं

२०४ अद्वैतज्ञानवान्कूं निमित्त (कारकादि कर्मसामग्री) की निवृत्तिकरि कर्मतैं निवृत्ति अवश्य होनेहारी है। ऐसैं कहा। अब विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

२०५ ननु एकताके ज्ञानका जनक शास्त्रप्रमाण नहीं होवैहै। काहेतैं पूर्व प्रवृत्त भेदज्ञानके विरोधतैं? इस मतकूं आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं "कलंज (विषलिप्त बाणकरि हत मृगमांस)कूं भक्षण करै नहीं" इत्यादि शास्त्र पूर्व प्रवृत्त कलंज आदि भक्षणके ज्ञानसैं विरोधके हुये बी प्रमाण है। काहेतैं रागादिदोषकरि प्राप्त ज्ञानकूं अप्रमाण होनेतैं ॥ तैसैंहीं भेदज्ञानकूं अविद्याकरि उत्पन्न होनेतैं प्रमाणताके असंभवतैं तिससैं विरोधके हुये बी अद्वैतशास्त्रकी प्रमाणता युक्त है ॥

[२०६] सर्व उपनिषदनकूं तिसके परायण होनेतैं ॥ ॥ ननु ऐसैं हुये [२०७] कर्मविधिनकी अप्रमाणताका प्रसंग होवैगा ? ऐसैं जो कहै। सो [२०८] बने नहीं:- काहेतैं अनुपमर्दित (अबाधित) भेदज्ञानवाले पुरुषविषै प्रबोधतैं पूर्व स्वप्न आदिकके ज्ञानकीन्यांई कर्मविधिनकी प्रमाणताके संभवतैं ॥ ॥ [२०९] ननु विवेकीनके अकरणतैं कर्मविधिकी प्रमाण-

२०६ ननु कार्य (कर्म)पर होनेतैं अद्वैतविषै तात्पर्यके अभावतैं तिस अद्वैत शास्त्रकी प्रमाणता कहांतैं होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-उपक्रम अरु उपसंहारकी एकरूपताआदिक षड्विध तात्पर्यके लिंगके देखनेतैं तिन उपनिषदका अद्वैतविषै तात्पर्य निश्चित होवैहै। तातैं अद्वैत शास्त्रका स्वार्थविषै प्रमाणपना युक्त है ॥

२०७ ननु भेदके आलंबनवाले कर्मविधिके विरोधतैं अद्वैतशास्त्र स्वार्थविषै प्रमाण नहीं है ? इसरीतिसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

२०८ जैसैं स्वप्नका प्रत्यय अरु गंधर्वनगर आदिकका प्रत्यय तत्वज्ञानतैं पूर्व अज्ञपुरुषकूं विषयकरिके प्रमाण है। तैसैं कर्मविधिनके बी अविद्वान् पुरुषविषै प्रमाणपनैंके संभवतैं अद्वैतशास्त्रका तिससैं विरोध नहीं है। ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

२०९ "जिसजिसकूं श्रेष्ठ (श्रवण अरु अध्ययनकरि संपन्न पुरुष) आचरता है तिस तिसकूं इतर (अपापिष्ट उदा-

ताका उच्छेद होवैगा ? ऐसैं जो कहै। सो [२१०] बनै नहीं:—काहेतैं काम्यविधिके अनुच्छेदके देखनेतैं ॥ [२११] जौतैं "कामात्मता प्रशस्त (श्रेष्ठ) नहीं है" ऐसैं विज्ञानवानोंकरि काम्यकर्म नहीं अनुष्ठान करियेहैं। इसकरि काम्यकर्मकेविधि उच्छेदकूं पावते नहीं किंतु कामियोंकरि अनुष्ठान करियेहीं हैं यातैं उच्छेदकूं पावते नहीं ॥ [२१२] तैसैं ब्रह्मसंस्थ ब्रह्मवेत्ताओंकरि कर्म नहीं अनुष्ठान क-

---

सीन) जन आचरता है" इस स्मृतितैं तत्वदर्शीनके कर्मतैं उपरमके हुये अन्य बी उपराम होवैंगे। तैसैं हुये कर्मविधिके विरोधकी सुस्थिरता होवैगी ? इस रीतिसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

२१० लोककूं प्रकृति (वासनादिरूप पूर्वसंस्कार)के परवश होनेतैं यह लोक विवेकीकी प्रकृति (स्वभाव)के पीछे वर्तता नहीं। काहेतैं "भूत जे प्राणी वे प्रकृतिके प्रति जातैं (वर्तते) हैं। निग्रह (निषेध) क्या करैगा" इस स्मृतितैं। तातैं ब्रह्मवेत्ताकी निष्कर्मताके हुये बी कर्मविधिनकूं अप्रमाताकी प्राप्ति नहीं है। ऐसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

२११ ताहीकूं प्रपंचन करैहैं ॥ इहां यातैं उच्छेदकूं पावते नहीं। यह शेष है ॥

२१२ अस्तु। प्रकृतविषै क्या आया ? सो कहैहैं ॥ इहां अनुष्ठान करियेहीं हैं। यातैं तिनके विधिनकी अनुच्छित्ति (उच्छेद नहीं) है। यह वाक्यशेष है ॥

रियेहैं इसकरि ताकेविधि उच्छेदकूं पावते नहीं किंतु अब्रह्मवेत्ताओंकरि अनुष्ठान करियेहीं हैं। यातैं उच्छेदकूं पावते नहीं ॥ ॥ [213] ननु संन्यासियोंके भिक्षाचरण आदिककी न्यांई उत्पन्न एकताके ज्ञानवाले गृहस्थनकीबी अग्निहोत्रादि कर्मतैं अनिवृत्ति होवैगी? ऐसैं जो कहै । [214] सो बनै नहीं:—काहेतैं प्रमाणताकी चिंताविषै आभासरूप भिक्षाचरणादि पुरुषकी प्रवृत्तिकूं अदृष्टांतरूप होनेतैं। [215] जौंतैं। "अभिचारकूं करै नहीं"

---

२१३ अद्वैतवादीकूं अवश्य होनेहारी कर्मतैं निवृत्ति है ऐसैं कहाथा। ताकूं पूर्ववादी विपरीतघटावताहुया आशंका करैहै ॥

२१४ अद्वैतज्ञानके स्वभावके विचार कियेहुये भिक्षाटनादि प्रवृत्ति बी अघटमानहीं है। ऐसैं मानतेहुये सिद्धांती समाधान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—समुच्चयकी प्रामाणिकताके निरूपणविषै ज्ञानाभासरूप कारणवाले प्रवृत्तिके आभासकी उदाहरणता नहीं है औ अग्निहोत्रादि प्रवृत्तिकूं बी आभासताके हुये प्रामाणिक समुच्चयके सिद्धांतकी हानि होवैगी। यातैं यह प्रश्न बनता नहीं ॥

२१५ याहींकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥ इहां ताकी न्यांई अविवेकीकरि क्रियमाण कर्म देख्या। ऐसैं जानिके विवेकीनकरि बी सो नहीं करियेहै औ भिक्षाटनादिरूप प्रवृत्तिका

ऐसैं निषिद्ध अभिचरणरूप कर्मविशेषकूं करता हुया कोईबी देख्या नहीं। ऐसैं जानिके शत्रुविषै द्वेषरहित विवेकीकरिबी अभिचरण (शत्रुनाशक श्येनयागादिकर्म) नहीं करियेहै औ[216] कर्मविधिविषै प्रवृत्तिके निमित्त भेदज्ञानके बाधित हुये संन्यासीकूं भिक्षाचरणादिकविषै भोजनकी इच्छादिरूप प्रवर्त्तककी न्यांई। अग्निहोत्रादिकविषै प्रवर्तक निमित्त नहीं है ॥ ॥ ननु[217] इहां बी अकरणविषै प्रत्यवायका भय प्रवर्तक है? ऐसैं जो कहै। सो[218] बनै नहीं:—काहेतैं भेदज्ञानवालेकूं कर्मविषै अधिकारी होनेतैं कहिये भेदप्रत्ययवान् जो विद्याकरि अबाधित भेदबुद्धिवाला ऐसा जो है सो कर्मविषै अधि-

---

आभास तो अप्रमाणिक हुया अग्निहोत्रादि प्रवृत्तिका उदाहरण नहीं है। यह शेष है ॥

२१६ यातैं बी यह उदाहरण नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥

२१७ ननु अग्निहोत्रादिविषै बी प्रवर्तक है? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

२१८ अब सिद्धांती अकरणका किया प्रत्यवायनामक भय अविवेकीकूं है वा विवेकीकूं है? ऐसैं विकलपकरिके आद्यकूं अंगीकार करैहैं ॥

कारी है। ऐसैं हम कहते भये। [२१९]जातैं जो कर्मविषै अधिकारी है ताकूं ता(कर्म)के अकरणविषै प्रत्यवाय (पाप) होवैहै। [२२०]निवृत्तअधिकारवालेकूं नहीं। ब्रह्मचारीके विशेषधर्मके अननुष्ठानविषै गृहस्थकीन्यांईं (गृहस्थकूं पाप नहीं है ताकी न्यांईं)॥ ॥ [२२१]ननु जब ऐसैं है तब सर्व स्वाश्रमविषै स्थित उत्पन्न एकताके ज्ञानवाला हुया संन्यासी है? ऐसैं जो कहै। [२२२]सो बनै नहीं:—काहेतैं तिनकूं स्वस्वामिभावके

---

२१९ कर्मविषै भेदबुद्धिमानकूं अधिकारीपनैंके हुये बी ताकूं तिसकर्मके अकरणके हुये क्या होवैगा ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२२० द्वितीयकूं दूषण देते हैं ॥

२२१ निवृत्त अधिकारवाले विवेकीकूं प्रत्यवायकी अप्राप्तिकरि कर्मविषै प्रवर्तकके अभावतैं कर्मोंतैं निवृत्तिरूप संन्यास जब है तब अतिप्रसंग (मर्यादाका उल्लंघन) होवैगा ? ऐसैं पूर्ववादी शंका करै है ॥

२२२ कर्मका साधन स्वयज्ञोपवीतादि। त्यागकरियेहै। वा नहीं ? जब त्याग करियेहै तब सो स्वआश्रमका धर्म नहीं है। तातैं यज्ञोपवीतादि विना गृहस्थपनैंआदिकभावके असंभवतैं औ जब नहीं त्याग करियेहै तब संन्यासकी प्राप्ति

भेदकी बुद्धिकी अनिवृत्तितैं औ इतर[223] आश्रमोंकूं कर्मअर्थ होनेतैं "अनंतर कर्मकूं करो" इस श्रुतितैं। तातैं[224] स्वस्वामिभावके अभावतैं भिक्षु एकहीं परिव्राट् (संन्यासी) है। गृहस्थादि नहीं ॥ ॥ ननु[225] एकताके ज्ञानके विधि (उत्पादक महावाक्य)सैं जनित ज्ञानकरि विधिके निमित्त भेदज्ञानकूं उपमर्दित हो-

---

नहीं है। काहेतैं संग्रहके साध्यरूप अर्थके होनेतैं। ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

२२३ इस हेतुतैं बी अन्य आश्रमोंविषै संन्यास नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां जाया पुत्र अरु वित्तरूप संपत्तिकी अनंतरता श्रुतिविषै अथशब्दका अर्थ है ॥

२२४ स्वआश्रमविषै स्थित गृहस्थआदिकनविषैहीं संन्यासकी दुर्वचता (कहनेकी अयोग्यता)के हुये फलितकूं कहै हैं ॥ इहां तातैं। याका विवेकके वशतैं स्वशब्दके अर्थ यज्ञोपवीतादिकविषै स्वामीपनैकी बुद्धिके अभावतैं। यह अर्थ है॥

२२५ औ जो निवृत्त अधिकारवाले संन्यासीकूं अकरणतैं प्रत्यवायकी अप्राप्ति है। ऐसैं सिद्धांतीनैं कहाथा। तिसविषै पूर्ववादी अनिष्टापत्तिकूं आशंका करैहै ॥ इहां ता एकताकूं विषयकरनेवाले ज्ञानका विधि कहिये उत्पादक जो "तत्वमसि" आदिकवाक्य। तिसकरि जनित एकताकूं विषयकरनेवाले प्रत्यय (ज्ञान) करि। यह अर्थ है ॥ तैसैं हुये यथेष्टचेष्टाकी प्राप्ति होवैगी। यह शेष है ॥

नेतैं संन्यासीकूं यम नियम आदिका असंभव होवैगा ? ऐसैं जो कहै । सो बनै[२२६] नहीं:—काहेतैं भोजनकी इच्छाआदिककरि एकताके ज्ञानतैं गिरे संन्यासीकूं निवृत्तिका अर्थी होनेतैं यम नियम आदिकके संभवतैं औ प्रतिषिद्धकी[२२७] सेवाकी प्राप्ति नहीं है । काहेतैं एकताके ज्ञानकी उत्पत्तितैं पूर्वहींताकूं निषिद्ध परित्यक्त होनेतैं [२२८] जातैं रात्रिमैं कूपविषै वा कंटकविषै पतितभया पुरुष सूर्यके उदयहुये बी तिसविषैहीं नहीं प-

---

२२६ ज्ञानीकूं विधिअधीन यमादिक नहीं है । तिसविषै प्रवृत्ति तो संस्कारके वशतैं होवैहै । इस आशयकरि सिद्धांती कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जोई दुष्ट दोषकरि तत्वज्ञानतैं किसी प्रकारसैं बी प्रच्युतिकूं प्राप्तभया है ताकूं संस्कारके वशतैं यमनियमका अनुष्ठान संभवैहै । काहेतैं ता यमनियमकूं दोषकृत तत्वतैं प्रच्युतिकरि जनित अनियमित चेष्टाकी निवृत्तिअर्थ होनेकरि अवश्य अनुष्ठान करनेकूं योग्य होनेतैं । तैसैं हुये विद्वान्कूं यथेष्टचेष्टाकी प्राप्ति नहीं है ॥

२२७ इसतैं बी विद्वान्कूं विधिअधीन प्रवृत्तिके अभावके हुये बी यथेष्टचेष्टा नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

२२८ अविद्वान्कूं बी यथेष्टचेष्टा नहीं है तो विद्वान्कूं सो कहांतैं होवैगी । यह दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥

डताहै। [२२९]तातैं निवृत्तकर्मवाला भिक्षुकहीं ब्रह्मसंस्थ है। ऐसैं सिद्धभया ॥ ॥ [२३०]जो फेर कहाथा किः—सर्व ज्ञानवर्जितनकूं पुण्यलोकता है? ऐसैं यह सत्य है ॥ ॥ औ [२३१]जो कहाथाकिः—तपः शब्दकरि परिव्राट् बी कहा? ऐसैं। [२३२]यह असत् हैः- [२३३]काहेतैं परिव्राजक (संन्यासी)कूं हीं ब्रह्मसंस्थताके संभवतैं। [२३४]सोई जातैं अवशेषित है। ऐसैं हम कहते भये औ [२३५]एकताके ज्ञानवालेकूं

---

२२९ अन्योंकी ब्रह्मसंस्थताके असंभवके हुये फलितकूं उपसंहार करैहैं ॥

२३० परोक्तकूं अनुवादकरिके अंगीकार करैहैं ॥

२३१ उक्त अर्थांतरकूं अनुवाद करैहैं ॥

२३२ क्या ज्ञानहीन आश्रममात्रविषै स्थित संन्यासीका तपःशब्दकरि ग्रहण है। अथवा ज्ञानवान्‌का बी? ऐसैं विकल्पकरिके। आद्यकूं अंगीकारकरिके द्वितीयकूं दूषण देतेहैं॥

२३३ ज्ञानवान्‌कूं बी तपस्वी होनेतैं ताका तपःशब्दकरि ग्रहण उचित है? ऐसैं शंका करिके प्रत्युत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां तपःशब्दकरि यह नहीं ग्रहणकिया। यह शेष है ॥

२३४ औ तिस ज्ञानवान्‌का अवशिष्टपना पूर्वहीं उपदेश किया है। ऐसैं कहै हैं ॥

२३५ औ इसतैं परमहंस परिव्राजक तपःशब्दकरि नहीं ग्रहण कियाहै। ऐसैं कहैहैं ॥

अग्निहोत्रआदिककीन्यांईं तपकी निवृत्तितैं । जातैं[236] भेदबुद्धिवालेकूंहीं तपकी कर्तव्यता होवैहै । इसकरि[237] कर्मविषै छिद्रके हुये ब्रह्मसंस्थताका सामर्थ्य निरस्तकिया औ अप्रतिषेध[238] निरस्तकिया ॥ तैसैं[239] ज्ञानवान्हीं निवृत्तकर्मवाला परिव्राट् है ऐसैं [मानेहुये] ज्ञानकी व्यर्थता कहीथी सो निरस्तकरी ॥ ॥ जो[240] फेर कहाथा किः-

---

२३६ ताहींकूं स्पष्ट करैहैं ॥

२३७ औ जो कर्मके छिद्रविषै गृहस्थ आदिककूं बी ब्रह्मसंस्थताका सामर्थ्य है ? ऐसैं कहाथा । ताकूं प्रतिषेध करैहैं ॥ इहां इसकरि । याका अनिवृत्तभेदज्ञानवालेकूं ब्रह्मसंस्थताके असंभवकरि । यह अर्थ है औ सामर्थ्य निषेध किया ऐसैं संबंध है ॥

२३८ औ जो च्यारी अश्रमीनकूं बी ब्रह्मसंस्थताका अप्रतिषेध है ? ऐसैं कहाथा । तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः– एकताके उपदेशकरि भेदप्रत्ययके निरासतैं अनिवृत्तभेदप्रत्ययवालेकूं अर्थतैं ब्रह्मसंस्थता निषिद्ध है ॥

२३९ पारिव्राज्यमात्रकरि अमृतभावके हुये ज्ञानका व्यर्थपना पूर्ववादीनैं कहाथा ताकूं परिहार करैहैं ॥

२४० अन्य प्रश्नकूं अनुवादकरिके पूर्ववादीकरि उक्त परिहारकूं स्मरण करावैहैं ॥ इहां तिसविषै रूढ यह शब्द है। इस शेषकूं हेतुवाचक पंचमीकरि सूचन करैहैं ॥

यव वराह आदिक शब्दनकी न्यांई संन्यासीविषै रूढ ब्रह्मसंस्थशब्द नहीं है ? ऐसैं। सो परिहारकिया। काहेतैं तिसीहींकूं ब्रह्मसंस्थताके संभवतैं। अन्यकूं नहीं ऐसैं॥ ॥ [२४१] जो फेर कहाथा किः—रूढशब्द निमित्तकूं ग्रहणकरते नहीं ? ऐसैं। सो बनै नहींः—काहेतैं गृहस्थ तक्ष(शिल्पी) परिव्राजक आदिक शब्दनविषै देखनेतैं। [२४२] गृहेविषै स्थिति पारिव्राज्य (संन्यास) तक्षण (टंकण)आदिक निमित्तकूं ग्रहण करनेवाले बी शब्द गृहस्थ अरु परिव्राजक आश्रमविशेषविषै औ तक्षाविशिष्ट जातिवालेविषै। ऐसैं रूढ देखियेहैं । औ जहां जहां वे निमित्त हैं तहां तहां नहीं वर्तते हैं प्रसिद्धिके अभावतैं। तैसैं इहां (प्रकृतवाक्यविषै) बी ब्रह्मसंस्थशब्द निवृत्त भये हैं सर्व कर्म अरु तिनके साधन जिसतैं ऐसैं अति आश्रमी परमहंस नामक परि-

---

२४१ अन्य प्रश्नकूं अनुवादकारिके दूषण देतेहैं ॥ इहां आदिपदकरि पंकज आदिक शब्द ग्रहण करियेहैं ॥

२४२ उक्त अर्थकूं प्रपंचन करैहैं ॥ इधर "इहां बी" ऐसैं प्रकृतवाक्यका ग्रहण है ॥

व्राट् एकविषै प्रवृत्त इहां होनेकूं योग्य है । काहेतैं [243] मुख्य अमृतभावरूप फलके श्रवणतैं । औ [244] यातैं यह हीं एक वेदोक्त पारिव्राज्य (संन्यास) है । [245] यज्ञोपवीत त्रिदंड अरु कमंडलु आदिकका परिग्रहरूप नहीं इति (ऐसैं) औ " मुंड अपरिग्रह असंग है " ऐसी [246] श्रुति है औ

---

२४३ प्रकृत परमहंसरूप संन्यासविषै ब्रह्मसंस्थपद है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

२४४ औ इसतैं परमहंस संन्यासहीं श्रुतिविहित है । ऐसैं कहैहैं ॥

२४५ एवकारके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां इति शब्द जो है सो संन्यासके प्रकरणविषै तिस प्रकारकी (त्रिदंडीसंन्यासीकी प्रतिपादक) श्रुतिके अभावके दिखावनेअर्थ है ॥

२४६ ब्रह्मसंस्थशब्दकी परमहंसरूप अर्थवान्ताविषै अन्य श्रुतिकूं कथन करैहैं ॥ इहां अति आश्रमीनकेअर्थ । याका पूर्वके तीन आश्रमनकूं उल्लंघन करिके सर्व कर्मकूं त्याग करिके स्थित परमहंस परिव्राजकोंके अर्थ । यह अर्थ है औ परमपवित्र । याका निरतिशय परिशुद्धिके कारण परम पुरुषार्थके साधन सम्यक् ज्ञानकूं कहताभया । यह अर्थ है औ स्मृतिनतैं बी यथोक्त संन्यास सिद्ध होवैहै । यह शेष है औ "आशीर्वादरहित आरंभरहित" इत्यादि वाक्यके ग्रहणअर्थ आदिपद है औ कर्मकी बंधहेतुता तत् (तातैं) श-

"अत्याश्रमीनकेअर्थ परम पवित्र [ज्ञानकूं कहताभया]" इत्यादि श्वेताश्वतरीयविषै वाक्य है औ "निस्तुति निर्नमस्कार है" इत्यादि स्मृतिनतैं यथोक्त संन्यास सिद्ध होवैहै। औ "तातैं पारदर्शी जे यति हैं वे कर्मकूं करते नहीं। तातैं अलिंग धर्मज्ञ [२४७] अव्यक्त लिंग है" इत्यादि स्मृतिनतैं बी ॥ ॥[२४८] औ जो साख्यों-

ब्दका अर्थ है औ लिंगकी धर्मकी कारणतासैं रहितता "तातैं" ऐसैं कहा औ अलिंग कहिये धर्मध्वजिता (दंभीपनै)सैं रहित औ धर्मज्ञ कहिये यथावत् धर्मका अनुष्ठाता। वा इधर अधर्मज्ञ ऐसा पाठ है कहिये धर्मके विचारकी निष्ठासैं रहित है। अर्थ यह जोः—तिसविषै असारताके प्रत्ययवाला है ॥

२४७ "अलिंग" ऐसैं कहेहुये अनाश्रमीपनैंकूं आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां नहीं व्यक्त कहिये दंभसैं गृहीत लिंग (आश्रमीपना) इसकूं है यातैं अव्यक्तलिंग है किंतु अदंभकरि श्रुति स्मृति उक्त प्रकारसैं सो लिंग इसकूं है। यह अर्थ है औ आदिपद "धर्मकूं अरु अधर्मकू त्याग कर" इत्यादि ग्रहण करनेकूं है औ इहांबी पूर्वकीन्यांईं अन्वय है ॥

२४८ ननु कर्मकी निवृत्तिकूं उपदश करनेवाले तुम सिद्धांतीनैं सांख्यमतहीं आश्रित किया। काहेतैं तिस सांख्यवादीकरिबी शरीरआदिकके व्यापारकी निवृत्तिद्वारा ध्याननिष्ठाकूं स्वीकारकरी होनेतैं? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं तिस सांख्यके मतविषै कूटस्थरूप आत्माके ज्ञानके बलसैं नै-

करि कर्मका त्याग अंगीकार करियेहै। क्रिया-कारक अरु फलके भेदकी बुद्धिकी सत्यताके अंगीकारतैं । सो मृषा है औ जो बौद्धोंकरि शून्यताके अंगीकारतैं अकर्त्तापना अंगीकार करियेहै । सो बी असत् हैः—काहेतैं ताके अंगी-कारके कर्त्ताके सद्भावके अंगीकारतैं औ जो

२४९

२५०

ष्कर्म्य (कर्मराहित्य) युक्त नहीं है । काहेतैं क्रिया अरु कारककी बुद्धिकूं औ अविवेककूं सत्यहोनैंकरि ज्ञानमात्रसैं निवृत्त होनैंकी योग्यताके अयोगतैं औ सर्व व्यापारोंकी निवृत्तिका संभव नहींहै । काहेतैं मन बुद्धि आदिकनकूं तिस (व्यापाररूप) स्वभाववाले होनेतैं अरु "कोईबी पुरुष क्षणबी कर्मरहित स्थित होता नहीं" इत्यादि गीतास्मृतितैं । यातैं सांख्यका वचन मिथ्याहीं है ॥

२४९ ननु निरात्मता (शून्यता)कूं इच्छनेवाले बौद्ध (बुधके शिष्य माध्यमिक)नैंबी नैष्कर्म्य मान्या है। ऐसैं हुये कर्मके त्यागकूं उपदेश करनेवाल तुम सिद्धांतीनैंबी ताका मतहीं अनुमोदन किया? ऐसैं जो कहै । सो बने नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां ताके अंगीकारकरनेवालेके। इस ठिकाने अकर्तापना तत् (ताके) शब्दका अर्थ है ॥

२५० "दुःख है ऐसैंहीं जो कर्म कायक्लेशके भयतैं त्यागे" इस गीता स्मृतितैं आलस्यकरि उपहत अज्ञजनोंकरि अकर्तापना अंगीकार करियेहै । कर्मके त्यागनेवाले तुज सिद्धां-

अज्ञ जनोंकरि आलस्ययुक्ततासैं अकर्तापनैका अंगीकार है। सो बी असत् हैः–काहेतैं प्रमाणकरि कारकबुद्धिकूं अनिवर्तकरी होनेतैं।[251] तातैं वेदांतरूप प्रमाणसैं जनित एकताके ज्ञानवालेकूं हीं कर्मोंकी निवृत्तिरूप पारिव्राज्य औ ब्रह्मसंस्थता है। ऐसैं सिद्धभया।[252] ईसकरि गृहस्थकूं एकताके

तीकरिबी तिनका मत आदरयुक्त किया? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥ इहां अकर्तापनैका अंगीकार। ऐसैं पदच्छेद है औ भाव यह हैः–वे अज्ञजन जातैं मोहतैंहीं कर्मकूं त्यागतेहुये ताके फलकूं पावते नहीं "सो राजस त्यागकूं करिके ताके फलकूं पावता नहीं" इस स्मृतितैं। हम तो प्रमाणके वशतैंहीं कर्मकूं त्यागते हुये मूढनके पक्षकूं आदर करते नहीं। तातैं श्रुति स्मृति प्रसिद्ध नैष्कर्म्य (संन्यास) निषेध करनेकूं योग्य नहीं है॥

२५१ अन्य पक्षविषै नैष्कर्म्यकी उक्तिकी अप्रमाणताके स्थित हुये फलितकूं उपसंहार करैहैं॥

२५२ औ जो कितनैंक वादियोनैं एक आश्रमता (ज्ञानकी सर्व आश्रमविषै समता) आश्रित करी है। ताकूं प्रत्यादेश (निराकरण) करैहैं॥ इहां इसकरि। याका ऐकताके विज्ञानकरि भेदज्ञानके उपमर्दितपनैंके उपपादनकरि। यह अर्थ है औ इधर (गृहस्थविषै) एकताका विज्ञान परोक्ष विवक्षित है काहेतैं अपरोक्ष विज्ञानके संन्यासविना अयोगतैं औ उपरतिशब्दके वाच्य तिस संन्यासकी शमादिककी न्यांई साधनताकी श्रुतितैं। ऐसैं देखनेकूं योग्य है॥

विज्ञानके हुये पारिव्राज्य (मुख्य वा मानसिक-संन्यास) अर्थतैं सिद्धभया ॥ ॥ [253] ननु गृहस्थ संन्यासकूं करता हुया अग्निके उत्सादन (त्याग)रूप दोषका भागी होवैगा । काहेतैं "यह देवनके वीरका हंताहीं है जो अग्निकूं उद्वासन (परित्याग) करताहै" इसश्रुतितैं? [254] सो बनै नहीं:—काहेतैं दैवकरि उत्सादित (त्यक्त) होनेतैं । जातैं सो (अग्नि) एकताके ज्ञानके भये उत्सन्न (त्यक्त)हीं होवैहै । "[255] अंग्निका अग्निभाव जाताभया" इस श्रुतितैं । [256] यौंतैं गृहस्थ

---

२५३ गृहस्थके पारिव्राज्यविषै श्रुतिके विरोधकूं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

२५४ एकात्मताहीं सत्य है । द्वैत असत्य है । इस विवेकके उत्पन्नभये अग्निआदिककी अवस्तुताके निश्चयतैं ताके अभिनिवेशकी शिथिलतातैं ताके त्यागविषै दोषकी प्राप्ति नहीं है । ऐसैं सिद्धांती दूषण देतेहैं ॥

२५५ सम्यक् ज्ञानकेहुये अग्निआदिकके त्यागविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

२५६ विवेकवाले गृहस्थकूंबी वैराग्यद्वारा संन्यासयुक्त है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां इतिशब्द ब्रह्मसंस्थवाक्यके व्याख्यानकी समाप्ति अर्थ है ॥

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभि-
तप्तेभ्यस्त्रयी विद्या सम्प्रास्रवत्तामभ्य-

अर्थः–प्रजापति लोकनके प्रति अभि-
ताप करता भया। तिन अभितप्तनतैं त्रयी-
विद्या सम्यक् स्रवतीभई॥ ताके प्रति अ-

संन्यासकूं करता हुया दोषका भागी नहीं हो-
वैहै इति॥ १॥

टीकाः–जिसविषै[257] सम्यक् स्थितहुया अमृत-
भावकूं पावताहै ताके निरूपणअर्थ कहैहैं:–
विराट् वा कश्यपरूप प्रजापति लोकनकूं उ-
देशकरिके तिनोंविषै सारके ग्रहणकी इच्छाकरि
अभितापकूं करताभया। अर्थ यह जोः–ध्यान[258]-
रूप तपकूं करताभया। तिन अभितप्तनतैं सा-
रभूत त्रयीविद्या सम्यक् प्रस्रवतीभई। अर्थ
यह जोः–प्रजापतिके[259] मनविषै प्रतीत होतीभई॥

२५७ सो ब्रह्म क्या है? इस आकांक्षाके हुये कहैहैं॥
२५८ लोकनकूं च्यारी ओरतैं दग्ध होनैंकरि अभितापके प्रतिभासकूं विभाग करैहैं॥
२५९ द्रवस्वरूपताके अभावहुये त्रयीविद्याका प्रस्रवण

तपत्तस्या अभितप्तायां एतान्यक्षराणि सम्प्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐ-कारः सम्प्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि

भिताप करता भया । तिस अभितप्ततैं ये भूर् भुवः स्वः । ऐसे अक्षर सम्यक् स्रवते-भये ॥ २ ॥

अर्थः—तिनके प्रति अभितापकरता-भया । तिन अभितप्तनतैं ॐकार सम्यक् स्रवताभया ॥ सो जैसें शंकु (वृंत) करि

ताकूं तपावताभया । पूर्वकी न्यांई । तिस अ-भितप्त भयी विद्यातैं ये " भूर् भुवः स्वः " ऐसे व्याहृतिरूप अक्षर प्रस्रवतेभये (प्रकट-होतेभये) ॥ २ ॥

टीकाः—तिन अक्षरनकूं तपावताभया । तिन अभितप्तनतैं ॐकार प्रस्रवताभया । सो ब्रह्म

कैसैं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां पूर्वकी न्यांई ऐसैं त्रयीविद्याके सारग्रहणकी इच्छाकरि आलोचन क-रताभया । यह अर्थ है ॥

पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृण्णोंकार एवेदꣳ सर्वमोङ्कार एवेदꣳ सर्वम् ॥ ३ ॥

इति द्वितीयप्रपाठकस्य त्रयोविंशः खंडः॥२३॥

सर्व पर्ण व्याप्त होते हैं। ऐसैं ॐकारकरि सर्व वाक् व्याप्त है। ॐकारहीं यह सर्व है। ॐकारहीं यह सर्व है ॥ ३ ॥

इति श्री०मूलभा०द्वितीयप्र०त्रयोविंशःखंडः २३ है ॥

॥ कैसाँ[२६०] है ? यह कहैहैंः—सो जैसें पर्णों-के नालरूप शंकुकरि सर्व पर्ण (पत्रके अवयवोंके समूह) निविद्ध हैं। अर्थ यह जोः—व्याप्त हैं। ऐसैं परमात्माके[२६१] प्रतीकभूत ॐकाररूप ब्रह्मकरि सर्वा वाक् (शब्दका समूह) व्याप्त है "ॐका-[२६२]

---

२६० ताकूं ब्रह्मशब्दकी वाच्यता कैसैं है ? यह आशंका करिके। अत्यंत महत् होनेतैं है। ऐसैं कहैहैं ॥

२६१ तहां ब्रह्मशब्दकी प्रवृत्तिविषै अन्य हेतुकूं सूचन करै हैं ॥

२६२ ॐकारके अवयव अकारकी बी सर्व वाक्‌विषै व्याप्ति है। तब ॐकारकी व्याप्ति है यामैं क्या कहना है।

रहीं सर्वा वाक् है" इत्यादि श्रुतितैं औ [२६३] परमात्माका विकार (कार्य) नाममात्र है। यातैं ॐकारहीं यह सर्व है ॥ ऐसैं दोवार अभ्यास आदरके अर्थहै औ [२६४] लोक आदिकके उत्पादनका कथन ॐकारकी स्तुतिअर्थ है इति ॥ ३ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०द्वितीयप्रपाठ०त्रयोविंशःखंडः॥२३॥

ऐसैं मानते हुये अन्य श्रुतिकूं उदाहरण करै हैं ॥ इहां "ॐ ऐसा यह सर्व है" इत्यादिवाक्य आदिपदका अर्थ है ॥

२६३ वाणीके समूहकूं ॐकारकरि व्याप्तताके हुयेबी ता ॐकारकी सर्वात्मता नहीं है। काहेतैं आकाश आदिक परमात्माके कार्यकूं पृथक्हीं विद्यमान होनेतैं? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां सकलबी जगत् परमात्माका कार्य होनेतैं तिसतैं अतिरिक्त नहीं है औ सो (परमात्मा) प्रकृत ॐकारतैं अतिरिक्त नहीं है "हे सत्यकाम! यह हीं पर अरु अपर ब्रह्म है जो ॐकार है" इस श्रुतितैं तातैं ॐकारकी सर्वात्मता युक्त है। यह अर्थ है औ सर्वात्मक ब्रह्मरूप ॐकारकूं उपासन करै। इस विधिकी समाप्तिअर्थ इतिशब्द है ॥

२६४ ॐकारकी लोकादिद्वारा उत्पत्ति कैसैं कहिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां स्तुति जो है सो उपासनाकेअर्थ है। काहेतैं जो स्तुति करिये है सो विधान करियेहै इस स्थितितैं। तैसैं हुये अमृतरूप फलवाला ॐकारका उपासन सिद्ध भया। ऐसैं कहनेकूं इति शब्द है ॥

इति द्वितीयप्रपाठकगत त्रयोविंशखंडस्य टिप्पणं ॥ २३ ॥

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदि द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः प्रारभ्यते २४

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातःसवनꣳ रुद्राणां माध्यन्दिनꣳ सवनमा-

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडःप्रारभ्यते ॥ २४ ॥

अर्थः—ब्रह्मवादी कहतेहैं जोः—वसुनका प्रातःकाल है। रुद्रनका माध्यंदिनकाल है

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः प्रारभ्यते ॥ २४ ॥

अज्ञकी निंदा औ ज्ञानार्थ साम होममंत्र अरु उत्थान १६

टीकाः—सामके[२६५] उपासनके प्रसंगसैं कर्मकी गुणभूततातैं निवर्तकरिके ॐकारकूं परमात्माका

अथ द्वितीयप्रपाठकगतचतुर्विंशखंडस्य टिप्पणं २४

२६५ प्रसंगसैं प्राप्त अर्थकूं छोडिके अब प्रकृतकूं अनुसंधान करतेहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—पंचविध अरु सप्तविध यज्ञका अंगभूत साम है ॥ ताके उपासनके वचनतैं तिस गुणवाले ॐकारकूं निरंतर हीं कर्मगुणवान्‌पनैंके प्राप्त हुये । तिसतैं ताकूं निवर्तकरिके ब्रह्मका प्रतीक होनेतैं कैवल्यका

दित्यानाञ्च विश्वेषाञ्च देवानां तृतीयसवनम् ॥ १ ॥

औ आदित्यनका अरु विश्वेदेवनका तृतीय काल है ॥ १ ॥

प्रतीक होनेतैं अमृतभावका हेतु होनेकरि महान् करिके प्रकृतहीं यज्ञके अंगभूत साम होममंत्र अरु उत्थानकूं उपदेश करते हुये कहैहैं:—[२६६]ब्रह्मवादी कहते हैं:—जो प्रातःकाल प्रसिद्ध है सो वसुनका है औ कालके [२६७]ईशान तिनोंनैं प्रातःकाल संबंधी यह लोक वश किया है। तैसैं माध्यंदिन कालके ईशान

हेतु होनेकरि ताहींकूं महान् करिके। अब प्रस्तुत (प्रकृत) जे यज्ञके अंगभूत साम आदिकके विज्ञान (उपासन) हैं। तिनके विधानअर्थ उत्तर वाक्य है ॥

२६६ साम अरु होममंत्रकरिसहित उत्थान जो है सो साम आदिकके उपासनके विधान करनेकी इच्छासैं है। ताके अपरिज्ञानाविषै दोषकूं कहैहैं ॥

२६७ तिनकी प्रातःकालकी ईशानताके हुये बी यजमानकी कौंन हानि है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां जैसैं पृथिवीलोक वसुनकरि वश किया है। तैसैं। यह अर्थ है औ अंतरिक्षलोक वश किया है। ऐसैं पूर्वपदसैं संबंध है औ तृतीयलोक द्युलोक (स्वर्गलोक) नामक है ॥

क तर्हि यजमानस्य लोक ? इति । स

अर्थः—कहां तब यजमानका लोक हो-

रुद्रोंनैं अंतरिक्ष लोक [वश किया है] । औ तृतीयकालके ईशान आदित्य अरु विश्वेदेवोनैं तृतीय लोक वश किया है । ऐसैं[२६८] यजमानका अन्य लोक परिशिष्ट (अवशिष्ट) नहीं विद्यामान है ॥ १ ॥

टीकाः—यातैं कहां तब यजमानका लोक है जिसअर्थ यजन करताहै ? कहींबी लोक नहीं है । यह अभिप्राय है । "जो[२६९] यजनकरताहै सो लोकके अर्थहीं यजताहै" इस श्रुतितैं औ

---

२६८ ननु तिन तिन देवनकूं तिस तिस लोकका वशीकार है । तथापि यजमानके लोकीपनैंविषै क्या आया ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां द्वितीयवाक्यके व्याख्यानविषै परिशिष्ट (अवशेष रहै) लोकका अभाव अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है औ तर्हि (तब) । याका देहपाततैं ऊर्ध्व । यह अर्थ है ॥

२६९ ननु लोककी अपेक्षा विनाबी विधिके वशतैं याग होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

अज्ञकी निंदा औ ज्ञानार्थ साम होममंत्र अरु उत्थान १६

यस्तं न विद्यात्कथं कुर्यादथ विद्वान् कुर्यात् ॥ २ ॥

वैगा ! ऐसें । जो तिसकूं न जानेगा सो कैसें करैगा । अथ (तातें) विद्वान् करैगा ॥ २ ॥

---

[270] लोकके अभाव हुये जो यजमान है सो । तिस साम होममंत्र अरु उत्थानरूप लोकस्वीकरणके उपायकूं नहीं जानै । सो अज्ञ यज्ञकूं कैसें करैगा । अर्थ यह जोः—किसी प्रकारसैं बी ताकूं कर्तापना नहीं संभवैहै । [271] सामादिकके विज्ञानकी स्तुतिपर होनेतैं कर्ममात्रके वेत्ता अविद्वान्का कर्तापना नहीं प्रतिषेध करियेहै औ [272] साम

---

२७० तीन लोकनकूं वसु आदिकनके अधीन होनेकरि यजमानकी अनधीनताके हुये ता(लोकत्रय)की तिस यजमानकी अधीनताअर्थ यज्ञआदिकका अनुष्ठान होवैगा ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२७१ अज्ञ पुरुष स्वर्ग आदिकके साधनभूत यज्ञकूं कैसैं करैगा । इस आक्षेपतैं अविद्वान्के कर्मके अनुष्ठानकी निंदापर यह वाक्य है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२७२ ननु "अथ (अनंतर)" ऐसा यह वाक्य स्तुतिकेअर्थ

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघ-

अर्थः—प्रातरनुवाकके उपाकरणतैं पूर्व

आदिकके विज्ञानकी स्तुतिअर्थ अरु अविद्वा-न्के कर्तापनेंके निषेधअर्थ जो यह वाक्य हो-वै तो सो भेदकूं पावैगा। [273] प्रथम उषस्ति संबंधि-कांडविषै अविद्वान्कूं बी कर्म है इस हेतुकूं ह-म कहते भये। तातैं इस वक्ष्यमाण सामादिक उपायकूं विद्वान् करै ॥ २ ॥

टीकाः—[274] क्या सो वेद्य है ? यह कहैहैं:—प्रात-

अरु निषेधकेअर्थ होवैगा ? तहां दोनूंकेअर्थ नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥

२७३ औ इसतैं अविद्वान्का कर्तापना निषेधकरनेकूं अ-शक्य है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"मटचीहत" (हि-मके पाषाणोंकी वृष्टिकरि धान्यवृक्षोंके हनन किये) हुये इ-त्यादि वाक्यविषै विद्वान्के सन्निधानविषै ताकी आज्ञाविना अविद्वान्का कर्म करनेकूं अयुक्त है प्रत्यवायके प्रसंगतैं औ ताकी असन्निधिविषै तो तिस अविद्वान्करिवी क्रियमाणकर्म दोषयुक्त होता नहीं। ऐसैं उपपादन किया है औ इहां भा-ष्यविषै अथ शब्द जो है सो हेतुके अर्थ है। अर्थ यह जोः— साम आदिकके अविज्ञानके हुये जातैं यज्ञ आदिक कर्मका अकरणहीं प्राप्त है। तातैं ॥

२७४ ज्ञातव्य सामादिककूं प्रश्नपूर्वक विवरण करैहैं ॥

नेन गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य स वासवꣳ सामाभिगायति ॥ ३ ॥

अरु गार्हपत्यके जघनकरि (पश्चात्) उत्तराभिमुख स्थित होयके सो वासव सामकूं अभिगायन करैहै ॥ ३ ॥

रनुवाकरूप शस्त्र (अप्रगीत ऋचाओंके समूह)के उपाकरण (२७५ प्रारंभ)तैं पूर्व अरु गार्हपत्यके ज-घनकरि २७६ (पीछे) उत्तरदिशाके अभिमुख हुया

इहां अप्रगीत ऋचाओंका समूह शस्त्र है जो प्रातःकालविषै कथन करियेहै ऐसा प्रातरनुवाक है ताके। यह अर्थ है ॥

२७५ उपाकरणतैं। याके अर्थकूं कहैहैं ॥

२७६ जघनकरि। इसपदकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां सो गार्हपत्यनामक अग्निके पृष्ठतैं उत्तरभागविषै स्थित होयके वसुदेवतासंबंधि सामगानकूं करताभया। यह अर्थ है औ "सो वासव (वसुसंबंधि)" इस ठिकानैं स (सो) शब्द जो है सो यजमानकूं विषय करनेवाला है औ चतुर्थ वाक्यविषै राज्यकेअर्थ। याका तेरे दर्शनकरि तेरी आज्ञासैं पृथिवी प्रयुक्त भोगकेअर्थ। यह अर्थ है औ पंचमवाक्यविषै पृथिवीविषै जो वसताहै सो पृथिवीक्षित् है। तिस तुज पृथिवीक्षित् (पृथिवीनिवासी) केअर्थ। ऐसैं जानना ॥

लो ३ कद्वारमपावा ३ र्णू ३ ३ पश्येम त्वा वयꣳ रा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ जा ३ यो ३ आ ३१११ इति ॥ ४ ॥ अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षि-

---

अर्थः—लोकके द्वारकूं खुल्लाकर। हम तुजकूं राज्यकेअर्थ देखैं ॥ ४ ॥

अर्थः—अनंतर होमकूं करताहैः—पृथिवीक्षित् लोकक्षित् अग्निकेअर्थ नमस्कार

बैठिके। सो वासव (वसुदैवत्यवाले) सामकूं अभिगायन करैहै ॥ ३ ॥

टीकाः—हे अग्ने! लोकके द्वारकूं कहिये इस पृथिवी लोककी प्राप्तिअर्थ द्वारकूं खोल। तिस द्वारकरि हम राज्यकेअर्थ तुजकूं देखैं। ऐसैं ॥४॥

टीकाः—अनंतर इस मंत्रकरि होमकूं करताहैः—तुज अग्निकेअर्थ नमः कहिये हम नम्रीभूत हैं। पृथिवीरूप निवासकेअर्थ। लोक निवासकेअर्थ। अर्थ यह जोः—पृथिवीलोकरूप

ते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एताऽस्मि ॥ ५ ॥

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वा-

है । मुज यजमानकेअर्थ लोककूं प्राप्त हो। यहहीं [मुज] यजमानका लोक है । [तिसविषै मैं] जानेवालाहूं ॥ ५ ॥

अर्थः—इहां यजमान "आयुष्तैं परे

निवासकेअर्थ ॥ मुज यजमानकेअर्थ लोककूं तूं प्राप्त होहू । यँहँ[277] हीं मुज यजमानका लोक है । [तहां मैं] जानेवाला हूं ॥ ५ ॥

टीकाः—इस लोकविषै यजमान जो मैं सो आयुष्तैं परे (ऊर्ध्व)। अर्थ यह जोः—मृत हुया। "स्वाहा" ऐसैं होमकूं करताहै । लोकद्वारके अर्गल (प्रतिबंध) रूप परिघकूं दूरी कर। ऐसैं

---

२७७ पृथिवीलोकके मुज(देव)करि प्राप्तहुये तुज (यज-मान)कूं क्या होवैगा ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां स्वाहा शब्द मंत्रकी समाप्तिरूप अर्थवाला होमका प्रकाशक है औ सर्व मंत्रनविषै । इनकरि । याका साम होममंत्र अरु उत्थानकरि । यह अर्थ है ॥

हाऽपजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ ६ ॥

पुरा माध्यन्दिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाग्नीध्रीयस्योदङ्मुख उप-

---

स्वाहा [ऐसैं होमताहै] परिघकूं दूरीकर" ऐसैं कहिके ऊठताहै। तिसके अर्थ वसु प्रातःकालकूं देते हैं ॥ ६ ॥

अर्थः—माध्यंदिन कालके उपाकरण (प्रारंभ)तैं पूर्व अरु आग्नींध्रीयके जघनकरि

इस मंत्रकूं कहिके ऊठता है। ऐसैं इनकरि वसुनकेअर्थ प्रातःकाल संबंधि लोक निष्क्रीत (मोललिया) होवैहै। तातैं वे वसुनामक देव प्रातःकालकूं यजमानकेअर्थ देते हैं ॥ ६ ॥

टीकाः—तैसैं[२७८] आग्नींध्रसंबंधी दक्षिणाग्निके

---

२७८ जैसैं पृथिवीलोकके जयका उपाय दिखाया। तैसैं अंतरिक्षलोकके जयका उपाय बी दिखाइयेहै। ऐसैं कहैहैं। इहां अंतरिक्षविषै वसताहै यातैं अंतरिक्षक्षित् वायु है। इस वायुकेअर्थ नमस्कार है॥

विश्य स रौद्रꣳ सामाभिगायति ॥ ७॥
लो ३ कद्वारमपावा ३ र्णू ३३ पश्येम त्वा वयं वैरा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ ८ ॥

अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष

(पीछे) उदङ्मुख बैठिके सो रौद्र सामकूं अभिगायन करैहै ॥ ७ ॥

अर्थः–लोकके द्वारकूं खुल्लाकर । हम तुजकूं वैराज्यकेअर्थ देखैं ऐसैं ॥ ८ ॥

अर्थः–अनंतर होमकूं करताहैः–अंतरिक्षक्षित् लोकक्षित् (अंतरिक्ष लोकके निवासी) वायुके अर्थ नमस्कार है । मुज

जघनकरि (पीछे) उत्तराभिमुख हुया बैठिके सो यजमान वैराज्य(अंतरिक्ष लोककी प्राप्ति)के अर्थ रौद्र (रुद्रदैवत्यवाले) सामकूं अभिगायन करैहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

टीकाः–अंतरिक्षक्षित् (अंतरिक्षविषै रहने-

वै यजमानस्य लोक एताऽस्मि ॥ ९ ॥
अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहाऽपजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनꣳ सम्प्रयच्छन्ति ॥ १० ॥

पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघने-

यजमानकेअर्थ प्राप्त हो। यहहीं यजमानका लोक है। [मैं] जानेवालाहूं ॥ ९ ॥

अर्थः–इहां यजमान "आयुष्तैं परे स्वाहा। परिघकूं दूरी कर" ऐसैं कहिके ऊठता है। तिसकेअर्थ रुद्र माध्यन्दिनकालकूं देतेहैं ॥ १० ॥

अर्थः–तृतीयकालके उपकरणातैं पूर्व

वाले) वायुकेअर्थ [नमस्कार है]। इत्यादि समान है ॥ ९ ॥ १० ॥

टीकाः–तैसैं[२७९] आहवनीय नामक अग्निके

---

२७९ जैसैं पृथिवी अरु अंतरिक्षकी प्राप्तिका उपाय कहा।

नाहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आ-
दित्यꣳ स वैश्वदेवꣳसामाभिगायति ११
लो ३ कद्वारमपावा ३ र्णू ३३ पश्येम
त्वा वयꣳ स्वारा ३३३३३ हुं ३ आ ३३
ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ १२ ॥
आदित्यमथ वैश्वदेवं लो ३ कद्वार-
मपावा ३ र्णू ३३ पश्येम त्वा वयꣳ

अरु आहवनीयके जघनकरि उत्तरमुख बैठिके सो आदित्य (सूर्यसंबंधि) सो वैश्वदेव (विश्वेदेवसंबंधि) सामकूं अभिगायन करैहै ॥ ११ ॥

अर्थः—लोकके द्वारकूं खुल्ला कर। हम तुजकूं स्वाराज्यके अर्थ देखैं ऐसैं ॥१२॥

अर्थः—अनंतर हे आदित्य! अरु हे वैश्व-

[पीछे] उत्तराभिमुख हुया बैठिके सो आदि-

तैसैं स्वर्गलोककी प्राप्तिका उपाय बी कहियेहै। ऐसैं कहैहैं॥
इहां स्वाराज्य कहिये अंतरिक्षविषै आदित्यनकी स्वतंत्रताकी न्याईं स्वतंत्रता विवक्षित है॥

साम्रा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ १३ ॥

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत १४

देव! लोकके द्वारकूं खुला कर। हम तुजकूं साम्राज्यकेअर्थ देखैं ऐसैं ॥ १३ ॥

अर्थः—अनंतर होमकूं करताहैः—दिविक्षित् लोकाक्षित् (स्वर्ग लोकके निवासी) आदित्यनकेअर्थऔ विश्वेदेवनकेअर्थ नमस्कार है। मुज यजमानकेअर्थ लोककूं प्राप्त होहू ॥ १४ ॥

त्यदैवत्यवाले आदित्य अरु वैश्वदेव सामकूं क्रमसैं स्वाराज्य अरु साम्राज्यकेअर्थ अभिगायन करैहै ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

टीकाः—दिविक्षित् देवनके अर्थ। इससैं आदिलेके अन्य समान है औ प्राप्त हो तो अरु प-

एष वै यजमानस्य लोक एताऽस्म्यत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहाऽपहतपरिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति ॥ १५ ॥

तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीयं सवनꣳ सम्प्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञ-

---

अर्थः—यहहीं यजमानका लोक है। इहां आनेवाला हूं। यजमान "आयुष्तें परे स्वाहा। परिघकूं दूरी कर हू" ऐसें कहिके ऊठता है ॥ १५ ॥

अर्थः—तिसकेअर्थ आदित्य औ विश्वेदेव तृतीयकालकूं देते हैं। यह निश्चित

रिघकूं दूरी करो। यह बहुवचनमात्र विशेष है औ [२८०]यजमान संबंधि तो यह है। काहेतें "जानेवालाहूं" इहां यजमान। इत्यादि लिंगतें।

---

२८० ननु यह साम आदिक क्या ऋत्विकनका संबंधि है अथवा यजमानका संबंधि है? ऐसें विचारके हुये कहैहैं ॥ इहां आदिपदकरि लोककूं मुज यजमानकेअर्थ। ऐसा निर्देश ग्रहण करियेहै ॥

स्य मात्रा वेद य एवं वेद य एवं वेद १६॥
इति श्रीछान्दोग्योपनिषदि द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खण्डः समाप्तः ॥ २४ ॥

यज्ञकी मात्राकूं जानताहै। जो ऐसैं जानताहै। जो ऐसैं जानताहै ॥ १६ ॥
इतिश्रीछान्दोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः समाप्तः२४॥

---

[281] यहै प्रसिद्ध यजमान ऐसैं जाननेवाला कहिये [282] यथोक्त साम आदिकका विद्वान् हुया यज्ञकी मात्राकूं कहिये यथोक्त यज्ञके स्वभावकूं जानताहै [ताके अर्थ तृतीयकालकूं देते हैं]॥ जो ऐसैं जानताहै। जो ऐसैं जानताहै। इहां यह दोवार उक्ति अध्यायकी परिसमाप्तिअर्थ है ॥१४॥१५॥१६
इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां द्वितीयप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः समाप्तः ॥ २४ ॥
समाप्तेयं द्वितीयप्रपाठकस्य भाष्यभाषादीपिका ॥ २ ॥

---

२८१ साम आदिकके विज्ञानके फलकूं कथन करैहैं ॥
२८२ "जो ऐसैं जानता है। याकी व्याख्या" कहियेहै ॥ इहां यथोक्त। याका सामादि। यह अर्थ है औ ऐसैं। यह उक्त प्रकारकी उक्ति है औ तिस यज्ञके स्वभावके वेत्ताकूं ताके अनुष्ठानद्वारा ताका फल संभवैहै। यह अर्थ है ॥
इति श्री० द्वितीयप्रपाठकगतचतुर्विंशखंडस्य टिप्पणम् ॥ २४ ॥
समाप्तेयं द्वितीयप्रपाठकस्य टिप्पणिका ॥ २ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकाऽऽरंभः ३

आदित्यादि पंचद्वारपालगायत्री हृदय आदिक ब्रह्मके
उपासन १९

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदस्तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

ॐ। असौ वा आदित्यो देवमधु ।

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां
तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थः—वह प्रसिद्ध आदित्य देवनका मधु

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया-
स्तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

आदित्यआदिकविषै मधुआदिककी दृष्टियां ४

टीकाः—"वह प्रसिद्ध आदित्य" इत्यादिरूप

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदस्तृतीयप्रपाठकगत
प्रथमखंडस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

१ कर्मांगावबद्ध (कर्मके अंगसैं संबद्ध) विज्ञानकूं समाप्त-करिके । अब कर्मके फलरूप आदित्यकी स्वतंत्र उपासनाके विधिअर्थ अन्य (तृतीय) अध्यायकूं आरंभ करतेहुये आचार्य संबंधकूं प्रतिज्ञा करैहैं ॥

तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवꣳशोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः ॥ १ ॥

है। ताका स्वर्गलोकहीं तिरश्चीन (टेढा) वंश है। अंतरिक्ष अपूप है। मरीचियां पुत्र हैं ॥ १ ॥

तृतीय अध्यायके आरंभविषै संबंध है ॥ अतीत अनंतर द्वितीय अध्यायके अंतविषै कहाकिः—"यज्ञकी मात्राकूं जानताहै" ऐसैं यज्ञकूं विषय करनेवाले औ यज्ञके अंगभूत साम होममंत्र अरु उत्थान। विशिष्टफलकी प्राप्तिअर्थ उपदेश किये औ सर्व यज्ञोंके कार्यकी निर्वृति (सिद्धि) रूप सूर्य बडी लक्ष्मीकरि प्रदीप्त होवैहै। सो यह सर्व प्राणीनके कर्मका फलभूत प्रत्यक्ष सर्व

---

२ पूर्वउत्तरग्रंथके प्रतिज्ञात संबंधकूं प्रकटकरनेकूं वृत्तकूं कीर्तन करैहैं ॥ इहां विशिष्टफल पृथिवी आदिक लोकत्रय है ॥

३ समनंतर ग्रंथके तात्पर्यकूं कहनेकूं पातनिकाकूं करैहैं ॥

४ ताके प्रेक्षितपनैकूं सूचन करैहैं ॥

५ ननु फेर आदित्यकूं सर्व प्राणीनके कर्मका फलभूतपना कैसैं है? यह आशंकाकरिके। सर्वजनोंकरि उपजीव्यता (आश्रितता)के उपलंभतैं प्राप्ति है। ऐसैं कहैहैं ॥

जनोंकरि आश्रय करियेहै । [6]यातैं यज्ञके व्यपदेशके अनंतर ताके कार्यभूत सूर्यविषयक [7]सर्व पुरुषार्थनतैं श्रेष्ठतमफलवाले उपासनकूं विधान करतीहूं । ऐसैं श्रुति आरंभकरैहैः— "यह प्रसिद्ध आदित्य देवनका मधु है" इत्यादि । देवनका मोदनतैं मधुकीन्यांई मधु यह आदित्य है ॥ औ आदित्यके [8]वसुआदिकनके मोदनके हेतुपनैंकूं आगे कहैगी ता आदित्यकूं सर्व यज्ञोंका फलरूप होनेतैं ॥ ॥ कैसैं मधुपना

---

६ पातनिकाकूं करिके अब उत्तरग्रंथकूं उठावतेहैं ॥ इहां यातैं । इसका आदित्यकूं कर्मका फलरूप होनेतैं । यह अर्थ है ॥

७ ताके उपदेशविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ अत्यंत श्रेष्ठफल क्रमसैं मुक्तिरूप इसका है । सो श्रेष्ठतमफल (अत्यंत श्रेष्ठफलवाला) है । तैसैं उक्त उपासनकूं ॥

८ आदित्यविषै उक्तकर्मफलशब्दकी प्रवृत्तिके निमित्तकूं स्पष्टकरनेकूं कहैहैं ॥ इहां चकार विद्वान्के ग्रहणअर्थ है औ आदित्यकी मोदनहेतुताकूं कहैगी । ऐसैं संबंध है औ ता (आदित्य)कूं सर्वयज्ञोंका फलरूप होनेतैं । यह हेतु है औ कर्मफलके भोक्ता वसुआदिक ता(कर्म)के फलरूप आदित्यकूं देखिके तृप्त होतेहैं यह युक्त है । यह अर्थ है ॥

९ "आदित्यकूं मधुदृष्टिकरि उपासन करै" ऐसैं कहा ।

है? यातें कहैहैं:—तिस मधुका स्वर्गलोकही मधुके भ्रमरकीन्यांई [तिरश्चीन (तिरछा) ऐसा जो यह वंश सो] तिरश्चीन वंश है। [10]जातें तिर्यक् गतकीन्यांई स्वर्गलोक देखिये-है॥ औ [11]अंतरिक्ष मधुका अपूप (मधुपुडा) स्वर्गलोकरूप वंशवृक्षविषै लग्न हुया सम्यक् लंब-मान होनेकीन्यांई है। यातैं मधु अपूपके सा-मान्यतैं औ मधुरूप सविताका आश्रय होनेतैं अंतरिक्ष मधुअपूप (मधुपुडा) है॥ औ [12]म-रीचियां (सूर्यकी रश्मियां) कहिये सूर्यके किरणोंविषै स्थित सूर्यकरि आकर्षण किये भू-

---

तहां आदित्यके श्रुतिउक्त प्रसिद्ध मधुसाम्यकूं आकांक्षापूर्वक दिखावैहैं॥

१० स्वर्गविषै तिरछे वंशवृक्षकी दृष्टिमैं निमित्तकूं क-हैहैं॥ इहां उपरि प्रसारित नयनोंवाले अंतरिक्षनिवासिन-करि। यह शेष है॥

११ अंतरिक्षविषै मधुअपूप (मधुपुडे)की दृष्टिकूं कथन करैहैं॥ इहां मधुशब्दका उभयत्र संबंध है॥

१२ "मरीचियां पुत्र हैं" इस वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं॥

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य

अर्थः—ताकी ये प्राक् रश्मियां है वेई

मिके जल। "ये[13] प्रसिद्ध जल स्वराट् (सूर्य) की जे मरीचियां हैं" ऐसें जातें जानियेहैं वे[14] जल अंतरिक्षरूप मधुअपूपविषै स्थित सूर्यके रश्मिनके अंतर्गतहोनेतें भ्रमरनके बीजभूत पुत्रनकीन्यांई स्थित देखियेहैं यातें पुत्रकी न्यांई पुत्र हैं। जातें मधुपुडेकी नाडीनके अंतर्गत भ्रमरपुत्र (मक्षिकाविशेष) होवैहैं ॥ १ ॥

टीकाः—तिसैं[15] सवितारूप मधुके आश्रय

---

१३ आप(जल) भूमितैं आकर्षितहुयी रश्मिविषै स्थित हैं। इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां स्वराट्की। याका स्वतः भासमान सविताकी। यह अर्थ है ॥

१४ तिन आप(जलों)के भ्रमरपुत्रपनैंकूं प्रकट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—लोकविषै जातैं भ्रमरोंके बीजभूत पुत्र मधुअपूपके छिद्रनविषै स्थित देखियेहैं औ ये आप अंतरिक्षरूप मधुअपूपके अंतर्गत रश्मिनविषै स्थित होवैहैं। तातैं इन जलोंविषै भ्रमरबीजकी दृष्टि कर्तव्य है ॥

१५ पूर्वदिशागत आदित्यके रश्मिनविषै प्राचीन (पूर्व-

प्राच्यो मधुनाड्य ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः ॥ २ ॥

इसकी प्राची मधुनाडियां हैं। रुचाहीं मधुकर हैं। ऋग्वेदहीं पुष्प है। वे अमृतरूप आप हैं वे प्रसिद्ध ये ऋचा हैं॥ २॥

मधुका जे प्राची दिशाविषै गत रश्मियां हैं। वेइ इसके प्राची (पूर्व)दिशाके तरफ प्रकाशनतैं मधुकी नाडीनकीन्यांई मधुकी नाडियां हैं। अर्थ यह जोः—मधुआधारके छिद्र हैं॥ तहां[16] ऋचाहीं मधुकृत् हैं। लोहितरूप[17] सवितारूप आश्रयवाले मधुकूं करतेहैं यातैं मधु-

---

दिशागत) मधुनाडीनकी दृष्टि कर्तव्य है। ऐसैं कहैहैं॥
इहां मधुके आश्रयकी। याका लोहितादिरूप मधु वक्ष्यमाण है ताके आधारकी। यह अर्थ है॥

१६ ऋचारूप मंत्रनविषै भ्रमरनकी दृष्टिकूं आरोप करैहैं॥ इहां प्रकृतमधु "तहां" इस सप्तमीका अर्थ है॥

१७ तिन ऋचाओंके मधुकरपनैंकूं साधतेहैं॥

कृत् हैं । भ्रमरनकीन्यांई [18] जातैं रसनकूं लेके मधुकूं करतेहैं ॥ ताका पुष्पकीन्यांई पुष्प ऋग्वेदहीं है ॥ तहां ऋग्वेदके ब्राह्मणके समूहकूं ऋग्वेद नामवाला होनेतैं औ शब्दमात्रतैं भोग्यरूप रसके स्रावके असंभवतैं ऋग्वेदशब्दकरि इहां ऋग्वेदविषै विहित कर्म लक्षित है । [19] तिसतैं जातैं कर्मफलभूत मधुरूप रसके निस्रावके संभवतैं । [20] मधुकरोंकीन्यांई पुष्पस्थानीय

---

१८ ऋग्वेदविहित कर्मविषै पुष्पदृष्टिकूं संपादन करैहैं ॥

१९ "ऋचा मधुकर हैं" इन मंत्रनकूं पृथक् किये होनेतैं "ऋग्वेद पुष्प है" ऐसैं ऋग्वेद शब्दसैं ब्राह्मण समुदायकूं कहनेकूं योग्य होनेतैं किसी प्रकारसैंबी तिस शब्दकरि लक्षित वेदविहित कर्मविषै पुष्पदृष्टिकरि अध्यासके हुयेबी कहांतैं तिसतैं मधुकी उत्पत्ति होवैगी ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२० ताहीकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—लोकविषै प्रथम पुष्परूप आश्रयवाले जलोंकूं लेके मधुकरोंकरि मधु उत्पन्न करियेहै । तैसैं इहांबी मधुकरस्थानीय ऋग्वेदके मंत्रनकरि तिस वेदविषै विहित पुष्पस्थानीय कर्मतैं जलनकूं ग्रहणकरिके मधु उत्पादन करियेहै । तातैं कर्मतैं स्वफलभूत मधुकी उत्पत्तिके संभवतैं तिस कर्मविषै पुष्पनकी दृष्टि है ॥

ऋग्वेदविहित कर्मतें जलोंकूं लेके ऋचाओंकरि मधु उत्पादन करियेहै ॥ ॥ कौंनेंसी[21] वे आप (जल) हैं? यातें कहैहैं:—वे कर्मविषै प्रयुक्त सोम घृत अरु क्षीररूप [22]अग्निविषै प्रक्षिप्त तिसके पाककरि उत्पन्न अरु अमृतअर्थ होनेतें अमृतरूप ऐसी अत्यंत रसवालियां आप (जल) होवैहैं ॥ तिसै[23]विषै स्थित रसोंकूं लेके वे ये प्रसिद्धऋचा पुष्पनतें रसकूं ग्रहण करनेवाले भ्रमरनकीन्यांई भ्रमररूप ऋचा हैं ॥२॥

२१ "वे अमृतरूप आप हैं" या वाक्यकूं प्रश्नपूर्वक व्याख्यान करैहैं ॥

२२ कर्मविषै प्रयुक्तपनैंकूं आकारकरि दिखावैहैं ॥ इहां अग्निके पाककरि अभिनिर्वृत्तपना जो है सो अपूर्वस्वरूपपना है औ परंपरासैं मुक्ति अर्थपना अमृतरूप अर्थवान्पना है। यद्वा रोहितरूप अमृतका उत्पादकपना तिस (अमृतरूप) अर्थवान्पना है औ उत्कृष्ट फलवान्पना अत्यंत रसवान्पना है ॥

२३ "वे प्रसिद्ध ये ऋचा हैं" इत्यादिरूप वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं प्रसिद्ध पुष्पनतें भ्रमर रसोंकूं ग्रहण करते हुये तिनके प्रति अभितापकूं करतेहैं। तैसैं ये मंत्र तिस कर्मविषै स्थित जलमय रसोंकूं लेके

एतमृग्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्त-

अर्थः—इस ऋग्वेदके प्रति अभिताप

टीकाः—ये[24] कर्मविषै प्रयुक्त (संबद्ध) ऋचा पुष्पस्थानीय इस ऋग्वेदकूं कहिये ऋग्वेद-विहित कर्मकेप्रति अभिताप करतेहुयेकी-न्यांई करतीभई । जातें शस्त्रआदिक अंग-भावकूं प्राप्तभये ऋचारूप[25] मंत्रोंकरि क्रियमाण कर्मरूप भ्रमरोंकरि आचूष्यमाण (चूषै) पुष्प-नकीन्यांई मधुके उत्पादक रसकूं छोडताहै यह संभव है ॥ सो यह कहैहैः—तिस अभितप्त ऋग्वेदका [रस उपजता भया] कौंन[26] यह रस है जो ऋचारूप मधुकरोंके अभितापकरि नि-

मधुकूं उत्पादन करते हुये यथोक्त अभिमत कर्मकूं सम्यक् आलोचन करतेहैं ॥

२४ ननु फेर पुष्पस्थानीय ऋग्वेदविहित कर्मके प्रति अभिताप करनेवाले भ्रमरस्थानीय मंत्रनकूं फलवान्‌पना कैसैं है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२५ तिन मंत्रनके कर्मविषै प्रयुक्त (योजित) पनैंके हु-येबी क्या आया ? सो कहैहैं ॥ इहां अभितप्तका रस उपजता भया । ऐसैं संबंध है ॥

२६ ताकूं प्रश्नपूर्वक स्पष्ट करैहैं ॥

स्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ र-
सोऽजायत ॥ ३ ॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा करतेभये। तिस अभितप्तका यश तेज इंद्रिय वीर्य अन्नाद्यरूप रस उपजताभया ३

अर्थः—सो विशेषकरि गमन करताभया। सो आदित्यके प्रति च्यारीओरतैं आश्रय कस्या है ? यह कहियेहैः—यश (विख्यातपनैंरूप विश्रुतपना)। तेज (देहगतदीप्ति)। इंद्रिय (सामर्थ्ययुक्त इंद्रियनकरि अविकलता)। वीर्य कहिये सामर्थ्य। अर्थ यह जोः—बल। औ अन्नाद्य कहिये अन्न अरु तिस आदिक वस्तु। उपयोगकिये जिसकरि दिन दिनविषै देवनकी स्थिति होवै सो अन्नाद्य है। यह रस यागादिरूप कर्मतैं उपजता भया ॥ ३ ॥

टीकाः—यँशसैं[27] आदिलेके अन्नाद्यपर्यंत सो विशेषकरि गमन करता भया औ गमनक-

२७ तत् (सो) शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

एतद्यदेतदादित्यस्य रोहितꣳ रूपम् ॥४

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदि तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः समाप्तः ॥ १ ॥

करताभया । सोई यह है । जो यह आदित्यका रोहित रूप है ॥ ४ ॥

इतिश्रीछान्दोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः समाप्तः ॥१॥

रिके सो आदित्यके प्रति च्यारीओरतैं कहिये पार्श्वतैं (सविताके पूर्वभागकूं) आश्रय करताभया । यह अर्थ है ॥ उँस आदित्यविषै संचित कर्मफलनामक मधुकूं हम भोगेंगे ऐसैं जातैं यशआदिरूप फलकी प्राप्तिअर्थ । कर्षकोंकरि केदार (क्यारे)के निष्पादनकीन्यांई मनुष्यनकरि कर्म करियेहैं । सो[२९] प्रत्यक्ष श्रद्धा-

---

२८ अनंतर अनुष्ठित कर्मजनित फल आदित्यकूं कैसैं आश्रय करैहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां दृष्टांतविषै भोगेंगे व्रीहि आदिककरि जनितफलकूं । इस अभिप्रायकरि व्रीहिआदिककी प्राप्तिअर्थ । यह शेष है ॥

२९ क्या सो कर्मफल है जो आदित्यकूं आश्रयकरिके

अथ तृतीयप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः २

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता ए-

अथ श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०द्वितीयः खंडः ॥२॥

अर्थः—अनंतर जे इसकी दक्षिण रश्मि-

रूप हेतुतैं देखियेहै । सोई यह है ॥ [30] सो क्या है किः—जो यह उदय होते आदित्यका रोहित (रक्त) रूप देखियेहै ॥ ४ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपा० द्वितीयःखण्डः॥२॥

दक्षिणदिशागत रश्मिआदिकविषै मधुनाडी आदिककी दृष्टि ३

टीकाः—[31] अनंतर जे इस (आदित्य)की

स्थित होवैहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां कर्मफलके प्रत्यक्ष हुये तिसके साधन कर्मविषै कर्मिनकी श्रद्धाकी सिद्धिअर्थ । यह श्रद्धारूप हेतुतैं इस शब्दका अर्थ है ॥

३० तिसीहीं फलकूं प्रश्नपूर्वक स्पष्ट करैहैं ॥

इति श्री तृतीयप्रपाठकगतप्रथमखंडस्य टिप्पणम् ॥ १ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकगतद्वितीयखंडस्य टिप्पणम्॥२॥

३१ अन्य मधुकूं दिखावैहैं ॥

दक्षिणदिशागत रश्मि आदिविषै मधुनाडी आदिकी दृष्टि ३

वास्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूंष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

यां हैं वेई इसकी दक्षिण मधु नाडियां हैं। यजुष् हीं मधुकर हैं। यजुर्वेदहीं पुष्प है। वे अमृत आप (जल) हैं ॥ १ ॥

दक्षिण रश्मियां हैं। इत्यादि समान है॥ [32]यँ-जुर् (यजुर्वेदके मंत्र)हीं मधुकर हैं। वे मंत्र यजुर्वेदविहित कर्मविषे प्रयुक्त हुये [33]पूर्ववत् मधुकर (भ्रमर)कीन्यांई हैं ॥ औ [34]पुष्पस्थानीय यजुर्वेद-विहित कर्म "पुष्प" ऐसें कहिये है औ [35]वेई सोम आदिक अमृतरूप आप हैं ॥ १ ॥

---

३२ वक्तव्य विशेषकूं कथन करैहैं ॥

३३ तिनका मधुकरपना कैसें है ? सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ऋग्वेदविहित कर्मविषै ऋग्वेदके मंत्रनका जैसें पूर्व मधुकरपना कहा। तैसें यजुर्वेदके मंत्रनका बी है ॥

३४ यजुर्वेदविहित कर्मविषै पुष्पदृष्टिकूं कहैहैं ॥

३५ "वे अमृतरूप आप हैं" इस वाक्यका पूर्वकी न्याईं व्याख्यान है। ऐसें कहैहैं ॥

३६

तानि वा एतानि यजूꣳष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥२

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लꣳ रूपम् ॥३॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः ॥ २ ॥

अर्थः—वे प्रसिद्ध ये यजुष् इस यजुर्वेदकूं अभिताप करतेभये। तिस अभितप्तका यश तेज इंद्रिय वीर्य अन्नाद्यरूप रस उपजताभया ॥ २ ॥

अर्थः—सो (यशआदि अन्नाद्यपर्यंत)विशेषकरि गमन करताभया। सो आदित्यकेप्रति च्यारीओरतें आश्रयकरताभया। सोई यह है जो यह आदित्यका शुक्ल रूप है॥ ३॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०द्वितीयःखंडः२॥

टीकाः—वे प्रसिद्ध ये यजुर् इस यजुर्वेदके प्रति अभिताप करते भये । इत्यादि

अथ तृतीयप्रपाठ० तृतीयः खंडः॥३॥

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो मधुनाड्यः सामान्येव

अथ श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०तृतीयःखंडः ॥ ३ ॥

अर्थः—अनंतर जे इसके प्रत्यक् रश्मियां हैं वेई इसकी प्रतीची मधुनाडियां हैं ।

सर्व समान है ॥ यह[३६] मधु आदित्यका शुक्लरूप देखियेहै ॥ २ ॥ ३ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपाठ० द्वितीयः खंडः ॥२॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपा०तृतीयःखंडः ॥ ३ ॥

पश्चिमदिशागत रश्मिआदिविषै मधुनाडी आदिकी दृष्टि ३

टीकाः—[३७]अनंतर जे इस (आदित्य)के प्रत्यक् (पश्चिमदिशागत) रश्मियां हैं । इ-

---

३६ यजुर्वेदके मंत्रनके आदित्यसंबंधि मधुकूं प्रत्यक्ष दिखावैहैं ॥

इति श्री तृतीयप्रपाठकगतद्वितीयखंडस्य टिप्पणम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकगततृतीयखंडस्य टिप्पणम्॥३॥

३७ तृतीय मधुकूं कथन करैहैं ॥ इहां ऋचाओंका औ यजुषनका मधु जैसैं कथनकिया । तैसैं । यह अर्थ है ॥

मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

तानि वा एतानि सामान्येतꣳ सामवेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥ २ ॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा

सामहीं मधुकर हैं। सामवेदहीं पुष्प है। वे अमृत आप हैं ॥ १ ॥

अर्थः—वे प्रसिद्ध ये साम इस सामवेदके प्रति अभितापकूं करतेभये। तिस अभितप्तका यश तेज इंद्रिय वीर्य अन्नाद्यरूप रस उपजताभया ॥ २ ॥

अर्थः—सो विशेषकरि गमन करताभया। सो आदित्यके प्रति च्यारीओरतैं आश्रय

त्यादि समान है ॥ तैसैं सामोंका मधु है। ३८यह

३८ ताकी शास्त्रप्रत्यक्षताकूं दिखावैहैं ॥

इति श्री० तृतीयप्रपाठकगततृतीयखंडस्य टिप्पणम् ॥ ३ ॥

एतद्यदेतदादित्यस्य कृष्णꣳ रूपम् ॥३॥
इति तृतीयप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः ॥ ३ ॥
अथ तृतीयप्रपाठ० चतुर्थः खंडः ॥ ४ ॥
अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव

करताभया । सोई यह है जो यह आदित्यका कृष्ण रूप है ॥ ३ ॥
इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपाठ०तृतीयःखंडः ३
अथ श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०चतुर्थःखंडः ॥ ४ ॥
अर्थः—अनंतर जे इसके उदक् रश्मियां हैं वेई इसकी उदीची मधुनाडियां हैं । अ-

---

आदित्यका कृष्ण रूप है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥
इति श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपाठ०तृतीयः खंडः ॥ ३ ॥
अथ श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपा०चतुर्थः खण्डः ॥४॥
उत्तरदिशागत रश्मिआदिविषै मधुनाडी आदिकी दृष्टि३
टीकाः—[३९]अनंतर जे इस (आदित्य)के

अथ तृतीयप्रपाठकगतचतुर्थखंडस्य टिप्पणम् ॥४॥
३९ चतुर्थ मधुकूं दिखावैहैं ॥

मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥२॥

थर्वांगिरस हीं मधुकर हैं। इतिहास पुराण पुष्प है। वे अमृत आप हैं ॥ १ ॥

अर्थः—वे प्रसिद्ध ये अथर्वांगिरस इस इतिहास पुराणके प्रति अभितापकूं करतेभये। तिस अभितप्तका यश तेज इंद्रिय वीर्य अन्नाद्यरूप रस उपजताभया ॥ २ ॥

उदक् (उत्तरदिशागत) रश्मिया हैं। इत्यादि समान है ॥ अथर्वाकरि अरु अंगिराकरि दृष्ट मंत्र अथर्वांगिरस हैं वे कर्मविषै प्रयुक्त हुये मधुकर हैं। औ ँइतिहास पुराण पुष्प है।

४० क्या सो कर्म है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां

तद्वयक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णꣳ रूपम् ३

इति तृतीयप्रपाठकस्य चतुर्थः खंडः ॥ ४ ॥

अर्थः—सो विशेषकरि गमन करताभया। सो आदित्यके प्रति च्यारीओरतैं आश्रय करताभया। सोई यह है जो यह आदित्यका पर (अतिशय) कृष्ण रूप है॥ ३ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०चतुर्थःखंडः४ ॥

औ तिनै[41] इतिहास अरु पुराणका अश्वमेधमैं

यह अर्थ हैः— तब आथर्वणोंका औ आंगिरसनका प्रसिद्ध जो ब्राह्मण है तिसविषै विहितकर्म पुष्प (पुष्पस्थानीय) है॥

४१ जब प्रसिद्ध इतिहास अरु पुराणका ग्रहण होवै तबबी दूषण नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अश्वमेधकर्मविषै जामिता(द्विरुक्तिपनैं)के परिहारअर्थ पारिप्लव जो "नानाविध उपाख्यानका समुदाय जिसविषै है तिस पारिप्लवकूं कथन कर" इस विधिके वशतैं प्रयोग करिये हैं। तिन रात्रिनविषै तिसीहीं कर्मका अंगहोनेकरि "वैवस्वतमनु राजा" इस प्रकारके इतिहास अरु पुराणके विनियोगकूं पूर्वकल्पविषै पारिप्लवरूप अर्थवाले अभिकरण(सूत्रविशेष)करिहीं सिद्धहोनेतैं तिस तिसका संबंधि कर्म पुष्प है॥

अथ तृतीयप्रपाठकस्य पंचमः खंडः॥५

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवादेशा

अथ श्री॰मूलभाषा॰तृतीयप्रपाठकस्य पंचमःखंडः॥५॥

अर्थः—अनंतर जे इस (सूर्य) के ऊर्ध्व रश्मियांहैं वेई इसकी ऊर्ध्व मधुनाडियां हैं।

पारिप्लव रात्रिनविषै कर्मका अंग होनेकरि विनियोग (उपयोग) सिद्ध है॥ यह[42] मधु आदित्यका परकृष्ण रूप है। अर्थ यह जोः-अतिशयकरि कृष्ण रूप है॥ १॥ २॥ ३॥

इति श्री॰ भाष्यभाषा॰ तृतीयप्रपाठ॰ चतुर्थः खंडः॥ ४॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰पंचमःखंडः ॥५॥

ऊर्ध्वदिशागत रश्मि आदिविषै मधुनाडीआदिकी दृष्टि ४

टीकाः—अनंतर[43] जे इस (आदित्य)के

---

४२ इसीबी मधुकी शास्त्रप्रत्यक्षताकूं कहैहैं॥

इति श्री॰तृतीयप्रपाठकगतचतुर्थखंडस्य टिप्पणम्॥ ४॥

अथ तृतीयप्रपाठकगतपंचमखंडस्य टिप्पणं॥ ५॥

४३ पंचम मधुकूं दिखावैहैं॥ इहां लोकद्वारसंबंधिआदिक

मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः १
ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्मा-
भ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इ-
न्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥ २ ॥

गुह्यहीं आदेश मधुकर हैं। ब्रह्महीं पुष्प है। वे अमृत आप हैं ॥ १ ॥

अर्थः—वे प्रसिद्ध ये गुह्य आदेश इस ब्रह्मकेप्रति अभितापकूं करतेभये । तिस अभितप्तका यश तेज इंद्रिय वीर्य अन्नाद्यरूप रस उपजताभया ॥ २ ॥

उर्ध्व रश्मियां हैं । इत्यादि पूर्ववत् है ॥ गुह्य कहिये गोप्य (रहस्य)हीं आदेश जे लोकद्वार संबंधि आदिक विधियां अरु कर्मांगविषयक उपासन हैं वे मधुकर हैं । ब्रह्महीं जो ⁴⁴शब्दके अधिकारतैं प्रणव नामक है सो पुष्प

विधियां "लोकके द्वारकूं खोलदे। हम तुजकूं देखैं" इत्यादिक हैं॥

४४ ब्रह्मशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां शब्दके अधिकारतैं याका ऋक्आदिक शब्दनकूं प्रकृत होनेतैं । यह अर्थ है ॥

तद्वा यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥ २ ॥ --

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ३

ते वा एते रसानाꣳ रसा वेदा हि

अर्थः—सो (रस) विशेषकरि जाताभया। सो आदित्यकेप्रति च्यारीओरतैं आश्रय करताभया। सोई यह है जो यह आदित्यके मध्य क्षोभितकी न्यांई है ॥ ३ ॥

अर्थः—वे प्रसिद्ध ये रसोंके रस हैं वेद है। अन्य समान है ॥ मधु[45] यह आदित्यके मध्य क्षोभकूं प्राप्तहुयेकीन्यांई (सम्यक् चलतेहुयेकी न्यांई) समाहित दृष्टिवालेकूं देखनेमैं आवताहै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

टीकाः—वे[46] प्रसिद्ध ये यथोक्त रोहितादि-

४५ इसीबी मधुकी शास्त्रके वशतैं प्रत्यक्षताकूं कहैहैं ॥ इहां समाहितदृष्टिवालेकूं याका शास्त्रार्थविषै समाहितचित्तकूं। यह अर्थ है ॥

४६ पंच मधुनकूं व्याख्यान करिके । अब तिन सर्वकी ध्येयताकी सिद्धिअर्थ स्तुतिकूं करैहैं ॥ इहां तातैं तिनके ।

रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥ ४ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य पञ्चमः खंडः ॥ ५ ॥

जातैं रस हैं तिनके ये रस हैं । वे प्रसिद्ध ये अमृतोंके अमृत हैं। वेद जातैं अमृत हैं तिनके ये अमृत हैं ॥ ४ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्र०पंचमःखंडः॥५॥

रूप विशेष जे हैं वे रसोंके रस हैं ॥ ॥ किन रसोंके रस हैं ? यह कहैहैंः—वेद जातैं लोकनके निष्पादक (उत्पादक) होनेतैं सार हैं यातैं रस हैं तिन कर्मभावकूं प्राप्तभये रसनके बी ये रोहितादि विशेष रस हैं । अर्थ यह जोः- अत्यंत सारभूत हैं ॥ तैसैं अमृतोंके अमृत हैं । वेद जातैं अमृत हैं नित्य होनेतैं । ति-

ऐसैं संबंध है औ कर्मविषै विनियोग किये होनेतैं ताके अंगहोनेतैं वेदनकूं तिस (कर्म) भावकी प्राप्ति है औ वेदनकूं कार्यताके हुयेबी प्रयत्नपूर्वक ताके अभावतैं नित्यता है ॥

अथ तृतीयप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥६॥

तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीव-

अथ श्री॰मूलभाषा॰ तृतीयप्रपा॰ षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥

अर्थः—सो जो प्रथम अमृत है ताके प्रति वसु अग्निरूप मुखकरि उपजीवन करते

नके ये रोहितादिरूप अमृत हैं ॥ "रसोंके[47] रस हैं" इत्यादि यह कर्मकी स्तुति है । जि[48]सके इस प्रकारके अमृत फल हैं इति ॥ ४ ॥

इति श्री॰ भाष्यभाषा॰ तृतीयप्रपाठ॰ पंचमः खंड ॥ ५ ॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰ तृतीयप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥६

रोहितादिरूप वसूपजीवन प्रथमामृतोपासन ४

टीकाः—तहां[49] जो प्रथम अमृत रोहितरूप

४७ जो मधुविषै स्तुति है सो कर्मकी स्तुति है ऐसैं कहैहैं ॥

४८ कर्मकी स्तुतिकूं आकारकरि दिखावैहैं ॥ इहां रसोंके रस अमृतोंके अमृत । इस विशेषणवाले अमृत जिसके कर्मका फल है तिसका महाभाग्य क्या कहनेकूं योग्य है । ऐसैं कर्म स्तुत करियेहै । यह अर्थ है ॥

इति श्री॰तृतीयप्रपाठकगतपंचमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ५ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकगत षष्ठखंडस्य टिप्पणं ॥ ६ ॥

४९ ध्यावनेयोग्य अमृतनकूं कहिके अब ताके उपजीवी

न्त्यग्निना मुखेन। न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥१॥

हैं। निश्चयकरि देव अशन करते नहीं पान करते नहीं। इसींहीं अमृतकूं देखिके तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

लक्षणवाला है। ताकेताँई प्रातःकालके ईशान जे वसु वे अग्निरूप मुखकरि कहिये प्रधानभूत अग्निकरि। अर्थ यह जोः—अग्नि प्रधान हुये। उपजीवन करैहैं ॥ ॥ "अन्न आदिक रस उपजता भया" इस वचनतैं कवलग्राहकूं अशन करतेहैं ऐसैं प्राप्तभया। सो प्रतिषेध करियेहैः—निश्चयकरि देव अशनकूं करते नहीं पानकूं करते नहीं ऐसैं ॥ ॥ तब कैसैं उपजी-

---

पीछे चिंतनकरनेकूं योग्य देवताओंके गणोंकूं उपदेश करैहैं ॥ इहां कवलके ग्राहकूं। याका कवलकूं ग्रहणकरिके जैसैं लोक भक्षण करैहै ताकी न्यांई। यह अर्थ है ॥

५० ननु अशन अरु पानके अभाव हुये उपजीवनका वचन युक्त नहीं है? ऐसैं आशंकाकरिके परिहार करैहैं ॥

वनकूं करते हैं? यह कहिये हैः—जातैं इसींहीं (यथोक्त) रोहितरूप अमृतकूं देखिके कहिये सर्व करणोंसैं अनुभव करिके तृप्त होतेहैं। काहेतैं [51] दृष्टिकूं सर्व करणद्वारा उपलभ्यरूप अर्थवाली होनेतैं ॥ ॥ [52] ननु रोहितरूपकूं देखिके। ऐसैं कहां। फेर रूपकूं अन्य इंद्रियनकी विषयता कैसैं है? [53] यह शंका बनै नहींः—काहेतैं यशआदिककूं श्रोत्रआदिकरि गम्य होनेतैं ॥ श्रोत्रकरि ग्राह्य यश है। तेज जो रूप सो चाक्षुष (चक्षुकरि ग्राह्य) है। इंद्रिय जो है सो विषयके ग्रहणरूप कार्यकरि अनुमेय करणका सामर्थ्य स्वरूप है। वीर्य जो बल सो देहगत उत्साह (प्राणवान्‌ता) स्वरूप है। अरु अन्नाद्य जो है सो प्रतिदिन उपजीव्यमान (उपभुक्त) हुया शरी-

---

५१ चक्षुकरि ऐसैं कहनेकूं योग्य हुये सर्व करणोंकरि ऐसा अधिक कैसैं कहियेहै? तहां कहैहैं ॥

५२ ननु चक्षुकरिहीं रूपका ग्रहण होवैहै। इस नियमकूं आश्रयकरिके पूर्ववादी शंका करैहै ॥

५३ कर्मके फलभूत लोहित अमृतस्वरूप रसकी चक्षुमात्रकरि ग्राह्यता नहीं है। ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्मा-
द्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

अर्थः—वे (वसु) इसींहीं रूपके तांईं [अ-
भिलक्षकरिके] उदासीन होतेहैं। [फिर]
इसरूपतैं उद्यमवान् होतेहैं ॥ २ ॥

रकी स्थितिका करनेवाला जो होवैहै सो है ॥
[54]जोंतैं ऐसैं स्वरूपवाला सर्व रस है। जिसकूं दे-
खिके सर्व देव तृप्त होवैहैं। अर्थ यह जोः—
देवैं[55] देखिके (इस सर्वकूं स्वकरणोंसैं अनुभव
करिके) तृप्त होवैहैं ॥ [56]आदित्यरूप आश्रयवाले
हुये औ दुर्गंधियुक्तता आदिक देह अरु कर-
णोंके दोषनसैं रहित हुये [तृप्त होते हैं] ॥१॥

टीकाः—क्या वे निरुद्यम हुये अमृतकूं उप-
जीवन करतेहैं ? नहीं ॥ ॥ तब कैसैं किः—

५४ इतनैंकरि रसकूं क्या आया ? सो कहैहैं ॥ इहां यातैं ताकीबी श्रोत्रादिकरि ग्राह्यता है। यह शेष है ॥

५५ "इसीहीं रूपके तांईं" इत्यादि वाक्यकूं उपसंहार करैहैं ॥

५६ क्या तिन स्वतंत्रनकूं तृप्ति होवैहै ? तहां नहीं।

स य एतदेवममृतं वेद वसूनामे-

अर्थः–जो इस ऐसें अमृतकूं जानता

वे इसींहीं रूपकूं अभिलक्षकरिके कहिये अबी हमारा भोगका अवसर नहीं है ऐसें जानिके उदासीन (उपराम) होतेहैं ॥ जब हीं तिस अमृतके भोगका अवसर होवै । तब इस अमृततैं। अर्थ यह जोः–अमृतके भोगनिमित्त इस रूपतैं उद्यमवाले (उत्साहवाले) होवैहैं । यह अर्थ है ॥ जाँतैं अनुत्साहवाले अनुष्ठानरहित आलस्य युक्तनकूं भोगकी प्राप्ति लोकविषै देखी नहीं ॥ २ ॥

टीकाः–सो[५८] जो कोईकबी । इस ऐसैं

ऐसैं कहैहैं ॥ इहां वैगंध्य नाम दुर्गंधता है । आदिपदकरि संभावित सर्वबी देह अरु करणोंके दोष ग्रहण करियेहैं औ इसरूपतैं । यह व्याख्यान कियेका अनुवादमात्र है ॥

५७ उत्साहवाले देवनकूं यथोक्त अमृतका उपजीवीपना है इस अर्थविषै लोक प्रसिद्धिकूं अनुकूल करैहैं ॥

५८ पाठके क्रमसैं उक्त धेयके स्वरूपकूं अनुवाद करिके

वैको भूत्वाऽग्निनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति। स य एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

है। सो वसुनके मध्यहीं एक होयके अग्निरूपहीं मुखकरि इसींहीं अमृतकूं देखिके तृप्त होता है। सो इसींहीं रूपकूं [जानिके] उदासीनहो बैठताहै [फेर] इस रूपतैं उद्यमवान् होताहै ॥ ३ ॥

(५९यथोक्त) अमृतकूं कहिये ऋग्वेदविहितकर्मरूप पुष्पतैं ऋचारूप मधुकरोंके तापसैं रसके संक्षरण (संस्राव)कूं औ ताके आदित्यके प्रति आश्रय करनेकूं औ अमृतकी रोहितरूपताकूं अरु प्राचीदिशागत रश्मिरूप मधुनाडीनविषै स्थितताकूं अरु वसुरूप देवोंकरि भोग्यताकूं।

अधिकारसहित ध्यानके विधिकूं दिखावैहैं ॥ इहां वसुरूप देवनकरि भोग्यताकूं। याका वसुरूप देवनकरि उपजीव्यताकूं। यह अर्थ है ॥ औ इस। ऐसैं हमारे मधुकूं दिखावैहैं ॥

५९ एवं (ऐसैं) शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां कैसैंहीं। याका श्रुतिउक्त क्रमसैंहीं। यह अर्थ है ॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता प-

अर्थः—सो यावत् आदित्य पूर्वदिशा-विषै उदय होताहै अरु पश्चिमदिशाविषै

औ ताके वेत्ताके वसुनके साथि ऐकताकूं पायके अग्निरूप मुखकरि उपजीवनकूं अरु दर्शनमात्रकरि तृप्तिकूं अरु भोग अवसरविषै उद्यम करनेकूं औ तिस भोगकालके नाश हुये उदासीन होबैठनेकूं जानताहै। सो बी वसुनकी न्यांई सर्वकूं तैसैंहीं अनुभव करैहै ॥ ३ ॥

टीका:—कितनैं[६०] कालपर्यंत विद्वान् तिस अमृतकूं उपजीवन करैहै? यह कहियेहै:—सो विद्वान् यावत् आदित्य प्राची (पूर्व) दिशाविषै उदय होताहै अरु प्रतीची (पश्चिम) दिशाविषै अस्तकूं पावताहै। तावत् (तितना) वसुनका भोगकाल है। तितनैंहीं कालपर्यंत वसुनकेहीं आधिपत्यकूं औ स्वाराज्यकूं च्यारीओरतें पावनेवाला होवैहै। यह अर्थ

६० भोगकालके परिमाणकूं प्रश्नपूर्वक निर्धार करैहैं ॥

आदस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अस्तकूं पावताहै तावत् वसुनकेहीं आधिपत्यकूं अरु स्वाराज्यकूं च्यारीओरतैं प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०षष्ठःखंडः ॥६॥

है ॥ जैसैं[६१] चंद्रमंडलविषै स्थित केवल कर्मी परतंत्र हुया देवनका अन्नभूत होवैहै। ऐसैं नहीं। किंतु यह अधिपतिपनैंकूं अरु स्वराट्भावकूं पावताहै ॥ ४ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥६॥

---

६१ आधिपत्य अरु स्वाराज्य इन दो विशेषणोंके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

इति श्री०तृतीयप्रपाठकगत षष्ठखंडस्य टिप्पणम् ॥ ६ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः ७॥

अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन। न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति॥१॥

अथ श्री०मूलभाषा० तृतीयप्रपा०सप्तमः खंडः॥ ७ ॥

अर्थः—अनंतर जो द्वितीय अमृतहै ताके प्रति रुद्र इंद्ररूप मुखसें उपजीवन करते हैं। निश्चयकरि देव अशन करते नहीं पान करते नहीं। इसीहीं अमृतकूं देखिके तृप्त होतेहैं ॥ १ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपाठकस्यसप्तमःखंडः ७॥

रुद्रोपजीवन द्वितीयामृतोपासन ४

टीकाः—[62]अनंतर जो द्वितीय अमृत है ताकूं रुद्र उपजीवनकरतेहैं । इत्यादि स-

---

अथ श्रीतृतीयप्रपाठकगत सप्तमखंडस्य टिप्पणं॥७॥

६२ प्रथम अमृतकूं आश्रयकरिके चिंतनकरनेयोग्य कहिके द्वितीय अमृतकूं आश्रयकरिके ताकूं दिखावैहैं ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा

अर्थः—वे (रुद्र) इसींहीं रूपकेतांई [अभिलक्षकरिके] उदासीन होतेहैं [फेर] इसींहीं रूपतैं उद्यमवान् होतेहैं ॥ २ ॥

अर्थः—जो इस ऐसैं अमृतकूं जानता है। सो रुद्रनके मध्यहीं एक होयके इंद्ररूपहीं मुखसैं इसींहीं अमृतकूं देखिके तृप्त

मान है ॥ [६३] सो यावत् आदित्य पूर्वदिशाविषै उदय होताहै अरु पश्चिमदिशाविषै अस्तकूं

---

६३ विद्याके फलकूं कथन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— यावत् वसुनका भोगकाल है तिसतैं द्विगुण रुद्रनका भोगकाल है। औ जैसैं प्रथम अमृतके ध्यावनेवालोंका वसुनकरि तुल्य भोगकाल है। तैसैं द्वितीय अमृतके ध्यावनेवालोंकाबी रुद्रनकरि तुल्य भोगकाल है ॥

इति श्री० तृतीयप्रपाठकगत सप्तमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ७ ॥

तृप्यति। स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्य्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

होताहै। सो इसींहीं रूपकूं [जानिके] उदासीन हो बैठताहै [फेर] इस रूपतैं उद्यमकूं करताहै ॥ ३ ॥

अर्थः—सो यावत् आदित्य पूर्व दिशाविषै उदय होताहै अरु पश्चिम दिशाविषै अस्तकूं पावताहै। तिसतैं द्विगुण काल दक्षिणतैं उदय होताहै अरु उत्तरतैं अस्तकूं पावताहै तावत् रुद्रनकेहीं आधिपत्यकूं अरु स्वाराज्यकूं च्यारीओरतैं पावताहै ॥ ४ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०सप्तमःखंडः ७॥

पावताहै। तिसतैं द्विगुणकालपर्यंत दक्षि-

अथ तृतीयप्रपाठकस्याष्टमः खंडः॥८॥
अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उ-

अथ श्री॰मूलभाषा॰तृतीयप्रपाठकस्याष्टमः खण्डः॥८॥
अर्थः—अनंतर जो तृतीय अमृत है

णतैं उदय होताहै उत्तरतैं अस्तकूं पावता है तितना रुद्रोंका भोगकाल है ॥१॥२॥३॥४॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः॥७॥
अथ श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठकस्याष्टमः खण्डः ८
आदित्योपजीवन तृतीयामृतोपासन ४

टीकाः—तैसैं[६४] पश्चिमतैं अरु उत्तरतैं ऊर्ध्व उदयकूं पावताहै औ विपर्ययसैं अस्तकूं पावता है

अथ श्री॰तृतीयप्रपाठकगताष्टमखंडस्य टिप्पणम् ८

६४ इतर अमृतोंके ध्यावनेवालेके फलोंकूं निर्देश करैहैं॥ इहां विपर्ययकरि। याका पूर्वतैं अरु दक्षिणतैं नीचे। यह अर्थ है॥ औ जैसैं पूर्वदिशाविषै उदयकूं पावताहै अरु पश्चिमदिशाविषै अस्तकूं पावताहै। तिसतैं दक्षिणतरफ द्विगुणकालसैं उदयकूं पावताहै अरु उत्तरतरफ अस्तकूं पावताहै ऐसैं कहा। तैसैं तिसतैं द्विगुणकालकरि पश्चिमविषै उदयकूं पावताहै अरु पूर्वविषै अस्तकूं पावताहै तितना आदित्योंका

पजीवन्ति वरुणेन मुखेन । न वै देवा अश्नति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

ताके प्रतिआदित्य वरुणरूप मुखकरि उपजीवन करतेहैं । निश्चयकरि देव खाते नहीं अरु पीते नहीं । इसींहीं अमृतकूं देखिके तृप्त होतेहैं ॥ १ ॥

॥ ॥ ६५नंनु पूर्व पूर्वतैं द्विगुण उत्तर उत्तरकालकरि।

भोगकाल है औ तृतीयअमृतके ध्यावनेवालोंकाबी तितनाहीं भोगकाल है ॥ इसतैं द्विगुणकालकरि जितना आदित्य उत्तरतैं उदयकूं पावताहै अरु दक्षिणतैं अस्तकूं पावताहै तितना मरुतनका (वायुनका) भोगकाल है । चतुर्थ अमृतके ध्यावनेवालोंकाबी तितनाहीं भोगकाल है ॥ तिसतैं द्विगुणकालकरि ऊर्ध्वकूं उदय होताहै अरु अधः (नीचे)कूं अस्त होताहै तितना साध्योंका भोगकाल है अरु पंचम अमृतके चिंतकोंकाबी तितनाहीं भोगकाल है । यह अर्थ है ॥

६५ जो पूर्व पूर्व उदय अरु अस्तमयके कालकी अपेक्षासैं द्विगुणकालकरि उत्तर उत्तर उदय अरु अस्तमय हैं ऐसैं कहा । सो पुराणसैं विरुद्ध है? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्मा-
द्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

अर्थः—वे (आदित्य) इसींहीं रूपके ताँई [जानिके] उदासीन होतेहैं [फेर] इस रूपतैं उद्योगकूं करते हैं ॥ २ ॥

ऐसैं जो कहा। सो अपौराण दर्शन है काहेतैं[66] सूर्यके चतुर्दिशाविषै इंद्र यम वरुण अरु सोमकी पुरीनविषै उदय अरु अस्तमयके कालकी तुल्यता जातैं पौराणिकोनैं कही है ।[67] मॉनसोत्तर

६६ ननु श्रुतिउक्त अर्थकी पुराणसैं विरुद्धता कैसैं है ? यह आशंकाकरिके पूर्ववादी कहैहै ॥

६७ उक्त अर्थकूंहीं पूर्ववादी संक्षेपसैं कहैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—प्राकार (किल्ला)कीन्यांई च्यारीओरतैं स्थित महागिरिमेरुके मस्तकविषै संलग्न है रथचक्रका अक्ष (तैलयंत्रके कीलककीन्यांई लंबमान कीलकविशेष) जिसका ऐसे सविताकी मेरुके प्रदक्षिणाकी आवृत्तिकूं तुल्य होनेतैं औ कालकी अधिकताविषै कारणके अभावतैं च्यारीबी पुरीनविषै उदय अरु अस्तमयके कालकी तुल्यता है ॥ जातैं विष्णुपुराणविषै कहा है:—"यह (सूर्य) इंद्रआदिकनके पुरविषै स्थित हुया पुरत्रयकूं स्पर्श करताहै औ विकर्णविषै स्थित-हुया दो विकर्णोंकूं तीनकोणनकूं औ तैसैं दो पुरनकूं

पर्वतके मस्तकविषै मेरुकी प्रदक्षिणाकी आवृ-

स्पर्श करताहै" ऐसैं ॥ औ लैंगपुराणविषै कहा है:—"मानस-पर्वतके उपरि मेरुतैं पूर्वदिशाविषै माहेंद्री पुरी स्थित है अरु दक्षिणविषै भानुपुत्र (यम)की अरु पश्चिमविषै तो वरुणकी १ सौम्य (उत्तर)विषै सोमकी विपुलापुरी है । तिनविषै दिशाओंके देवता स्थित हैं । वे पुरियां क्रमतैं अमरावती । संयमिनी । सुखा औ विभा हैं २ लोकपालोंके ऊपर तो सर्वओरतैं दक्षिणायनविषै दिशाकूं प्राप्त सूर्यकी जो गति है ताकूं श्रवणकर ३ जब दक्षिणदिशाकूं सूर्य चलताहै तब फेंकेहुये बाणकीन्यांईं दौडताहै । जब भानु प्रभु (इंद्र)के पुरके मध्यगत होवै तब ४ हे द्विज! सर्व संयमिनीवासियोंकरि सूर्यका उदयहीं देखियेहै । सो ऐसैं सुखवतीविषै [जब होवै तब] तो ताकी निशा देखियेहै । ५ जब विश्वका द्रष्टा विभु सूर्य विभाविषै अस्तकूं पावताहै । मैंनैं अमरावतीविषै जैसैं यह वारितस्कर (सूर्य) कहा । ६ तैसैं खग (सूर्य) संयमनीकूं सुखाकूं औ विभाकूं पायके होवैहै । हे द्विज! जब अपराह्ण तो अग्निकोणविषै है अरु पूर्वाह्ण नैर्ऋतविषै है ॥ ७ ॥ तब तो वायुभागविषै सुदारुण अपररात्र होवैहै औ पूर्वरात्र तो ईशानकोणविषै होवैहै । यह इसकी सर्वओरतैं गति है ८ इति ॥ ॥ तैसैं हुये अमरावतीके ऊपर स्थित हुया सूर्य मध्याह्नकूं करताहै । तहां ईशानकोणविषै स्थित प्राणीनके तृतीय यामकूं अरु आग्नेयकोणविषै स्थित प्राणीनके प्रथम यामकूं औ संयमिनीविषै उदयकूं करताहै । ऐसैं जब यमपुरविषै मध्याह्नमैं स्थित होवैहै तब इंद्रपुरविषै अस्तमय होवैहै । आग्नेयकोणविषै तृतीययाम अरु निर्ऋतिकोणविषै

स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामे-
वैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं

अर्थः—जो इस ऐसैं अमृतकूं जानता
है। सो आदित्यनके मध्यहीं एक होयके
वरुणरूपहीं मुखसैं इसींहीं अमृतकूं देखिके

त्तिकूं तुल्य होनेतैं? इति ॥ ॥ ईहां द्रविडा-

प्रथमयाम अरु वरुणपुरविषै उदय होवैहै औ जब वरुणपुर-
विषै मध्यान्ह होवै तब यमपुरविषै अस्तमय अरु निर्ऋति-
कोणविषै तृतीय याम अरु वायव्यकोणविषै प्रथम याम अरु
सौम्यपुरविषै उदय होवैहै औ जब सौम्यपुरविषै मध्यान्ह
होवै तब वरुणपुरविषै अस्तमय। वायव्य कोणविषै तृतीय
याम। ईशान कोणविषै प्रथम याम। ऐंद्रपुरविषै उदय हो-
वैहै ॥ तैसैं आग्नेयकोणविषै वर्तमान हुया तहांके प्राणीनके
मध्यंदिनकूं औ यम अरु इंद्रकी पुरीनविषै प्रथम अरु तृतीय
यामोंकूं औ नैर्ऋत अरु ईशान कोणनविषै उदय अरु अस्त-
मयकूं करताहै। ऐसैं सर्व दिशाओंविषै अरु विदिशाओंविषै
है। ऐसैं पौराणिकदर्शनके होते तिसतैं विरुद्ध यह श्रुतिनैं
कहा है ॥

६८ यद्यपि श्रुतिके विरोधहुये स्मृति (पुराण) अप्रमाण
होवैहै। तथापि द्रविडाचार्यकरि उक्त जिस किस प्रकारसैंबी
उपपादन करैहैं ॥

दृष्ट्वा तृप्यति। स एतदेव रूपमभिसं-विशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

तृप्त होताहै। सो तिसींहींरूपके तांई [जा-निके] उदासीन होताहै [फेर] इस रूपतैं उद्योगकूं करताहै ॥ ३ ॥

चार्योंनैं परिहार कहा है:-[69]अमरावतीआदिक पुरीनका द्विगुण उत्तर उत्तर कालकरि उद्वास (नाश) होवैहै। औ सूर्यका उँदय नाम तिन-पुरीनके निवासी प्राणीनके चक्षुगोचरविषै प्राप्ति

६९ जब अमरावती शून्य होवै तबहीं ताकेप्रति पूर्वदि-शाविषै उदय होवैहै। ऐसैं प्रयोगकूं शून्य होनेतैं वसुनके भोगका अंत होवैहै। ऐसैं उत्तर (पीछली) पुरीनके विना-शके हुये द्विगुणकालकरि रुद्रादिकनके भोगका भ्रंश होवैहै। यातैं इस वचन व्यक्तिकूं आश्रयकरिके परिहारकूं कहैहैं ॥

७० तथापि कैसैं विरोधका समाधान है? तहां कहैहैं॥ इहां यह शास्त्रका वचन है:-"जिनोंकरि जहां सूर्य देखि-येहै सो तिनोंका उदय कहा है॥ औ जहां तिरोभावकूं पा-वताहै सोई रविका अस्तमन है १ सर्वदा विद्यमान अर्कका अस्तमन नहीं है अरु उदय नहीं है। उदय अरु अस्तमन नाम रविका दर्शन अरु अदर्शन है २" ऐसैं॥

स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेताऽऽदित्यानामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्य्येता ॥ ४ ॥
इति तृतीयप्रपाठकस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अर्थः—सो यावत् आदित्य दक्षिणतैं उदय होताहै उत्तरतैं अस्तकूं पावताहै तिसतैं द्विगुणकाल पश्चिमतैं उदय होताहै अरु पूर्वतैं अस्तकूं पावताहै। तावत् आदित्यनकेहीं आधिपत्यकूं अरु स्वाराज्यकूं पावताहै ॥४॥
इति श्री० मूलभाषा० तृतीयप्रपा० अष्टमः खंडः८॥

अरु ताका नाश अस्तमन है। परमार्थतैं सूर्यके उदय अरु अस्तमन नहीं हैं। काहेतैं औ तिनैं-

---

७१ अमरावतीआदिक पुरीनविषै पूर्व पूर्वकी अपेक्षासैं उत्तर उत्तरविषै नाशके कालकी द्विगुणता होइ औ दर्शन अरु अदर्शनरूप सूर्यके उदय अरु अस्तमय होइ औ "सोई यह कदाचित् अस्तकूं पावता नहीं अरु उदय होता नहीं" इस श्रुतितैं वास्तव उदय अरु अस्तमय नहीं हैं। तैसैं हुये पुरीनविषै तुल्यताकरि गमनकरनेवाले सूर्यके उदय अरु अ-

के निवासी प्राणीनके अभाव हुये तिनके प्रति किसींहीं मार्गसैं गमन करता हुयाबी उदयकूं पावता नहीं अरु अस्तकूं पावता नहीं । ऐसैं चक्षुगोचरविषै प्राप्तिके औ ताके नाशके अभावतैं ॥ [७२] तैसैं अमरावतीतैं द्विगुणकाल संयमनी-

स्तमय कालकी विषमता अयुक्त है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:-भोगकालकी द्विगुणता जो है सो सूर्यकी गतिकी अधिकताकी अपेक्षासैं श्रुतिकरि नहीं कहियेहै जिससैं पुराणका विरोध होवै । किंतु दैत्योंकरि उपहृत अमरावतीआदिक पुरीनके मध्य पूर्व पूर्वकी अपेक्षासैं उत्तर उत्तर पुरीके द्विगुणकालकरि उद्वास (नाश)तैं तिसकी अपेक्षाकरि उत्तर उत्तर स्थानोंविषै भोगकालकी द्विगुणता श्रुतिनैं कही है ॥

७२ अनंतर उद्वासके कालकी अधिकतातैं भोगनाशके कालकी अधिकता है । भोगकालकी अधिकता नहीं है? यातैं कहैहैं ॥ इहां जैसैं उद्वासके कालकी द्विगुणता कही ताकी न्यांई । यह अर्थ है औ अमरावतीके निवासी प्राणीवर्गकी अपेक्षासैं संयमिनीके निवासी प्राणीनके प्रति द्विगुणकालकरि सूर्यके उदय अरु अस्तमय हैं । ऐसैं कहनेकूं युक्त है । काहेतैं दर्शन अरु अदर्शनकूं द्विगुणकालकरि भावि होनेतैं औ ताके निवासीनकी दृष्टिकी अपेक्षासैं दक्षिण अरु उत्तरविषै उदय अरु अस्तमय नहीं हैं ॥ काहेतैं तिन तिनकी दृष्टिकरि पूर्व अरु पश्चिमविषैहीं तिन (उदयअस्त)के

पुरी वसती है। यातें तिसके निवासी प्राणीनके प्रति दक्षिणतें होतेकी न्यांई उदय होता है अरु अस्तकूं पावताहै ऐसें कहियेहै औ हमारी बुद्धिकूं अपेक्षाकरिके तैसें[७३] उत्तर पुरीनविषै बी योजना है औ सर्व[७४] जीवनकूं मेरु उत्तरतें

भावतें औ हमारी बुद्धिकूं अपेक्षाकरिके तो दक्षिणतें उदय होताहै अरु उत्तरतें अस्तकूं पावताहै ऐसें कहियेहै। इहां इव (न्यांई) शब्द जो है सो तिसके निवासी जनोंकी अपेक्षासैं दक्षिण अरु उत्तरविषै स्थित तिन उदय अस्तमयके असद्भावकूं जनावताहै। यह अर्थ है॥

७३ जैसें अमरावतीकी अपेक्षासैं संयमिनीविषै उद्भासके कालकी अधिकता कही। तैसें ताकी अपेक्षासैं वारुणीविषै औ ताकी अपेक्षासैं विभाविषै तिस (उद्भास)के कालकी अधिकता निश्चय करनेकूं योग्य है। ऐसें कहैहैं॥ इहां संयमिनीकूं अंतर्भावकरिके बहुवचन है॥

७४ इसतैंबी हमारी बुद्धिकूं अपेक्षा करिके दक्षिणगति आदिकका कथन है। ऐसें कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—उदय हुये आदित्यकूं पूर्वविषै अवलोकन करनेवाले जनोंकूं वामभागविषै स्थित होनेतें मेरु सर्वकूंहीं उत्तर तरफ होवैहै। तैसें हुये उदय अरु अस्तमयकरि पूर्व अपर दिशाओंके विभागतें। तिन पुरवासीनकी दृष्टिकी अपेक्षासैं दक्षिण तरफ है। इत्यादि कथन बनै नहीं। किंतु हमारी दृष्टिकी अपेक्षासैं है। यह अर्थ है॥

होवैहै । जैंब[75] अमरावतीविषै मध्याह्नकूं प्राप्त सविताहै तब संयमनीविषै उदयहुया देखियेहै । जब तहां(संयमनीविषै) मध्याह्नकूंप्राप्त है तब वारुणी(वरुणकीपुरी)विषैउदयहुया देखियेहै । तैसैं[76] उत्तरविषै । प्रदक्षिणाकीआवृत्तिकूं तुल्यहोनेतैं ॥ सर्व(उभय)औरतैं [77]दो-

७५ उद्वास कालकी द्विगुणताकी अपेक्षासैं भोगकालकी द्विगुणता है ऐसैं कहा । अब सूर्यकी गतिकी अधिकताकी अपेक्षासैंहीं भोगकालकी अधिकता क्यूं नहीं होवैगी ? यह आशंकाकरिके । पुराणके विरोधके समाधानके असंभवतैं ऐसैं मतिकहो । यह कहैहैं ॥

७६ जैसैं संयमिनीविषै मध्यान्हकूं प्राप्त हुया अरु वारुणीविषै उदयकूं प्राप्त होवैहै । तैसैं तिसविषै मध्यान्हकूं प्राप्त हुया विभाविषै उदय हुया देखियेहै । ऐसैं कहैहैं ॥ औ इहां यह वायुप्रोक्त पुराणविषै कहा है:–"यावत् सूर्य अमरावतीविषै मध्यगत होवैहै तावत् यमपुरविषै उदयहुया तहां देखियेहै औ सुखाविषै अर्धरात्र औ विभाविषै अस्तकूं पावताहै" ऐसैं ॥

७७ ननु फेर सो सूर्य यावत् उत्तरतैं उदय होता अरु दक्षिणतैं अस्तकूं पावताहै तिसतैं द्विगुणकालकरि ऊर्ध्वकूं उदय होताहै अरु अर्वाक् (नीचे)तैं अस्तकूं पावताहै । यह कैसैं कहियेहै । जातैं तहां वा उद्वासके कालकी अधिकता नहींहै जिसकरि उदयास्तमयकालकी अधिकतातैं भोगकालकी अधिकता होवै ? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:–

पर्वतरूप प्राकारोंकरि निवारित आदित्यकी रश्मिनवाले ईलावृतके निवासीनकूं सविता ऊर्ध्वकीन्यांई उदयहोता अरु अर्वाक् (नीचे)अस्तकूंपावता देखियेहै। काहेतें सविताके प्रकाशके पर्वतके ऊर्ध्वछिद्रविषै प्रवेशतैं॥[७९] तैसैं हुये ऋक्आदिक

मेरुके चतुर्दिशाविषै इलावृतनाम वर्ष (खंड) प्रसिद्ध है दोनूं ओर मानसोत्तर अरु मेरुरूप प्राकारस्थानीय दो पर्वतोंकरि उभयके ऊर्ध्वस्थित रथके चक्रकी नाभिविषै बहिर्भागमैं दोनूं ओर विद्यमान कीलकविशेषरूप तैलयंत्रके काष्ठकीन्यांई महान् अक्षकरि विनिवारित आदित्यकी रश्मिवाले तिस इलावृतके निवासीनकूं सविता ऊर्ध्व उदय होता अरु अर्वाक् (अधः) अस्तकूं पावता देखियेहै ॥ इहांइवशब्द तो उदय अरु अस्तमयके वस्तुतैं असद्भावके जनावनेअर्थहै ॥

७८ कैसैं सविता ऊर्ध्वहुया उदय होताहै अर्वाक् अस्तकूं पावताहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:–सर्व आवृत प्रकाशके दोपर्वतोंके ऊपरके छिद्रविषै प्रवेशतैं ऊपर प्रसारित नेत्रवाले अरु सविताके प्रकाशकूं देखनेवाले अधोवर्तिप्राणीनकूं तहां (ऊर्ध्वविषै) उदय हुयेकी न्यांई सविता प्रतीत होवैहै औ अन्यप्रदेशाविषै दृश्यमान हुया अधःतैं अस्त हुयेकी न्यांई प्रतीत होवैहै । जैसैं इहांके प्राणीयोंकरि ऊपरतैं प्रतीयमान मेघ है औ तिसतैं दूरीतैं दृष्टिवालेकूं भूतलविषै लग्न है ऐसैंहीं निश्चय करियेहै । तैसैं इहांबी है ॥

७९ भोगकालकी अविरोधसैं अधिकताकूं संपादनकरिके

अथ तृतीयप्रपाठकस्य नवमःखंडः॥९॥

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उप-

अथ श्री० मूलभाषा० तृतीयप्रपाठ०नवमः खंडः॥९॥

अर्थः—अनंतर जो चतुर्थ अमृत है ताके

अमृतके उपजीविनका औ अमृतोंका द्विगुण उत्तरउत्तर वीर्यवान्पना भोगकालकी द्विगुणतारूप लिंगकरि अनुमान (कल्पना) करियेहै॥ उंद्यमन अरु संवेशन (उपरमण) आदिक रुद्रादिदेवनका औ विद्वान्का समानहै॥१॥२॥३॥४॥

इति श्री० भाष्यभाषा० तृतीयप्रपाठ० अष्टमः खंडः॥८॥

भा०तृतीयप्रपाठकस्य नवमः खंडः॥९॥

मरुत् उपजीवन चतुर्थामृतोपासन ४

तिसीहीं लिंगसैं अमृत आदिककीबी अतिशयवान्ताकूं कथन करैहैं॥ इहां तैसैं हुये। याका भोगकालकी अधिकताके हुये। यह अर्थ है॥

८० औ जो भोगकालकूं आकलनकरिके (जानिके) उद्यमन (उद्यमकरना) अरु ता(भोगकाल)के अभावकूं जानिके उपरमण (उदासीनहोना) औ अग्निआदिककी मुखता अरु दृष्टिमात्रकरि तृप्तिमान्ता है। सो सर्व विद्वान्कूंबी देवनकरि सम कल्पना करियेहै। ऐसैं कहैहैं॥

इति श्री०तृतीयप्रपाठकगताष्टमखंडस्य टिप्पणम्॥८॥

जीवन्ति सोमेन मुखेन। न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं

प्रति मरुत् (वायु) सोमरूप मुखकरि उपजीवन करतेहैं। निश्चयकरि देव खाते नहीं पीते नहीं। इसीहीं अमृतकूं देखिके तृप्त होतेहैं ॥ १ ॥

अर्थः—वे (मरुत्) इसीहीं रूपके तांई [जानिके] उदासीन होते हैं [फेर] इसरूपतैं उद्यमकूं करते हैं ॥ २ ॥

अर्थः—जो इस ऐसें अमृतकूं जानताहै। सो मरुतनमैंहीं एक होयके सोमरूपहीं मुखसें इसीहीं अमृतकूं देखिके तृप्तहोताहै।

दृष्ट्वा तृप्यति। स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्य्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

इसींहीं रूपके तांईं [भोगकालका अभाव जानिके] उदासीन होताहै [फेर] इसरूपतैं उद्यम (उत्साह)वान् होताहै ॥ ३ ॥

अर्थः—सो यावत् आदित्य पश्चिमतैं उदयहोताहै पूर्वतैं अस्तकूं पावताहै तिसतैं द्विगुणकाल उत्तरतैं उदय होताहै दक्षिणतैं अस्तकूं पावताहै। तावत् मरुतनकेहीं आधिपत्यकूं अरु स्वाराज्यकूं पावताहै ॥४॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपाठ०नवमःखंडः९ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ इति श्री० भाष्यभाषा० तृतीयप्रपाठकस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

इति श्री०तृतीयप्रपाठकगत नवमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ९ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकस्य दशमः खंडः १०

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन। न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

अथ श्री॰मूलभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰दशमः खंडः॥१०॥

अर्थः—अनंतर जो पंचम अमृतहै ताके तांई साध्य ब्रह्मारूपमुखसैं उपजीवनकरतेहैं। निश्चयकरि देव खाते नहीं पीते नहीं। इसींहीं अमृतकूं देखिके तृप्त होतेहैं ॥१॥

अर्थः—वे (साध्य) इसींहीं रूपकेतांई उदासीन होतेहैं [फेर] इसरूपतें उत्साहकूं पावतेहैं ॥ २ ॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰दशमः खंडः॥१०॥

साध्योपजीवन पंचमामृतोपासन ४

स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति। स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्वमुदेताऽर्वागस्तमेता साध्यानामेव तावदा-

---

अर्थः—जो इस ऐसें अमृतकूं जानता है। सो साध्योंमैंहीं एक होयके ब्रह्मारूपहीं मुखसैं इसींहीं अमृतकूं देखिके तृप्त होता है सो इसींहींरूपके तांईं उदासीन होताहै [फेर] इसरूपतैं उत्साहवान् होताहै ॥३॥

अर्थः—सो यावत् आदित्य उत्तरतैं उदय होताहै दक्षिणतैं अस्तकूं पावताहै। तिसतैं द्विगुणकाल ऊर्ध्व हुया उदय होताहै अर्वाक् (नींचे) अस्तकूं पावताहै। तावत्

धिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्य्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य दशमः खंडः ॥ १० ॥

अथ तृतीयप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११

अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता ना-

साध्योंकेहीं आधिपत्यकूं अरु स्वाराज्यकूं पावताहै ॥ ४ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०दशमः खंडः १०

अथ श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११

अर्थः—तिसतैं अनंतर ऊर्ध्वहुया उदय होयके उदय होता नहीं। अस्तकूं पावता-

---

॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ इति श्री० भाष्यभाषा० तृतीयप्रपाठकस्य दशमः खंडः ॥ १० ॥

अथ श्री०भाष्यभा०तृतीयप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११

भोगके क्षय भये आत्मातैं सर्व संहृत होवैहै ऐसा उपासन ६

टीकाः—ऐसैं[८१] उदय अस्तमनकरि प्राणीनके

इति श्री०तृतीयप्रपाठकगत दशमखंडस्य टिप्पणम् ॥ १० ॥

अथ तृतीयप्रपाठकगतैकादशखंडस्य टिप्पणम् ११॥

८१ पंच पर्यायोंकारि मधुविद्या यथावत् कही। अब

स्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता। तदेष श्लोकः ॥ १ ॥

नहीं। एकल (अकेला) हीं मध्यविषै स्थित होवैगा। तिसविषै यह श्लोक है ॥ १ ॥

स्वकर्मफलके भोगरूप निमित्तवाले अनुग्रहकूं करिके तिस कर्मफलके उपभोगके क्षय हुये तिन प्राणीनके समूहोंकूं आत्मा(स्वस्वरूप)विषै संहारकरिके । तिस प्राणीनके अनुग्रहकालतैं अनंतर ऊर्ध्व हुया आत्माविषै उदय होयके जिनोंकेप्रति उदय होताहै तिन प्राणीनके अभावतैं स्वात्माविषै स्थितहुया उदय होता नहीं अरु अस्तकूं पावता नहीं किन्तु एकल कहिये अद्वितीय निरवयव हुयाहीं मध्यविषै

ताकी क्रमसैं मुक्तिरूप फलविषै पर्यवसानताकूं दिखावनेकूं अनंतरके वाक्यकूं अवरोधकरिके कहैहैं ॥ इहां "तातैं" इस तत् शब्दका अर्थ प्राणीनके अनुग्रहकालतैं अनंतर। यह है औ ऊर्ध्वहुया। याका ब्रह्मीभूत होयके वर्तमान हुया। यह अर्थ है औ आत्माविषै उदय होयके। याका स्वमहिमाविषै प्रकाशकूं पायके, यह अर्थ है ॥

(स्वात्माविषैहीं) स्थित होताहै ॥ [82]तहां क्रमुक्तिविषै वसुआदिकके समान आचरणवाला रोहितादि अमृतके भोगका भागी कोइकबी विद्वान् यथोक्त क्रमसैं स्वात्मारूप सविताकूं आत्मभावकरि ग्रहण करिके समाहित हुया इसमंत्रकूं देखिके उत्थित होयके अन्य पूंछनेवालेके अर्थ कहताभया ॥ ॥ [83]जौतैं तूं ब्रह्मलोकतैं आयाहैं । क्या तहांबी दिन रात्रिकरि परिवर्तमान सूर्य प्राणीनके आयुकूं क्षय करताहै । जैसैं

---

८२ स्थित होताहै । इस प्रयोगतैं क्रममुक्ति इहां विवक्षित है। तिसविषै विद्वान्के अनुभवकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां क्रममुक्ति "तहां" तिस सप्तमीका अर्थ है औ यथोक्त क्रमसैं याका "यह प्रसिद्ध आदित्य देवनका मधु है" इत्यादि पंच अमृतभावकरि स्थित है । यह अर्थ है औ स्वआत्माकूं, याका वेद्यताकारि विद्वान्के आत्मारूप हुये । यह अर्थ है औ आत्मभावकरि पायके । याका अहंग्रहकरि ग्रहणकरिके । यह अर्थ है ॥

८३ तिस समाहित पुरुषके प्रति अन्य पुरुषका कैसा प्रश्न है ? इस आकांक्षाके हुये कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— प्राप्तब्रह्मउपदेशवाला पुरुष ब्रह्मविद्याकी उक्त अवस्थाविषै (ब्रह्मतैं वियुक्त अवस्थाविषै) किसीकरिबी पूंछ्याहुया प्रत्युत्तरकूं कहताभया ॥

न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय

अर्थः-तहां नहीं है। न अस्तकूं पाव-

इहां हमारे (मनुष्यनके आयुकूं क्षय करताहै तैसैं)? ऐसैं अन्यकरि पूंछ्याहुया उक्तविद्वान् प्रत्युत्तरकूं कहैहैः-[८४]तहां जैसैं पूंछे अरु यथोक्त अर्थविषै तिसयोगीकरि उक्त यह श्लोक (मंत्र) होवैहै ॥ ऐसा यह श्रुतिका वचन है ॥ १ ॥

टीकाः-जिसैं[८५] ब्रह्मलोकतैं मैं आयाहूं तिसविषै निश्चयकरि यह नहीं हैं जो तूं पूंछताहैं। जातैं तहां सूर्य अस्तकूं पावता नहीं औ उदय होता नहीं किसीबी कारणतैं अरु किसीबी कालविषै इति ॥ ॥ [८६]उदय अरु अस्त-

८४ कैसा प्रत्युत्तर है ? ऐसी शंकाभयी । तहां कहैहैं ॥

८५ श्लोककूं ग्रहणकरिके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां "निमुम्लोच" इस अर्थविषै "निम्लोच (अस्तकूं पावता)" ऐसा छांदस प्रयोग है औ इतिशब्द पूर्वार्द्धकी व्याख्याकी समाप्तिअर्थ है ॥

८६ उत्तरार्द्धकूं उठावतेहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-लोकपनैंके

कदाचन। देवास्तेनाहꣳ सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥ २ ॥

ताहै न उदय होताहै कदाचित्। हे देव! तिस सत्यकरि मैं ब्रह्मसैं विरोधकूं मतिप्राप्त होऊं ॥ २ ॥

मयसैं वर्जित ब्रह्मलोक है यह अघटित है? ऐसैं उक्तहुया सो (ब्रह्मलोकतैं आगत योगी) शपथकरतेकी न्यांईं परिहार करैहैः—हे देवरूप साक्षी! तुम श्रवण करहू। जैसैं मुजकरि उक्तवचन सैंत्य है। तिस सत्यकरि मैं ब्रह्मस्वरूपसैं विरोधकूं मति प्राप्त होऊं। अर्थ यह जोः—मुजकूं ब्रह्मकी अप्राप्ति मतिहोहू ऐसैं ॥ २ ॥

अविशेषतैं इतर लोकनकी न्यांईं ब्रह्मलोकबी उदय अस्तमयसैं वर्जित नहीं है। ऐसैं उक्तहुया विद्वान् उत्तरार्द्धसैं शपथकूं करताहुया परिहार करैहै ॥

८७ ऐसैं मंत्रद्रष्टाके शपथद्वारा निर्णीत अर्थविषै "नहीं निश्चयकरि" इत्यादिरूप श्रुति (तृतीयवाक्य) किसअर्थ है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥ ३ ॥

अर्थः—इसकेअर्थ निश्चयकरि न उदयकूं पावताहै न अस्तकूं पावताहै। इसके अर्थ सदैव दिवस होवैहै। जो इस ब्रह्मकी उपनिषद्कूं जानताहै ॥ ३ ॥

टीकाः—तिस (योगी)नैं सत्य कहा। ऐसैं श्रुति कहैहैः—निश्चयकरि इस ⁸⁸यथोक्त ब्रह्मवेत्ताके (उक्तविध ब्रह्म उपासकके) अर्थ उदय होता नहीं अरु अस्तकूं पावता नहीं किंतु इस ब्रह्मवेत्ताकेअर्थ सदाहीं दिवस होवैहै ताकूं स्वयंज्योतिरूप होनेतैं। जो इस यथोक्त ब्रह्मकी उपनिषद्कूं जानताहै। कहिये ⁸⁹गु-

---

८८ "नहीं निश्चयकरि" इत्यादि श्रुतिकूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥

८९ "ब्रह्मकी उपनिषद्कूं" याके अर्थकूं कहैहैं ॥

भोगके क्षय भये आत्मामैं सर्व संहृत होवैहै ऐसा उपासन ६

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजा-

अर्थः–तिस प्रसिद्ध इस (मधुज्ञान)कूं ब्रह्मा प्रजापतिकेअर्थ कहताभया। प्रजा-

ह्यकूं जानताहै ॥ [ऐसैं[९०] तंत्रकरि वंशवृक्ष तिनकूं औ प्रतिअमृतके संबंधकूं औ जो कछु अन्य कहतेभये ताकूं ऐसैं जानताहै। यह अर्थहै] अर्थ यह जोः–विद्वान्[९१] उदय अरु अस्तमय कालकरि अपरिच्छेद्य नित्य अज ब्रह्म होवैहै ॥ ३ ॥

टीकाः–तिसैं[९२] प्रसिद्ध इस मधुज्ञानकूं ब्रह्मा जो हिरण्यगर्भ सो विराट् प्रजापतिके

९० एवं (ऐसैं) शब्दकूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां वंशादि तीन। याका तिरश्चीन (टेढा) वंश मधुअपूप अरु मधुनाडियां ऐसैं रूपवाले तीनकूं। यह अर्थ है औ प्रतिअमृतके संबंधकूं। याका लोहितआदिक अमृतनविषै एक एक वसुआदिकनके संबंधकूं। यह अर्थ है औ अन्य ऐसैं उद्यमन अरु संवेशन (उदासीनता) आदिक ग्रहण करियेहै ॥

९१ उक्त विद्याके फलकूं उपसंहार करैहैं ॥

९२ ननु विद्या जब सफल कही तब उत्तर (पीछले) ग्रंथसैं क्या है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

पतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ४ ॥

पति मनुकेअर्थ । मनु प्रजाकेअर्थ ॥ तिस प्रसिद्ध इस ब्रह्मकूं आरुणि पिता उद्दालकरूप ज्येष्ठपुत्रकेअर्थ कहताभया ॥ ४ ॥

अर्थ कहताभया । सो बी मनुकेअर्थ कहताभया । औ मनु इक्ष्वाकुआदिक प्रजाकेअर्थ कहताभया । ऐसैं [९३] ब्रह्माआदिक शिष्टोंके क्रमसैं आगत है । इस रीतिसैं श्रुति विद्याकूं स्तुति करैहै ॥ किंवा:—इस प्रसिद्ध इस मधुज्ञानरूप [९४] [९५] ब्रह्मविज्ञानकूं आरुणि पिता उद्दालक मुनिरूप ज्येष्ठपुत्रकेअर्थ कहताभया ॥ ४ ॥

---

९३ स्तुतिकूंहीं आकारकरि दिखावैहैं ॥ "तिस प्रसिद्ध इसकूं उद्दालककेअर्थ" इत्यादि वाक्यकरि विद्याका योग्य पात्र दिखाईयेहै ॥

९४ ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यातैंबी स्तुतिके योग्य यह विज्ञान है । यह अर्थ है ॥

९५ मधुके विज्ञानकूं व्याख्यान करैहैं ॥

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्राणाय्याय वाऽन्तेवासिने ॥ ५ ॥

नान्यस्मै कस्मैचन । यद्यप्यस्मा इ-

अर्थः—इस प्रसिद्ध तिस ब्रह्मकूं पिता ज्येष्ठ पुत्रकेअर्थ वा योग्य शिष्यकेअर्थ कहै ॥ ५ ॥

अर्थः—अन्य किसीके अर्थ बी नहीं

टीकाः—[९६]इस प्रसिद्ध तिस यथोक्त ब्रह्म (विज्ञान)कूं [९७]अन्यबी सर्व प्रियके योग्य ज्येष्ठ पुत्रकेअर्थ वा यो[९८]ग्य शिष्यकेअर्थ कहै ॥५॥

टीकाः—[९९]अन्य किसीकेअर्थबी नहीं कहै।

---

९६ ताके परोक्षपनैंकूं निषेध करैहैं ॥

९७ अनंतर ज्येष्ठपुत्रकेअर्थ ब्रह्म कहनेकूं योग्य है । ऐसा यह पूर्वके महात्माओंका नियम है अबीके महात्माओंका नहीं ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥

९८ पुत्रतैं अन्यपात्रकूं आज्ञा करैहैं ॥

९९ पुत्र अरु शिष्यतैं अन्य पात्रकूं निषेध करैहैं ॥ इहां

मामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति ॥ ६ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ॥ ११ ॥

[कहैं] ॥ यद्यपि इस (आचार्य)के अर्थ जलोंकरि परिवेष्टित धनकी पूर्ण इस (पृथिवी)कूं देवै। यहहीं तिसतैं अधिक हैं ऐसैं। यहहीं तिसतैं अधिक है ऐसैं ॥ ६ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०एकादशः खंडः

अनेक प्राप्त आचार्य(विद्यादाता) आदिक तीर्थ (पात्र)नके निर्धारणके हुये दो तीर्थ अनुज्ञात(आज्ञाके विषयकिये)हैं ॥ ॥ नंनुं फेर

दो तीर्थ । याका विद्याके प्रदानविषै दो अधिकारी हैं । यह अर्थ है औ षष्ठी जो है सो निर्धारणरूप अर्थविषै है औ आचार्य विद्याका दाता है । आदिपदतैं धनदाता श्रोत्रिय अरु मेधावी (बुद्धिमान्) ग्रहण करियेहै ॥

१०० सर्व अर्थिनके इसविषै अधिकारकूं आशंकाकरिके दूषण देतेहैं ॥ इहां "आचार्यकेअर्थ" इसपदका फेर ग्रहण क्रियापदसैं ताके अन्वयके जनावने अर्थ है । वा विद्याविषै

भोगके क्षय भये आत्मामैं सर्व संहृत होवैहै ऐसा उपासन ६

विद्याके तीर्थ (पात्र)का संकोच किस कारणतैं किया है ? यातैं कहैहैं:—यद्यपि इस आचार्यके अर्थ कोईकबी समुद्रकरि परिवेष्टित (समस्तबी) अरु धनकी पूर्ण कहिये भोगके उपकरणोंकरि संपन्न इस पृथिवीकूं बिद्याके निष्क्रय (विक्रय)अर्थ आचार्यके अर्थ देवै । यह इसका निष्क्रय नहीं है । जातैं तिस दानतैंबी यहहीं जो मधुविद्याका दान है सो अत्यंत बहुफलवाला है । यह अर्थ है ॥ इहां दोवार कथन जो है । सो आदरकेअर्थ है ॥ ६ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा० तृतीयप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११

आदर जो है सो मुख्य अधिकारका कारण हुया फलताहै [इस अर्थके जनावनेकूं है] यह भाव है ॥

इति श्री०तृतीयप्रपाठकस्यैकादशखंडस्य टिप्पणम् ॥ ११ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकस्य द्वादशः खंडः १२

गायत्री वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं

अथ श्री॰मूलभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰द्वादशः खंडः॥१२॥

अर्थः—गायत्री हीं यह सर्व भूत है जो

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰द्वादशः खंडः १२

गायत्रीकरि ब्रह्मका उपासन ९

टीकाः—[१०१]जांतें ऐसें अतिशयफलवाली यह ब्रह्मविद्या है यातें सो प्रकारांतरकरिबी कहनेकूं योग्य है। यातें "गायत्रीहीं" इत्यादि आरंभ करियेहै औ [१०२]गायत्रीरूपद्वारकरि ब्रह्म कहियेहै। काहेतें सर्वविशेषोंकरि रहित अरु "नेति नेति" इत्यादि विशेषोंके प्रतिषेधकरि गम्य ब्रह्मकूं दु-

अथ तृतीयप्रपाठकगत द्वादशखंडस्य टिप्पणं॥१२॥

१०१ गतग्रंथसैं उत्तरग्रंथकी गतार्थताकूं परिहार करैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—सूर्यरूप द्वारवाले ब्रह्मकी विद्याके अनन्तर तिस देवतारूप गायत्रीद्वारा ताकी विद्या उपदेश करियेहै॥

१०२ ननु ब्रह्मविद्याकी विवक्षितताके हुये ब्रह्महीं उपदेश किया चाहिये। गायत्रीके उपदेशसैं क्या है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

किञ्च। वाग्वै गायत्री वाग्वा इदꣳ सर्वं भूतं। गायति च त्रायते च॥ १॥

यह कछुक है। वाक् हीं गायत्री है। वाक् हीं यह सर्व भूत है। गायन करैहै औ त्रायण (रक्षण) करैहै॥ १॥

बोंध होनेतैं औ [103]अनेक छंदोंके होते गायत्रीकाहीं ब्रह्मज्ञानकी द्वारताकरि जो ग्रहण है सो प्रधान होनेतैं है औ [104]सोमके आहरण (आनयन)तैं

१०३ तथापि अन्यछंदोंकूं छोडिके ऐसैं गायत्रीद्वाराहीं क्यूं ब्रह्म उपदेश करियेहै? तहां कहैहैं॥ इहां ब्रह्मज्ञानकी द्वारताकरि। याका ताकी उपायताकरि। यह अर्थ है॥

१०४ प्रधानताविषै हेतुकूं कहैहैं॥ इहां सोमका आहरण जो आनयन। तहां गायत्री छंदवाली ऋचाओंकी साधनता याजकों(यजनकरनेवालों)करि अंगीकारकरियेहै। तातैं तिस गायत्रीकी यज्ञविषै प्रधानता युक्त ह। यह अर्थ है॥ यद्वाः—सोमके ल्यावनेकूं इच्छनेवाले देवनकरि गायत्री त्रिष्टुप् अरु जगती छंदनके तिसअर्थतावान्करि नियोगके हुये जगती अरु त्रिष्टुप्के मध्य मार्गकूं अशक्तिकरि खोलनेविषै गायत्री सोमकूं पायके ताके दक्षिणतैं जीतिके ताकूं देवनकेअर्थ ल्यावतीभई। ऐसैं ऐतरेयक ब्राह्मणविषै "उसलोकविषै सोमहीं राजा होताभया" इस ठिकाने प्रसिद्ध है। यातैं ता(गायत्री)की प्रधानता है। यह अर्थ है॥

अरु इतरछंदनके अक्षरोंके आहरणतैं अरु इतर[१०५] छंदनविषे व्याप्तितैं अरु सर्वकालोंविषै[१०६] व्या-

---

१०५ तिसीहीं अर्थविषै अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:- उष्णिक् अरु अनुष्टुप् आदिक इतर छंद हैं तिनके पादकरि अक्षर सप्त अरु अष्ट आदिक संख्यावाले हैं तिनका आहरण (संपादन) गायत्रीके अक्षरवाले षट्पादोंकरि करियेहै। काहेतैं अधिक संख्याके न्यूनसंख्याविना असंभवतैं औ तातैं इतर छंदोंविषै गायत्रीकी व्याप्तितैं गायत्रीकी प्रधानता है ॥ अथवा गायत्रीसैं व्यतिरिक्त अरु सोमके संपादनविषै उद्यत अरु असक्त त्रिष्टुप् अरु जगती इन दो छंदोंके मार्गके मध्य जगतीनैं तीन अक्षर त्यागे हैं अरु त्रिष्टुप्नैं तो एक अक्षर [त्याग्या है]। तिसतैं बी अष्टच्यालीस अक्षरवाली जगती जो है सो पंचच्यालीस अक्षरवाली स्वीकृत है औ चुमालीस अक्षरवाली त्रिष्टुप् जो है सो त्रेच्यालीस अक्षरवाली स्वीकार करी है। तहां गायत्री सोमकूं ल्यावतीहुई त्यक्त अक्षरोंके संपादनसैं तिन (उक्त दो छंदन)की पूर्णताकूं संपादनकरिके तिन दोनूं छंदनविषै स्थित है। तिसकरि ताकी प्रधानता है। यह अर्थ है ॥

१०६ तहांहीं अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-सर्व जे प्रातःकाल माध्यंदिनकाल अरु तृतीयकाल ये हैं। तिनविषै गायत्रीका व्यापकभावरूप मिश्रण है। गायत्र (गायत्रीसंबंधी) प्रातःकाल है। त्रिष्टुप्संबंधी माध्यंदिनकाल है। जगतीसंबंधी तृतीयकाल है। ऐसैं स्थित हुयेबी त्रिष्टुप् अरु जगतीविषै गायत्रीकी व्याप्तिकूं उक्तहोनेतैं औ ताके दो पा-

पक होनेतैं यज्ञविषै गायत्रीकी प्रधानता है औ ब्राँह्मणकूं गायत्रीरूप सारवाला होनेतैं माताकीन्यांई अतिशयकरि गुरुरूप गायत्रीकूं छोडिके तिसतैं अन्य गुरुतर यथोक्त ब्रह्म बी नहीं जानियेहै । काहेतैं तिर्स (गायत्री) विषै अत्यंत गौरवकूं प्रसिद्ध होनेतैं । याँतैं गायत्रीरूपद्वारसैंहीं ब्रह्म कहियेहैः-[गाँयत्रीहीं ऐसैं अवधारण अर्थ वै शब्द है] यँह सर्व भूत-

---

दोसैं अरु मुखसैं सोमके आनयनरूपद्वारसैं तीनि कालनके साथि संबंधतैं । यातैंबी ताकी यज्ञविषै प्रधानता है ॥

१०७ ननु कर्मविषै ताकी प्रधानताके हुयेबी । ब्रह्मविद्याविषै ताकी प्रधानता कहांतैं होवैगी ? यह आशंकाकरिकै कहैहैं ॥ इहां ब्रह्मविद्याविषै ताकी प्रधानता है । यह शेष है ॥

१०८ गायत्रीके तांईहीं आलंबनवान् होनेकरि ब्रह्म प्राप्त होवैहै । इस अर्थविषै लोकप्रसिद्धिकूं अनुकूल करैहैं ॥

१०९ गायत्रीका ब्रह्मज्ञानकी द्वारताकरि ग्रहण उक्त हेतुनतैं सिद्धभया । ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

११० तैसैं हुये "इस अर्पणके कथनतैं" इस न्यायकरि गायत्री उपाधिवाला ब्रह्म उपास्य है । ऐसैं प्रतिज्ञा करैहैं ॥

१११ निपात (वै) अक्षरकूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥

११२ अवधारणरूप हीं अर्थकूं स्पष्ट करतेहुये "यह"

प्राणिनका समूह जो कछु स्थावर वा जंगम है सो सर्व गायत्रीहीं है॥ ॥ [११३] तिसैं छंदोमात्ररूपकी सर्वभूतरूपता अघटित है । यातैं गायत्रीकी कारण शब्दरूप वाक्कूं गायत्रीरूप आपादनकरैहैः—[११४] वाक्हीं गायत्री है ऐसैं । [११५] वाक्हीं इस सर्वभूतकूं जातैं शब्दरूपहुयी गायन करैहै कहिये "यह गौ है। यह अश्व है" ऐसैं कथन करैहै औ रक्षण करैहै कहिये उसतैं मतिडर । क्या तुजकूं भय ऊठ्या है । इत्यादिकरि सर्व भयतैं निवृत्त हुया प्राणी त्रात (रक्षित) होवैहै ॥ [११६] जो वाक् भूतकूं गायन क-

इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां सो यह सर्व गायत्रीहीं है। ऐसैं योजना है ॥

११३ गायत्रीकूं सर्वात्मक होनेतैं ताकी ब्रह्मदृष्टिसैं उपासना युक्त है ऐसैं कहा। तहां असंभवकूं आशंकाकरिके अनंतरके वाक्यसैं उत्तरकूं कहैहैं ॥

११४ वाक्का गायत्रीपना कैसैहैः—यह आशंकाकरिके । ताके सर्वभूतनसैं संबंधकूं दिखावैहैं ॥

११५ किस कारणतैं ताका गायत्रीपना है ? तहां कहैहैं॥

११६ ऐसैं वाक्का स्वरूप होहु । गायत्रीका तो क्या आया ? सो कहैहैं ॥

या वै सा गायत्री यं वाव सा येयं

अर्थः—जोई सो गायत्री है यहहीं सो

रैहै औ त्रायण (रक्षण) करैहै। गायत्रीहीं सो गायन करैहै अरु त्रायण करैहै। काहेतैं वाक्कूं गायत्रीतैं अनन्य होनेतैं। गानतैं[117] अरु त्राणतैं गायत्रीका गायत्रीपना है ॥ १ ॥

टीका:—जोई[118] सो ऐसे लक्षणवाली सर्वभू-[119]तरूप गायत्री है यहहीं सो है जो यह पृथिवी है ॥ फेर[120] यह पृथिवी कैसें गायत्री है? यह कहियेहैः—सर्वभूतनके साथि संबंधतैं ॥ ॥

---

११७ गायत्रीनामके निर्वचनतैं बी वाक्विषै उक्त जो रूप सो गायत्रीविषैहीं देखनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

११८ वाक्की सर्वभूतस्वरूपता प्रसिद्ध है। काहेतैं ताकी वाचक होनेतैं औ वाच्यके वाचकसैं भिन्नताकरि अनिरूपणतैं। तैसैं हुये वाक्रूप गायत्री सर्वभूत स्वरूप है ऐसैं कहा। अब ताके अन्यप्रकारकूं कहैहैं ॥

११९ इस लक्षणवान्पनैकूं व्याख्यान करैहैं ॥

१२० गायत्रीकूं अनुवादकरिके ताके विहित पृथिवीपनैकूं प्रश्नपूर्वक उपपादन करैहैं ॥

पृथिव्यस्याꣳ हीदꣳ सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते ॥ २ ॥

है जो यह पृथिवी है इसीविषै हीं यह सर्व भूत प्रतिष्ठित है । इसी (गायत्री) हींकूं अतिक्रमण करिके नहीं वर्त्तताहै ॥ २ ॥

---

[१२१] कैसैं सर्वभूतनसैं इसका संबंध है ? इस पृथिवीविषै जातैं सर्व स्थावर औ जंगम भूत स्थित है । [१२२] इसींहीं पृथिवीकूं अतिक्रमण करिके वर्तता नहीं । यह अर्थ है ॥ [१२३] जैसैं गान अरु त्राणकरि गायत्रीका भूतनसैं संबंध है । ऐसैं भूतनकी प्रतिष्ठा (स्थिति)तैं भूतनसैं संबंधवाली पृथिवी है । यातैं गायत्री पृथिवी है ॥ २ ॥

---

१२१ गायत्रीके सर्वभूतनसैं संबंधकूं उक्त होनेतैं पृथिवीके तिनसैं संबंधकूं प्रश्नपूर्वक बोधन करैहैं ॥
१२२ सर्वके पृथिवीविषै स्थितपनैंकूं साधतेहैं ॥
१२३ तथापि पृथिवीका गायत्रीपना कैसैंहै ? सो कहैहैं ॥

या वै सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ३ ॥

अर्थः—जोई सो पृथिवी है यह हीं सो है। जो यह इस पुरुषविषै शरीर है। इस (शरीर)विषै जातैं ये प्राण प्रतिष्ठित हैं। याहीकूं अतिक्रमण करिके वर्त्तते नहीं ॥३॥

टीकाः—[124]जोई सो पृथिवी गायत्री है यहहीं सो यह हीं है ॥ सो क्याकिः—जो यह इस कार्य कारणके संघातरूप जीवते पुरुष विषै शरीर है [125]शरीरकूं पार्थिव होनेतैं ॥ ॥ [126]शरीरकूं गायत्रीपना कैसें है ? यह कहिये हैः—जातैं इस (शरीर)विषै ये भूतशब्दके वाच्य

१२४ अब गायत्रीकी शरीररूपताकूं निरूपण करैहैं ॥

१२५ गायत्रीस्वरूप पृथिवीकूं अनुवादकरिके ता पृथिवीतैं गायत्री अरु शरीरके अभेदविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

१२६ अब गायत्री अरु शरीरकी एकताकूं प्रश्नपूर्वक कथन करैहैं ॥

यद्वैतत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ४ ॥

अर्थः—जोई सो पुरुषविषै शरीर है यह हीं सो है। जो यह इस पुरुषविषै भीतर हृदय है। इसविषै जातैं ये प्राण प्रतिष्ठित हैं। इसी (हृदय) हींकूं अतिक्रमण करिके वर्त्तते नहीं ॥ ४ ॥

प्राण प्रतिष्ठित हैं। यातैं पृथिवीकीन्यांई भूतशब्दके वाच्य प्राणके प्रतिष्ठानतैं शरीर गायत्री है। जातैं[127] प्राण इसींहीं शरीरकूं अतिक्रमण करिके वर्तते नहीं ॥ ३ ॥

टीकाः—जोई[128] सो पुरुषविषै शरीर है य-

---

१२७ प्राणोंके शरीरविषै स्थितपनैंकूं प्रकट करैहैं ॥
१२८ अब गायत्रीके हृदयपनैंकूं जनावतेहैं ॥

हहीं सो गायत्री है। जो यह इस पुरुषविषै भीतर (मध्य) हृदय[129]पुंडरीक नामक है यह गायत्री है ॥ ॥ कैसें ? यह कहैहैं:—जातें इसविषै ये प्राण प्रतिष्ठित हैं। यातें शरीरकी न्यांई हृदय गायत्री है॥ औ [130]इसींहींकूं प्राण अतिक्रमणकरिके वर्तते नहीं। औ "[131]प्राणहीं पिता है। प्राण माता है। सर्व भूतनके तांई न हिंसा करता हुया" इस श्रुतितें [132]भूतशब्दके वाच्य प्राण हैं ॥ ४ ॥

---

१२९ हृदयकी अरु गायत्रीकी एकताकूं प्रश्नपूर्वक विवरण करैहैं ॥

१३० हृदयविषै प्राणोंके स्थितपनैंकूं प्रकट करैहैं ॥

१३१ प्राणोंकूं भूतशब्दकी वाच्यताके अरु तिनसैं संबंधके हुये भूतसंबंधतें गायत्रीका शरीरादिभाव संभवैहै। तिन प्राणोंकी भूतशब्दकी वाच्यताविषै तो क्या प्रमाण है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

१३२ अहिंसावाक्यविषै बी प्राणपर मारण निषेध करियेहै। तैसें हुये भूतशब्द तिसप्राणविषै प्रतीतिगोचर होवैहीहै। ऐसें कहैहैं ॥

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाऽभ्यनूक्तम् ॥ ५ ॥

अर्थः–सो यह गायत्री चतुष्पदा अरु षड्विधा होवैहै । तिसविषै यह (ब्रह्म) ऋचा (मंत्र)नैं कहा है ॥ ५ ॥

टीकाः–सो[133] यह गायत्री षट्अक्षरयुक्त पदोंवाली छंदोरूप हुयी चतुष्पदा होवैहै औ वाक् भूत पृथिवी शरीर हृदय अरु प्राणरूप हुयी षड्[134]विध होवैहै । अन्य अर्थ उपदेशकियेबी वाक्[135] अरु प्राणकूं गायत्रीकी प्रकारता

---

१३३ च्यारीऔरतैं शेष (उपकारक) होनेकरि गायत्रीका च्यारीपादवान्पना दिखावैहैं ॥

१३४ ताके षड्विधपनैकूं लखायके अनुवादकरिके साधतेहैं ॥

१३५ गायत्री अरु हृदयके सर्वभूतनसैं संबंधकी सिद्धिअर्थ उपदेश किये वाक् अरु प्राणका गायत्रीके प्रभेदपनैकरि व्याख्यान कैसैंहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां विधिपक्षविषै वाक्यशेषके योगतैं तिन वाक् अरु प्राणकूं बी गायत्रीकी प्रभेदता (प्रकारता) है । यह अर्थहै ॥ तिस इस

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाꣳश्च

अर्थः—तितना इसका महिमा है औ

(प्रभेदता) है। अन्यथा षड्विधसंख्या पूरणके असंभवतैं ॥ तिस इस अर्थविषै यह गायत्री नामवाला गायत्रीविषै अनुगत ब्रह्म गायत्रीरूप मुखसैं कहा है सो ऋचा (मंत्र)नैंबी प्रकाश किया है ॥ ५ ॥

टीकाः—तितना[136] इस गायत्रीनामक समस्त ब्रह्मका महिमा (विभूतिका विस्तार) है। जितना च्यारी पादवाला अरु षड्विध ब्रह्मका विकार पाद "गायत्री" ऐसैं व्याख्यान कियाहै। यातैं तिस विकाररूप गायत्री नामवाले

अर्थविषै वाक् भूत पृथिवी शरीर हृदय अरु प्राण इसभेदतैं षड्विध गायत्रीकूं अनुचिंतन करिके अजहत्लक्षणासैं तिसकरि अवच्छिन्न (भिन्नकिया) ब्रह्मभाव है। ताकूं अनुचिंतनकरै। ऐसैं ताका शेषहोनेकरिहीं पूर्वउक्तके स्थित हुये। यह अर्थ है ॥ औ समस्तका। याका पादोंके विभागकरि विशिष्टका। यह अर्थहै ॥

१३६ विभूतिके विस्तारकूं हीं विवरण करैहैं ॥

पुरुषः पादोऽस्य सर्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ॥ ६ ॥

तिसतैं अतिशय बडा पुरुष है। इसका सर्वभूत [एक] पाद है। तीनपादवाला इसका अमृत [स्वरूप] प्रकाशस्वरूपविषै [स्थित] है इति ॥ ६ ॥

---

[137]वाँचारंभणमात्रतैं तिसतैं अत्यंत महान् परमार्थसत्यरूप [138]अविकार (विकार रहित) औ सर्वविषै पूरणतैं अरु पुरीनविषै शयन (रहनैं) तैं पुरुष है। तिस [139]इसका पाद तेज जल अरु अन्नरूप स्थावर जंगममय सर्वभूत है औ तीन हैं पाद इसके सो यह त्रि[140]पांत् है। सो त्रिपात्

---

१३७ "वाणीका आलंबन विकार नाममात्रहै" इस वाक्यशेषकूं आश्रयकरिके विशेषण देतेहैं ॥

१३८ परमार्थ सत्यताविषै हेतुकूं कहेहैं ॥

१३९ "तितना तिसका" इत्यादि वाक्यकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां आदिपदकरि वायु अरु आकाश ये दोनूं कहे ॥

१४० "तिसतैं ज्यायान् (महत्तर)" इत्यादिवाक्यकूं

यद्वैतद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः ॥ ७ ॥

अर्थः—जोई सो ब्रह्म है ऐसें [कहा] यहहीं सो है जो यह पुरुषतें बाहिर आकाश है ॥ जोई सो पुरुषतें बाहिर आकाश है ॥ ७ ॥

(तीनपादवाला ब्रह्म) पुरुष नामवाला अमृत इस समस्त (प्रपंचात्मक) गायत्रीस्वरूपके प्रकाशवाले स्वात्माविषै अवस्थित है। यह अर्थ है इति ॥ ६ ॥

टीकाः—जोई[141] सो त्रिपात् (तीनपादवाला) अमृत गायत्रीरूप मुखसैं ब्रह्म ऐसें कहा है।

स्पष्ट करैहैं ॥ इहां समस्तका । याका प्रपंचस्वरूपका । यह अर्थ है औ श्रुतिविषै इतिशब्द जो है सो मंत्रकी समाप्तिअर्थ है ॥

१४१ जो ब्रह्म गायत्रीकरि अवच्छिन्न (अन्योंसैं भिन्न कियाहुया) उपास्य कहा। सो हृदयाकाशविषै ध्यावनेकूं योग्य है। ऐसैं कहनेकूं क्रमसैं हृदयाकाशकूं अवतार देतेहैं ॥

अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आ-
काशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः८
अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आका-

अर्थः—यहहीं सो है जो यह पुरुषविषै भीतर आकाश है॥ जोई सो पुरुषविषै भीतर आकाश है॥ ८॥

अर्थः—यहहीं सो है जो यह हृदयविषै

यहहीं सो है। जो यह प्रसिद्ध पुरुषतें बहिर्धा (बाहिर) भौतिक आकाश है॥ जोई सो पुरुषतें आकाश कहा है॥ ७॥

टीकाः—यह हीं सो है। जो यह पुरुष (शरीर)विषै भीतर आकाश है॥ जोई सो पुरुषविषै भीतर आकाश है॥ ८॥

टीकाः—यहहीं सो है। जो यह हृदयपुंडरीकविषै भीतर आकाश है॥ ॥[१४२] ऐसें वि-

---

१४२ ननु एक आकाशकी त्रिविधता कैसें कही? ऐसें पूर्ववादी शंकाकरैहै॥

शस्तदेतत्पूर्णमप्रवर्ति पूर्णामप्रवर्तिनीँ श्रियं लभते य एवं वेद ॥ ९ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य द्वादशः खंडः॥१२॥

भीतर आकाश है॥ सो यह (ब्रह्म) पूर्ण अरु अप्रवर्त्ति है॥ जो ऐसैं जानताहै [सो] पूर्ण अप्रवर्तिनी श्रीकूं पावताहै ॥ ९ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०द्वादशःखंडः १२

ध्यमान आकाशका त्रिधा भेद कैसैं है ? यह[१४३] कहियेहैः—बाह्य इंद्रियविषै जागरित स्थानरूप आकाशविषै दुःखकी बहुलता । देखियेहै तिसतैं भीतर शरीरविषै स्वप्नस्थानभूत आकाशविषै अत्यंत अल्प दुःख होवैहै। फेर स्वप्नोंकूं देखनेवालेकूं हृदयस्थ आकाशविषै "किसीबी का-

---

१४३ औपाधिक त्रिविधता अविरुद्ध है । ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां बाह्य इंद्रियनकी विषयता जो है सो तिन इंद्रियनके विषयरूप शब्दआदिकनकी आश्रयतारूप है औ स्वप्नस्थानभूत आकाशविषै । ऐसैं संबंध है औ "नकिसी बी कामकूं" इत्यादि वाक्यकरि दोनिषेधनसैं पूर्वप्रकारवाली दो(जाग्रत्स्वप्नरूप) अवस्था निषेध करियेहैं ॥

मकूं कामनाकरता नहीं। किसीबी स्वप्नकूं देखता नहीं" [144]यातें सर्व दुःखकी निवृत्तिरूप आकाश सुषुप्तिस्थान है। [145]यातें एककेबी त्रिधा भेदका कथन युक्त है॥ "[146]पुरुषतें बाहिर" ऐसें आरंभ करिके आकाशका हृदयविषै संकोचका जो करण है। सो चित्तके समाधानके स्थानकी स्तुतिअर्थ है॥ [147]जैसें तीन लोकनमैं बी कुरुक्षेत्र विशिष्ट होवैहै। अर्धतें तो कुरुक्षेत्र है अर्धतें तो पृथूदक है ऐसें। ताकी न्यांई। [148]सो यह प्रसिद्ध

---

१४४ निषेधके फलकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—सर्व-दुःख जो स्थूल अरु वासनामय है ताकी निवृत्तिकरि निरूप्यमाण हृदयाकाश है॥

१४५ उपाधिकृत त्रिविधताकूं उपसंहारकरैहैं॥

१४६ तथापि इस क्रमसैं आकाशका संकोच हृदयविषै क्यूं करियेहै? तहां कहैहैं॥

१४७ स्थानकी स्तुतिकूं उदाहरणकरि स्पष्ट करैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—इधर कुरुक्षेत्र अर्धतें है अरु अर्धस्थानीय पृथूदकबी तैसें है। ऐसें द्विदल (चनाआदिक)के युगलकीन्यांई। सो दोनूं तीन लोकनकी अपेक्षाकरि अत्यंत विशिष्ट हैं॥

१४८ ननु हृदयाकाशविषै जब चित्त समाधान करियेहै

हृदयाकाशनामक ब्रह्म पूर्ण (सर्वगत) है। हृदयमात्रकरि परिच्छिन्न नहीं। ऐसैं माननेकूं योग्य है॥ यद्यपि हृदयाकाशविषै चित्त समाधान करियेहै तथापि सो [149]अप्रवर्त्ति है कहिये किसीतैं बी कहींबी प्रवर्त्त होनेकूं शील (स्वभाव) इसका नहीं है ऐसा अप्रवर्त्ति (उच्छेदरहित धर्मवाला) सो है। जैसैं अन्य भूत परिच्छिन्न अरु उच्छेदरूप धर्मवाले हैं। ऐसा हृदयाकाश नहीं है॥ ॥ जो ऐसैं यथोक्त पूर्ण अरु अप्रवर्त्तिरूप गुणवाले ब्रह्मकूं जानताहै। सो पूर्ण अप्रवर्त्तिनी (उच्छेदरहित स्वरूपवाली) श्री (विभूति)रूप दृष्ट [150]गुणरूप फलकूं पावताहै।

तब तातैं इहां परिच्छिन्न ब्रह्म प्राप्तभया? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

१४९ पूर्णताकरि जन्मनाशसैं शून्यता सिद्ध होवैहै। ऐसैं कहैहैं॥

१५० मुख्यफलरूपताकूं निषेध करैहैं॥ इहां दृष्टफलवालेकेअर्थ स्वर्गकीप्राप्ति यह दृष्ट है ऐसैं कहा॥

अथ तृतीयप्रपाठ० त्रयोदशः खंडः १३

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च

अथ श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०त्रयोदशः खंडः॥१३॥

अर्थः—तिस प्रसिद्ध इस हृदयके पंच देव-

अर्थ यह जोः—ईहांहीं[१५१] जीवता हुया तिसभावकूं पावताहै ॥ ९ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपा०द्वादशः खंडः ॥ १२ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपा०त्रयोदशः खंडः १३॥

द्वारपालादिगौणोपासन । हृदयमैं मुख्यब्रह्मोपासन ७

टीकाः—"तिस[१५२] प्रसिद्ध इसका" इत्यादिकरि गायत्रीनामक ब्रह्मकी उपासनाका अंग होने-

---

१५१ ज्ञानकूं हीं विशेषणदेते हैं ॥ इहां वर्त्तमानदेह सप्तमीका अर्थ ऐसैं (जानता) है औ जो विद्वान् है सो यथोक्त फलकूं पावताहै । ऐसैं संबंध है ॥

इति श्री०तृतीयप्रपाठकगतद्वादशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १२ ॥

अथ श्री०तृतीयप्रपाठकगतत्रयोदशखंडस्य टि०१३

१५२ वक्ष्यमाण ज्ञानकी स्वतंत्रताकूं परिहारकरिके प्रकरणके भेदकूं निषेध करनेकूं उत्तरग्रंथके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां द्वारपालादि। इस आदिशब्दकरि तद्गतविशेष (इंद्रियआदिक) ग्रहण करियेहै ॥

देवसुषयः स योऽस्य प्राङ् सुषिः स प्राणस्तच्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽ-

---

सुषियां हैं॥ सो जो इस (हृदय)का प्राक् (पूर्वदिशागत) सुषि (छिद्र) है। सो प्राण है। सो चक्षु है। सो आदित्य है॥ तिस इसकूं

करि द्वारपालादि गुणके विधानअर्थ आरंभ करियेहै ॥ जैसैं[१५३] लोकविषै राजाके द्वारपाल जे हैं वे उपासनाकरि वशकिये हुये राजाकी प्राप्तिअर्थ होवैहैं । तैसैं इहांबी हैः—इधर ताका। इस पदका प्रकृत हृदयका। यह अर्थ है ॥ तिस प्रसिद्ध इस अनंतर निर्देशकिये हृदयके पंचसंख्यावाले देवनके सुषियां ऐसे देवसुषियां हैं। जातैं प्राण अरु आदित्य आदिक

---

१५३ ब्रह्मविषै उपासनकरि अप्रसिद्धितैं द्वारपालोंकी उपासना अयुक्तहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यातैं तिन द्वारपालोंकी उपासना अर्थवाली है । यह शेष है औ स्वर्गलोकशब्द परमात्माकूं विषयकरनेवाला है । काहेतैं "इसतैं ऊर्ध्व विमुक्त हुये स्वर्गलोककूं पावतेहैं" इस अन्य श्रुतितैं ॥

न्नाद्यमित्युपासीत। तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

"तेज अरु अन्नाद्य है"। ऐसैं उपासन करै॥ जो ऐसैं जानताहै [सो] तेजस्वी अरु अन्नाद होवैहै ॥ १ ॥

देवनैं[154]करि रक्ष्यमाण स्वर्गलोककी प्राप्तिके द्वारके छिद्र हैं। यातैं देवसुषियां हैं ॥ तिस स्वर्गलोकके भवनरूप इस हृदयका जो प्राक् सुषि कहिये पूर्वाभिमुखके[155] प्राक्गत जो छिद्ररूप द्वार है। औ जो तिसविषै स्थित है सो प्राण है। कहिये तिसहृदयरूपद्वारकरि जो वायुविशेष संचरताहै सो पूर्व चलताहै यातैं प्राण

---

१५४ देवसुषिपनैकूं साधतेहैं ॥ इहां स्वर्गलोकरूप परमात्माका भवन कहिये आयतन है ताका। यह अर्थ है ॥

१५५ ताके पूर्वपनैविषै अनवस्थाकूं आशंकाकरिके कहाहै ॥ इहां तिसविषै स्थित है। तिसद्वारकरि यह "तत्" शब्द हृदयरूप अर्थवाला है औ तिसकरिहीं यह "तत्"शब्द प्राणरूप अर्थवाला है औ तिसतैं अव्यतिरिक्तपना जो है सो स्वतंत्रताकरि चक्षुका अकिंचित्करपना है ॥

है ॥ तिस प्राणसैंहीं संबद्ध अरु अव्यतिरिक्त सो [१५६]चक्षु है। तैसैहीं सो आदित्य है "[१५७]आदित्य बाह्यप्राण है" इसि श्रुतितैं। चक्षु अरु रूपकी प्रतिष्ठाके क्रमसैं हृदयविषै स्थित है ॥ [१५८]"सो आदित्य किसविषै प्रतिष्ठित है ऐसैं? चक्षुविषै" इत्यादि वाजसनेयक(बृहदारण्यक) विषै [१५९]प्राणवायुरूप देवताहीं एक आश्रयकरि स-

---

१५६ चक्षुसैं प्राणका संबंध नहीं है। जातैं बाह्यके तिससैं संबंधविषै कारण नहीं है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अधिष्ठाता होनेकरि आदित्य चक्षुविषै प्रतिष्ठित है औ चक्षु ग्राहक (प्रकाशक) होनेकरि रूपविषै प्रतिष्ठित हुया रूपके दर्शनविषै कारण होवैहै। तैसैंहीं प्राणकी चक्षुरूपता है ॥

१५७ प्राण अरु आदित्यकी एकताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां यथोक्त आदित्यकूं हृदयके सुषि (छिद्र)रूप द्वार स्थानीपना कैसैं है? वासनारूपसैं प्रतिष्ठित है तब इस क्रमसैं आदित्य हृदयविषै स्थित होवैहै। यह अर्थ है ॥

१५८ तहां अन्य श्रुतिकूं प्रमाण करै हैं ॥

१५९ एकदेवतासैं अभिन्न होनेतैं बी प्राणसैं अभेदकरि चक्षु अरु आदित्यका ध्यान युक्त है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां आश्रयशब्दकरि रूप औ हृदय वा स्वर्गलोक कहियेहै ॥

हित चक्षु अरु आदित्यरूप कहा है औ "प्राणकेअर्थ[160] स्वाहा" ऐसैं "अरु हुत जो हवि सो इस सर्वकूं तृप्त करैहै" ऐसैं आगे कहैगी ॥ तिस इसकूं कहिये सो यह प्राणनामक स्वर्गलोकका[161] द्वारपाल होनेतैं ब्रह्म है ताकूं स्वर्गलोकके प्रति प्राप्त होनेकी इच्छावाला हुया पुरुष तेजरूप यह चक्षु आदित्यस्वरूपसैं है औ आदित्यकूं अन्नाद्य होनेतैं तेज अरु अन्नाद्य इन दोगुणोंकरि उपासनकरै ॥ तातैं तेजस्वी[162] अरु अ-

१६० आदित्य दोचक्षुनका देव है तिसकरि अधिष्ठित (आश्रित) सर्वकी प्राणस्वरूपताविषै वाक्यशेषकूं अनुकूल करैहैं ॥ इहां प्राणकेतृप्त हुये सर्वकी तृप्ति जो कही सो तादात्म्यविना नहीं संभवैहै। यह भाव है ॥ औ तिस इस प्राणनामक ब्रह्मकूं स्वर्गलोकके तांई प्राप्त होनेकूं इच्छता हुया पुरुष तेज अरु अन्नाद्य ऐसे इन दो गुणोंकरि विशिष्ट उपासन करै। ऐसैं संबंध है ॥

१६१ ऐसैं यथोक्त अधिकारी प्राणके उपासनविषै क्यूं उपयोगी होवैहै? तहां कहैहैं ॥

१६२ तथापि यथोक्त दोगुणोंकरि विशिष्टपना प्राणनामवाले ब्रह्मकूं कैसैं सिद्ध होवैहै? तहां तेजः शब्दकूं व्याख्यान करते हुये कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—यह प्राणनामवाला ब्रह्म उभयरूपसैं तेजस्वी है। तैसैं हुये तेजरूप गुणविशिष्ट

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्या-

अर्थः—अनंतर जो इसका दक्षिणसुषि

न्नाद (रोगयुक्ततासैंरहित) होवैहै। जो ऐसैं जानताहै ताकूं यह गौणफल होवैहै औ उपा[163]सनसैं वशकिया द्वारपाल स्वर्गलोककी प्राप्तिका हेतु होवैहै। यह मुख्य फल है ॥ १ ॥

टीकाः—[164]अनंतर जो इस(हृदय)का द-

होनेकरि सो उपासनाकूं योग्य होवैहै औ सूर्यका अन्नद (अन्नदाता)पना वृष्टिरूपसैं "आदित्यतैं वृष्टिहोवैहै" इत्यादिवाक्यविषै देख्या है। यातैं अन्न अरु तिस आदिक। ऐसैं अन्य गुणकरि विशिष्टहोनेकरिवी सूर्यरूप प्राणनामवाला ब्रह्म ध्यानके योग्य है ॥

१६३ तब मुख्यफल क्या है ? सो कहैहैं ॥

१६४ हृदयके पूर्वदिशाविषै स्थित छिद्रका संबंधी होनेकरि प्राणकूं कहिके। व्यान। श्रोत्र अरु चंद्रमा ये तीन इतरसैं संबंधवाला उपास्य है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां वीर्यवाले कर्मकूं करता हुया चलताहै। ऐसैं संबंधहै औ प्राण अपानके प्रति विरोधकरिके यह चलताहै यह अन्यपक्ष है अरु नाना कहिये स्कंधकी संधिरूप मर्मस्थलोंविषै विविध चलता है कहिये चेष्टा करताहै। यह अन्य विकल्प है ॥ तिसव्यानसैं श्रोत्रका संबंध श्रुतिउक्तहोनेतैं ध्यानअर्थ माननेकूं योग्य है ॥

नस्तच्छ्रोत्रꣳ स चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत । श्रीमान्यशस्वी भवति य एवं वेद ॥ २ ॥

है । सो व्यान है । सो श्रोत्र है । सो चंद्रमा है ॥ तिस इसकूं "श्री अरु यश है" ऐसैं उपासन करै ॥ जो ऐसैं जानता है [सो] श्रीमान् अरु यशस्वी होवैहै ॥ २ ॥

क्षिण सुषि (द्वाररूप छिद्र)है तिसविषै स्थित वायुविशेष सो वीर्यवाले कर्मकूं करताहुया प्राण अरु अपानकेप्रति विग्रह (विरोध) करिके वा नाना (विविध) चेष्टा करैहै यातैं व्यान है। तिससैं संबद्धहीं यह श्रोत्र इन्द्रिय है।[१६५] तैसैं सो चंद्रमा है "[१६६]श्रोत्रसैं दिशा औ चंद्रमा सृजे हैं"

---

१६५ जैसैं श्रोत्रका व्यानसैं संबंध है तैसैं चंद्रमाकेबी तिससैं संबंधकूं श्रुतिउक्तहोनेतैंहीं सो ध्यानअर्थ होनेकरि ग्राह्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

१६६ श्रोत्र अरु चंद्रमाके संबंधविषै अन्य श्रुतिकूं अनुकूल करैहैं ॥ इहां जो "विराट्का श्रोत्र है तिसरूपसैं दिशा

इस श्रुतितैं । वे आश्रयसहित हैं ॥ पूर्ववत् तिस इसकूं । श्री जो विभूति ॥ [१६७]श्रोत्र अरु चंद्रमाकूं ज्ञान अरु अन्नकीहेतुता है । यातैं तिन दोनूंकरि श्रीपना होवैहै औ [१६८]ज्ञान अरु अन्नवालेका यश (ख्याति) होवैहै ऐसैं यशके हेतु होनेतैं यशवान्पना है । यातैं तिन दोनूं गुणोंकरि उपासन करै । इत्यादि समान है ॥ २ ॥

अरु चंद्रमा ये स्रजे हैं" इस श्रुतितैं । यह अर्थ है ॥ औ परस्पर संबंधविषैबी इन दोनूंकी व्यानरूपता कैसैं है ? "व्यानके तृप्त हुये" इत्यादि वाक्यशेषतैं सो निश्चय करनेकूं योग्य है ॥ तिस इस व्याननामवाले ब्रह्मकूं श्री अरु यश इन दो गुणोंकरि उपासनकरै । ऐसैं संबंध है ॥

१६७ तिस दोगुणवालेका ध्यान कैसैं होवै है ? यह आशंकाकरिके । श्रोत्रकूं ज्ञानका हेतु होनेतैं अरु चंद्रमाकूं अन्नका हेतु होनेतैं तिन दोनूंकी आश्रयताके हुये । तिस स्वरूप व्यानकूंबी तिसगुणवान्ताका संभव है । ऐसैं कहैहैं ॥

१६८ व्याननामवाले ब्रह्मविषै अन्यगुणकूं साधते हैं ॥ इहां उक्त ब्रह्मकूं दो गुणोंका संभव अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है औ श्रीमान् । इत्यादि फलवाक्यआदिशब्दका अर्थ है औ समान है " तेजस्वी " इत्यादिवाक्यसैं । यह शेष है ॥

अथ योऽस्य प्रत्यङ् सुषिः सोऽपानः सा वाक् सोऽग्निस्तदेतद् ब्रह्मवर्च-

अर्थः–अनंतर जो इसका पश्चिमसुषि है। सो अपान है। सो वाक् है। सो अग्नि है॥ तिस इसकूं "ब्रह्मवर्चस अरु अन्नाद्य

टीकाः–[169] अनंतर जो इस हृदयका पश्चिम सुषि है [170] तिसविषै स्थित वायुविशेष सो [171] मल-मूत्रादिककूं ले जाता हुया नीचे चलावताहै यातैं अपान है। [172] सो (तैसी) वाक् है। [173] तिन-

१६९ हृदयके पश्चिमदिशाविषै स्थित सुषिविषै संबंधवाला होनेकरि अपान वाक् अरु अग्नि ये तीन अन्योन्य संबंधवाले ध्यावनेकूं योग्य हैं। ऐसैं कहैहैं॥

१७० "सो अपान है" इस वाक्यके अर्थकूं कहैहैं॥ इहां सो अपान है। ऐसैं संबंध है॥

१७१ अपानशब्दकूं वायुविशेषविषै व्युत्पादनकरैहैं॥ इहां आदिशब्दकरि शुक्र (वीर्य) आदिक ग्रहणकरियेहै॥

१७२ जैसैं चक्षुका अरु श्रोत्रका प्राणपना अरु व्यानपना कहा। तैसैं वाक् अपान होवैहै "अपानके तृप्त हुये" इत्यादि-श्रुतितैं। ऐसैं कहैहैं॥

१७३ जैसैं चक्षुआदिक द्वारकरि आदित्यआदिककी प्रा-

समन्नाद्यमित्युपासीत । ब्रह्मवर्चस्यान्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

है" ऐसैं उपासन करै ॥ जो ऐसैं जानता (उपासता)है [सो] ब्रह्मवर्चसी अरुअन्नाद होवैहै ॥ ३ ॥

के संबंधतैं सो (तैसा) अग्नि है। तिस इसकूं ब्रह्मवर्चस होवैहै। वृत्त[174] (सदाचार) अरु स्वाध्यायरूप निमित्तवाला जो तेज सो ब्रह्मवर्चस है। काहेतैं सदाचार[175] अरु स्वाध्यायके अग्निसैं

णादिरूपता कही। तैसैं वाणीके अधिष्ठातापनैंकरि संबंधतैं अग्नि तिसद्वारकरि अपान होवैहै। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां तिस इस अपाननामवाले ब्रह्मकूं ब्रह्मवर्चस अरु अन्नाद्य इन दो गुणोंकरि विशिष्ट उपासनकरै। ऐसैं संबंध है ॥

१७४ ब्रह्मवर्चसकूं व्याख्यान करैहैं ॥

१७५ अपाननामक ब्रह्मविषै कहा जो (ब्रह्मवर्चसरूप) गुण सो कैसैं सिद्ध होवैहै? यह आशंकाकरिके। अग्निद्वारा सिद्ध होवै है। ऐसैं कहैहैं ॥

अथ योऽस्योदङ् सुषिः स समान-

अर्थः–अनंतर जो इसका उत्तरसुषि है।

संबंधतैं औ अन्नके[176] ग्रसनका हेतु होनेतैं अपानकूं अन्नाद्यता है। अन्य[177] समान है ॥ ३ ॥

टीकाः–अनंतर[178] जो इस हृदयका उत्तर दिशागत सुषि है तिसविषै स्थित जो वायुविशेष सो भुक्त[179] पीतकूं सम लेजाताहै यातैं समान है। सो (तिससैं[180] संबद्ध) मन (अन्तःक-

---

१७६ तथापि ताका अन्नाद्यपना कैसैं है? यह आशंकाकरिके। अपानरूप द्वारसैं है। ऐसैं कहैहैं ॥

१७७ "ब्रह्मवर्चसी" इत्यादि जो फलवाक्य है सो। "श्रीमान्" इत्यादिवाक्यकरि तुल्यअर्थवाला होनेतैं व्याख्यानकी अपेक्षावाला नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥

१७८ पांचछिद्रवाले हृदयकमलके उत्तरदिशाके सुषि (छिद्र)सैं संबंधवाला होनेकरि समान मन अरु पर्जन्य (मेघ) ये तीन परस्पर संबंधवाले उपास्य हैं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां समान है। ऐसैं संबंध है ॥

१७९ समान शब्दकूं वायुविशेषविषै व्युत्पादन करैहैं ॥

१८० मनका समानवायुके साथि जो संबंध है सो "समानके तृप्त हुये" इत्यादि श्रुतितैं ग्राह्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

स्तन्मनः स पर्जन्यः तदेतत्कीर्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत। कीर्तिमान् व्युष्टिमान् भवति य एवं वेद ॥ ४॥

सो समान है। सो मन है। सो पर्जन्य है॥ तिस इसकूं "कीर्ति अरु व्युष्टि (कांति) है" ऐसैं उपासन करै ॥ जो ऐसैं जानताहै [सो] कीर्त्तिमान् अरु कांतिमान् होवैहै॥४॥

रण) है। सो पर्जन्य[181] (वृष्टिस्वरूप देव) है औ पर्जन्यरूप[182] निमित्तवाली आप (जल) हैं "मन[183]-

---

१८१ "मनके तृप्त हुये पर्जन्य तृप्त होवैहै" इस वाक्यशेषकूं आश्रय करिके तिन दोनूंके संबंधकूं कहैहैं ॥

१८२ अन्य श्रुतितैंबी तिनदोनूंके संबंधकूं कहनेकूं भूमिकाकूं कहैहैं ॥ इहां शेष अर्थ जो है सो प्रसिद्धिके स्मरण अर्थ है ॥

१८३ तथापि पर्जन्य (वृष्टि) अरु मन इन दोनूंके संबंधकी सिद्धि कैसैंहै ? यह आशंका करिके । वायुकेबी कारण होनेकरि जलोंके साथि संबधतैं तिसद्वारा परस्परबी तिनके संबंधकी सिद्धि है ॥ ऐसैं कहैहैं ॥ तिस इस समान नाम-

करि आप अरु वरुण स्रजे हैं" इस श्रुतितैं ॥ तिस इसकूं कीर्त्ति कहिये मन[184]रूप ज्ञानकूं कीर्त्तिरूप होनेतैं [185]आपका परोक्ष विश्रुत (प्रख्यात)-पना कीर्त्ति (यश) है औ [186]स्वकरणोंकरि जानने योग्य विश्रुतपना जो है सो व्युष्टि कहिये [187]कांन्ति (देहगत लावण्य) है औ [188]तातैं कीर्त्तिके संभवतैं कीर्त्ति होवैहै । [189]अन्य समान है ॥ ४ ॥

वाले ब्रह्मकूं कीर्ति औ व्युष्टि। इन दो गुणोंकरि उपासन करै। ऐसैं संबंध है ॥

१८४ इस ब्रह्मविषै कीर्त्तिरूप गुणकूं साधतेहैं ॥

१८५ व्युष्टि शब्दतैं कीर्त्तिकी अन्य अर्थवान्ताकूं दिखावै हैं ॥

१८६ तिस कीर्तितैं [विलक्षण] व्युष्टिके [अर्थकूं] कहैहैं ॥

१८७ तिसींहीं व्युष्टिकूं अनुभवविषै आरूढ होनेकरि कथन करैहैं ॥

१८८ननु फेर देहगतलावण्य(सुंदरता)की कीर्तिभावकरि स्तुति कैसैं शक्य हौवैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां लावण्य तातैं इस पंचमीका अर्थ है । ऐसैं असंकीर्ण (परस्पर विलक्षण) दो गुणोंकरि विशिष्ट उपासन सिद्ध भया । यह अर्थ है ॥

१८९ "कीर्त्तिमान्" इत्यादि फलवाक्यकूं "ब्रह्मवर्चसी" इत्यादिवाक्यकरि तुल्यअर्थवाला होनेतैं व्याख्यानकरनेकी अयोग्यताकूं कहैहैं ॥

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स आकाशस्तदेतदोजश्च मह-

अर्थः—अनंतर जो इसका ऊर्ध्वसुषि है। सो उदान है। सो वायु है। सो आकाश है ॥ तिस इसकूं "ओज अरु मह है" ऐसैं

टीकाः—[190]अनन्तर जो इस हृदयका ऊर्ध्व सुषि है सो उदान है। पादतलसैं आरंभकरिके ऊर्ध्व उत्क्रमणतैं औ उत्कर्षकेअर्थ कर्मकूं करता हुया चलताहै यातैं उदान है। सो [191]वायु अरु [192]ताका आधार आकाश है ॥ तिस इसकूं

१९० हृदयके ऊर्ध्वछिद्रकरि विशिष्ट होनेकरि उदान। वायु अरु आकाश। ये तीन परस्पर संबंधवाले उपास्य हैं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां उत्क्रमणतैं उदान है ॥ ऐसैं संबंध है ॥

१९१ "उदानके तृप्त हुये वायु तृप्त होवैहै" इस वाक्यशेषकूं आश्रयकारिके कहैहैं ॥

१९२ वायुकी आकाशरूपता। आधार आधेयरूप संबंधतैं औ "वायुके तृप्त हुये आकाश तृप्त होवैहै ॥ इस श्रुतितैं है। ऐसैं कहैहैं ॥ तिस इस उदाननामवाले ब्रह्मकूं पूर्वकीन्यांई ओज अरु मह। इन दोगुणोंकरि विशिष्ट उपासन करै। ऐसैं संबंध है ॥

श्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान्भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य

उपासन करै ॥ जो ऐसें जानता है [सो] ओजस्वी अरु महस्वान् (महत्तावान्) होवैहै ॥ ५ ॥

अर्थः—वे प्रसिद्ध ये पंचब्रह्मपुरुष [हृद-

["ओज अरु मह है" ऐसें उपासना करै][193] वायु अरु आकाशकूं ओजके हेतु होनेतैं ओज (बल) औ महत् (बडे) होनेतैं मह हैं। [194]अन्य समान है ॥ ५ ॥

टीकाः—[195]वे ये यथोक्त पंच सुषिनके संबंधतैं पंच हृदयगत ब्रह्मके पुरुष हैं। वे द्वारविषै

---

१९३ उक्त दोगुणोंकूं कीर्त्तन करैहैं ॥

१९४ "ओजस्वी" इत्यादिवाक्यकी "कीर्तिमान्" इत्यादिवाक्यकरि तुल्य अर्थताकूं कहैहैं ॥

१९५ "तिसीहीं इस हृदयके" इत्यादिवाक्यकरि उक्त अर्थकूं अनुवाद करैहैं ॥

लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं

यगत] स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं ॥ सो जो इन ऐसैं पंच ब्रह्मपुरुषरूप स्वर्गलोकके द्वारपालोंकूं जानताहै । इसके कुलविषै वीर जन्मताहै । स्वर्गलोककूं पावताहै । जो

स्थित [१९६] राजपुरुषनकीन्यांईं हृदयगत स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं । [१९७] जातैं बहिर्मुख प्रवृत्तभये इन चक्षु श्रोत्र वाक् मन अरु प्राणकरि हृदयगत ब्रह्मकी प्राप्तिके द्वार निरुद्ध (रोके) होवै हैं। जातैं अजित करणवानताकरि बाह्य विषयविषै आसंगरूप अनृतकरि आरूढ होनेतैं मन हृदयस्थ ब्रह्मविषै स्थित होता नहीं [१९८] यह प्रत्यक्ष है।

---

१९६ कैसैं वे ब्रह्मके पुरुष हैं ? तहां कहैहैं ॥ इहां व्यपदेश (कीर्ति) करियेहै । यह अर्थ है ॥

१९७ तिनकी द्वारपालताकूं प्रपंचन करैहैं ॥

१९८ तहां स्वअनुभवकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—

लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद ॥ ६ ॥

इन ऐसें पंच ब्रह्मपुरुषरूप स्वर्गलोकके द्वारपालोंकूं जानताहै ॥ ६ ॥

---

[१९९] तातें ये पंच ब्रह्मपुरुष स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं। यह सत्य कहा ॥ [२००] यांतें सो जो इन ऐसें यथोक्त गुणविशिष्ट स्वर्गलोकके द्वारपालोंकूं उपासताहै कहिये उपासनाकरि वशकरता-

---

विवेक अरु वैराग्यकरि वशीकृत श्रोत्रादि करणोंके ग्रामकरि युक्तताके अभावतें परोक्ष शब्दादि विषयविषै आसंगरूप अनृतविशेषकरि आक्रांत (निरुद्ध) होनेतें ॥

१९९ विषयतें विमुख इन करणोंकरिहीं ब्रह्मप्राप्तिके द्वार समाधि आदिककरि खुल्ले होते हैं। इस अभिप्रायकरि उपसंहार करैहैं ॥

२०० उक्त ब्रह्मके पुरुषनकूं अनुवादकरिके सफल उपासनकूं दिखावैहैं ॥ इहां अनियमित चक्षु आदिकनकूं ब्रह्मके प्राप्तिकी प्रतिबंधकता है औ नियमित चक्षु आदिकनकूं तो तिसकी प्राप्तिकी हेतुता है। यह अतः (यातें) शब्दका अर्थ है औ यथोक्त गुणोंकरि विशिष्टता जो है सो चक्षुआदिकनकी आदित्यादिस्वरूपता है ॥

होनेतैं औ भेदरहित होनेतैं [सर्व शब्दतैं ताकी प्रतीति नहीं है] ॥ ॥ अनुत्तमोंविषै । इहां [216] तत्पुरुष समासकी आशंकाकी निवृत्तिअर्थ श्रुति कहैहैः—"उत्तमलोकनविषै" ऐसैं ॥ सत्यलोक-आदिकनविषै । हिरण्यगर्भादि[217] कार्यविषै स्थित परमेश्वरकूं समीप होनेतैं "उत्तमलोकनविषै"

यह अर्थ हैः—सर्व शब्दकूं अनेक अर्थका वाच्य होनेतैं औ आत्माविषै एकतातैं औ प्रकारभेदके नित्यमुक्त तिस आत्माविषै असंभवतैं ता आत्माकी सर्व शब्दतैं प्रतीति नहीं होवैहै ॥

२१६ उत्तम जे नहीं होवैहैं वे अनुत्तम हैं। ऐसैं तत्पुरुष समासकी आशंकाके हुये। ताकी निवृत्तिद्वारा "नहीं हैं उत्तम जिनतैं वे अनुत्तम हैं। ऐसे जे उत्तम लोक तिनविषै" इसरीतिसैं बहुव्रीहि समासकी सिद्धि अर्थ "उत्तमोंविषै" यह श्रुतिउक्त विशेषण है। ऐसैं कहैहैं ॥

२१७ क्यूं ऐसैं तिन लोकनविषै परब्रह्म निर्देशकरियेहै। ताकूं सर्वगत होनेतैं? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिस कार्यरूपसैं स्थित परब्रह्म उत्तम लोकनविषै है ऐसैं कहिये है। काहेतैं सर्वत्र विद्यमान जो परब्रह्म ताकूं सत्यलोक आदिकनविषै हिरण्यगर्भआदिकरूपसैं अतिशयकरि नित्य अभिव्यक्त (प्रकट) होनेतैं ॥

ऐसैं कहियेहै ॥ [218] येहहीं सो है जो यह इस पुरुषविषै भीतर (मध्य) ज्योति [219] चक्षु श्रोत्रकरि ग्राह्य लिंगसैं अरु उष्णिमा शब्दसैं जानियेहै औ [220] जो त्वचाकरि स्पर्शरूपसैं ग्रहणकरियेहै सो चक्षुकरिहीं ग्रहणकरियेहै । काहेतैं [221] त्वचाकूं दृढप्रतीतिकर होनेतैं औ [222] रूप अरु स्पर्शकूं अ-

२१८ "जो" ऐसैं सर्वनामकरि प्रकृत ब्रह्म ग्रहण करिये है ताकी उपास्यताअर्थ ताका संसारतैं उपरि अवस्थान कहा । अब कौक्षेय (कुक्षिरूप उदरगत) ज्योतिविषै ताकूं आरोप करैहैं ॥

२१९ कौक्षेय ज्योतिरूप प्रतीकविषै प्रमाणकूं दिखावै हैं॥ इहां "दर्शनीय (देखनेकूं योग्य) होवैहै" सो फल वचनके अनुसारकरि अध्यासकृत स्पर्श अरु रूपकी एकताकूं लेके उष्णिमा (उष्णस्पर्श)का चाक्षुष (चक्षुकरिग्राह्य)पना देखनेकूं योग्य है ॥

२२० रूप अरु स्पर्शकी एकताके अध्यासकूं स्पष्ट करैहैं॥

२२१ जो उष्ण तेज द्रव्यस्वरूप त्वक् इंद्रियकरि स्पर्शरूपसैं ग्रहणकरिये है। सो चक्षुकरिहीं ग्रहणकरियेहै। तहां हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—त्वचाकूं दृढ प्रतीतिविषै हेतु होनेतैं चक्षुके साथि तादात्म्यके आरोपतैं ॥

२२२ जो रूपवाला होवैहै सो स्पर्शवाला है इस नियमतैंबी रूप अरु स्पर्शके तादात्म्य अध्यासतैं ता स्पर्शकी चाक्षुषताकी सिद्धि है। ऐसैं कहैहैं ॥

विनाभूत होनेतैं ॥ ॥ फेर[२२३] तिस ज्योतिका लिंग जो है सो त्वचा अरु दृष्टिकी विषयताकूं कैसैं पावताहै? यह[२२४] कहैहैं:-जिस कालविषै यह [ऐसा ज्ञानरूप क्रियाविषै विशेषण है। यातैं यह ज्ञान जैसैं होवै तैसैं।] इस शरीरविषै हस्तसैं स्पर्शकरिके स्पर्शसैं उष्णिमाकूं कहिये रूपके[२२५] साथि होनेवाले उष्णस्पर्शके भावकूं जानता है॥[२२६] सो उष्णिमा जातैं नामरूपके व्याकरण

२२३ जिस ज्योतिका श्रुति गत शब्द अरु उष्णता लिंग है। तिस त्वक् इंद्रियकरि ग्राह्य ज्योतिके चाक्षुषपनैकूं उपपादन करनेकूं पूर्ववादी पूंछताहै ॥

२२४ "ताकी यह दृष्टि" इत्यादि वाक्यकरि उत्तरकूं दिखावते हुये सिद्धांती "जहां" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-जैसैं यह विज्ञान होवै तैसैं। इस रीतिसैं विज्ञानरूप क्रियाविषै विशेषण "एतत् (यह)" ऐसा पद है ॥

२२५ संस्पर्शकरि उष्णताकूं जब जानताहै तब ताका चाक्षुषपना कैसैं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२२६ ननु उपचारकरि (आरोपकरि) किया उष्णताका चाक्षुषपना होहू। तथापि ताका लिंगपना कैसैं है? यह आशंकाकरिके। जीवनरूपव्यवहारकी प्रतीति करावनेद्वारा

(स्पष्टीकरण)अर्थ अनुप्रविष्ट चैतन्यरूप आत्मज्योतिका लिंग है। अव्यभिचारतैं। [227]जातैं जीवते आत्माकूं उष्णिमा (उष्णता) व्यभिचारकूं नहीं पावैहै औ जातैं "[228]उष्णहीं जीवनेवाला होवैहै औ शीतलपुरुष मरनेवाला होवैहै" ऐसैं जानियेहै॥ औ [229]मरणकालविषै "तेज परदेवताविषै"ऐसैं परमात्माकेसाथि अभिन्नताके निश्चयतैं। यातैं अग्निके धूमकीन्यांईं उष्णता अ-

कौक्षेय (उदरगत) ज्योतिविषै तिस उष्णताकी लिंगरूपताकूं साधते हैं॥

२२७ जीवस्वरूपके साथि ता (उष्णता)के अव्यभिचार (सहभाविता)कूं स्पष्ट करैहैं॥

२२८ तहांहीं श्रुतिकूं कथन करैहैं॥

२२९ जब उष्णता जीवका लिंग है तब परमात्मज्योतिकाबी सो लिंग होवैहै। काहेतैं जीव अरु परमात्माकी एकताके निश्चयतैं। ऐसैं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—"वाक् आदिक मनविषै। मन प्राणविषै। प्राण तेजविषै। सो तेज परमात्मनामवाले अध्यक्षरूप परदेवताविषै प्राप्त होवैहै" इस याके षष्ठप्रपाठकगत श्रुतिवाक्यकरि जीवके तिस अर्थरूप परमात्माके साथि अभिन्नपनैके निश्चयतैं। जीवका जो लिंग है सो परमात्माका लिंग होवैहै॥

साधारण लिंग है। यातैं[२३०] तिसैं[२३१] परमात्माकी दृष्टि साक्षात्दर्शनकीन्यांई है। अर्थ यह जोः— दर्शनका उपाय है॥ तैसैं[२३२] तिस ज्योतिकी यह श्रुति (श्रवण) कहिये श्रवणका उपायबी उच्यमान (कथनकिया) है॥ जब पुरुष ज्योतिके लिंगकूं सुननेकूं इच्छताहै। तब यह दोक-

---

२३० जब जीव अरु परब्रह्मकी यथोक्त लिंगतैं अवगति (ज्ञान) होवैहै। तब तहां ताके आश्रयरूप कौक्षेय ज्योतिकी निरंतर अवगति है। ऐसैं कहैहैं॥

२३१ उदरगत ज्योतिरूप प्रतीकविषै उष्णस्पर्शकी लिंगताके हुये जो लिंग है ताकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—प्रतिमाविषै विष्णुके तादात्म्यकीन्यांई उदरगत ज्योतिकेसाथि परब्रह्मरूप ज्योतिके तादात्म्यतैं॥

२३२ प्रतीकद्वारा दृष्टि (दर्शन)के उपायकीन्यांई श्रवणके उपायरूप अन्य लिंगकूं दिखावै हैं॥ इहां दो कर्णोंकूं ढांपिके सुनता है। ऐसैं संबंध है औ जैसैं श्रवण यह होवैहै तैसैं सुनता है। इस रीतिसैं श्रवणरूप क्रियाका विशेषण "एतत् (यह)" शब्द है। ऐसैं योजना है औ निरोधकरिके याका ढांपिके। यह अर्थ है औ इधर सुननेमैं आवता है जो शब्द ताके वाच्यार्थके भावके स्पष्ट करनेअर्थ अनेक दृष्टांतनका ग्रहण है॥

णोंकूं ढांपिके [इधर "यह" ऐसा शब्द श्रवणरूप क्रियाका विषेशण है यातैं यह श्रवण जैसैं होवै तैसैं] यह अर्थ है। कहिये दो अंगुलिनसैं निरोधकरिके। निनदकीन्यांई कहिये रथकेघोषकीन्यांई जो निनद(नाद) है ताकीन्यांई बलीवर्दके शब्दकीन्यांई जो शब्द है औ जैसैं बाहिर जलते अग्निका शब्द है [ताकीन्यांई]। ऐसैं शरीरकेभीतर सुनताहै॥[233] तिसैं इस ज्योतिकूं दृष्ट अरु श्रुतरूप लिंगवाला होनेतैं "दृष्ट अरु श्रुत है" ऐसैं उपासनकरै।[234] तैसैं उपासनतैं दर्शनीय अरु वि[235]श्रुत होवैहै॥[236] जो स्प-

२३३ कौक्षेयज्योति विषै आरोपित ध्येयरूप ज्योतिके ध्यानके उपायके अंग होनेकरि दो गुणोंकूं उपदेश करैहैं॥

२३४ "दृष्टकूं उपासन करै" ऐसैं उक्त उपासनविषै फलकूं कहैहैं॥

२३५ "श्रुतकूं उपासन करै" ऐसैं उक्त उपासनविषै फलकूं कहैहैं॥

२३६ ननु फेर स्पर्शगुणवालेके उपासनविषै स्पर्श करनेकूं योग्य होवैहै ऐसैं कहनेकूं योग्य हुये। दर्शनीय होवैहै। यह कैसैं कहिये है? तहां कहैहैं॥

र्शगुणके उपासनरूप निमित्तवाला फल है ताकूं दर्शनीय होवैहै ऐसैं रूपविषै संपादन करैहै। काहेतैं[237] रूप अरु स्पर्शकूं सहभावीहोनेतैं औ[238] दर्शनीयताकूं इष्ट होनेतैं[239] ॥ ऐसैं हुये विद्याका फल सिद्ध होवैहै परन्तु[240] मृदुताआदिक स्पर्शवान्ताके हुये नहीं होवैहै ॥ जो[241] ऐसैं यथोक्त दो गुणोंकूं जानताहै ॥ स्वर्गलोककी[242] प्राप्ति तो उक्त

---

२३७ संपादनविषै निमित्तकूं कहैहैं ॥

२३८ इसतैं "दर्शनीय होवैहै" यह फलवचन उचित है। ऐसैं कहैहैं ॥

२३९ फलवचन विकल्पककूं नहि संपादन करैहै । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जब स्पर्श गुणवालेके उपासनरूप निमित्तवाला फल रूपविषै संपादन करियेहै । तब विद्याका सुन्या जो फल सो घटित होवैहै । ऐसैं फलश्रुति अनुकूलताकूं प्राप्त होवै । काहेतैं रूपविशेषवाले वस्तुविषै चक्षुष्य (दर्शनीय) शब्दकूं प्रसिद्ध होनेतैं ॥

२४० जब फेर मृदुता आदिक स्पर्शगुणवालेके उपासनरूप निमित्तका फल कल्पना करिये तब "दर्शनीय होवैहै" यह श्रवण किया फल घटित होवै नहीं औ तातैं फलश्रुति बाधित होवैगी । ऐसैं कहैहैं ॥

२४१ तिसका यह फल है ? इस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥

२४२ ननु उदरगत ज्योतिविषै आरोपित उक्त गुणवाले

अथ तृतीयप्रपाठ॰चतुर्दशः खंडः॥१४॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शा-

अथ श्री॰मूलभाषा॰तृतीयप्रपा॰चतुर्दशः खंडः ॥१४॥

अर्थः–"सर्व यह ब्रह्म तज्जलान् है" ऐसैं

अदृष्टफल है ॥ इहां दोवारकथन आदरकेअर्थ है ॥ ७ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰त्रयोदशः खंडः ॥१३॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपा॰चतुर्दशः खण्डः १४

सर्वदृष्टिसैं ब्रह्मोपासन औ मनोमयतादि आरोपसैं शांडिल्यविद्या ४

टीकाः–[२४३]फेर तिसीहीं तीनपादवाले अमृतरूप

परमात्मज्योतिके ध्यानतैं यह अतिअल्प अननुसारी फल कैसैं उपदेश करियेहै? तहां कहैहैं ॥ इहां फलवाली विद्याविषै आदर विवक्षित है ॥

इति श्री॰तृतीयप्रपाठकगतत्रयोदशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १३ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकगतचतुर्दशखंडस्य टिप्पणम् १४

२४३ प्रतीक (प्रतिनिधि) द्वारा ब्रह्मके उपासनकूं कहिके प्रतीककूं छोडिके । अब सगुणब्रह्मके उपासनकूं उपन्यास करैहैं ॥

न्त उपासीताथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथा क्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति। स क्रतुं कुर्वीत ॥१॥

शांत हुया उपासनकरै ॥ जातैं क्रतुमय पुरुष है ॥ जैसे क्रतुवाला पुरुष इसलोकविषै होवैहै। तैसा इहांतैं मरिके होवैहै [यातैं] सो क्रतु (निश्चय)कूं करै ॥ १ ॥

---

[244]अनंतगुणवाले [245]अनंतशक्तिवाले [246]अनेकभेदकरि उपास्य ब्रह्मके विशिष्ट गुण अरु शक्तिमान्पनेकरि उपासनकूं विधानकरतीहुयी श्रुति कहैहैः—सर्व (समस्त) खलु [इहां "खलु" ऐसा नि-

---

२४४ ताके निरुपाधिकपनैकूं निषेध करैहैं ॥

२४५ ननु एककूं अनेक गुणवान्पना कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥

२४६ ननु पूर्वहीं इस सगुणब्रह्मके उपासन कहे। तैसैं हुये कहनेकूं योग्य शेष नहीं है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—गायत्रीआदिक उपाधिवाले अनेक भेदोंविषै उपास्यहुयेबी ब्रह्मके मनोमयता आदिक श्रेष्ठ गुणवान्ताकरि औ श्रेष्ठ शक्तिमान्ताकरि अन्य उपासनके विधानअर्थ उत्तरवाक्य है ॥

पातरूप शब्द जो है। सो वाक्यके अलंकार अर्थ है] यह नामरूपकरि विकारकूं पाया अरु [247]प्रत्यक्षआदिक प्रमाणोंका विषय जो जगत् है सो ब्रह्म है कहिये [248]कारणरूप है [249]अत्यंतवृद्ध होनेतें ॥ ॥ [250]सर्वकूं ब्रह्मपना कैसें है? यह शंका-भई। यातें कहैहैं:—[251]तिसें ब्रह्मतें तेज जल अरु अन्न (पृथ्वी) आदिकके क्रमसें सर्व उपज्या है

---

२४७ तिस जगत्के इदंशब्दकरि ग्रहणविषै हेतुकूं कहैहैं॥

२४८ इस ब्रह्मशब्दकी निरुपाधिक अर्थरूप विषयवान्-ताकूं निषेध करैहैं ॥

२४९ ता जगत्का ब्रह्मपना कैसें है? तहां कहैहैं ॥ इहां अत्यंत वृद्ध होनेतें। याका निरतिशय महान् होनेतें। यह अर्थ है ॥

२५० सर्वकूं अनुवादकरिके ताकी ब्रह्मरूपताके विधान-विषै प्रश्नपूर्वक युक्तिकूं कहैहैं ॥ इहां तज्ज (तिसतें जन्य) औ तल्ल (तिसविषै लीन होनेवाला) औ तदन (तिसविषै चेष्टा-करनेवाला) ऐसा जो यह सर्व जगत् सो "तज्जलान्" है इ-सविषै अंतके नकार अक्षरविषै अकार वर्णरूप अवयवका जो लोप है सो छांदस (वैदिकप्रयोग) है ॥

२५१ तिनविषै जगत्के तज्ज (तिसतें जन्य) पनैकूं व्युत्पा-दन करैहैं ॥

यातैं सो तज्ज (तिसतैं जन्य) है । तैसैं[252] तिसीहीं जन्मके क्रमसैं प्रतिलोमताकरि (उलटे क्रमसैं) तिसीहीं ब्रह्मविषै लीन होवैहै कहिये तिसैं[253]स्वरूप होनेकरि मिलताहै यातैं सो तल्ल (तिसविषै लीन होनेवाला) है । तैसैं[254] तिसीहीं ब्रह्मविषै स्थितिकालमैं अनता (चेष्टाकूं करता) है यातैं सो तदन् (तिसविषै स्थित) है ॥ ऐसैं[255] जगत् ब्रह्मस्वरूपताकरि तीनकालोंविषै समान है तिसतैं व्यतिरेककरि अग्रहणतैं । यातैं सो यह

२५२ तल्ल (तिसविषै लीन) होनेकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां "विपर्ययकरि तो क्रम है यातैं" इसन्यायतैं प्रतिलोमताकरि जन्मके उलटे क्रमसैं तिस ब्रह्मविषैहीं जगत् लीन होवैहै । ऐसैं करिके जैसैं तज्ज है तैसैं । इसरीतिसैं योजना है ॥

२५३ तहां लय नाम जगत्की शून्यता है ? इस शंकाकूं निवर्त करैहैं ॥

२५४ तदन (तिसविषै स्थित)पनैकूं प्रपिपादन करैहैं ॥ इहां तैसैं । याका । जैसैं तज्ज अरु तल्ल है । तैसैं तदन जगत् है । यह अर्थ है औ यातैं सो तदन है । यह शेष है ॥

२५५ युक्तिसिद्ध अर्थकूं निगमन करैहैं ॥ इहां ब्रह्मसैं व्यतिरेककरि तीन कालोंविषैबी जगत्के अग्रहणतैं तिसरूप होनेकरि समान जो जगत् सोई होवैगा । ऐसैं योजना है ॥

जगत् है। औ जैसैं[२५६] यह है सोई एक अद्वितीय है। तैसैं षष्ठ प्रपाठकविषै विस्तारकरि हम कहैंगे॥ औ जांतैं[२५७] सर्व यह ब्रह्म है यातैं शांत कहिये रागद्वेषादि दोषनसैं रहित संयत (नियमित) हुया जो सो सर्व ब्रह्म है ताकूं वक्ष्यमाण गुणोंकरि उपासन करै॥ ॥[२५८] कैसैं उपासनकरै किः—क्रतुकूं करै। कहिये क्रतु जो निश्चय (अध्यवसाय) "ऐसैंहीं है अन्यथा नहीं" ऐसा अविचलप्रत्यय। तिस क्रतुकूं करै (उपासन करै) ऐसैं अंतरायरहितपदसैं संबंध है॥ ॥

२५६ युक्तिसिद्ध बी जगत्का ब्रह्मभाव प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकरि विरुद्ध अंगीकारकूं योग्य होता नहीं। जातैं द्वैतसहित वस्तु अद्वितीय होनेकूं युक्त नहीं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

२५७ सर्वके ब्रह्मभावके हुये फलितकूं कहैहैं॥

२५८ कितनैं कालपर्यंत प्रत्यय (वृत्ति)कूं आवर्तन करै? इस आकांक्षापूर्वक। तत्वके निश्चयपर्यंत उपास्याकारवृत्तिकूं आवर्त्तन करै। ऐसैं दिखावनेकूं अंतरायसहित वाक्यकूं प्रकटकरिके व्याख्यान करैहैं॥ इहां "उपासनकूं करै" इस पदका "क्रतुकूं करै" इस अंतरायवाले पदसैं संबंध है। ऐसैं योजना है॥

[२५९] फेर क्रतुके करनेसैं क्या प्रयोजन कर्त्तव्य है। [२६०] वा सो क्रतु कैसैं कर्तव्य है। औ [२६१] क्रतुका करण अभिप्रेत (वांछित) अर्थकी सिद्धिका साधन कैसैं होवैहै? [२६२] ईस अर्थके प्रतिपादन अर्थ "अथ" इत्यादि ग्रंथ है:-[इहां "अथ खलु" यह हेतुके अर्थ है] [२६३] जातैं क्रतुमय कहिये क्रतुबहुल (निश्चयात्मक) पुरुष (जीव) है। यथाक्रतु कहिये जैसा क्रतु (निश्चय) उसका है सो यह

---

२५९ क्रतुके अनुष्ठानके फलकूं पूर्ववादी पूंछताहै ॥

२६० तहां क्रतुका करण किसप्रकारसैं होवैहै? ऐसैं अन्य प्रश्नकूं दिखावै हैं ॥

२६१ क्रतुके करणकूं ब्रह्मभावका साधन होनेतैं फलका प्रश्न नहीं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:-जातैं स्थित वा नष्ट जीवका सद्भाव संभवै है ॥

२६२ क्रतुके कारणका यह प्रयोजन है औ सो क्रतु ऐसैं करियेहै वा ताका करण इसरीतिसैं ब्रह्मके सद्भावकूं साधता है। इस अर्थके समूहके प्रतिपादनअर्थ खंडकी समाप्तिपर्यंत "अथ खलु (यातैं)" इत्यादिरूप उत्तर ग्रंथ है। ऐसैं सिद्धांती कहैहैं ॥

२६३ "अथ खलु" इस ठिकाने पूर्वकीन्यांई [वाक्यके अलंकारअर्थ] "खलु" शब्द है अरु "अथ" शब्द तो हेतु अर्थ है। यातैं इहां हेतुरूप अर्थकूं विवरण करैहैं ॥

यथाक्रतु है कहिये जैसे निश्चयवाला [२६४]इस लोकविषै [२६५]इहां (वर्त्तमान देहमैं) जीवताहुया पुरुष होवैहै। [२६६]तैसा इस देहतैं मरिके (वियोगकूं पायके) होवैहै। अर्थ यह जोः—क्रतु जो निश्चय तिसके अनुसारि फलस्वरूप होवैहै॥ [२६७]ऐसैं जातैं यह शास्त्रविषै देख्या है "[२६८]जिसै जिसबी भावकूं निश्चयकरि स्मरण करताहुया अंतविषै कलेवरकूं त्यागताहै तिसी तिसीहींकूं पावताहै" इत्यादि॥ [२६९]जातैं ऐसी व्यवस्था शास्त्रविषै देखी है यातैं

---

२६४ यद्वा "अथ" ऐसैं आरंभकरिके "पुरुष" इहांपर्यंत जो ग्रंथ है। सो हेतु अर्थ है ऐसैं कहिके। तिसीहीं हेतुरूप अर्थकूं दिखावै हैं॥ इहां "जैसैंक्रतुवाला है" इस पदतैं नीचे "तातैं" शब्द देखनेकूं योग्य है॥

२६५ "इसलोकविषै" इसश्रुतिकूं लेके व्याख्यान करैहैं॥ इहां इसवर्त्तमान देहविषै जीवताहुया। यह अर्थ है॥

२६६ क्रतुके करणसैं क्या कर्त्तव्य फल है? या प्रश्नकूं व्याख्यान करैहैं॥

२६७ पुरुषकी क्रतुके अनुसारी फलस्वरूपताविषै स्मृतिकूं कथन करैहैं॥

२६८ गीतास्मृतिरूप शास्त्रकूंहीं उदाहरण करैहैं॥

२६९ वा कैसैं क्रतु (निश्चय) कर्त्तव्य है? इस प्रश्नके तांईं

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्व-

---

अर्थः—मनोमय प्राणरूप शरीरवाला प्रभारूप सत्यसंकल्प आकाशकी न्यांई आत्मा(स्वरूप)वाला सर्वकर्मवाला सर्वकाम-

---

सो ऐसैं जानताहुया जैसैं[२७०] ऋतु (निश्चय)कूं हम कहैंगे तिस क्रतुकूं करै। जांतैं[२७१] ऐसैं शास्त्रके प्रामाण्यतैं क्रतुसैं अनुसारि फल संभवैहै। यातैं सो ऋतु करनेकूं योग्य है ॥ १ ॥

टीका:—कैसैं[२७२] किः—मनोमय कहिये मनःप्राय

प्रत्युत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां क्रतु अनुसारि फलस्वरूप पुरुष होवैहै। इसरूपवाली व्यवस्था है। यह अर्थ है औ ऐसैं जानताहुया। याका ऋतु अनुसारि फल होवैहै। ऐसैं शास्त्रतैं देखताहुया। यह अर्थ है ॥

२७० कौन यह ऋतु है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२७१ "सो क्रतुकूं करै" या वाक्यके अर्थकूं निगमन करैहैं ॥

२७२ ऋतुके करनेके प्रकारकूंहीं प्रश्नपूर्वक प्रकट करैहैं ॥

कामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥ २ ॥

वाला सर्वगंधोंवाला सर्वरसोंवाला औ सर्व इसकेप्रति अभिव्याप्त अवाकी अरु आदररहित है ॥ २ ॥

(मनकी बहुलतावाला)। मनन[273] करताहै इसकरि सो मन है। सो मन स्ववृत्तिकरि विषयनविषै प्रवृत्त होवैहै। तिस मनकरि तन्मय (मनोमय) है। तैसें[274] तिसप्राय (मनकी बहुलता-

---

२७३ यह मनःप्रायपना कैसें है? इस अपेक्षाके हुये मनःशब्दके अर्थके दिखावनेपूर्वक तिसप्रायता (मनकी बहुलता) कूं बोधन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मनद्वारा तिस उपाधिवाला पुरुष विषयनविषै तत्पर होवैहै ॥

२७४ तिसप्रायताके फलकूं कहैहैं ॥ इहां जातें पुरुष तिसप्राय (मनोबहुल) हुया मनके प्रवर्त्तमान हुये आप बी ताकीन्यांईंहीं प्रवृत्तकीन्यांई देखियेहै। औ तैसें मनके निवर्त्तमान हुये निवृत्तकीन्यांई जानियेहै। वस्तुतैं तो पुरुष न प्रवृत्त है वा न निवृत्त है। काहेतैं "ध्यावतेहुयेकीन्यांई" इत्यादिश्रुतितैं। यह अर्थ है औ याहीतैं। याका मनोमय हो-

है। सो राजद्वारपालोंकूं उपासनासैं वशकरिके राजाकीन्यांई। तिनकरि अवारित हुया हृदयगत ब्रह्मरूप स्वर्गलोककूं पावताहै ॥ किंवा[201]:- इस विद्वान्के कुलविषै वीर पुत्र उपजताहै वीर पुरुषनके सेवनतैं । औ[202] ता(पुत्र)कूं ऋणके दूरि करनेकरि ब्रह्मकी उपासनाविषै प्रवृत्तिकी हेतुता है औ तातैं परंपरासैं स्वर्गलोककी प्राप्तिअर्थ होवैहै । यातैं[203] स्वर्गलोककी प्राप्ति हीं एक फल है ॥ ६ ॥

---

२०१ अदृष्ट फलकूं कहिके । अब दृष्टफलकूं कहैहैं ॥

२०२ यथोक्त पुत्रकी उत्पत्ति जो है सो विवक्षित ब्रह्मकी प्राप्तिविषै उपयोगी नहीं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां पुत्रकूं ध्यानकी अनुसारिताकी हेतुता जो है सो ततः (तातैं) शब्दका अर्थ है औ परंपराकरि । याका उपासनाद्वारा । यह अर्थ है ॥

२०३ पुत्रकी ध्यानद्वारा ब्रह्मप्राप्तिविषै हेतुताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दी-

अर्थः-यातैं जो उस स्वर्गलोकतैं पर ज्यो-

टीकाः-अनंतर[204] जो यह विद्वान्[205] स्वर्गलो-
ककूं वीर पुरुषके सेवनतैं पावताहै औ जो क-
हाकिः-"तीन पादवाला इसका अमृत प्रका-
शरूपविषै [स्थित] है" ऐसैं सो यह लिंगकरि

---

२०४ गायत्री उपाधिवाला ब्रह्म उपास्य है। तिस अर्थ होनेकरि द्वारपालोंकी उपासना कर्त्तव्य है। औ तातैं अंगोविषै श्रुत फलोंकूं ग्रहणकरिके प्रधान उपासनतैंहीं ब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै ऐसैं कहा। अब अन्य विद्याकूं प्रसंगविषै प्राप्त करैहैं ॥

२०५ स्वर्गतैं पर दीप्तिमान् ब्रह्मकूं कौक्षेय ज्योतिरूप प्रतीकविषै आरोपकरिके दृष्टपनैं अरु श्रुतपनैंकरि उपासन करनेकूं योग्य है। तिस श्रुतिउक्त अर्थकूं सिद्धकीन्यांई करिके। अब आर्थिक (अर्थतैं प्राप्त) अर्थकूं लेके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां वीर्यवाले आदित्यादिक पुरुष तिनके सेवनतैं कहिये आध्यानतैं। यह अर्थ है औ लिंगसैं। याका स्पर्शविशेषसैं अरु श्रवण विशेषसैं। यह अर्थ है औ चक्षुकूं श्रोत्र इंद्रियका गोचर। याका मेरी दृष्टिके प्रति मैंनैं देख्या अरु सुन्या है ऐसैं संपादन करनेकूं योग्य है। अन्यथा दृष्टपनैंकरि अरु श्रुतपनैंकरि ब्रह्मविषै ध्यानकी प्रसिद्धितैं। यह अर्थ है ॥

प्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतःपृष्ठेष्वनुत्तमे-
षूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मि-

ति दीप्यमान है विश्वतो पृष्ठ कहिये सर्वतैं
पृष्ठ औ अनुत्तम ऐसे उत्तम लोकनविषै है।

चक्षु अरु श्रोत्र इन्द्रियका विषय संपादन कर-
नेकूं योग्य ह। जैसें[२०६] धूमादिलिंगकरि अग्नि
आदिक है। तैसें[२०७]॥ जातें "ऐसैंहीं यह है" ऐसी

---

२०६ परके अनिश्चयके हुये लिंगकरि प्रतीतिकरावनेविषै दृष्टांतकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—विवादयुक्तके प्रति धूम-आदिक लिंगसैं अग्निआदिक प्रतीति कराइये है। तैसैं स्पर्शादि लिंगकरि दृष्टपनै आदिककरि विशिष्ट यह प्रतीति करावनेकूं योग्य है॥

२०७ उक्त ज्योतिका लिंगकरि निश्चयकरावना क्यूं करि-येहै? तहां कहैहैं। इहां यह अर्थ हैः—लिंगद्वारा ताकी प्रती-तिके हुये दोगुणोंकरि विशिष्टहीं यह ज्योति है अन्यथा नहीं। ऐसैं यथोक्त उपास्य ज्योतिरूप परब्रह्मविषै दृढ बुद्धि होवै। ताके अभानतैं तिस गुणवाले ज्योतिके अ-ध्यानतैं॥

न्नन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टिर्यत्रै-तदस्मिञ्छरीरे सꣳस्पर्शो नोष्णिमानं विजानाति । तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णा-

---

यहहीं सो है। जो यह इस पुरुषविषै ज्योति है। तिसकी यह दृष्टि (दर्शन) है। जहां यह (ज्ञान) जैसें होवै तैसें इस शरीरविषै संस्पर्शकरि उष्णिमाकूं जानताहै। तिसकी यह श्रुति (श्रवण) है। इहां यह (श्र-

---

यथोक्त अर्थविषै दृढ प्रतीति होवै औ [२०८]अनन्यभावकरि निश्चय होवै ऐसैं है । [२०९]यांतैं कहैहैं:—

---

२०८ ननु यथोक्त गुणवाले परमात्मज्योतिका अशेष उपासन मति होहू ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—कौक्षेय (उदरगत) ज्योतिके संनिकर्ष (समीपता)तैं जीवसैं अभेद कलपना करिके "जाठर (उदरगत) ज्योति ब्रह्म है" ऐसैं अनन्यभावकरि ध्यानके हुये जीव ब्रह्मका एकताकरि निश्चय अर्थतैं सिद्ध होवैहै ॥ यातैं यथोक्तउपासना अर्थवाली है ॥

२०९ अथशब्दकी अन्यविद्याके आरंभरूप अर्थवान्ताकूं

वपि गृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपश्शृणोति । तदेतद् दृष्टञ्च

वण) जैसैं होवै तैसैं दो कर्णोंकूं ढांपिके निनद (रथके घोष)की न्यांई अरु बलीवर्द्दके शब्दकी न्यांई अरु जलते अग्निके [शब्द] की न्यांई सुनताहै॥ तिस इसकूं "दृष्ट अरु

जो उस स्वर्गलोकतैं पर [लिंगके पलटावनेकरि [२१०]परं ऐसा] ज्योति कहिये सदा प्रकाशरूप होनेतैं [२११]स्वयंप्रभ जो है सो प्रकाश करतेहुयेकीन्यांई प्रकाश करैहै ऐसैं कहियेहै । काहेतैं [२१२]अग्नि आदिककीन्यांई जलनेके क्षणवा-

अंगीकारकरिके अनंतरग्रंथके तात्पर्यकूं कहिके अवशिष्ट अक्षरोंकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥

२१० "जो" ऐसैं उपक्रमकरि "ज्योति" ऐसैं उपसंहारतैं "पर" ऐसैं पुल्लिंगके अप्रयोगकूं आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२११ कदाचित् होनेवाली प्रकाशकताके अभावतैं "प्रदीप्त होताहै" ऐसा प्रयोग कैसैं करियेहै ? तहां कहैहैं ॥

२१२ ननु प्रदीप्त होतेकीन्यांई ऐसैं काहैतैं प्रयोग करि-

श्रुतञ्चेत्युपासीत। चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ७ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य त्रयोदशः खंडः ॥ १३ ॥

श्रुत है" ऐसें उपासनकरै। दर्शनीय अरु विश्रुत (प्रख्यात) होवैहै। जो ऐसें जानता है। जो ऐसें जानताहै ॥ ७ ॥

इतिश्री०मूलभा०तृतीयप्रपा०त्रयोदशःखंडः १३

ली दीतिके असंभवतैं ॥ इहां विश्वतैं पृष्ठनविषै। याका व्याख्यानः—सर्व ओरतैं पृष्ठनविषै ऐसैं है। अर्थ यह जोः—संसारतैं[213] उपरि है। संसारहीं[214] जातैं सर्व है। औ असंसारीकूं[215] एक

यहै। मुख्यहीं दीप्यमानता क्यूं नहीं होवैगी? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां हेतुका दोनूंओर संबंध है ॥

२१३ सर्व शब्दकूं असंकुचित अर्थविषै वर्त्तनेवाला होनेतैं आत्माकूंबी तिसकरि गृहीत होनेतैं तिसतैं ऊर्ध्व ब्रह्म है यह कैसैं घटित होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२१४ तिसीहीं (संसार)की सर्व शब्दकी वाच्यताकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां तिसी (संसार)कूं अनेक होनेकरि सर्व शब्दके योग्य होनेतैं। यह अर्थ है ॥

२१५ आत्माविषै सर्व शब्दके असंभवकूं कहैहैं ॥ इहां

वाला) हुया प्रवृत्तकीन्यांई अरु निवृत्तकी न्यांई होवैहै ॥ याहींतैं प्राणशरीर है। प्राण जो लिंगस्वरूप विज्ञान अरु क्रियारूप दो शक्तिनकरि मिलित है "जो[२७५] प्रसिद्ध प्राण है सो प्रज्ञा है। वा जो प्रज्ञा है सो प्राण है" इस श्रुतितैं। सो प्राण है शरीर जिसका ऐसा जो ईश्वर सो प्राणशरीर है औ "मनोमय[२७६] प्राणरूप शरीरका नेता (नायक) है" इस अन्य श्रुतितैं ॥ औ भारूप है। भा जो चैतन्यलक्षणवाली दीप्ति। सो है रूप जिसका सो भा-

---

नेतैंहीं। यह अर्थ है औ संमूर्छितपना कहिये संपिंडित (मिलित)पना ॥

२७५ विज्ञानशक्तिके अरु क्रियाशक्तिके एकहीं लिंगात्माविषै मिलितपनैंमैं अन्यश्रुतिकूं प्रमाण करैहैं ॥

२७६ यथोक्त दो विशेषणोंविषै अथर्वणवेदकी श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मनकी वृत्तिनकरि भासमान होनेतैं आत्मा मनोमय है। प्राणहीं प्रत्यगात्माका सूक्ष्मशरीर है "औ तिसका यह स्थूलदेहतैं अन्यदेहकेप्रति ले जानेवाला है" इस अथर्वणवेदकी श्रुतितैं आत्माविषै दो विशेषणोंकी सिद्धि है ॥ इहां यह अर्थ है:—इहां मनोमय अरु प्राणशरीर। ये दो विशेषण जीवगतबी तिसके अभेदकी विवक्षाकरि ब्रह्मविषै देखनेकूं योग्य हैं ॥

रूप है ॥ औ सत्यसंकल्प है। सत्य (अवितथ) है संकल्प जिसके सो यह सत्यसंकल्प है। इहां यह अर्थ है:– जैसा[२७७] संसारी (जीव)का संकल्प है तैसा अनैकांतिक (व्यभिचारी) फलवाला संकल्प ईश्वरका नहीं है। अ[२७८]नृतस्वरूप मिथ्या फलवान्तारूप हेतुकरि हृत (हत) होनेतें संकल्पकूं मिथ्या फलवान्ता है। यातैं "अ[२७९]नृतकरि हृत (स्वरूपतैं निकासे) हुये" ऐसैं आगे अष्टमविषै श्रुति कहैगी ॥ औ आकाशात्मा है। आकाशकी न्यांई आत्मा (स्वरूप) जिसका है सो आकाशात्मा है। ईश्वरकूं स[२८०]र्वगतपना अत्यंतसूक्ष्मपना अरु रूपादिर-

२७७ "सत्यसंकल्प है" इस वाक्यविषै विशेषणकरि ध्वनित (सूचित) अर्थकूं दिखावै हैं ॥ इहां इव शब्द तथा (तैसैं) अर्थवाला है ॥

२७८ संसारीके संकल्पकूं व्यभिचारी फलवान्पना कैसैं है? तहां कहैहैं ॥

२७९ संकल्पके अनृतकरि संसारीविषै हृतपनैमैं वाक्यशेषकूं प्रमाण करैहैं ॥

२८० जड अजडरूप आकाश अरु इतर (परमात्मा)की तुल्यता नहीं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

हितपना जो है सो आकाशकी तुल्यता है ॥ औ सर्वकर्मा है। [२८१]सर्व कहिये विश्व (संपूर्ण) तिस ईश्वरकरि करियेहै ऐसा जो जगत् सो सर्वकर्म है। सो सर्व कर्म इसका है ऐसा जो ईश्वर सो सर्वकर्मा है "सोई सर्वका कर्त्ता है" इस श्रुतितैं ॥ औ सर्वकाम है । सर्व काम दो[२८२]षरहित जिसके हैं ऐसा जो ईश्वर सो सर्वकाम है "भूतनविषै धर्मसैं अविरुद्ध काम मैं हूं" इस गीतास्मृतितैं ॥ ॥ [२८३]ननु काम मैं हूं"। इस वचनतैं इहां "सर्वकाम (सर्वकामवाला)" ऐसैं बहुव्रीहि समास नहीं संभवैहै ? [२८४]यैंहैं कथन बनै

---

२८१ ननु "सर्वकर्मा (सर्वकर्मवाला)" ऐसैं ईश्वरकूं सर्व क्रियाकी आश्रयता कहियेहै। सो अयुक्त है । काहेतैं निष्क्रियताकी श्रुतितैं? यह आशंकाकरिके व्याख्यान करैहैं ॥

२८२ संसारीनतैं ईश्वरके विशेषकीसिद्धिअर्थविशेषण देते हैं ॥

२८३ उदाहरणकरी स्मृतिकूं आश्रय करिके उक्त अर्थकेप्रति पूर्ववादी आक्षेप करैहै ॥

२८४ परमात्मासैं कामके सामानाधिकरण्य (एकत्व)विषै बाधक (दोष)की प्रतीतितैं बहुव्रीहि समासहीं है। ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-ता कामकूं कार्य-

नहीं:—काहेतैं कामकूं शब्द आदिककी न्यांई कर्त्तव्य होनेतैं औ [कर्मधारय समासकेहुये] देवकूं परार्थता (परतंत्रता) के प्रसंगतैं। [२८५]तातैं जैसैं इहां (श्रुतिविषै) "सर्वकाम" ऐसैं बहुव्रीहि समास है। तैसैं "काम मैं हूं" इस स्मृतिका अर्थ कहनेकूं योग्य है॥ औ सर्वगंध है। सर्व गंध [२८६]सुखकर इसकूं हैं सो यह सर्वगंध है [२८७]"पृथिवीविषै पुण्यगंध [मैं हूं]" इस स्मृ-

---

रूप होनेतैं तिसकेसाथि एकताके हुये ब्रह्मकी अनादिता बाधकूं पावैगी औ कामकूं चेतनरूपकरि शेष होनेतैं तिसके साथि एकताके हुये ब्रह्मकी स्वतंत्रता नष्ट होवैगी। ऐसैं हुये कर्मधारय समासके असंभवतैं इहां बहुव्रीहि समासहीं है॥

२८५ ननु तब "काम मैं हूं" यह तादात्म्य (काम अरु ईश्वरकी एकता) की स्मृति (गीताकी उक्ति) कैसैं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—काम अरु ईश्वरके मुख्यसामानाधिकरण्य (बाधकिये-विना स्वरूपसैं एकता) के असंभवतैं प्रकृतश्रुतिविषै जैसैं बहुव्रीहि समास इष्ट है। तैसैं स्मृतिविषैबी ब्रह्मकी परतंत्रता मात्र कामकूं विवक्षित है। काहेतैं श्रुतिअनुसारकरि स्मृतिकूं लगावनेकूं योग्य होनेतैं॥

२८६ सर्व शब्दतैं दुर्गंधनकीबी ब्रह्मविषै प्राप्तिके हुये विशेषण देते हैं॥

२८७ सर्व शब्दके संकोचविषै कारणकूं कहैहैं॥

तितैं ॥ तैसैं[२८८] रसबी जाननेकूं योग्य हैं । काहेतैं [२८९]अपुण्यरूप गंध अरु रसके ग्रहणकी पापके संबंधरूप निमित्तवान्‌ताके श्रवणतैं । "तातैं तिसकरि सुगंधि अरु दुर्गंधि दोनूंकूं सूंघताहै। [२९०]जातैं पापकरि यह (घ्राणगतप्राण) विद्ध है" इस श्रुतितैं औ ईश्वरकूं[२९१] पापका संसर्ग नहीं है। काहेतैं अविद्या[२९२]आदिक दोषके असंभवतैं ॥ औ

---

२८८ जैसैं "सर्व गंध हैं" इस ठिकाने सुखकरगंध ब्रह्मके संबंधी दिखाये । तैसैं "सर्व रस हैं" इस ठिकाने सुखकरहीं रस तिसके संबंधी ग्रहणकरनेकूं योग्य हैं। ऐसैं कहैहैं ॥

२८९ इहांबी सर्वशब्दके संकोचविषै कारणकूं कहैहैं ॥ इहां परमात्माविषै ताका ग्रहण नहीं । यह शेष है ॥

२९० तत् शब्दके अर्थकूंहीं उपपादन करैहैं ॥ इहां उक्त श्रुतिविषै "यह" ऐसैं घ्राणगत प्राणकी उक्ति है ॥

२९१ ननु पापके संसर्गका किया अपुण्यरूप गंध आदिकका ग्रहण होहू । तथापि सो सर्वज्ञ ईश्वरविषै कैसैं नहीं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-निमित्तके अभावतैं ईश्वरकूं स्वसंबंधी होनेकरि अपुण्यरूप गंध आदिकका ग्रहण नहीं है ॥

२९२ ता ईश्वरके पापसैं असंबंधविषै हेतुकूं कहैहैं॥ इहां आदिपदकरि अस्मिता राग द्वेष अरु अभिनिवेश आदिक ग्रहण करियेहैं ॥

सर्व इस जगत्के प्रति अभ्यात्त(अभिव्याप्त) है [इहां अभ्यात्तशब्दविषै[२९३] व्याप्तिरूप अर्थवाले "अतति" धातुकी कर्त्ताविषै निष्ठा है]॥ तैसें अवाकी है। कहियेहै इसकरि ऐसी वाक् है वाक्हीं वाक है। यद्वाः—घञ्[२९४] प्रत्यय है अंतविषै जिसके ऐसे वचिधातुके करणरूप अर्थविषै वाकशब्द है। सो वाक जिसकूं विद्यमान है ऐसा जो जीव सो वाकी है। नहीं जो वाकी ऐसा जो ईश्वर सो अवाकी है। इहां वाक् इंद्रियका जो निषेध है सो घ्राण आदिकके निषेधके उपलक्षणरूप अर्थवाला है। गंध[२९५] अरु रसआदिकके श्रवणतैं ईश्वरकूं गंधआदिकके ग्रहणअर्थ घ्राण

---

२९३ "अभ्यात्त" ऐसैं इसके रूपकूं औ ताके अर्थकूं दिखावतेहुये कर्मविषै निष्ठाकूं ('क्त' ऐसा प्रत्यय है। ताकी कर्मरूप अर्थविषै वर्त्तनेकूं) निषेध करैहैं॥

२९४ वाक शब्दकी सिद्धिके प्रकारकूं रचते हैं॥ इधर "इहां" ऐसैं श्रुतिकी अरु ईश्वरकी उक्ति है औ उपलक्षण अर्थ है। घ्राणादिकके निषेधके। यह शेष है॥

२९५ अब ईश्वरविषै घ्राण आदिककी प्राप्तिके अभावतैं ताका निषेध उपलक्षित नहीं होवैगा? यातैं कहैहैं॥ इहां आदिशब्दकरि कामआदिक कहा है॥

एष म आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान्

अर्थः–यह मेरा आत्मा हृदयके मध्य

आदिक करण प्राप्त हैं। यातैं वाक्के निषेधकरि वे करण निषेध करियेहैं। "सो पाणिपा[२९६]-दसैं रहित हुया वेगवान् अरु ग्रहणका कर्त्ता है औ चक्षुसैं रहितहुया देखताहै औ कर्णसैं रहितहुया सुनताहै" इत्यादि मंत्ररूप वाक्यतैं। अरु अनादर कहिये संभ्रमसैं रहित है। [२९७]जातैं अनाप्तकाम (अप्राप्त कामवाले) पुरुषकूं अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिविषै संभ्रम (आदर) होवैहै। परंतु नित्यतृप्त ईश्वरकूं आप्तकाम होनेतैं कहीं बी संभ्रम नहीं है [यातैं सो आदररहित है]॥ २॥

टीकाः–[२९८]यँह यथोक्त गुणवाला मेरा आत्मा

२९६ इहां अन्योंका जो उपलक्षण कहा सो युक्त है। काहेतैं अन्यठिकानें साक्षात्हीं तिनके निषेधके श्रवणतैं। ऐसैं कहैहैं॥ इहां आदिपदकरि "सो वेद्य (ज्ञेय वस्तुके समूह) कूं जानता है औ ताका वेत्ता नहीं है" इत्यादि वाक्य ग्रहण करियेहै॥

२९७ ईश्वरके संभ्रम (आदर)के अभावकूं प्रतिपादन करैहैं॥

२९८ यथोक्त परमात्माके प्रत्यगात्मासैं अभेदकूं दिखावै हैं॥

व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा एष म आत्माऽन्त-

---

अतिशयकरि अणु (सूक्ष्म) है व्रीहितें वा यवतें वा सर्षपतें वा श्यामाक (सांवा) तें वा श्यामाकके तंडुलतें ॥ यह मेरा आत्मा हृ-

---

हृदयकमलके मध्य अतिशयकरि अणु (सूक्ष्म) है । व्रीहितें वा यवतें इत्यादि ॥ इहां [२९९] अत्यंत सूक्ष्मताके दिखावनेअर्थ । सर्षपतें [३००] वा श्यामाकतें वा श्यामाकके तंदुलतें [अतिशयकरि अणु है] ऐसें कहा ॥ ॥ ननु परिच्छिन्न परिमाणतें अतिशयकरि अणु है ऐसें कहेहुये आत्माकूं अणुपरिमाणवान्पना प्राप्त होवैगा ? यह आशंकाकरिके । यातें ताके निषेधअर्थ श्रुति आरंभ करैहैः—"यह मेरा आत्मा

---

२९९ व्रीहि (तंडुल) आदिक अनेक दृष्टांतनके ग्रहणके उपयोगकूं कहैहैं ॥

३०० अत्यंत अणुपनै अरु अत्यंत महत्पनैके व्यपदेशनके परस्पर विरोधकूं आशंका करिके । परिहार करैहैं ॥

हृदये ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः ॥ ३ ॥

दयके मध्य पृथिवीतैं अतिशयकरि बडा है। अंतरिक्षतैं अतिशयकरि बडा है। स्वर्गलोकतैं अतिशयकरि बडा है औ इन लोकनतैं अतिशयकरि बडा है ॥ ३ ॥

हृदयके मध्य पृथिवीतैं अतिशयकरि बडा है "इत्यादि वाक्यकरि ॥ औ [३०१] बडे परिमाणतैं बडेपनैकूं दिखावती हुयी श्रुति। अनंत-परिमाणवान्ताकूं दिखावैहै "[३०२] मनोमय" इससैं आदिलेके "इन लोकनतैं अतिशयकरि बडाहै" इहांपर्यंत जो वाक्य है तिसकरि॥ ३॥

---

३०१ पृथिवी अरु अंतरिक्ष आदिककी न्यांई ईश्वरका सातिशय (आपेक्षित) महत्पना विवक्षित है? इस शंकाकूं निवारते हैं ॥

३०२ पुनरुक्तिके उपयोगकूं कहैहैं ॥ इहां जो तिन गुणों-

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वर-

अर्थः—सर्व कर्मवाला है सर्वकामवाला

टीकाः—[३०३]यथोक्त गुणोंकरि लक्ष्य ईश्वर ध्यावनेकूं योग्य है परंतु तिनगुणोंकरि विशिष्टहीं नहीं। जैसें "राजपुरुषकूंल्याव। औ चित्रगु (विचित्र गौआंवाले गोपाल)कूं ल्याव" ऐसें कहेहुये विशेषणके बी ल्यावनेविषै ल्यावनेवाला पुरुष प्रवृत्त होता नहीं। ताकीन्यांई इहां बी प्राप्तभया। यातें ताकी निवृत्ति अर्थ "सर्वकर्मा है" इत्यादि फेर कथन है। [३०४]तातें मनोमयता आदिक गुणोंकरि विशिष्टहीं ईश्वर ध्यावनेकूं योग्य है। [३०५]याँहीतें षष्ठ अरु सप्तम प्रपाठकविषै

करि लक्षित है सोई ईश्वर केवल ध्यावनेकूं योग्य है। यह अर्थ है॥

३०३ "यथोक्त गुणवाला ईश्वर ध्यावनेकूं योग्य है" ऐसें कहेहुये गुणोंकीबी ध्यानकर्मता (ध्यानकी विषयता) दुर्वार (दुःखसैं निवारणकरनेकूं अशक्य) है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

३०४ पुनरुक्तिके फलकूं समाप्त करैहैं॥

३०५ सगुण ईश्वरकी ध्येयताविषै अन्य प्रमाणकूं कहैहैं॥

सः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसम्भविताऽस्मीति यस्य स्या-

---

है सर्वगंधोंवाला है सर्वरसोंवाला है औ सर्व इसकेप्रति अभिव्याप्त है अवाकी है अरु आदररहित है ॥ यह मेरा आत्मा हृदयके मध्य है। यह ब्रह्म है। "इहातैं म-

---

जैसैंः–"तत्त्वमसि (सो तूं हैं)। आत्माहीं यह सर्व है" ऐसैं कहा है। ताकीन्यांईं। इहां स्वाराज्यविषै अभिषेककूं पावतानहीं। काहेतैं "यह मेरा आत्मा है। यह ब्रह्म है। इसतैं मरिके मैं याकूं प्राप्त होऊंगा" इस लिंगतैं। परंतु आत्मशब्दकरि प्रत्यगात्माहीं नहीं कहियेहै। काहेतैं "मेरा" इस षष्ठीविभक्तिकूं संबंधरूपअर्थकी निश्चायक होनेतैं औ "याकूं प्राप्तहोऊंगा" ऐसैं कर्म अरु कर्त्तापनैंके

इहां यह अर्थ हैः–स्वरूपके वाचक आत्मशब्दकी श्रुतिके असंभवतैं ताके बलतैं अद्वैतरूप वाक्यार्थकी सिद्धि नहीं है ॥

दद्धा न विचिकित्साऽस्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥ ४ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

रिके याकूं प्राप्त होऊंगा" ऐसा जिसकूं साक्षात् होवै। संशय नहीं है॥ ऐसैंहीं कहताभया शांडिल्य। शांडिल्य ॥ ४ ॥

इति श्री०मूलभा०तृतीयप्रपा०चतुर्दशःखंडः १४

निर्देशतैं ॥ ॥ [३०६]ननु षष्ठप्रपाठकविषै बी "प्रारब्धभोगके अनंतर सत्कूं पावताहै" ऐसैं सत्की संपत्ति (प्राप्ति)की कालांतरविषै भावीपनैकूं श्रुति दिखावैहै।? [३०७]सो कथन बनै नहीं:—काहेतैं आरंभकिया है संस्कार (सुखा-

---

३०६ भेदके लिंगतैं जब इहां भेद विवक्षित है तब षष्ठप्रपाठकविषैबी तिस लिंगके दर्शनतैं अखंडरूप वाक्यार्थकी सिद्धि नहीं होवैगी? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

३०७ इहां (षष्ठप्रपाठकविषै) जीव ब्रह्मका भेद विवक्षित नहीं है। काहेतैं आरंभ किया है संस्कार (सुखादिक) जिस कर्मनैं तिसकर्मके शेषकी स्थितिविषै श्रुतिके तात्पर्यतैं । ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

दिक) जिस कर्मनैं सो कर्म आरब्धसंस्कार है। ता कर्मके शेषकी स्थितिरूप अर्थपर होनेतैं उक्त मोक्षकी श्रुतिकी [३०८]कालांतरभावीअर्थवानता नहीं है। [३०९]अन्यथा "तत्त्वमसि(सो तूं हैं)" इस अर्थके बाधके प्रसंगतैं ॥ ॥ [३१०]यद्यपि आत्मशब्दका प्रत्यगात्मारूप अर्थवान्पना औ "सर्व यह ब्रह्म है" ऐसैं यह जो प्रकृत है। सोई "यह मेरा आत्मा हृदयके मध्य है यह ब्रह्म है" ऐसैं कहियेहै? तथापि किंचित् अंतर्धान (अंत-

---

३०८ ननु सत् (ब्रह्म)की प्राप्तिविषै कालके अंतरायकरि युक्तपनाहीं इहां विवक्षित क्यूं नहीं होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

३०९ ब्रह्मकी प्राप्तिके कालांतरविषै भाविपनैके इष्टहुये "तत्त्वमसि (सो तूं हैं)" ऐसैं ब्रह्मभावके वर्त्तमान उपदेशके असंभवतैं। इस हेतुकूं कहैहैं ॥

३१० ननु प्रकरणकरि अनुगृहीत आत्मा अरु ब्रह्म शब्दकरि इहांबी ब्रह्म आत्माकी एकताहीं विवक्षित होवैगी? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः—लिंगकरि अनुगृहीत षष्ठी विभक्तिवाली श्रुतिके वशतैं प्रकरणकरि अनुगृहीत दो श्रुतियां किसी प्रकारसैंबी लगानेकूं योग्य हैं। काहेतैं प्रकरणकी दो श्रुतिनतैं लिंगकी दो श्रुतिनकूं बलवती होनेतैं औ आत्माकी श्रुतिके अन्यप्रकारसैं संभवकूं उक्त होनेतैं ॥

राय)कूं अपरित्याग करिकेहीं । इस आत्माकूं इस शरीरतैं मरिके मैं प्राप्तहोऊंगा । ऐसैं कहा ॥ जैसैं[311] क्रतु (निश्चय)रूप आत्माका मैं प्राप्त होनेवाला हूं इस रीतिसैं जिस ऐसैं जाननेवालेकूं "सत्य मैं मरिके ऐसैं होऊंगा" ऐसा साक्षात् निश्चय होवै । औ ऐसैं नहीं होऊंगा? ऐसा क्रतुके फलसैं संबंधवाले इस अर्थविषै संशय नहीं है। सो विद्वान् तैसैं हीं ईश्वरभावकूं पावताहै । ऐसैं[312] इसकूं शांडिल्य-

---

३११ सगुणब्रह्मके उपासककूं एकवार तत्वके ज्ञानमात्रतैं अदृष्ट फल नहीं सिद्ध होवैहै । किंतु देहपात कालविषैबी साक्षात्कारकी अनुवृत्ति (अनुवर्त्तन) करि युक्त होनेकूं योग्य है । इस अभिप्रायकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:- निश्चयके अनुसारी सगुण परमात्माका मैं प्राप्त होनेवाला हूं ऐसैं जाननेवाले जिसकों "मरिके मैं ऐसैं होऊंगाहीं" ऐसा सत्य निश्चय होवै । परंतु "नहीं होऊंगा" ऐसा क्रतु फलके संबंधविषै संशय नहीं है । सो क्रतु (निश्चय)के अनुसार करिहीं परमात्मभावकूं पावताहै । तैसैं हुये "अद्धा (साक्षात्)" इस वाक्यतैं मरणकालविषैबी साक्षात्कारकरि युक्त होना योग्य है । ऐसैं भासताहै ॥

३१२ यथोक्त अर्थके सांप्रदायिक (परंपराकरि प्राप्त) प-

अथ तृतीयप्रपाठ॰पंचदशः खंडः॥१५॥

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न

अथ श्री॰मूलभाषा॰तृतीयप्रपाठक॰पंचदशः खंडः१५

अर्थः—अंतरिक्षरूप उदरवाला अरु भू-

नामा ऋषि कहताभया ॥ इहां दो वार कथन आदरकेअर्थ है ॥ ४ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठकस्य चतुर्दशः खंडः॥१४

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰ पंचदशः खंडः१५

पुत्रदीर्घायुफलक विराट् कोशोपासना ७

टीकाः—"[३१३]ईसके कुलविषै वीर जन्मताहै" ऐसैं कहा। [३१४]परंतु वीरका जन्ममात्र पिताके र-

---

नैकूं कथन करैहैं ॥ इहां आदर जो है सो ऋतुके फलसैं संबंधरूप विषय (अर्थ) वाला है ॥

इति श्री॰ तृतीयप्रपाठकगतचतुर्दशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १४ ॥

अथ तृतीयप्रपाठकगतपंचदशखंडस्य टिप्पणम् १५

३१३ ननु उक्त शांडिल्यविद्यासैं समनंतर (पीछले) ग्रंथका संबंध नहीं है? यह आशंकाकरिके । व्यवहित (अंतरायसहित त्रयोदश खंडरूप पूर्वग्रंथ)सैं संबंधकूं दिखावनेकूं अनुवाद करैहैं ॥

३१४ अब उत्तरग्रंथके तात्पर्यकूं कहनेकूं भूमिकाकूं करैहैं ॥

जीर्यति। दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्यो-त्तरं बिलꣳ स एष कोशो वसुधानस्त-स्मिन्विश्वमिदꣳ श्रितम् ॥ १ ॥

भिरूप मूल (तल)वाला कोश जीर्ण होता नहीं ॥ दिशाहीं इसके कोण हैं। स्वर्गलोक इसका उत्तर (ऊपरका)बिल है॥ सो यह कोश वसुधान है। तिसविषै विश्व यह स्थित है ॥ १ ॥

क्षणअर्थ होता नहीं। काहेतें "[३१५]तातें शिक्षित पुत्रकूं लोक्य (लोकका हेतु) कहतेहैं" इस अन्यश्रुतितें। यातें सो दीर्घआयुषवान्पना कैसें होवै? इसअर्थ कोशके विज्ञानका आरंभ है ॥ योग्य[३१६] विज्ञानके व्यासंगतें अनंतरहीं नहीं

---

३१५ तहां बृहदारण्यक श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां पुत्रकूं लोक्य होनेतें। यह "तातें" शब्दका अर्थ है ॥

३१६ अनुशासनकारि विषयकिये पुत्रकूं लोकप्राप्तिका साधन होनेतें अनुशासन (शिक्षा)कूं प्राप्तभये पुत्रकूं वेदका अध्ययन है॥ पुत्रजन्मके कथनके अनंतरहीं यह विज्ञान

कहा । सो अबहीं आरंभ करियेहैः—अंतरिक्ष है उदर कहिये भीतरका छिद्र जिसका सो यह अंतरिक्षोदर ऐसा कोश है । कोशैं[३१७]कीन्यांई अनेक कोशके धर्मोंकरि सादृश्यतैं कोश है औ[३१८] सो भूमिबुध्न है । भूमि है बुध्न कहिये मूल जिसका सो भूमिबुध्न है । सो कोश जीर्ण होता नहीं कहिये विनाशकूं पावतानहीं । काहेतैं

क्यूं नहीं उपदेश किया ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—गायत्री उपाधिवाले ब्रह्मके उपासनवालेकूं कौक्षेय (उदरगत) ज्योतिविषै आरोप करिके परब्रह्मका उपासन योग्य (श्रेष्ठ) है औ ता उपासनका मनोमयताआदिक गुणवाले ब्रह्मका उपासन अंतरंग (समीपका) साधन है । तैसैं हुये तिस वचनकरि तिसविषै संलग्न होनेतैं अनंतरहीं कोशका विज्ञान नहीं कहा । औ तिस व्यासंगके निवृत्तभये ताकी दृष्टि अब यथोक्त फलकी सिद्धिअर्थ कहिये है । औ इधर कोश शब्दकरि सुवर्णआदिकके रखनेकी आधार मंजूषा (पेटी) कहिये है ॥

३१७ त्रैलोक्यके स्वरूपका कोशपना कैसैं है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

३१८ अनेक धर्मोंकरि सादृश्यकूं स्पष्ट करैहैं ॥

त्रैलोक्यस्वरूप होनेतें।[३१९] जातें सो सहस्रयुगरूप कालपर्यंत स्थायी है। सर्व [३२०] दिशां हीं इसके कोण हैं। [३२१] स्वर्गलोक इस कोशका उत्तर (उर्ध्व) बिल (छिद्र) है। सो यह [३२२] यथोक्तगुण-वाला कोश वसुधान है। प्राणीनका कर्म-फलनामक वसु(धन) धरियेहै इसाविषै यातें यह वसुधान है॥ [३२३] तिसके भीतर विश्व(स-मस्त) कर्मफल तिसके साधनोंकरि सहित यह जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकरि ग्रहण करियेहै सो आश्रित है। अर्थ यह जोः—स्थित है॥ १॥

---

३१९ तथापि याका अविनाशीपना कैसें है? तहां कहैहैं॥

३२० त्रैलोक्यके स्वरूपविषै कोशकी दृष्टि है। तहांबी भूमिविषै बुध्न (मूल)की दृष्टि है। ऐसें कहा॥ औ कोशका सापेक्ष अविनाशीपना ध्येयहोनेकरि दिखाया। अब दिशाओं-विषै कोशके कोणनकी दृष्टि कर्त्तव्य है। ऐसें कहैहैं॥

३२१ स्वर्गलोकविषै कोशके ऊपरके छिद्रभावकी बुद्धिकूं दिखावै हैं॥

३२२ यथोक्त कोशविषै वसुधानपनैकी दृष्टिकूं दिखावै हैं॥

३२३ ताहीकूं समर्थन करैहैं॥

तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम सहमाना नाम दक्षिणा राज्ञी नाम प्रतीची सुभूता

अर्थः–ताकी प्राचीदिशा जुहू नाम है। दक्षिणदिशा सहमाना नाम है। प्रतीची राज्ञी नाम है। उदीची सुभूता नाम है॥

टीकाः–तिसै[३२४] कोशकी प्राचीदिशा कहिये पूर्वदिशागत भाग जुहू नाम है। इस दिशाविषै कर्मिष्ठलोक पूर्वाभिमुख हुये होमकूं करतेहैं यातैं जुहू नाम है॥ दक्षिणदिशा सहमाना नाम है। इस दिशाविषै पापकर्मके फलोंकूं यमपुरीविषै प्राणी सहारतेहैं यातैं सहमाना नाम दक्षिणदिशा है॥ तैसैं प्रतीची (पश्चिम) दिशा राज्ञी नाम है। राजा जो वरुण तिसकरि अधिष्ठित(आश्रित) है। वा संध्याकालविषै राग(रंग)के योगतैं पश्चिम-

---

३२४ कोशके कोणपनैंकरि उक्त दिशाओंविषै बीचके विभागकूं कहैहैं॥

नामोदीची । तासां वायुर्वत्सः स य ए-
तमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद न पुत्ररोदꣳ

तिनका वायु वत्स है ॥ जो ऐसें इस वायुकूं
दिशाओंका वत्स जानताहै सो पुत्रके रो-

दिशा राज्ञीहै ॥ उदीची (उत्तरदिशा) सुभूता
नाम है । भूति (विभूति)वाले ईश्वर अरु कु-
बेरआदिककरि अधिष्ठित होनेतैं उत्तरदिशा सु-
भूता नाम है ॥ ॥ तिनें[325] दिशाओंका वायु
वत्स है । काहेतैं वायुकूं दिग्गजहोनेतैं । "पु-
रोवात" इत्यादि वाक्यके देखनेतैं ॥ सो[326] जो
कोईकबी पुत्रके दीर्घजीवितका अर्थी । ऐसें य-
थोक्तगुणवाले वायुकूं दिशाओंका वत्स अरु

---

३२५ विशिष्टनामवाली दिशाओंकी अनुचिंतन करनेकी योग्यताकूं कहिके । अब तिनके संबंधी वायुकूं अमरणधर्मवाला तिनका वत्स चिंतन करै । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां पुरोवात (पूर्ववात) आदिक । यह आदि शब्द तिसप्रकारके लौकिक अरु वैदिक प्रयोगनके संग्रहअर्थ है ॥

३२६ यथोक्त विज्ञानकी फलवान्ताकूं अब दिखावै हैं ॥

रोदिति। सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदꣳ रुदम् ॥ २ ॥

दनकूं रोता नहीं ॥ सो मैं ऐसें इस वायुकूं दिशाओंका वत्स जानताहूं । पुत्रके रोदनकूं मतिरोऊं ॥ २ ॥

अमृत जानताहै । सो पुत्ररोदकूं कहिये पुत्रनिमित्त रोदनकूं रुदन करता नहीं । अर्थ यह जोः—ताका पुत्र मरता नहीं ॥ [३२७]जातैं ऐसे विशेषणोंवाला कोश दिशा अरु वत्सकूं विषय करनेहारा विज्ञान है । यातैं सो मैं पुत्रके जीवितका अर्थी ऐसें इस वायुकूं दिशाओंका वत्स जानताहूं । यातैं पुत्ररोदकूं कहिये पुत्रके मरणनिमित्त रोदनकूं मतिरोऊं । अर्थ यह जोः—पुत्रका रोदन मेरेकूं मतिहोहू ॥ २ ॥

इहां यथोक्त गुणवालेकूं ऐसें कहा । इस अर्थका प्रकट करना "अमृत" ऐसें है ॥

३२७ उपदेशकिये सफल उपासनकूं उपसंहार करैहैं ॥

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना। प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना। भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना। भुवः प्रपद्येऽमु

अर्थः—अरिष्ट (अविनाशी) कोशकेप्रति प्रपन्न (शरणागत) भयाहूं इसकरि इसकरि इसकरि। प्राणकेप्रति प्रपन्न भयाहूं इसकरि इसकरि इसकरि। भूःके प्रति प्रपन्न भयाहूं इसकरि इसकरि इसकरि। भुवर्के प्रति प्रपन्न भयाहूं इसकरि इसकरि इसक-

---

टीकाः—[३२८]यथोक्त अरिष्ट (अविनाशी) कोशकेप्रति मैं पुत्रके आयुषअर्थ प्रपन्न (शरणागत) हूं। इसकरि इसकरि इसकरि॥ ऐसैं तीनवार पुत्रके नामकूं ग्रहण करैहै॥ तैसैं प्राणके प्रति प्रपन्न भयाहूं। इसकरि इसकरि इसकरि॥ भूःकेप्रति प्रपन्न भयाहूं। इसकरि

---

३२८ पुत्रके दीर्घ आयुष्वान्पनैकूं इच्छनेवाला पुरुष औ-

नाऽमुनाऽमुना । स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना ॥ ३ ॥

रि । स्वःके प्रति प्रपन्न भयाहूं इसकरि इसकरि इसकरि ॥ ३ ॥

इसकरि इसकरि ॥ भुवर्के प्रति प्रपन्न भयाहूं । इसकरि इसकरि इसकरि ॥ स्वःके प्रति प्रपन्न भयाहूं । इसकरि इसकरि इसकरि ॥ ॥ सर्वविषै " प्रपन्न भयाहूं " यह क्रियापद है औ फेरि मंत्रोंविषै पुत्रका तीनिवार नाम ग्रहण करैहै ॥ ३ ॥

लोकयके स्वरूपकूं कोशाकार कल्पना करिके ताकी विशिष्ट नामवाली च्यारी दिशाओंकूं औ तिनके स्त्रीभावकूं औ तिनके संबंधकरि अमरणधर्मवाले तिनके वत्सरूप वायुकूं चिंतन करै । ऐसैं प्रधान (मुख्य) उपासना कही । अब ताके अंगरूप जपकूं दिखावै हैं ॥ इहां इसकरि कहिये तिस निमित्तभूत पुत्रकरि । अर्थ यह जोः—पुत्रके दीर्घआयुषवान्पनैकूं निमित्तकरिके औ सर्वत्र कहिये सर्व मंत्रोंविषै "प्रपन्नभयाहूं" ऐसा क्रियापद उपायकूं दिखावनेकूं फेर ग्रहण किया हैः—औ निमित्तके निवेदनअर्थ फेरि फेरि मंत्रनविषै पुत्रके तीनिवार नामकूं ग्रहण करैहै । ऐसैं योजना है ॥

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति। प्राणो वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किञ्च। तमेव तत्प्रापत्सि ॥ ४ ॥

अर्थः-सो जो कहताभयाहूं किः-प्राणके प्रति प्रपन्नभयाहूं। ऐसैं प्राणहीं यह सर्वभूत है जो यह कछुक है। ताहीकूं तिस करि प्रपन्नभयाहूं ॥ ४ ॥

टीकाः-सो[३२९] मैं जो कहताभया किः-"प्राणकेप्रति प्रपन्न भयाहूं" याके व्याख्यान-अर्थ अब यह उपन्यास हैः-प्राणहीं यह सर्वभूत है जो यह कछु जगत् है ॥ "जैसैं[३३०] रथकी नाभिविषै अर होवैहैं" ऐसैं यह श्रुति आगे कहैगी ॥ यातैं तिसीहीं सर्वकूं तिस

---

३२९ "अरिष्टकूं" इत्यादिमंत्रकूं पूर्वहीं व्याख्यान किया होनेतैं "प्राणकेप्रति" इत्यादिमंत्रकूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां स (सो) शब्द वक्ताकूं विषय करनेवाला है ॥

३३० प्राणकी सर्वात्मताविषै वाक्यशेषकी अनुसारिताकूं

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ५ ॥

अर्थः—अनंतर जो कहताभयाहूं किः—भूःके प्रति प्रपन्नभयाहूं ऐसें। पृथिवीके प्रति प्रपन्नभयाहूं। अंतरिक्षकेप्रति प्रपन्नभयाहूं। स्वर्गलोककेप्रति प्रपन्नभयाहूं। ऐसेंहीं इसकरि कहताभयाहूं ॥ ५ ॥

प्राणके प्रतिपादनकरि मैं प्राप्तभयाहूं ॥ तैसें "भूःके प्रति प्रपन्नभयाहूं" ऐसें भूरादिक तीनलोकनके प्रति प्रपन्नभयाहूं। ऐसें ताकूं कहताभयाहूं ॥ ४ ॥

टीकाः— अनंतर मैं जो कहताभयाहूं किः—"भुवर्के प्रति प्रपन्नभयाहूं" ऐसें अग्नि आदिकनके प्रति प्रपन्नभयाहूं। ऐसें

दिखावै हैं ॥ इहां ताकी सर्वात्मता अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है ॥

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ६ ॥

अथ यदवोचꣳ स्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं

अर्थः—अनंतर जो कहताभयाहूं किः—भुवर्केप्रति प्रपन्नभयाहूं ऐसैं। अग्निकेप्रति प्रपन्नभयाहूं। वायुकेप्रति प्रपन्नभयाहूं। आदित्यकेप्रति प्रपन्नभयाहूं। ऐसैंहीं तिसकरि कहताभयाहूं ॥ ६ ॥

अर्थः—अनंतर जो कहताभयाहूं किः—स्वःकेप्रति प्रपन्नभयाहूं ऐसैं। ऋग्वेदके-

---

ताकूं कहताभयाहूं ॥ अनंतर मैं जो कहताभयाहूं किः—"स्वःके प्रति प्रपन्नभयाहूं" ऐसैं ऋग्वेद आदिकनकूं प्रपन्नभयाहूं। इसरीतिसैंहीं ताकूं कहताभयाहूं। ऐसैं [331] ॐ-

---

३३१ कब फेर इनमंत्रोंका जप करना? इस अपेक्षाके

प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम् ॥ ७ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य पञ्चदशः खंडः ॥ १५ ॥

प्रति प्रपन्नभयाहूं यजुर्वेदकेप्रति प्रपन्नभयाहूं सामवेदकेप्रति प्रपन्नभयाहूं । ऐसैंहीं तिसकरि कहताभयाहूं । तिसकरि कहताभयाहूं ॥ ७ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०पंचदशःखंडः१५

परतैं मंत्रनकूं जपे । तातैं पूर्व उक्त अजरकोशकूं । दिशा अरु वत्ससहित यथावत् (ज्योंकात्यों) ध्यावै ॥ ॥ इहां दोवार कथन आदरकेअर्थ है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपाठ०पंचदशः खंडः ॥१५॥

हुये । पूर्व उक्त प्रधानविद्याके अनंतर । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां ऊपरतैं । याका ध्यानकरिके ऊपरतैं । ऐसैं संबंध है औ इधर यथोक्त विज्ञानविषै वा जपविषै आदर है ॥

इति श्री०तृतीयप्रपाठकगतपंचदशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १५ ॥

अथ तृतीयप्रपाठ॰षोडशः खंडः ॥१६॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्वि-
ंशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विंश-

अथ श्री॰मूलभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰षोडशःखण्डः॥१६॥

अर्थः—पुरुषहीं यज्ञ है। ताके जे चोवी-
श वर्ष हैं। सो प्रातःकाल है। चोवीश अ-

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰षोडशः खंडः॥१६॥

आत्मदीर्घायुफलक आत्मयज्ञोपासना ७

टीकाः—[332]पुत्रके आयुष्अर्थ उपासन कहा औ जप कहा। अनंतर अब आत्मा (आप)के दीर्घजीवनअर्थ इस उपासनकूं औ जपकूं विधान करतीहुई श्रुति कहैहै। [333]जातैं आप जीवताहुया पुत्रादिफलके साथि जुडताहै अन्यथा नहीं। [334]यातैं

अथ तृतीयप्रपाठकगतषोडशखंडस्य टिप्पणं॥१६॥

३३२ उक्त अर्थकूं अनुवादकरिके "पुरुषहीं" इत्यादि अन्यखंडकूं प्रकट करैहैं ॥

३३३ ननु आपका दीर्घ जीवन क्यूं प्रार्थना करियेहै? तहां कहैहैं ॥

३३४ यथोक्त फलकी हेतुभूत विद्याकूं उठावते हैं ॥

त्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं त-
दस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वस-
व एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥

क्षरवाली गायत्री है । गायत्र (गायत्रीसं-
बंधी) प्रातःकाल है। याके तिस (प्रातःका-
ल)केप्रति वसु अनुगत हैं। प्राणहीं वसु हैं।
ये जातें इस सर्वकूं वास करावते हैं ॥ १ ॥

पुरुष आत्मा(आप)कूं यज्ञरूप संपादनकरैहै:—
जीवनविशिष्ट कार्यकरणका संघातरूप जैसा प्र-
सिद्ध हीं है तैसा पुरुषहीं[३३५] यज्ञ है। यह अर्थ
है [इहां "वाव" शब्द अवधारणरूपअर्थवाला
है] तैसैं[३३६] हीं सामान्यों (यज्ञके सादृश्यों)करि
यज्ञभावकूं संपादन करै है ॥ ॥ कैसैं[३३७] किः—

---

३३५ पूर्वले (स्थानविषै भये) आत्माका यज्ञपना (स्थान-
विषै होनेपना) पुरुषका कैसैं संपादन करियेहै ? तहां कहैहैं ॥

३३६ "वाव" शब्दके अवधारणरूप अर्थकूं प्रतिपादन करैहैं॥

३३७ यज्ञके अवयवोंके सादृश्यतैं पुरुषविषै यज्ञकी दृष्टि

तिसैं[338] पुरुषके जे आयुष्के चोवीश वर्ष हैं सो पुरुषनामवाले यज्ञका प्रातःकाल है ॥ ॥ किस सामान्य (तुल्यता) करि है ? यह कहैहैं:- चोवीशअक्षरवाली गायत्री छंदरूप है ।[339] गायत्र (गायत्रीसैं संबंधवाला) जातैं विधियज्ञका प्रातःकाल है ।[340] यातैं प्रातःकाल रूपसैं संपन्न चोवीश वर्षके आयुष्करि युक्त पुरुष है[341] यातैं वि-

---

कर्तव्य है ऐसैं कहा । अब साहश्यतैं यज्ञका संपादन कैसैं है ? यह पूर्ववादी पूंच्छता है ॥

३३८ तहां षोडश हैं अधिक जिसतैं ऐसे वर्षोंका शत पुरुषका आयु फलभूत है । ताकूं तीनप्रकारसैं (बाल यौवन अरु जरा भेदसैं) विभागकरिके । चोवीश वर्षके आयुविषै प्रातःकालकी दृष्टि कर्त्तव्य है । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं ॥

३३९ गायत्री छंदके चोवीश अक्षरवान्‌पनैके हुयेबी । शब्दविषै उक्त प्रातःकालकी दृष्टि कैसैं है ? यह आशंकाकरिकै कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-विधितैं अनुष्ठान किये बाह्य यज्ञका प्रातःकालकरि उपलक्षित कर्म प्रातःकाल है । औ तहां "गायत्री छंदवाला स्तोत्रादिरूप गायत्र प्रातःकाल है" यह श्रुति है ॥ औ यथोक्त पुरुषके आयुरूप प्रातःकालविषै चोवीश अक्षर हैं ॥

३४० फलित (सिद्धअर्थ)कूं कहैहैं ॥

३४१ तथापि पुरुषके आयुकूं यज्ञपना कैसैं है ? सो क-

धियज्ञके सादृश्यतैं यज्ञ है। तैसैं[342] उत्तर (यौवन अरु जरा) रूप दो आयुषनविषै बी दो (मध्याह्न अरु सायं) कालनकी संपत्ति त्रिष्टुप्[343]छंद अरु जगतीछंदके अक्षरोंके सामान्यतैं कहनेकूं योग्य है ॥ किंवा[344]:-इस पुरुषरूप यज्ञके तिस

हैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-अतः (यातैं) शब्दकाहीं अर्थ विधियज्ञके सादृश्यतैं यह है। औ विधिकरि अनुष्ठीयमान जो यज्ञ सो विधियज्ञ है। तिसके साथि सादृश्य जो पुरुषका प्रातःकालसैं संबंध है तिसतैं पुरुष यज्ञ है ॥

३४२ जैसैं यथोक्त (चोवीश वर्षरूप) पुरुषके आयुविषै प्रातःकालकी संपत्ति (संपादन) है। तैसैं आगे कहनेके पुरुषके दो आयुषनविषैबी माध्यंदिनकाल अरु तृतीयकाल है । ऐसैं दो कालोंकी संपत्ति देखनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

३४३ चोवीश वर्षपरिमित पुरुषके आयुविषै प्रातःकाल है। यातैं संख्याके सामान्यतैं वक्ष्यमाण पुरुषके दो आयुषनविषै दो कालोंकी संपत्तिमैं क्या कारण है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-चुमालीश अक्षरवाली त्रिष्टुप् प्रसिद्ध है औ त्रिष्टुप् छंदसैं संबंधवाला माध्यंदिनकाल है ॥ अरु अष्टच्यालीश अक्षरवाली जगती है औ जगती छंदसैं संबंधवाला तृतीयकाल है। यातैं संख्याके सामान्यतैं पीछले पुरुषके दो आयुषनविषै दो कालोंकी संपत्ति युक्त है॥

३४४ पुरुषकी यज्ञरूपताविषै विधियज्ञके साथि अन्य सादृश्यकूं कहैहैं ॥

प्रातःकालके प्रति विधियज्ञके [प्रातःकाल]-कीन्यांई वसुरूप देव अनुगत हैं। अर्थ यह जोः—[३४५]कालके देवता होनेकरि कालरूप सिद्धभये वयविषै स्वामी हैं ॥ ॥ [३४६]पुरुषरूप यज्ञविषै बी विधियज्ञकी न्यांई अग्निआदिक वसुरूप देव प्राप्त हैं। यातैं विशेषण देतेहैंः—वाक्आदिकरूप औ वायुरूप प्राण हीं वसु हैं। वे ये [३४७]जातैं इस पुरुषआदिक प्राणीनके समूहकूं वासकरावते-हैं। [३४८]जातैं देहविषै प्राणोंके वसतेहुये सर्व यह वसताहै अन्यथा नहीं। [३४९]यातैं वसनेतैं औ वसा-वनेतैं ये प्राण वसु हैं ॥ १ ॥

---

३४५ प्रातःकालविषै वसुनके तिनके देवताभावकरि सं-बंधतैं तत्व (स्वरूप)कूंहीं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

३४६ वसुनका कालका स्वामीपना दोनूं ठिकानैं (दो य-ज्ञोंविषै) तुल्य है ऐसैं कहेहुये पुरुषरूप यज्ञविषैबी प्राप्त प्र-सिद्ध वसुनकूं निषेध करैहैं ॥

३४७ तिन प्राणोंविषै वसुशब्दकी प्रवृत्तिकूं साधते हैं ॥

३४८ अन्यनिमित्तकूं कहैहैं ॥

३४९ प्राणोंके उपपादनकिये वसुपनैकूं उपसंहार करैहैं ॥

तञ्चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं मा-

---

अर्थः–ताकूं जब इस वयविषै किंचित् उपतापकरै [तब] सो कहैः–हे प्राणरूप वसु! इस मेरे प्रातःकालकूं माध्यंदिनका-

---

टीकाः–[३५०]ताँ यज्ञके संपादनकरनेवालेकूं जब इस प्रातःकालरूप संपन्न वयविषै किंचित् मरणकी शंकाका कारण व्याधिआदिक उपतापकरै कहिये दुःखकूं उत्पादनकरै। तब सो यज्ञका संपादक पुरुष आपकूं यज्ञरूप मानताहुया कहै। अर्थ यह जोः–इस मंत्रकूं जपेः– हे प्राणरूप वसु! यह मुजयज्ञका प्रातः- काल वर्तताहै ताकूं माध्यंदिन काल अनु-

---

३५० अब पुरुषयज्ञकी विद्याके अंगभूत आशीर्वादके प्रयोगकूं दिखावै हैं॥ इहां अनुसंतानकूं करो इस पदविषै अनुपद जो है सो एकीभावविषै मंत्र जपके विधियज्ञकेसाथि संबंधीसहितपनैकूं जनावता है औ इधर समान है। याका "ताके जे चोवीश वर्ष हैं" इत्यादिवाक्यकरि। यह शेष है॥

ध्यन्दिनꣳ सवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ २॥

ल अनुसंततकरो ऐसैं ॥ मैं यज्ञ प्राणरूप वसुनके मध्य विलोपकूं मति प्राप्त होऊं ऐसैं। तिस (उपताप)तैं ऊपर जाताहै । गदरहित होवैहीं है ॥ २ ॥

संतत करो ऐसैं । अर्थ यह जो:—माध्यंदिन कालरूप आयुकरि सहित एकीभूत निरंतर करो ॥ मैं यज्ञ प्रातःकालके ईशान (स्वामी) प्राणमय वसुरूप तुह्मारे मध्य विलोप (विच्छेद)कूं मति प्राप्त होऊं। यह अर्थ है ॥ इहां इति शब्द मंत्रकी समाप्तिअर्थ है ॥ सो तिस जपकरि औ ध्यानकरि तिस उपतापतैं ऊंचेगमनकरताहै । कहिये ऊंचेगमन करिके विमुक्तहुया । गद (अनुताप)सैं रहित होवैहीं है ॥ २ ॥

अथ यानि चतुश्चत्वारि꣱शद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारि꣱शदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति॥३॥

तञ्चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्

अर्थः—अनंतर जे चुमालीस वर्ष हैं सो माध्यंदिनकाल है । चुमालीस अक्षरवाली त्रिष्टुप् है। त्रिष्टुप्संबंधी माध्यंदिनकाल है। याके तिस (माध्यंदिनकाल)केप्रति रुद्र अनुगत हैं। प्राणहीं रुद्र हैं। ये जातें इस सर्वकूं रोदन करावते हैं ॥ ३ ॥

अर्थः—ताकूं जब इस वयविषै किंचित्

टीकाः—"अनंतर जे चुमालीश वर्ष हैं" इत्यादि वाक्य समान है ॥ [३५१] प्राण जातें रुदन

---

३५१ प्राणोंविषै रुद्रशब्दकी प्रवृत्तिमैं निमित्तकूं कहैहैं ॥

स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥४॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तृ-

उपताप करै [तब] सो कहैः—हे प्राणरूप रुद्र! इस मेरे माध्यंदिनकालकूं तृतीयकाल अनुसंतत करो। मैं यज्ञ प्राणरूप रुद्रोंके मध्य विलोपकूं मति प्राप्त होऊं ऐसैं। तातैं ऊंचे जाता है। गदरहित होवैहीं है ॥४॥

अर्थः—अनंतर जे अष्टच्यालीश वर्ष हैं

करते हैं औ सर्वकूं रुदन करावते हैं यातैं रुद्र हैं। [352] जोंतैं वे प्राण मध्यम वयविषै क्रूर होतेहैं यातै रुद्र हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

टीकाः—तैसैं आदित्यरूप प्राण हैं।

---

३५२ जो कहाकिः—"रोदनकूं करावते हैं यातैं रुद्र हैं"

तीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥ ५ ॥

तञ्चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स

सो तृतीयकाल है। अष्ठच्यालीस अक्षरोंवाली जगती है। जगतीसंबंधी तृतीयकाल है। याके तिस (तृतीयकाल)केप्रति आदित्य अनुगत हैं। प्राणहीं आदित्य हैं। ये जातैं इस सर्वकूं आदान करते हैं ॥ ५ ॥

अर्थः—ताकूं जब इस वयविषै किंचित्

---

३५३ वे जातैं इस शब्दआदिकके समूहकूं आदान (ग्रहण) करतेहैं। यातैं आदित्य हैं। वे तृतीय-

---

ऐसैं। ताकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां जैसैं प्राण वसुरूप अरु रुद्ररूप कहे। तैसैं [आदित्यरूप हैं] यह अर्थ है ॥

३५३ तिन प्राणोंविषै आदित्यशब्दकी प्रवृत्तिमैं निमित्तकूं कहैहैं ॥

ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीय-
सवनमायुरनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणा-
नामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सी-
येत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति॥६॥

उपतापकरै [तब] सो कहैः—हे प्राणरूप आदित्य! इस मेरे तृतीय कालरूप आयुकूं अनुसंतत करो ऐसैं। मैं यज्ञ प्राणरूप आदित्यनके मध्य विलोपकूं मति प्राप्त होऊं ऐसैं। तातें ऊंचे जाता है। कहिये गद (रोग) सैं रहित होवैहीं है ॥ ६ ॥

कालरूप आयुकूं षोडशोत्तर (शोला वर्ष हैं अधिक जिसतैं ऐसे) शत वर्षपर्यंत समाप्त करहू। अर्थ यह जोः—यज्ञकूं समाप्त करहू। [३५४]अन्य समान है ॥ ५ ॥ ६ ॥

---

३५४ "ताकूं जब" इत्यादि [द्वितीय अरु चतुर्थवाक्य-

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महीदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहम-

---

अर्थः—इस प्रसिद्ध तिसकूं विद्वान्हुया महिदास ऐतरेय कहताभयाः—सो (तूं रोग) काहेतें मेरेकूं यह (उपताप) जैसें होवै

टीकाः—निश्चितें[३५५] हीं विद्या फलकेअर्थ होवैहै यह दिखावतेहुये उदाहरणकूं देते हैंः—तिस इस यज्ञके दर्शनकूं विद्वान् नामतें महिदास ऐसा इतरामा ताका पुत्र ऐतरेय कहताभयाः—हे रोग! सो तूं। काहेतें मेरेकूं

रूप] पूर्वग्रंथकरि "ताकूं जब इस वयविषै" इत्यादि वक्ष्यमाण [षष्ठ वाक्यरूप] ग्रंथकूं तुल्य अर्थवाला होनेतें ताके व्याख्यानकी अपेक्षा नहीं है। ऐसें कहैहैं ॥

३५५ महिदासके उदाहरणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां तिस इस यज्ञके दर्शनकूं विद्वान् (जानता) हुया कहताभया। ऐसें संबंध है औ "ह वै" इन दो निपातरूप अक्षरोंका "किल" यह अर्थ है। औ सो उक्त उदाहरणकी प्रसिद्धिरूप अर्थवाला है औ हे रोग! काहेतें मुजकूं तूं उपताप करता हैं। ऐसें संबंध है ॥

नेन न प्रेष्यामीति स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥ ७ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

तैसैं उपताप करताहैं। जो मैं [हूंसो] इसकरि नहीं मरूंगा ऐसैं॥सो षोडश [अधिक] वर्षोंका शत जीवताभया। षोडश [अधिक] वर्षोंका शत प्रकर्षकरि जीवताहै जो ऐसैं जानताहै ॥ ७ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०षोडशःखंडः १६

यह उपतपन जैसैं होवै तैसैं उपताप करता हैं। जो[३५६] मैं यज्ञ उस तेरे किये उपतापसैं नहीं जाऊंगा कहिये नहीं मरुंगा। यातैं तेरा श्रम वृथा है। यह अर्थ है। ऐसैं[३५७] कहताभया।

---

३५६ "काहेतैं" इस आक्षेपविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां जो यज्ञ है सो मैं हूं। इसकरि। ऐसैं योजना है ॥

३५७ इति शब्दके अन्वयकूं कहैहैं ॥

इस रीतिसैं पूर्वले पदसैं संबंध है ॥ [३५८]सो ऐसैं निश्चयवाला हुया षोडशोत्तर वर्षशतपर्यंत जीवताभया । [३५९]अन्य बी ऐसैं निश्चयवाला षोडश अधिक शतवर्षपर्यंत प्रकर्षकरि जीवताहै । [३६०]जो ऐसैं यथोक्त यज्ञके संपादनकूं जानताहै सो । यह अर्थ है ॥ ७ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपाठ० षोडशः खंडः ॥१६॥

---

३५८ निश्चितविद्याके ध्यानकेप्रति फलकूं कथन करैहैं ॥

३५९ यद्यपि यथोक्त निश्चयवाले महिदासकूं यथोक्त फल कहा । तथापि आधुनिक पुरुषकूं क्या आया ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ प्रकर्षकरि जीवताहै । यह जीवनका प्रकर्ष रोगआदिक उपतापसैं रहिततारूप "प्र" शब्दकरि कहियेहै ॥

३६० ऐसे निश्चयवाला । ऐसैं उक्त पुरुषकूं स्पष्ट करैहैं ॥

इति श्री०तृतीयप्रपाठकगत षोडशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १६ ॥

अथ तृतीयप्रपाठ०सप्तदशःखंडः॥१७॥

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षाः ॥ १ ॥

अथ श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपाठकस्य सप्तदशःखंडः १७

अर्थः—सो जो अशनकरनेकूं इच्छता है। जो पानकरनेकूं इच्छताहै। जो नहीं रमता है। वे इसकी दीक्षा हैं॥ १ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपा०सप्तदशः खंडः॥१७॥

अक्षयादिफलक देवकीपुत्रार्थ आंगिरसोक्तात्मयज्ञोपासन७

टीकाः—"सो[३६१] जो अशन (भोजन) करनेकूं इच्छताहै" इत्यादि पुरुषके यज्ञके सादृश्यका निर्देश पूर्वग्रंथसैं संबंधकूं पावताहै॥ सो जो

अथ श्री०तृतीयप्रपाठकगतसप्तदशखंडस्य टि०॥१७

३६१ ननु पूर्वले आशीर्वादके प्रयोगरूप उदाहरणकरिहीं पीछले ग्रंथका संबंध नहीं देखिये है? तहां कहैहैं॥ इहां पूर्वकरि। याका "ताके जे चोवीश वर्ष हैं" इत्यादिवाक्यसैं। सादृश्यके निर्देशकरि। यह अर्थ है औ ऐसी जातिवाले याका क्षुधा आदिककेकिये। यह अर्थ है॥

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति ॥ २ ॥

अर्थः—अनंतर जो अशन करताहै। जो पान करताहै। जो रमण करता है। सो उपसदोंकेसाथि [समानताकूं] पावताहै॥२॥

अशन करनेकूं इच्छताहै। तैसैं पानकरनेकूं इच्छताहै। औ जो इष्ट आदिककी प्राप्तिके निमित्त नहीं रमताहै। जो ऐसी जातिवाले दुःखकूं अनुभव करताहै वे विधियज्ञकी न्यांई [३६२] दुःखके सामान्यतैं इस (पुरुषरूप यज्ञ)की दीक्षा हैं॥ १ ॥

टीकाः—[३६३] अनंतर जो भोजनकूं करताहै।

---

३६२ अशन करनेकी इच्छाआदिकनविषै दीक्षाकी दृष्टिमैं हेतुकूं कहैहैं॥

३६३ दीक्षावचनके सादृश्यतैं पुरुषका यज्ञपना कहा। अब उपसदूकरि युक्तपनैरूप सादृश्यतैंबी ताका यज्ञपना जाननेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं॥

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं

अर्थः—अनंतर जो हसताहै। जो भक्षण करताहै। जो मैथुनकूं आचरताहै।

जो पानकूं करताहै औ जो इष्टआदिकके संयोगतैं रतिकूं अनुभव करताहै। सो उपसदोंकरि समानताकूं पावताहै औ [364]उपसदोंका पयोव्रतवान्तारूप निमित्तवाला सुख है। औ अल्पभोजन करने योग्य दिवस समीप हैं ऐसैं प्रश्वास (स्वस्थताविशेष) है। यातैं अशन आदिकनका औ उपसदोंका समानपना है॥ २॥

टीकाः—[365]अनंतर जो हसताहै। जो भ-

३६४ भोजन करने आदिकनविषै उपसदूकी दृष्टि कैसैं है? तहां कहैहैं॥ इहां पयोव्रतवानूता कहिये पयके भक्षणकरि युक्तपना औ यज्ञविषै जे अल्पभोजनके योग्य दिवस प्रसिद्ध हैं वे उपसदोंविषै समीप करियेहैं। तिनोंविषै प्रश्वास कहिये स्वस्थताविशेष है औ अशनआदिकनविषै सो है। यह प्रसिद्ध है यह भाव है औ सुखनिमित्ततारूप अरु केशकी निवृत्तिकी हेतुतारूप दोनूंका सामान्य है॥

३६५ स्तुत शस्त्रकरि विशिष्टताकी समतातैंबी पुरुषका यज्ञपना है। ऐसैं कहैहैं॥

चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति ॥ ३ ॥

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिꣳसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥४॥

सो स्तुत शस्त्रोंकेसाथि हीं [समानताकूं] पावताहै ॥ ३ ॥

अर्थः—अनंतर जो तप दान आर्जव अहिंसा अरु सत्यवचन। ऐसैं वे इसकी दक्षिणा हैं ॥ ४ ॥

क्षण करताहै। जो मैथुनकूं आचरताहै। सो स्तुतशस्त्रोंकरिहीं समानताकूं पावताहै शब्दवान्ताके[३६६] सामान्यतैं ॥ ३ ॥

टीकाः—अनंतर[३६७] जो तप दान आर्जव अहिंसा अरु सत्यवचन हैं। ऐसैं वे इसकी दक्षिणा हैं। धर्मकी[३६८] पुष्टिकरताके सामान्यतैं ॥४॥

३६६ हास आदिकनविषै स्तुत शस्त्रकी दृष्टिमैं हेतुकूं कहैहैं॥

३६७ दक्षिणावान्ताके समानपनैतैं बी पुरुषका यज्ञपना निश्चय करनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

३६८ तप अरु दान आदिकनविषै दक्षिणाकी दृष्टिमैं हेतुकूं कहैहैं ॥

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवास्यावभृथः ॥ ५ ॥

अर्थः—तातें कहते हैं किः—प्रसूत होवैगी। प्रसूत होतीभई ऐसें। सो फेर उत्पादनहीं है। मरणहीं याका अवभृथ है ॥ ५ ॥

टीकाः—औ [369]जातें यज्ञरूप पुरुष है तातें ताकूं जब माता प्रसूत होवैगी तब अन्य ताकी माताकूं कहतेहैं किः—"प्रसूत होवैगी" ऐसें ॥ औ जब प्रसूता होवैहै तब पूर्णिका ॥ (मासोंकरि पूर्ण) हुयी प्रसूत होतीभई ऐसें॥ विधियज्ञविषै जैसैंः—देवदत्त सोमकूं प्रसूत क-

---

३६९ अन्य प्रकारकरि पुरुषके यज्ञपनेकूं साधते हैं॥ इहां यह अर्थ हैः—"षूङ् धातु प्राणीके प्रसव (जन्म)रूप अर्थविषै है औ षुञ् धातु अभिषव (सोमवल्लीके कूटनैं)रूप अर्थविषै है" ऐसें। दो धातुनके देखनेतैं प्रसवविषै औ कंडन (कूटनैं) विषै साधारण सवन शब्द है। तातैं वा सवनशब्दवानूता-करि सामान्यतैं पुरुषविषै यज्ञकी दृष्टि कर्तव्य है॥

तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय दे-

अर्थः–तिस प्रसिद्ध इसकूं घोर आंगि-

रैगा औ। यज्ञदत्त सोमकूं प्रसूत करताभया ऐसैं । ताकीन्यांईं शब्दका सामान्य है ॥ यातैं ॥ वा। शब्दके सामान्यतैं पुरुष यज्ञ है॥ [३७०] फेर इस पुरुष नामवाले यज्ञका सो उत्पाद् नहीं है जो प्रसूत होती है अरु जो प्रसूत होतीभई। इस शब्दका संबंधीपना विधियज्ञकीन्याईं है ॥ किंवा[३७१]:–सो मरणहीं इस पुरुषरूप यज्ञका अवभृथ (यज्ञके अंतका स्नान) है। समाप्तिके सामान्यतैं ॥ ५ ॥

टीकाः–तिसें[३७२] प्रसिद्ध इस यज्ञके दर्शनकूं

---

३७० पुरुषगत शब्दके सामान्यकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां जो फेर इस पुरुषनामवाले यज्ञका विधियज्ञकी न्यांई "प्रसूत होवैगी" इत्यादि शब्दसैं संवंधीपना है सो उत्पादनहीं है। ऐसैं योजना है ॥

३७१ अवभृथ (अंतकेस्नान)का संवंधी होनेतैं बी पुरुषका यज्ञपना है। ऐसैं कहैहैं ॥

३७२ पुरुषविषै यज्ञकी दृष्टि कही। अब श्रेष्ठ पुरुषके सं-

वकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभू-
व सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षि-

रस देवकीकेपुत्र कृष्णकेअर्थ कहिके कहता-
भया। सो (कृष्ण) पिपासारहितहीं होता-
भया॥ सो (यज्ञका वेत्ता) अंतवेलाविषै
इनतीनकूं जपेः—अक्षित हैं। अच्युत हैं।

नामतैं घोर ऐसा गोत्रतैं आंगिरस देवकीके
पुत्र कृष्णरूप शिष्यकेअर्थ कहिके कहता-
भया॥ "सो यह तीन" इत्यादि अंतरायस-
हित वाक्यसैं संबंध है॥ औ[३७३] सो (कृष्ण) इस
दर्शनकूं सुनिके अन्य विद्याओंकेअर्थ पिपासा-
रहितहीं होताभया॥ औ[३७४] ऐसैं विशिष्ट यह

बंधकरि विद्याकूं स्तुतिकरनेकूं औ विद्याके अंगरूप जपकूं
विधानकरनेकूं आरंभ करैहैं॥

३७३ देवकीके पुत्रकूं इस दर्शनके श्रवणका फल कहैहैं॥

३७४ ननु यह गुरु शिष्यकी आख्यायिका किस अर्थवाली
है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

तमस्यच्युतमसि प्राणसꣳशितमसीति
तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥ ६ ॥

प्राण अरु संशित (सूक्ष्म) हैं ऐसें ॥
तिसविषै ये दो ऋचा होवैहैं ॥ ६ ॥

विद्या है जो देवकीके पुत्र कृष्णकी अन्यविद्याकेप्रति तृष्णाके विच्छेदकी करनेवालीभई। ऐसें पुरुषरूप यज्ञकी विद्याकूं स्तुति करैहै ॥ ॥ घोर आंगिरस कृष्णकेअर्थ इस विद्याकूं कहिके क्या कहताभया? ऐसें। सो कहैहैः—सो ऐसें यथोक्त यज्ञका वेत्ता अंतकीवेला (मरणकाल)विषै इस मंत्रके त्रयकूं जपे। यह अर्थ है ॥ ॥ सो (मंत्रका त्रय) क्या है किः—"अक्षित कहिये अक्षीण वा क्षतरहित हैं" यह एक यजुर् है। औ [३७५] सामर्थ्यतें आदित्यविषै स्थित प्राणकूं एककी-

---

३७५ "तूं अक्षित हैं" ऐसें किसप्रकारकी देवता कहिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है? निकृष्टकू स्तुति संबंधके अयोगतैं औ पुरुष यज्ञविषै अन्य कालदेवताके असंभवतैं

न्यांई करिके कहैहै ॥ तैसें[376] ताहीकूं कहैहैः—"अच्युत कहिये स्वरूपतें प्रच्युतिरहित हैं" यह द्वितीय यजुर् है। औ "प्राणसंशित कहिये प्राण ऐसा सो संशित नाम सम्यक् तनूकृत (सूक्ष्म) सो तूं हैं। यह तृतीय यजुर् है॥ तिसँ[377] इस अर्थविषै विद्याकी स्तुतिपर ये दो ऋचा (मंत्र) होवैहैं। जपके[378] अर्थ नहीं हैं। काहेतें "तीन मंत्रनकूं जपे" इहां श्रुतिविषै कही है जो तीनकी

प्राणोंकाहीं अधिदैविकरूप आदित्य नामक जो है सो जप्यमंत्रका अर्थ होनेकरि संबंधकूं पावताहै ॥

३७६ द्वितीयमंत्रके अन्य अर्थकूं निवारते हैं ॥ इहां तैसें याका प्रथममंत्रवत्। यह अर्थ है औ दोनूंकी एक अर्थवान्ताके होते दोनूंमैंसें एककी व्यर्थता नहीं है। काहेतें दोनूंकूंबी जपने योग्य होनेकरि उपयोगी होनेतें। ऐसें देखनेकूं योग्य है ॥

३७७ तीनमंत्रोंकारि प्रतिपादन करनेकूं योग्य सूर्यका तत्व दो ऋचाओंकरि बी प्रतिपादन किया है। ऐसें प्रत्ययकी दृढताअर्थ कहैहैं ॥

३७८ इन दो ऋचारूप मंत्रनकी विद्याकी स्तुतिकरता क्यूं अंगीकार करिये है। जपअर्थता हीं क्यूं नहीं होवैगी? तहां कहैहैं ॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसो उद्वयन्तम-
सस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरꣳ स्वः

अर्थः—प्रत्न (पुरातन) रेतके [ज्योतिकूं] आ(च्यारीओरतैं देखतेहैं)। हम । तमतैं पर ज्योतिकूं उत्तर (सूर्यस्थ) देखतेहुये

संख्या ताके बाध होनेतैं[३७९] तब पंचसंख्याहीं होवैगी ॥ ६ ॥

टीकाः—"[३८०]आदित्" इस पदविषै आकारका

---

३७९ इन दोनूं ऋचाओंकी जपअर्थताके हुये बी नेडेहीं उक्त जपयोग्य मंत्रनकी तीनपनेकरि संख्याके सद्भावतैं सो तीनकी संख्या बाध करनेकूं योग्य नहीं है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—इन दो ऋचाओंके जपकरनेकी योग्यताके हुये "मंत्रोंके पंचककूं जपे" ऐसैं श्रुतिविषै पंचसंख्याकूं कहनेकूं योग्य होनेतैं श्रुतिविषै कहा है जो जपयोग्य मंत्रनका तीनपना सो बाधित होवैगा ॥

३८० "प्रत्न (पुरातन) रेत (कारण)के ज्योतिकूं वासर (दिवसकी न्यांई व्याप्त) सर्व ओरतैं देखते हैं । जो परप्रकाशरूपविषै स्थित हुया प्रदीप्त होवैहै" इस मंत्रका प्रतीक (आदिशब्द) "आदित्प्रत्न रेतके" यह है । ताकूं पदच्छेदपूर्वक व्याख्यान करैहैं ॥ इहां औ "इत्" शब्द अर्थरहित है । ऐसैं पूर्वलेपदसैं संबंध है ॥

पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति ॥ ७ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्य सप्तदशः खंडः ॥ १७ ॥

अरु स्वः (हृदयगतज्योति)कूं उत्तर (उत्कृष्टतर) देखते हुये जाते भये ॥ देवनविषै देव सूर्यरूप उत्तमज्योतिके तांई ऐसें। उत्तमज्योतिके तांई ऐसें ॥ ७ ॥

इतिश्री०मूलभाषा०तृतीयप्र०सप्तदशः खंडः १७

अनुबंध (संबंधी) जो तकार औ इत् शब्द है सो अर्थरहित हैं ॥ प्रत्न कहिये चिरंतन। अर्थ यह जोः—पुराण ऐसें कारणरूप बीजभूत सत्[381]नामवाले जगत्रूप रेतके ज्योति (प्रकाश)कूं

---

३८१ सो कारण क्या है? इस अपेक्षाके हुये "हे सोम्य ! यह आगे सत्हींथा" इत्यादि श्रुतिकरि सिद्ध ब्रह्म है । ऐसें कहैहैं ॥ इहां "ब्रह्मके आनंदकूं विद्वान् (जानता) हुया" याकी न्यांई "प्रत्न (पुरातन)के ज्योतिकूं" ऐसें संबंध देखनेकूं योग्य

देखते हैं ॥ [इहां त्याग किया है तत् [अरु इत्] का संबंध जिसनैं ऐसा "आ" शब्द "देखते हैं" इस क्रियापदसैं संबंधकूं पावता है]॥ ॥ किस तिस ज्योतिकूं देखते हैं? वासर जो दिवस तिसरूपकूं। दिवसकीन्यांई सो ब्रह्मका ज्योति सर्व ओरतैं व्याप्त है। अर्थ यह जोः—निर्वृत्त[३८२]चक्षुवाले अरु ब्रह्मचर्य[३८३]आदिक निवृत्तिके साधनोंकरि

है औ उत्कृष्ट अनुबंधवाला है। याका लुप्त तकारवाला सो (आशब्द) है। यह अर्थ है॥

३८२ ननु ब्रह्मस्वरूपभूत इस ज्योतिकूं सर्व देखतेहुये नहीं देखियेहैं? तहां कहैहैं ॥ इहां निवृत्त कहिये विषयनतैं विमुख किये हैं चक्षु (करण) जिनोंके वे तैसे (निवृत्त चक्षु) हैं। याहींतैं ब्रह्मवेत्ताकी "कोइकबी धीर आवृत्तचक्षुवाला अमृतभावकूं इच्छता हुया प्रत्यगात्माकूं देखताहै"? यह अन्य श्रुति है॥

३८३ तहांहीं अन्य उपायकूं सूचन करैहैं ॥ इहां "स्त्रीका स्मरण कीर्त्तन केलि (खेल) प्रेक्षण गुह्यभाषण संकल्प निश्चय औ क्रियानिर्वृत्ति (क्रियासैं आनंद)। इस मैथुनकूं मनीषीजन अष्ट अंगवाला कहते हैं औ इसतैं विपरीत यहहीं अष्ट लक्षणवाला ब्रह्मचर्य है" सो ब्रह्मचर्य है अरु आदिपदकरि अहिंसा अरु अचोरीआदिक ग्रहण करिये है। इन निवृत्तिप्रधान साधनोंकरि शुद्ध कहिये प्रदीप्त है अंतःकरण जिनोंका वे तैसे हैं॥

शुद्ध अंतःकरणवाले ब्रह्मवेत्ता आ कहिये च्यारि ओरतें ज्योतिकूं देखते हैं॥ सो कैसा है किः—परः कहिये परं (उत्कृष्ट) है ऐसें लिंगके पलटावने-करि कहा। काहेतें परशब्दकूं ज्योतिपर[३८४] होने-तें। औ जो प्रकाशरूप परब्रह्मविषै वर्त्तमान हु-या प्रदीप्त होवैहै कहिये प्रकाशताहै। तिस[३८५] ज्योतिकरि प्रकाशित हुया सूर्य तपता है। चं-द्रमा प्रकाशताहै। विद्युत् विद्योतन (प्रकाशन) करैहै औ ग्रह अरु तारागण प्रकाशते हैं॥ किंवाः[३८६]— अन्य मंत्रका द्रष्टा (ऋषि) यथोक्त ज्योतिकूं दे-खता हुया कहैहैः—हम[३८७] जातेभये। कहिये अ-ज्ञानरूप तमतें पर। वा[३८८] तमके दूरिकरनेवाले।

३८४ व्यत्यय (लिंगके पलटावने)विषै हेतुकूं कहैहैं॥ इहां स्वमहिमाविषै स्थित हुया प्रदीप्त होवैहै सो परज्योति है। ऐसें संबंध है॥

३८५ दीप्यमानपनेकूं विवरण करैहैं॥

३८६ अन्य मंत्रकूं अवतार देते हैं॥ इहां औ इसतें। विद्याकी स्तुति अर्थ है। यह अर्थ है॥

३८७ अन्यमंत्रका द्रष्टा क्या कहताभया? इस अपेक्षाके हुये। द्वितीयमंत्रकूं ग्रहण करैहैं॥

३८८ ताकूं व्याख्यान करैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—तिसीहीं ज्योतिके आनविषै अन्य ज्योति नहीं है॥

जिस उत्तर कहिये आदित्यविषै स्थित ज्योति-कूं देखते हुये हम जातेभये। [ऐसें अंतरा-यसहित पदसैं संबंध है] सो ज्योति [३८९]स्वं कहिये आत्माका (हमारे हृदयविषै स्थित) है। कहिये [३९०]आदित्यविषै स्थित अरु सो एक ज्योति है। [३९१]जिस उत्तर कहिये अतिशयकरि उत्कृष्ट वा अ-पर ज्योतिकूं अपेक्षा करिके अतिशयकरि ऊर्ध्व ज्योतिकूं [३९२]देखतेहुये हम जातेभये॥ ॥ कि-[३९३]सकेप्रति जातेभये? यह कहैहैः—सर्व देवनविषै द्योतनवाले देव औ रसनके रश्मिनके अरु ज-गत्के प्राणोंके ईरण (प्रेरण) तैं जो सूर्य है ता उत्तम (सर्व ज्योतिनतैं अतिशयकरि उत्कृष्ट)

---

३८९ देवभावकरि प्रत्यगात्मभावकूं कहैहैं॥

३९० "सो जो यह" इत्यादि वाक्यनविषै अन्य श्रुतिकरि सिद्ध तिन दोनूंकी एकताकूं दिखावै हैं॥

३९१ तत्पदके अर्थकूं औ त्वंपदके अर्थकूं कहिके तिनदो-नूंकी एकता कही। अब एकीभूत ज्योतिकूं विशेषण देतेहैं॥

३९२ एकताके ज्ञानके फलकूं कथन करैहैं॥

३९३ फलकूंहीं प्रश्नपूर्वक विवरण करैहैं॥

अथ तृतीयप्रपाठ॰ अष्टादशःखंडः १८

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथा-

अथ श्री॰मूलभाषा॰तृतीयप्रपाठकस्याष्टादशः खंडः१८

अर्थः—"मन ब्रह्म है" ऐसें उपासन करै।

ज्योतिकेप्रति हम जातेभये । अर्थ यह जोः—[३९४]अहो (बडा हर्ष है कि) हम प्राप्तभये ॥[३९५]यह सो ज्योति है जो दो ऋचाओंकरि स्तुत है अरु जो तीन यजुर्वेदके वाक्यनकरि प्रकाशित है ॥ इहां दो अभ्यास जो है सो यज्ञकी कल्पनाकी परिसमाप्तिअर्थ है ॥ ७ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰ तृतीयप्रपाठकस्य सप्तदशःखंडः१७

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपाठ॰अष्टादशःखंडः१८

मन आदिदृष्टिसैं अध्यात्माधिदैविक ब्रह्मोपासना ६

टीकाः—[३९६]मनोमय औ आकाशात्मा । ऐसा ई-

---

३९४ फलकूं विषय करनेवाले स्वअनुभवकूं दिखावै हैं ॥

३९५ तीन मंत्रनकी अरु दो मंत्रनकी एकवाक्यताकूं उपसंहार करैहैं ॥

इति श्री॰तृतीयप्रपाठकगतसप्तदशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १७ ॥

अथ श्री तृतीयप्रपाठकगताष्टादशखंड॰ टिप्पणं १८

३९६ ननु यज्ञके विज्ञानकेसाथि वक्ष्यमाण विज्ञानकी सं-

धिदैवतमाकाशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भ-
वत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ॥ १ ॥

यह अध्यात्म है ॥ अब अधिदैवत [कहियेहै]:—"आकाश ब्रह्म है" ऐसें। उभय आदेश किया होवैहै अध्यात्म अरु अधिदैवत ॥ १ ॥

श्वर कहा। तहां ब्रह्मकूं[३९७] दो गुणोंकी एकदेशताकरि [मन औ आकाश कहा] ॥ [३९८] अनंतर अब मन अरु आकाशविषै समस्त ब्रह्मकी दृष्टिके विधानअर्थ आरंभ है "मन ब्रह्म है" इत्यादिः—

गति नहीं है। यातैं तिनका पूर्व अपरभाव कैसें होवैगा? यह आशंकाकरिके। पीछले खंडके पूर्वले अंतरायसहित (१४ वें) खंडसैं संबंधकूं कहैहैं ॥ इहां औ ऐसें ईश्वर कहा। इसरीतिसैं पूर्व (१४ वें) खंडसैं संबंध है ॥

३९७ तहां ब्रह्मके दोगुणनकूं एकदेशरूप होनेंकरि मन औ आकाश कहा। ऐसें कहैहैं ॥

३९८ यथोक्त गुणवाले ब्रह्मकी दृष्टिकरि समर्थकूं तिन दोनूंविषैहीं संपूर्ण ब्रह्मदृष्टिके कथनअर्थ उत्तर ग्रंथकूं अवतार देते हैं ॥ इहां ऐसें दोनूं उपदेश किये होवैहैं। ऐसें संबंध है ॥

मनन करता है इसकरि ऐसा जो अंतःकरण सो मन है सो परब्रह्म है ऐसैं उपासन करै। यह आत्मविषयक दर्शन [399]अध्यात्म है ॥ अब देवताविषयक इस अधिदैवतकूं हम कहते हैं:— आकाश ब्रह्म है। ऐसैं उपासन करै ॥ इसरीतिसैं अध्यात्म औ अधिदैवत उभय (दोनूं) ब्रह्मदृष्टिका विषय उपदेशकिया होवैहै। काहेतैं आकाश अरु मनकूं सूक्ष्म होनेतैं औ [400]मैंनकरि ब्रह्मकूं उपलभ्य होनेतैं मन ब्रह्मदृष्टिके योग्य है औ सर्वगत होनेतैं सूक्ष्म होनेतैं अरु उपाधिरहित होनेतैं [401]आकाश ब्रह्मदृष्टिके योग्य है ॥ १ ॥

---

३९९ तिसीहीं दोनूंकूं विभाग करैहैं ॥

४०० मनकी दृष्टिका विषय होनेकरि अध्यात्मरूप "मन ब्रह्म है" ऐसा उपासन कैसैं विधान करिये है? तहां कहैहैं ॥

४०१ तथापि आकाश कैसैं ब्रह्मदृष्टिका विषय होवैहै। जातैं ब्रह्म तिसकरि प्राप्त होता नहीं? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां ब्रह्मदृष्टिके योग्य है। ऐसैं पूर्वलेपदसैं संबंध है ॥

तदेतच्चतुष्पाद् ब्रह्म। वाक् पादः प्राणः पादश्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमग्निः पादो वायुः पाद

अर्थः—सो यह चतुष्पाद ब्रह्म है। वाक् पाद है। प्राण पाद है। चक्षु पाद है। श्रोत्र पाद है । यह अध्यात्म है। अब अधिदैवतः—अग्नि पाद है। वायु पाद है। आ-

---

टीकाः—सो यह[402] मन नामवाला अरु च्यारीपादवाला कहिये च्यारी हैं पाद इसके ऐसा ब्रह्म है॥ मन[403]रूप ब्रह्मकूं च्यारीपादवान्पना कैसें है? यह कहैहैः—वाक् प्राण चक्षु अरु श्रोत्र। ये च्यारीपाद हैं। यह अध्यात्म है॥ ॥

---

४०२ विहित उपासनके अध्यात्म अरु अधिदैवतरूप अंगके अनुचिंतनकूं दिखावै हैं॥

४०३ मनके च्यारी पादवान्पनैकूं प्रश्नपूर्वक व्युत्पादन करैहैं॥

आदित्यः पादो दिशः पाद इत्युभयमे-
वादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च २
वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सोऽग्निना

दित्य पाद है। दिशा पाद हैं। ऐसें उभयहीं
आदेश किया होवैहै। अध्यात्म औ आधि-
दैवत॥ २॥

अर्थः—वाक्हीं ब्रह्मका चतुर्थपाद है।

---

[४०४] अब अधिदैवत कहिये हैः—आकाशरूप ब्रह्मके
अग्नि वायु आदित्य अरु दिशा ये च्यारी पा-
द हैं॥ ऐसें [४०५] उभयहीं च्यारीपादवाला ब्रह्म
उपदेश किया होवैहै। अध्यात्म औ अधि-
दैवत॥ २॥

टीकाः—[४०६] तहाँ वाक्हीं मनरूप ब्रह्मका इतर

---

४०४ आधिदैविक आकाशके च्यारीपादवान्‌पनैकूं प्र-
कट करैहैं॥

४०५ मन अरु आकाशके उक्त च्यारीपादवान्‌पनैकूं नि-
गमन करैहैं॥

४०६ अध्यात्मरूप पादनकूं प्रपंचन करैहैं॥

ज्योतिषा भाति च तपति च। भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३ ॥

सो अग्नि ज्योतिकरि भासताहै अरु तपताहै ॥ कीर्तिकरि यशकरि अरु ब्रह्मवर्चसकरि भासताहै अरु तपताहै । जो ऐसैं जानताहै ॥ ३ ॥

तीनपादोंकी अपेक्षाकरि चतुर्थ पाद है । [४०७]जातैं वाक्रूप पादकरिहीं गौ आदिककीन्यांई वक्तव्य विषयकेप्रति स्थित होवैहै । यातैं मनका पादकीन्यांई वाक् है ॥ तैसैं प्राण (घ्राण) पाद है [४०८]तिसैंकरिबी गंधविषयकेप्रति जाता है॥ तैसैं चक्षुपाद है । श्रोत्रपाद है । ऐसैं मनरूप ब्रह्मका

---

४०७ वाक्के पादपनैकूं व्युत्पादन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जैसैं गौआदिक गंतव्य पदार्थके प्रति पादकरिहीं पावता है । देवदत्त बी वाक्रूपहीं पादकरि वक्तव्य विषयकूं संपादन करैहै । तिसकरि ताका पादपना युक्त है ॥

४०८ वाक्कीन्यांई प्राणके पादपनैकूं दिखावै हैं ॥

अध्यात्मरूप चतुष्पादवान्‌पना है ॥ [४०९] अनंतर अधिदैवत हैः—अग्नि वायु आदित्य अरु दिशा। आकाशरूप ब्रह्मके गौ (बैल)के उदरविषै लग्न पादोंकीन्यांई उदरविषै विलग्नकीन्यांई देखियेहैं। इसकरि तिस आकाशके अग्निआदिक पाद कहियेहैं ॥ [४१०] ऐसैं उभय अध्यात्म औ अधिदैवत च्यारीपादवाला उपदेश किया होवैहै ॥ [४११] तिनमैं वाक्हीं मनरूप ब्रह्मका चतुर्थ पाद है। सो अधिदैवतरूप अग्नि ज्योतिकरि भासता (प्रदीप्त होता) है औ तपता है कहिये संतापकूं अरु उष्णताकूं करताहै ॥ [४१२] अथवाः—तैल अरु घृत आ-

---

४०९ आधिदैविक पादोंकूं विवरण करैहैं ॥ जैसैं गौके उदरविषै पाद लग्न देखिये हैं। तैसैं आकाशके उदरकीन्यांई उदरविषै अग्नि आदिक लग्न देखिये हैं। तातैं ताके वे पादकीन्यांई होवैहैं ॥

४१० द्विविध पादके विवरणकूं उपसंहार करैहैं ॥

४११ अब आध्यात्मिक पादोंके आधिदैविक पादोंकेसाथि अधिष्ठेयता (आधेयता)करि संबंध अनुचिंतन करनेकूं योग्य है। ऐसैं दिखावनेकूं आरंभ करैहैं ॥

४१२ "सो अग्निकरि" इत्यादिवाक्यके अन्य अर्थकूं क-

मन आदिदृष्टिसैं अध्यात्माधिदैविकब्रह्मोपासना ६

प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च। भा-

---

अर्थः–प्राणहीं ब्रह्मका चतुर्थपाद है। सो वायुज्योतिकरि भासताहै अरु तपता

दिक घर्म पदार्थनके भक्षणकरि प्रदीप्त हुयी वाक् भासती (प्रकाशती) है औ तपती है। अर्थ यह जोः–वचनके अर्थ उत्साहवाली होवैहै ॥ विद्वान्कूं फलः–भासता है अरु तपता है कीर्त्तिकरि यशकरि अरु ब्रह्मवर्चसकरि । जो ऐसें यथोक्तकूं जानता है ॥ ३ ॥

टीकाः–तैसें प्राण (घ्राण)हीं ब्रह्मका चतुर्थपाद है। सो वायुकरि गंधरूपसैं वा गंधके अर्थ भासता है औ तपता है ॥ तैसें चक्षु आ-

---

हैहैं ॥ इहां कीर्त्ति अरु यशका प्रत्यक्षपनै अरु परोक्षपनैकरि भेद है औ सर्वत्र। याका दोनूं ओर संबंध है ॥

इति श्री॰ तृतीयप्रपाठकगताष्टादशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १८ ॥

ति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्च-
सेन य एवं वेद ॥ ४ ॥

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स आ-
दित्येन ज्योतिषा भाति च तपति च ।
भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्म-
वर्चसेन य एवं वेद ॥ ५ ॥

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स दि-

है ॥ कीर्तिकरि यशकरि अरु ब्रह्मवर्चस-
करि भासताहै अरु तपताहै । जो ऐसैं
जानताहै ॥ ४ ॥

अर्थः—चक्षुहीं ब्रह्मका चतुर्थ पाद है ।
सो आदित्यज्योतिकरि भासताहै अरु त-
पताहै ॥ कीर्तिकरि यशकरि अरु ब्रह्मवर्च-
सकरि भासता है अरु तपताहै । जो ऐसैं
जानताहै ॥ ५ ॥

अर्थः—श्रोत्रहीं ब्रह्मका चतुर्थपाद है ।

दित्यकरि रूपग्रहणके अर्थ ॥ औ श्रोत्र दिशा-

ग्भिर्ज्योतिषा भाति च तपति च। भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ६ ॥

इति तृतीयप्रपाठकस्याष्टादशः खंडः ॥ १८ ॥

सो दिशाज्योतिकरि भासताहै अरु तपताहै ॥ कीर्तिकरि यशकरि अरु ब्रह्मवर्चसकरि भासताहै अरु तपताहै । जो ऐसैं जानताहै ॥ ६ ॥

इति श्री०मूलभाषा०तृतीयप्रपा०अष्टादशःखंडः

ओंकरि शब्द ग्रहणकेअर्थ ॥ विद्याका फल समान है । सर्वत्र ब्रह्मकी संपत्ति अदृष्ट फल है। जो ऐसैं जानता है ॥ इहां दो वार कथन दर्शनकी समाप्ति अर्थ है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०तृतीयप्रपा०अष्टादशः खंडः॥ १८ ॥

अथ तृतीयप्रपा॰एकोनविंशःखंडः १९

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्या-

अथ श्री छांदोग्योपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया-
स्तृतीयप्रपाठकस्यैकोनविंशः खंडः प्रारभ्यते॥१९॥

अर्थः–"आदित्य ब्रह्म है" ऐसा आदेश

अथ श्री॰ भाष्यभाषा॰तृतीयप्रपा॰एकोनविंशःखण्डः
आदित्यांडदृष्टिसैं अध्यात्माधिदैविक ब्रह्मोपासना ४

टीकाः–[४१३]आदित्य ब्रह्मका पाद कहा । यातैं तिसविषै सकलब्रह्मकी दृष्टिअर्थ यह आरंभ करियेहैः–आदित्य ब्रह्म है। ऐसा आदेश (उपदेश) है। ताका उपव्याख्यान स्तुतिअर्थ करियेहैः–असत् (प्रकटनामरूपरहित)हीं यह अशेष जगत् आगे कहिये उत्पत्तितैं पूर्व अवस्थाविषै होताभया । परंतु असत् (शून्य)हीं नहीं-

---

अथ तृतीयप्रपाठकगतैकोनविंशतितमखंडस्य
टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ १९ ॥

४१३ अन्यखंडकी संगतिकूं कहैहैं ॥ इहां ताका । ऐसैं आदित्य ग्रहण करियेहै ॥

ख्यानमसदेवेदमग्र आसीत् तत्सदासी-
त्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्तत तत्संवत्स-

है। ताका उपव्याख्यानः—असत्हीं यह
आगे होताभया। सो सत् होताभया। सो
सम्यक् होताभया। तिनतें आंड होताभया।
सो संवत्सरकी मात्राकेतांई (संवत्सरप-

था। काहेतें "असत्तें सत् कैसें उपजै" ऐसें श्रु-
तिविषै असत्के कार्यभावके निषेधतें ॥ ॥ ननु[414]
इहां "असत्हीं था" ऐसें विधानतें विकल्प (उ-
भयपक्ष) होवैगा? सो [415]बनै नहीं:—काहेतें क्रि-

---

४१४ अप्रकटनामरूपवान्ताके अभिप्रायकरि असत् शब्द गौण व्याख्यान किया। तहां एवकारके आश्रयकरि पूर्ववादी शंका करैहै॥ इहां यह अर्थ हैः—"असत्तें सत् कैसें उपजेगा" ऐसें असत्के कारणभावकूं षष्ठविषै निराकरण किया होनेतें तहां सत् कारण होहु। परंतु प्रकृत वाक्यविषै साधारण असत् शब्दतें असत्हीं कारण विवक्षित है। ऐसें उदित अरु अनुदित होमकीन्यांई विकल्प होवैगा॥

४१५ क्रियाकूं कर्त्ताके अधीन होनेतें ताकी इच्छाकरि तहां क्रियाविषै विकल्पतें। सिद्धवस्तुकूं तो ता कर्त्ताकी इ-

रस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आ-
ण्डकपाले रजतञ्च सुवर्णञ्चाभवताम् १

यँत) स्थित होताभया। सो भेदनकूं प्रा-
प्तभया। वे दो अंडकपाल रजत अरु सुवर्ण
होतेभये ॥ १ ॥

याओंविषै जैसैं विकल्प होवैहै तैसैं वस्तुविषै
विकल्पके असंभवतैं ॥ ॥ नंनु[४१६] तब "असत्हीं
था" यह कैसें कहा? [तहां जो सिद्धांती असत्
शब्दकी गतिरूप प्रवृत्तिकूं कहैं किः—] नंनु[४१७] (य-
द्यपि) अव्याकृत (अप्रकट) नामरूपवाला हो-
नेतैं असत्कीन्यांई असत् है ऐसैं ॥ ॥ नंनु[४१८] (त-

च्छाका अननुसारी होनेतें वस्तुविषै विकल्प नहीं संभवै
है। जातैं स्थाणुहीं किसीकीबी अपेक्षाकरि पुरुष नहीं हो-
वैहै ॥ ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

४१६ विकल्पके असंभवविषै उक्त श्रुतिवाक्यकी प्रवृत्ति-
रूप गति कहनेकूं योग्य है? ऐसैं पूर्ववादी पूंछताहै ॥

४१७ असत् शब्दकी गति तेरेकारि पूंछिये है। वा अव-
धारणकी गति पूंछिये है? तिनमैं प्रथम पक्षकेप्रति सि-
द्धांती कहैहैं ॥

४१८ द्वितीयपक्षकूं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

थापि) श्रुतिगत एव शब्द अवधारणरूपअर्थवाला है [ताकी कौंन गति है]? [तहां सिद्धांती कहैहैं किः—] [419]सत्य ऐसैं है। परंतु श्रुतिगत एव शब्द जो है सो सत्ताके अभावकूं निश्चय करावता नहीं किंतु नामरूप व्याकृत विषयविषै सत् शब्दका प्रयोग देख्या है औ सो जगत्के नामरूपका व्याकरण (प्रकटपना) बहुतकरिके आदित्यके अधीन है। ताके अभाव हुये जातैं अंधतमरूप यह कछुबी नहीं जानियेगा ऐसैं है। यातैं ता आदित्यकी स्तुतिपरवाक्यविषै सत् (विद्यमान)बी यह जगत् उत्पत्तितैं पूर्व असत्हीं था ऐसैं [420]ब्रह्मदृष्टिकी योग्यताअर्थ श्रुति।

---

४१९ पूर्वकालसंबंधी सत्ताकेवाचक "आसीत् (होताभया)" शब्दके वाक्यशेषविषै श्रवणतैं उपक्रमविषै सत्ताके अभावका अवधारण (निश्चय) विवक्षित नहीं है किंतु जगत्की अभिव्यक्ति (प्रकटता)के अभावका अवधारण आदित्यकी स्तुतिअर्थ है। ऐसैं सिद्धांती समाधान करैहैं॥

४२० फेर यह आदित्यकी स्तुति कहां उपयोगकूं पावती है? तहां कहैहैं॥

आदित्यकूं स्तुति करैहै ॥ [421] जातैं लोकविषै आदित्यके निमित्त "सत्" ऐसा व्यवहार है। [422] जैसैं सर्वगुणसंपन्न पूर्णवर्मा राजाके असत् (अविद्यमान) होते यह राजाका कुल असत्हीं होवैहै ऐसैं। ताकीन्यांई ॥ [423] औ ईहां जगत्की सत्ता वा असत्ता प्रतिपादन करनेकूं इच्छित नहीं है। काहेतैं "ब्रह्म है" इस आदेशके पर होनेतैं ॥ [424] अंतविषै "आदित्य ब्रह्म है। ऐसैं उपासता है" इसरीतिसैं उपसंहार करैगी ॥ सो सत् होता-

---

४२१ जगत्के नामरूपका प्रकट करना आदित्यके अधीन है ऐसैं ताकूं उपपादन करैहैं ॥

४२२ तथापि आदित्यकी स्तुति कैसैं है? यह आशंकाकरिके। दृष्टांतसैं दिखावै हैं ॥

४२३ किंवाः—उपक्रम अरु उपसंहारकी एकरूपताकरि आदित्यविषै ब्रह्मदृष्टिपर यह वाक्य है ताका कारणके असद्भावविषै तात्पर्य कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है। काहेतैं। अनन्यथा सिद्ध (अन्यप्रकारसैं असिद्ध) कल्पकके अभावतैं। ऐसैं कहैहैं ॥

४२४ वाक्यका तिस अर्थविषै तात्पर्यवान्पना कैसैं जान्या? यह आशंकाकरिके। उपसंहारकूं उपक्रमता अनुसारी होनेतैं। ऐसैं कहैहैं ॥

भया कहिये सो उत्पत्तितैं पूर्व असत् शब्दका वाच्य स्तिमितै[४२५] (निस्पंदरहित) असत्कीन्यांई हुया। कार्यके[४२६] अभिमुख किंचित्[४२७] उत्पन्न प्रवृत्तिवाला सत् होताभया॥ तातैं प्राप्त स्फुरणवाला सो सम्यक् होताभया कहिये अत्यंत अल्प नामरूपके व्याकरणकरि अंकुरीभूतकीन्यांई बीज होताभया॥ तातैंबी[४२८] क्रमकरि स्थूलकीन्यांई होताभया। सो जलोंतैं[४२९] आंड स-

४२५ ताकूं असत् शब्दका वाच्यपना कैसैं है? सो कहैहैं॥

४२६ तब सत्पना कैसैं है? सो कहैहैं॥

४२७ बीजकी पुष्टताकी न्यांई कारणकी स्रजनेकी इछाकी अवस्थाकूं दिखावै हैं॥ इहां यह अर्थ हैः—प्राप्तस्फुरणवाला हुया। याका प्राप्तपरिणामवाला हुया भूतसूक्ष्मोंके (अपंचीकृत भूतोंके) आकारकारि होताभया॥

४२८ सूक्ष्मभूतनकी उत्पत्तिके अनंतर स्थूलभूतनकी उत्पत्तिकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—भूतसूक्ष्मोंके आकारकी प्राप्तिके अनंतर पंचीकरणरूप क्रियाकरि परस्परके अवयवोंके अनुप्रवेशसैं स्थूलभूतरूप अवस्थावाला होताभया॥

४२९ स्थूलभूतनतैं ब्रह्मांडकी उत्पत्तिकूं प्रतिज्ञा करैहैं॥ इहां जलोंतैं। याका जलसहित पंच स्थूल भूतनतैं। यह अर्थ है औ अवश्याय शब्दकरि हिम कहियेहै॥ औ उलूलु। ऐसैं उत्सवकालके संबंधी शब्दविशेष देशविशेषविषै प्रसिद्ध

तद्यद्रजतꣳ सेयं पृथिवी यत्सुवर्णꣳ सा द्यौर्यज्जरायु ते पर्वता यदुल्बꣳ स मे-

---

अर्थः–तिनमैं जो रजतरूप था सो यह पृथिवी भई औ जो सुवर्णरूप था सो स्वर्गलोक है। औ जो जरायु भया वे पर्वत-भये। जो उल्ब भया सो मेघसहित नीवार

म्यक् वर्त्तताभया [इहां आंड यह दीर्घभाव छांदस है]॥ सो अंड संवत्सररूप प्रसिद्धकालकी परिमाणरूप मात्राकेताँई अभिन्नस्वरूप हुयाहीं स्थित होताभया॥ तिस संवत्सरपरिमाण कालतैं ऊर्ध्व पक्षीयोंके अंडकीन्यांई निर्भिन्न (भेदनकूं प्राप्त) होताभया॥ वे तिस निर्भिन्न अंडके दो कपाल रजतरूप औ सुवर्णरूप होतेभये॥ १॥

टीकाः–तिन दो कपालोंविषै जो रजत

हैं औ स्त्री वस्त्र अरु अन्न आदिक उपजतेभये। ऐसैं पूर्वले पदसैं संबंध है॥

घो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वा-
स्तेयमुदकꣳ स समुद्रः ॥ २ ॥

(हिम)भया ॥ जे नाडियांभई वे नदीयां-
भई । जो बस्तिगत उदकभया सो समुद्र-
भया ॥ २ ॥

(रौप्य) रूप कपाल होताभया सो यह पृथिवी
है । अर्थ यह जोः—पृथिवीकरि उपलक्षित नी-
चेका अंडकपाल है ॥ औ जो सुवर्णरूप कपा-
ल है सो स्वर्गलोक है । अर्थ यह जोः—स्वर्ग-
लोककरि उपलक्षित ऊर्ध्व (ऊपरका) कपाल है ॥
जो जरायु कहिये स्थूल गर्भका परिवेष्टनरूप है
सो अंडके दो टुकडेभावके कालविषै होताभया
वे पर्वत होतेभये ॥ जो उल्ब कहिये सूक्ष्म
गर्भका परिवेष्टन भया । सो मेघोंकरि सहित
नीहार । अर्थ यह जोः—अवश्याय (हिम) हो-
ताभया ॥ जे उत्पन्नभये गर्भके देहविषै धमनि

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामास्तस्मा-

---

अर्थः—अनंतर जो सो उपजताभया [तिसविषै] सो यह आदित्य है । तिस जायमान (उपजे आदित्य)के प्रति घोष उलूलु उपजतेभये । औ सर्वभूत अरु काम [उपजतेभये] । तातैं ता (सूर्य)के उदयके

कहिये शिरा (नाडियां) भई । वे नदीयां होतीभई ॥ जो ताकी वस्ति (मूत्राशय) विषै होनेवाला ऐसा वास्तेय कहिये उदकभया । सो समुद्र है ॥ २ ॥

टीकाः—अनंतर जो सो गर्भरूप उपजताभया तिस अंडविषै सो यह आदित्य है । तिस जायमान आदित्यकेप्रति घोष(शब्द)रूप उलूलु (उरूरु) कहिके विस्तीर्ण शब्द उपजतेभये । ईश्वरकीन्यांई ॥ इस प्रथम पुत्रज-

त्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उलुलवोऽनुतिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे चैव कामाः ॥ ३ ॥

प्रति अरु प्रत्यायनकेप्रति घोष उल्लु उपजतेहैं औ सर्वभूत अरु सर्व काम [उपजतेहैं] ॥ ३ ॥

न्मकेहुये सर्व स्थावर जंगम भूत औ तिन भूतनके सर्व जे कामना करियेहै ऐसे स्त्री वस्त्र अरु अन्नआदिक विषयरूप काम वे उपजतेभये॥जातैं आदित्यके जन्मरूप निमित्तवाली भूत अरु कामोंकी उत्पत्ति है। तातैं अद्यापि (अबीबी) तिस आदित्यके उदयकेप्रति औ प्रत्यायनकेप्रति कहिये अस्तगमनकेप्रति । अथवा पुनः पुनः जो आगमन सो प्रत्यायन है ताकेप्रति । अर्थ यह जोः—ताकूं निमित्तकरिके। सर्वभूत औ सर्वकाम घोषअरु उल्लु स्थित होतेहैं।

स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्यासो ह यदेनꣳ साधवो घोषा आ

अर्थः–सो जो इस आदित्यकूं ऐसें जानताहुया "ब्रह्म" ऐसें उपासताहै । इसके

जांतैं[430] सूर्यके उदयआदिकविषै यह प्रसिद्ध है३॥

टीकाः–सो जो कोइकबी इस आदित्यकूं ऐसें (यथोक्त महिमावाला) जानताहुया "ब्रह्म है" ऐसें उपासताहै । सो तिसभावकूं पावताहै । यह अर्थ है॥ किंवा[431]:–तिसके वेत्ताकूं दृष्टफलः–[इहां "जो" यह क्रियाका विशेषण है]

---

४३० इसविषै क्या प्रमाण है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह । ऐसें भूत आदिकनका उत्थान है ॥

४३१ अदृष्ट फलकूं मिलायके कहिके अब दृष्ट फलकूं कहैहैं ॥ इहां तिसके वेत्ताकूं दृष्टफल । ऐसें संबंध है औ क्रियाका विशेषण है ऐसें कहा ताका ऐसें जाननेवालेकूं साधु घोष आवैंगे ऐसा जो है सो शीघ्र (अप्रतिबंधकरिहीं) होवैहैं । यह अर्थ है औ आदित्यविषै ब्रह्मकी दृष्टि आदरका विषय है ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदस्तृतीयप्रपाठकगतैकोनविंशतितमखंडस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ १९ ॥

समाप्तेयं तृतीयप्रपाठकस्य टिप्पणिका ॥ ३ ॥

च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन् ॥४॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदि तृतीयप्रपाठकस्यैकोनविंशः खण्डः समाप्तः ॥ १९ ॥

प्राति साधु घोष आवते हैं अरु उपसुखकूं करते हैं। उपसुखकूं करते हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषदो मूलमात्रभाषादीपिकायां तृतीयप्रपाठकस्यैकोनविंशः खंडः समाप्तः १९

इस ऐसैं जाननेवालेकूं साधु (शोभन) घोष प्राप्त होतेहैं। ऐसा जो है। सो शीघ्र होवैहै ॥ इहां घोष आदिकनका साधुपना जो है सो उपभोगविषै पापकेसंबंधका अभाव है ॥ केवल घोषनका आगमन मात्र नहीं किंतु वे उपसुखकूं करते हैं। उपसुखकूं करते हैं ॥ इहां दो अभ्यास। अध्यायकी समाप्तिअर्थ औ आदरअर्थ है ॥ ४ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां तृतीयप्रपाठकस्यैकोनविंशः खंडः समाप्तः ॥ १९ ॥

समाप्तेयं तृतीयप्रपाठकस्य भाष्यभाषादीपिका ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकाऽऽरंभः ४

जानश्रुति सत्यकाम उपकोसलादिकके संवादसैं सगति
वायुआदिकार्यब्रह्मोपासन १७

अथ श्रीछान्दोपनिषद्श्चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

ॐ ॥ जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धा-

अथ श्रीछांदोग्योपनिषदो मूलमात्रभाषादीपिकायाश्चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थ—श्रद्धादेय बहुदायी बहुपाक्य ऐसा

अथ श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायाश्चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

जानश्रुतिका हंसोक्तिकरि रैक्कके पास जानेमैं
क्षत्ताकूं प्रेरण ८

टीकाः—वायु अरु प्राणका ब्रह्मके पादकी दृ-

अथ श्रीछांदोग्योपनिषद् भाष्यभाषादीपिकायाश्चतुर्थप्रपाठकगत प्रथमखंडस्य टिप्पणम् ॥ १ ॥

१ आदित्यकूं सूत्रके अवछेद (व्यावर्त्तक)का भेद होनेतैं

देयो बहुदायी बहुपाक्य आस। स ह सर्वत आवसथान् मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति ॥ १ ॥

जानश्रुति पौत्रायण [राजा] होताभया। सो सर्वओरतैं आवसथों (धर्मस्थानों)कूं करावताभया। सर्वओरतैंहीं मेरे [अन्नकूं] भोजन करेंगे। ऐसैं ॥ १ ॥

ष्टिकरि अध्यास पूर्व वर्णन किया। अनंतर अब

ताके उपासनके अनंतर सूत्रका उपासन उपन्यास करिये है ॥ ॥ ननु (तहां यह शंका होवैहै:–) सूत्रात्मारूप वायु अरु प्राणका अध्यात्म अरु अधिदैवतरूप उपासन पूर्व अध्यायविषैबी व्याख्यान किया। तैसैं हुये कौंन इहां विशेष है जिस करि ताका उपासन फेर आरंभ करिये है? यातैं कहैहैं ॥ इहां साक्षात्। याका पादोंकी कल्पनाविना। यह अर्थ है औ ब्रह्मभावकरि। याका ब्रह्मके कार्यरूपसैं। यह अर्थ है औ विद्याके दान अरु ग्रहणके विधिके दिखाने अर्थ। याका "जहां धर्म अरु अर्थ नहीं होवैं वा तिस प्रकारकी शुश्रूषा (सेवा)बी नही होवै। तहां ऊषरविषै शुभ बीजकीन्याईं विद्या कहनेकूं योग्य नहीं है" इस स्मृतिकूं अनुसंधान करिके पुष्कलधनकूं लेके रैक्व राजाकेअर्थ विद्याकूं देताभया औ

तिन दोनूंके साक्षात् ब्रह्मभावकरि उपास्यपनैके अर्थ उत्तरग्रंथ आरंभ करियेहै। आख्यायिका सुखसैं अवबोधअर्थ है औ विद्याके दान अरु ग्रहणके विधिके दिखावनेअर्थ है औ आख्यायिकाकरि श्रद्धासैं[2] अन्नदानकरि उद्धतपनैकी रहितताआदिकनका विद्याप्राप्तिका साधनपना दिखायेहैः—जनश्रुतका संतान जानश्रुति [इहां हकार। परंपरारूप ऐतिह्यअर्थ है] औ पुं-[3]

जानश्रुति शास्त्रके अर्थकूं जानिके पुष्कल धनकूं देकेहीं श्रद्धाआदिककरि संपन्नहुया तिस रैक्कतैं विद्याकूं ग्रहण करताभया ॥ तैसैं अन्यबी विद्याका दाता वा गृहीता होवै। यातैं ताके दान अरु ग्रहणके विधिके दिखावने अर्थ आख्यायिका है। यह अर्थ है ॥

२ ननु "गौवनके षट्शतनकूं" इत्यादि देखनेतैं धनदानहीं विद्याके ग्रहणविषै साधन इहां प्रतीत होवैहै। श्रद्धाआदिक तो नहीं? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां आदिपदकरि तात्पर्य अरु प्रणिपात (दीर्घनमस्कार) आदिक ग्रहण करिये है औ आख्यायिकाकरि। याका "ताहीकूं फेरहीं जानश्रुति" इत्यादि द्वितीयखंडके तृतीय वाक्यसैं उक्तरूपवाली कथाकरि। यह अर्थ है ॥

३ जनश्रुतका पुत्र जो है ताका जो पौत्र सो पौत्रायण है औ सो प्रकृत जानश्रुतिहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥

त्रका जो पौत्र सो पौत्रायण ऐसा सोई । श्र-
द्धापूर्वकहीं ब्राह्मणादिकनकेअर्थ देय (देने यो-
ग्य दान) है इसका सो श्रद्धादेय है ऐसा औ
बहुत देनेकूं शील (स्वभाव) है इसका सो बहु-
दायी ऐसा औ बहु पकानेयोग्य अन्न है दिन
दिनविषे गृहमैं जिसके यह बहुपाक्यहै। अर्थ
यह जोः—भोजनके अर्थिनकेअर्थ बहुत अन्न इ-
सके गृहविषै पकायिताहै ऐसा । ऐसे गुणोंकरि
संपन्न यह जानश्रुति पौत्रायण । श्रेष्ठ देशविषै
औ किसीबी कालविषै होताभया॥ सोई सर्व
ओरतैं कहिये सर्वदिशाओंविषै ग्रामोंविषै अरु
नगरोंविषै । आयके वसतेहैं जिनविषै ऐसे जे
धर्मशालादिरूप ग्रह वे आवसथ हैं। तिन

---

४ श्रद्धाकरि देने योग्यकी अल्पताकी शंकाकूं निवारते हैं॥

५ बहुपाकके फलकूं कहैहैं ॥

६ उक्त राजाकी वर्त्तमानताके अभावतैं असद्भावकूं आ-
शंकाकरिके कहा है ॥

७ स्वसमीपकूं प्राप्तहीं अर्थिनकेअर्थ यह राजा अन्नकूं
देता है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

अथ ह हꣳसा निशायामतिपेतुस्त-

अर्थः—अनंतरहीं रात्रिविषै हंस पतन

आवसथनकूं करावताभया । यह अर्थ है ॥ सर्वओरतैंहीं मेरे अन्नकूं तिन आवसथोंविषै वसतेहुये जन भोजन करेंगे । ऐसा अभिप्राय है ॥ १ ॥

टीकाः—तहां ऐसैं होते तिस राजाके घर्मकालविषै हर्म्य (अट्टालिकारूप गृहविशेष)के तलमैं स्थित हुये । अनंतरहीं रात्रिविषै हंस पक्षी पतन होतेभये ॥ [९]ऋषि वा देवता राजाके अन्नदानके गुणोंकरि संतोषकूं प्राप्त हुये हंसरूप होयके राजाके दर्शनके गोचरविषै पतन होतेभये ॥ तिसकालविषै पतनहोनेवाले हंसोंके मध्य एक पृष्ठतैं (पीछे) पतन हुया हंस आगेतैं पतनहोनेवाले हंसकूं "हो हो अयि (भोः भोः)" ऐसैं संबोधन करिके भल्लाक्ष भ-

८ श्रेष्ठ अन्नदानके फलकूं दिखावनेकूं आरंभ करैहैं ॥
९ उक्त वाक्यके अर्थकूं दिखावै हैं ॥

जानश्रुतिका हंसोक्तिसैं रैक्कपासजानेमैं क्षत्ताकूं प्रेरण ८

द्धैवꣳ हꣳसो हꣳसमभ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष। जानश्रुतेः पौत्रायणस्य

होतेभये। तिसकालविषै हंसकूं [अन्य हंस] हो हो अयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष! ऐसैं कहता-भयाः—जानश्रुति पौत्रायणका दिवसकरि

ल्लाक्ष! ऐसैं [१०]आंदरकूं दिखावता हुया कहता-भयाः—[११]जैसैंः—"आश्चर्यकूं देख देख" ऐसैं कोउ कहै। ताकीन्यांई॥ हे [१२]भल्लाक्ष? ऐसैं मंददृष्टि-वान्पनैकूं सूचन करताहुया कहैहै॥ अथवा ता पृष्ठगामी हंसकूं सम्यक् ब्रह्मदर्शनका अभिमान-वाला होनेतैं तिसकरि अमर्षीपनैकरि पीड्यमा-न हुया सो अग्रगामी हंस वारंवार हे [१३]भल्लाक्ष!

---

१० दो संबोधनके अभ्यास (दोवार कथन)के विषय (अर्थ)कूं कहैहैं॥

११ ताहीकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं॥

१२ "भल्लाक्ष" शब्दके अर्थकूं कहैहैं॥ इहां "भल्लाक्ष" शब्द मंददृष्टिकूं विषय करताहुया विरुद्ध लक्षणासैं मंददृष्टि-वान्ताका सूचक है॥

१३ भल्लाक्ष शब्दके अन्य विषयकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ

समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति ॥ २ ॥

सम ज्योति आतत (व्याप्त) है। ताकूं मतिस्पर्शकर। सो तुजकूं मति दहनकरै। ऐसैं ॥२॥

ऐसैं उपालंभकूं प्राप्तभया ॥ हे भल्लाक्ष ! ऐसैं ता उपालंभकूं सूचन करैहै ॥ [14] ॥ जानश्रुति पौत्रायणका दिवस (स्वर्गलोक) करि तुल्य अन्नदानआदिकसैं जनित प्रभावसैं जन्य प्रकर्षकरि भास्वर ज्योति आतत कहिये व्याप्त है। अर्थ यह जोः—स्वर्गलोककेतांई स्पर्श करनेवाला

हैः—तिस पृष्ठगामी हंसकूं "जाननेवालेकारि महात्मा अतिक्रमण करनेकूं योग्य नहीं है" ऐसैं सम्यक् दर्शनके अभिमानकरि युक्त होनेतैं तिस पृष्ठगामी हंसकरि। जानश्रुति राजाकूं अतिक्रमण करनेकूं इच्छनेवाला अरु अमर्षी (क्रोधी) पनैकरि पीड्यमान हुया अग्रगामी हंस। "तूं धर्मकूं नहीं जानता हैं। ज्ञानके अभिमानकूं तो उठावता हैं" ऐसैं उपालंभकूं प्राप्तभया। तहां हे भल्लाक्ष? ऐसैं उपालंभके स्वरूपकूं सूचन करैहैं॥

१४ पृष्ठगामी हंस निंदापूर्वक अग्रगामी हंसकूं संबोधन करिके क्या कहताभया? इस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥

तमु ह परः प्रत्युवाच-कम्वर एनमे-
तत्सन्तꣳ सयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति ॥

अर्थः—ता (पृष्ठगामी हंस)कूं पर (अ-ग्रगामी हंस) कहताभया:—अरे ! किस (कुत्सित) इस हुयेकूं यह (मानसहित वचन) सयुग्वा (गाडी सहित) रैक्ककी

है ॥ अथवा दिवस (दिन)करि सम (तुल्य) ज्योति है । यह अर्थ है । ताकेप्रति संबंधकूं मतिकर । अर्थ यह जो:—तिस ज्योतिकेसाथि संबंधकूं मतिकर ॥ तिस संबंधकरि सो ज्योति तुजकूं मति दहनकरहु । यह अर्थ है । [इ-हां पुरुषके पलटावनेकरि "मतिदाह करै" ऐसैं कहा] ॥ २ ॥

टीका:—ऐसैं कहनेवाले तिस पीछले हंसके

१५ मति दग्ध हो । ऐसैं [मध्यम पुरुषरूप] पाठके होते। मति दहन करै । यूं [प्रथमपुरुष] कैसैं कहिये है ? तहां क-हैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मध्यम पुरुषकूं प्रथमपुरुष करिके ऐसैं व्याख्यान किया औ विद्यमान इस प्राणीमात्र राजाकूं

यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्क इति ॥ ३ ॥

न्यांई कहताहैं ऐसैं ॥ ॥ [पृष्ठगामी हंस कहताभयाः–] जो सयुग्वा रैक्क [है सो] कैसा है ? ऐसैं ॥ ३ ॥

प्रतिहीं पर कहिये इतर अग्रगामी जो हंस सो प्रत्युत्तर कहताभयाः–अरे ! अतिनिकृष्ट यह राजा वराक (तुच्छ) है। तिस इस कुत्सित हुयेकूं कहिये कुत्सित माहात्म्यकरि युक्त हुयेकूं [आश्रयकरिके] इस प्रकारके बहुमानसहित इस वचनकूं तूं कहताहैं । ऐसैं कुत्सन करैहै:–स-युग्वा रैक्ककी[१६]न्यांईं । युगवत् कहिये गंत्री (गा-

---

आश्रयकरिके बहुमानसहित इसवचनकूं कहताहैं । ऐसैं कुत्सन (निंदा) करैहै । ऐसैं संबंध है ॥

१६ तहां विपरीत धर्मवाले दृष्टांतकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:–युग जो दो बलीवर्दनके कांधेपर धरनेयोग्य काष्ठ-विशेष । ताकूं जो वहन करैहै ऐसा जो बलीवर्द वा अश्व सो युग्य है । सो इसविषै है ऐसी जो शकटी (गाडी) सो युग्वा है । तिस गाडीकरि सहित जो वर्त्तता है ऐसा जो रैक्क सो

डी) तिसकरि सहित जो वर्त्तताहै सो सयुग्वा (गाडीसहितवर्त्तनेवाला) है ऐसा रैक्क है । ताकीन्यांई इस राजाकूं कहताहैं । अभिप्राय यह है किः-इस वराक राजाविषे रैक्ककीन्यांई ऐसा [17] अँननुसारि वचन कहनेकूं अयुक्त है ॥ ॥ इतर (पृष्ठगामी हंस) कहैहैः-जो सयुग्वा रैक्क तुजकरि कहियेहै सो कैसा है? ऐसैं कहनेवालेके प्रति भल्लाक्ष (अग्रगामी हंस) कहैहैः-श्रवण कर! जैसा सो रैक्क है ॥ ३ ॥

सयुग्वा है । [इधर वकार जो है सो मतु प्रत्ययरूप अर्थवाला है] ॥ हे पृष्ठगामी हंस ! तूं ज्ञानके माहात्म्यकरि युक्त रैक्ककूं आश्रयकरिके जैसा प्रशंसाका वचन होवै तैसा इस कर्मिष्ठ राजाकूं आश्रयकरिके ऐसैं कैसैं कहता हैं ॥

१७ उक्तवाक्यके अर्थकूं मिलावते हैं ॥ इहां इस वराक (तुच्छ) धर्ममात्रनिष्ठ राजाविषै यह वचन अनुसारि नहीं है औ फेर विज्ञानवाले रैक्कविषै यथोक्त वचन युक्तहीं है । ऐसैं अग्रगामी हंस कहताभया ॥ तब इतर जो पृष्ठगामी हंस सो कहताभयाः-जो सयुग्वा (गाडीवान्) रैक्क तैनैं कहा सो कैसा होवैगा । ऐसैं अन्वय है ॥

यथा कृताय विजितायाधरेयाः सं-
यन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमेति यत्कि-

अर्थः-[अग्रगामी हंस कहताभयाः-]
जैसैं कृत नामक अय (भागविशेषरूप
पाशा) विजितभया ताकेअर्थ अधरेय
(नीचेके अंकवाले पाशे) अंतर्गत होवैहैं॥
ऐसैं इस (रैक्क)के प्रति सर्व सो अंतर्गत

टीकाः- [१८] जैसैं लोकविषै कृताय कहिये कृ-

१८ सो रैक्क जिस प्रकारसैं होवैहै तिस प्रकारकूं सुन। ऐसैं प्रतिज्ञा करिके प्रकारके दिखावनेकी इच्छाकरि अग्रगामी हंस दृष्टांतकूं कहैहै॥ इहां द्यूत जो जुगार ताका समय जो संकेतका दाता अनुष्ठानका काल जिसकरि द्यूतविद्याविषै चलता है ऐसा जो पाशा सो अक्ष है। ताका कोइक भाग "अय" शब्दका वाच्य है। तिनमैं जो च्यारीअंकवाला भाग कहिये च्यारी अंक जे चिह्न वे इसविषै हैं इस व्युत्पत्तितैं जो च्यारी अंकवाला भाग है। तिस कृत नामसैं व्यवहार किये भागसैं जब द्यूतविषै प्रवृत्तनके मध्य सो कोइबी जब जीतता है तब जीतता है। तिस जीते हुये कृतनामवाले अक्षभागके अर्थ अधरेय जे न्यूनअंक वे प्राप्त होते (अंतर्भूत होते) हैं। ऐसैं संबंध है॥

ञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति । यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४ ॥

होवैहै जो कछु प्रजा साधु (शुभ) करैहैं। जो ताकूं जानताहै। सो जिसकूं जानताहै। सो मैनैं ऐसैं कहा ऐसैं ॥ ४ ॥

तनामक अय (अक्षका भाग)। जो द्यूतके समय (संकेतके देनेवाले काल)विषै प्रसिद्ध च्यारीका अंक (चौका) है। सो जब जीतता है। तब द्यूतविषै प्रवृत्तनके मध्य तिस विजितकेअर्थ कहिये तिसै[19] चोकेकेअर्थ इतर जे तीन दो अरु एक संख्यावाले अंक अधरेय[20] कहिये त्रेतां[21]

---

१९ ताके अर्थकूं व्याख्यान करैहैं ॥

२० अधरेय जे तीन अंक तिनकूं व्याख्यान करैहैं ॥

२१ तिनहींकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह विभाग है:—अक्ष (पाशा)के जिस भागविषै तीन अंक हैं सो त्रेतानामवाला अय (भाग) होवैहै । औ जिस भागविषै तो दो अंक हैं सो द्वापर नामक भाग है औ जिस भागविषै एक अंक है सो कलिनामक भाग है। ये च्यारी अंकवाले कृत (सत्य) नामवाले भागतैं विलक्षण तीनि भाग अधरेय कहियेहैं ॥

द्वापर अरु कलिनामवाले तीन अंक हैं। वे अंतर्भूत होवैहैं। अर्थ यह जोः–[२२] च्यारी अंकवाले कृतायनामवाले अक्षके भागविषै तीन दो अरु एक अंकोंकूं विद्यमान होनेतैं वे ताके भीतर होवैहैं॥ [२३] जैसैं यह दृष्टांत है। ऐसैं इस कृतायस्थानीय रैक्वकेप्रति त्रेताआदिक अय स्थानीय सर्व सो लीन होवैहै कहिये [२४] रैक्वविषै अंतर्भूत होवैहै॥ ॥ [२५] सो क्या है किः–जो कछु लोक-

---

२२ तिस अर्थवाले होनेकरि इतर अंकोंके उक्त अन्तर्भावकूं स्पष्ट करैहैं॥ ताके अंतर्भूत होतेहैं। याका तिस कृतनामवाले भागविषै वे त्रेता आदिक तीनिभाग अंतर्गत होतेहैं। यह अर्थ है। माहासंख्याविषै अवांतर (बीचकी) संख्याका अंतर्भाव प्रसिद्धहीं है। यह अर्थ है॥

२३ दृष्टांतकूं अनुवाद करिके तिसकरि सिद्ध अर्थरूप दार्ष्टांतकूं कहैहैं॥

२४ रैक्वकेप्रति अभिव्याप्त होयके सर्व जाता है। या वाक्यके अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं॥

२५ रैक्वविषै सर्वके अंतर्भावकूं प्रश्नपूर्वक प्रकट करैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः–ताके धर्मकूं महान् होनेतैं औ अन्योंके धर्मके समूहकूं अल्प होनेतैं ता (अन्योंके धर्मके समूह)का इतर (रैक्वके धर्म)विषै अंतर्भाव संभवै है॥

विषै सर्व प्रजा शोभनधर्मके समूहकूं करैहैं सो सर्व रैक्कके धर्मविषै अंतर्भूत होवैहै। औ[२६] ताके फलविषै सर्व प्राणीनके धर्मका फल अंतर्भूत होवैहै । यह अर्थ है ॥ [२७] तैसें अन्यबी कोइक जो तिस वेद्यकूं जानताहै ॥ ॥ सो क्या है किः—जिस वेद्यकूं सो रैक्क जानताहै । तिस वेद्यकूं अन्यबी जो जानताहै ताकूंबी सर्व प्राणीनके धर्मका समूह औ ताका फल रैक्ककीन्यांई प्राप्त होवैहै । ऐसें अनुवर्त्तताहै (पीछलेपदसैं संबंध है) । सो एवंभूत विद्वान् मैनें ऐसें कहा । रैक्ककी न्यांई सोई कृतायस्थानीय कहिये च्यारीअंकवाले अक्षके भाग (पार्श्व) स्थानीय होवैहै । यह अविप्राय है ॥ ४ ॥

---

२६ किंवाः—सर्व प्राणीनके धर्मका फल अति अल्प होनेतैं अतिशय बडे रैक्कके धर्मके फलविषै अंतर्गत होवैहै । ऐसें कहैहैं ॥

२७ केवल रैक्कका यह माहात्म्य नहीं है किंतु अन्य ज्ञानवान्‌काबी है । ऐसें जानश्रुति राजाके अनुग्रह अर्थ अग्रगामी हंस कहैहैं ॥

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशु-
श्राव। स ह सञ्जिहान एव क्षत्तारमुवा-

अर्थः-ता (हंसवचन)कूं जानश्रुति पौत्रायण सुनताभया। सो शयनकूं त्यागता हुयाहीं क्षत्ताकूं कहताभयाः-हे अंग

टीकाः-हर्म्यतलविषै स्थित राजा जानश्रुति पौत्रायण। तिस इसहीं ऐसे आपकी कुत्सा (निंदा)रूप अरु अन्य रैक्कआदिक विद्वान्की प्रशंसारूप हंसके वाक्यकूं सुनता भया॥ औ तिस हंसके वाक्यकूं पुनः पुनः स्मरण करता हुयाहीं रात्रिके शेषकूं उल्लंघन करता भया॥ तदनंतर सो राजा बंदिजनोंकरि स्तुतियुक्त वाणीनसैं प्रतिबोध्यमान हुया शयनकूं वा निद्राकूं परित्याग करता हुयाहीं क्षत्ताकूं कहता भयाः-हे अंग(वत्स)! अरे! मुजकूं सयुग्वारैक्ककीन्यांई क्या कहता भया। ३८-

---

२८ प्राप्तभये हंसके वचनसैं खेदयुक्त जो इतर (राजा)।

चाङ्गारे! ह सयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति॥ यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्क इति॥ ५॥

अरे! सयुग्वा रैक्ककीन्यांई कहताहै ऐसैं॥ जो सयुग्वा रैक्क [है सो] कैसा है? ऐसैं ५

भिप्राय यह है कि:—सोई स्तुतिके योग्य है मैं नहीं हूं॥ अथवा सयुग्वा रैक्ककूं कहता भया। जायके मुजकूं ताके दर्शनकी इच्छा है [ऐसा अर्थ होवै [29]तब इव शब्द अवधारणअर्थ। वा [30]अर्थरहित कहनेकूं योग्य है]॥ सो क्षत्ता रैक्कके आनयनकी इच्छावाला अरु [31]राजाके अभि-

---

सो रात्रिके शेषकूं उल्लंघनकरिके शयनकूं त्यागताहुया आपके समीपमैं स्थित स्तुतिके कर्ता क्षत्ता (दासविशेष)कूं "हे अंग अरे!" इत्यादिरूप वाक्यकूं कहताभया। ताके अभिप्रायकूं कहैहैं॥

२९ इवशब्द द्वितीय पक्षविषै किस प्रकारसैं घटता है? तहां कहैहैं॥

३० अवधारणकावी उपयोग नहीं है? ऐसैं जो कहै तहां कहैहैं॥

३१ प्रश्नवाक्यकूं व्याख्यान करैहैं॥ इहां "जो रैक्क है सो कैसा है" इत्यादि वाक्य पूर्ववत् व्याख्यान करनेकूं योग्य है औ "ताका स्मरण करता हुया" यह जो भाष्यविषै षष्ठी है

यथा कृताय विजितायाधरेयाः सं-यन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमेति यत्कि-

---

अर्थः-जैसैं कृत (च्यारी अंकवाले) अय (अक्ष) विजितकेअर्थ अधरेय अंत-र्गत होवैहैं। ऐसैं इसके प्रति सर्व सो अं-

---

प्रायका जाननेवाला हुया उत्तरकूं कहता भयाः-जो सयुग्वा रैक्क है सो कैसा है? ऐसैं। कहिये राजाकरि ऐसैं उक्त हुया क्षत्ता ताकूं ल्यावनेकूं ताके चिन्हकूं जाननेकूं इच्छता हुया "जो सयुग्वा रैक्क है सो कैसा है? ऐसैं

सो "ताकूं" ऐसैं कर्मविषै है॥ औ जातैं मुज (रैक्क)करि गृ-हस्थाश्रम करनेकूं इच्छित है औ तिसअर्थ धन इछित क-रिये है औ यह तिसअर्थवाला होनेकरि किंचित् उपकार करनेकूं नहीं होवैगा। इस आशयकरि रैक्कके किये अनादरकूं मैं क्षत्ता जनावताभयाहूं औ जो उक्तलक्षणवाले रैक्ककूं औ ताके गृहस्थाश्रमके अभिप्रायकूं औ धर्मार्थीपनैकूं जानताभ-याहूं। यह शेष है॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां चतुर्थप्र-पाठकगत प्रथमखंडस्य टिप्पणं समाप्तम्॥ १॥

ञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति। यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ६ ॥

स ह क्षत्ताऽन्विष्य नाविदमिति प्र-

तर्गत होवैहै जो कछु प्रजा साधु करैहैं। जो ताकूं जानताहै। सो जिसकूं जानता है। सो मैनें ऐसा कह्या ऐसैं ॥ ६ ॥

अर्थः—सो क्षत्ता खोजिके "नहीं जानताहूं" ऐसैं पीछे आवताभया ॥ ॥ ता (क्ष-

---

कहता भया। औ सो राजा भल्लाक्ष(अग्रगामी-हंस)के वचनकूंहीं कहता भया ॥ ५ ॥ ६ ॥

टीकाः—ताका (ताकूं) स्मरण करता हुया सोई क्षत्ता। नगरके प्रति वा ग्रामके प्रति जायके खोजिके रैक्ककूं "मैं नहीं जानताहूं" ऐसैं करिके पीछे आवता भया ॥ ॥ ता क्षत्ताकूं राजा कहता भयाः—अरे! ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता)की जहां अरण्यमैं नदीके पुलिन-

त्येयाय । तं᳡ होवाच-यत्रारे ! ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्च्छेति ॥ ७॥

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कष-

ता)कूं [राजा] कहताभया:—अरे! जहां ब्राह्मणकी अन्वेषणा (खोजना) होवैहै तहां इसकूं खोजनाकर ऐसैं ॥ ७ ॥

अर्थ:—सो (क्षत्ता) शकट (गाडी)के

आदिक विविक्त (एकांत) देशविषै खोजना होवैहै तहां इस रैक्कके प्रति गमनकर। अर्थ यह जो:—तहां खोजकूं कर ॥ ७ ॥

टीका:—ऐसैं राजाकरि उक्त हुया सो क्षत्ता खोजिके ताकूं जनरहित देशविषै शकट (गाडी) के नीचे पामा (खुजली)कूं संघर्षण करते (खुंजवालते) हुयेकूं देखिके "यह निश्चयकरि सयुग्वा (गाडीसहित) रैक्क है" ऐसैं जानिके विनय करि ताके समीप बैठता भया औ ता रैक्ककूं कहता भया:—"हे भगवन्! सयुग्वा

माणमुपोपविवेश। तꣳ हाभ्युवाद। त्वं नु भगवः! सयुग्वा रैक्क इत्यहꣳ ह्यरा ३ इति ह प्रतिजज्ञे। स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रत्येयाय ॥ ८ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

नीचेपामाकूं कंडूयमान [रैक्क]के प्रति समीप बैठताभया। ताकूं कहताभयाः—हे भगवन्! तूं सयुग्वारैक्कहैं? ऐसैं ॥ ॥ अरे! मैंहींहूं। ऐसैं प्रतिज्ञा करताभया॥ सो क्षत्ता जानताभयाहूं ऐसैं पीछे आवताभया॥ ८॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपाठ०प्रथमः खंडः१

रैक्क तुम हो ?" ऐसैं ॥ ॥ इस प्रकारसैं पूंछ्या हुया "अरे! मैंहीं हुं" ऐसै [इहां अरे! शब्द अनादर विषैहीं है] प्रतिज्ञा (अंगीकार) करता भया ॥ सो क्षत्ता ताकूं जानिके "मैं जानताभया हूं" ऐसैं मानिके पीछे आवता भया। यह अर्थ है ॥ ८ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपा०प्रथमः खंडः समाप्तः॥१॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य द्वितीयःखंडः २॥

तदुह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳ हाभ्युवाद ॥ १ ॥

अथ श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०द्वितीयः खंडः ॥ २ ॥

अर्थः—तहांहीं जानश्रुति पौत्रायण। गौअनके षट् शतोंकूं निष्क (हार)कूं अश्वतरीयुक्त रथकूं तिस (धन)कूं लेके जाताभया। ता (रैक्क)कूं कहताभया ॥ १ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठ०द्वितीयः खंडः॥२॥

रैक्कके अर्थ जानश्रुतिकरि धनादिप्रदान ९

टीकाः—तहां रैक्क ऋषिके गृहाश्रमके प्रति अभिप्रायकूं जानिके औ धनार्थिताकूंहीं जानिके जानश्रुति पौत्रायण गौअनके षट्शतनकूं अरु कंठके हाररूप निष्ककूं औ दो अश्वतरी (खेचरी)नकरि युक्त रथकूं। तिस धनकूं ग्रहण करिके रैक्कके प्रति गमन करताभया औ ताकूं जायके कहताभया ॥ १ ॥

रैक्वेमानि षट् शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथो नु म एतां । भगवो देवता॑ शाधि यां देवतामुपास्से इति ॥ २ ॥

अर्थः—हे रैक्व! ये गौअनके षट् शत हैं। यह निष्क है। यह अश्वतरीयुक्त रथ है [इस धनकूं ग्रहण कर]। हे भगवन्! मुजकूं इस देवताकेतांई शिक्षाकर जा देवताकूं उपासताहैं ऐसैं ॥ २ ॥

टीकाः—हे रैक्व! गौअनके षट् शत ये तुजअर्थ मुजकरि आनयनाकिये हैं। यह निष्क है अरु यह दो अश्वतरी (खेचरी)नकरि युक्त रथ है। इस धनकूं ग्रहण कर। हे भगवन्! मेरेतांई याकूं शिक्षा कर जा देवताकूं तूं उपासताहैं। अर्थ यह जोः—ता देवताके उपदेशकरि मुजकूं शिक्षा कर ॥ २ ॥

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र! तवैव सह गोभिरस्त्विति॥तदुह पुनरेव

अर्थः–ताहीकूं पर (रैक्व) प्रत्युत्तर देताभया:–हे शूद्र! हारकरि युक्त शकटी बैलोंकरि सहित तेरेकूंहीं होहू ऐसें॥ ता

टीकाः–तिस ऐसें कहनेवाले राजाके प्रति पर जो रैक्व सो प्रत्युत्तर देताभयाः–[इहां "अह" ऐसा जो यह निपात है सो अन्य ठिकाने विनिग्रहरूप अर्थवाला है परंतु इधर अर्थरहित है। काहेतैं। एव[32] शब्दके पृथक् प्रयो-

---

अथ श्री०चतुर्थप्रपाठकगतद्वितीयखंडस्य टिप्पणं २

३२ इहां क्षत्ताके वचनके सुने हुये यह "तहां" इस समीका अर्थ है औ धनार्थिताकूं जानिके। ऐसैं पूर्वले पदसैं संबंध है औ "उह" शब्दका पूर्व (प्रथमखंडके द्वितीय अरु पंचम वाक्यगत उह शब्द)की न्यांई इहांबी एवकार (निश्चय) रूप अर्थ है॥ औ इहां इस द्वितीय खंडके तृतीय वाक्यविषै जो "अह" शब्द है सो अर्थरहित है॥ तामैं यह शंका है:– ननु इहांबी विशेषकरि निग्रह (निषेध)रूप अर्थवान्‌ताके सं-

जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां नि-
ष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रति-
चक्रमे ॥ ३ ॥

(रैक्कके मत)कूं हीं [जानिके] जानश्रुति पौत्रायण । गौअनके सहस्रकूं निष्ककूं अश्वतरीयुक्त रथकूं दुहिता (स्वकन्या)कूं ता (धन)कूं लेके जाताभया ॥ ३ ॥

गतैं] हारकरि युक्त जो इत्वा कहिये गंत्री (गाडी) है सो यह बलीवर्दोंकरि सहित तु-जकूंहीं होहू । मुँजकूं[33] कर्मकेअर्थ अपरिपूर्ण (न्यून) इस धनसैं प्रयोजन नहीं है। यह अभिप्राय है। हे शूद्र ! ऐसैं [कहता भया]

भव हुये क्यूं ऐसैं "अह" शब्दकी अर्थरहितता होवैगी ? यह आशंकाकरिके । "तेरेकूंहीं" इस एवकारतैंहीं विनिग्रह (नि-षेध)की सिद्धि है। ऐसैं कहैहैं ॥

३३ ननु गृहाश्रमके अर्थी तुज रैक्कूं कर्म अनुष्ठानकेअर्थ यह धन होहू ? ऐसैं जो राजा कहै। तहां रैक्क नहीं ऐसैं कहैहै ॥

॥ ॥ नैनु[34] यह राजा क्षत्ताके संबंधतैं [इहां आया है। यातैं] सो (रैक्क)। क्षत्ताकूं "हे शूद्र" ऐसैं कहता भया। ऐसैं कहा औ विद्याके[35] ग्रहण अर्थ ब्राह्मणके समीप उपगमनतैं औ शूद्रकूं[36] अनधिकारतैं "हे शूद्र!" ऐसैं यह अननुसारि वचन रैक्ककरि कैसैं कहियेहै? तहां[38] आचार्य कहतेहैं:—हंसवचनके श्रवणतैं शुक् (शोक) इस राजाके प्रति प्रवेश करती भई। तिसकरि यह

३४ इहां शूद्र शब्दकरि जानश्रुति राजाका संबोधन अनुचित है? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

३५ तिस राजाकी अशूद्रताविषै पूर्ववादी अन्य हेतुकूं कहैहै।

३६ तिस शूद्रकूं श्रुतिवाक्यद्वारा विद्याका अधिकार नहीं है। यह अर्थ शूद्राधिकरणविषै सूत्रकार श्रीवेदव्यासाचार्यनैं निर्धार किया है। इस आशयकरि पूर्ववादी कहैहै ॥

३७ जानश्रुतिकी क्षत्रियताके होते हे शूद्र? ऐसा संबोधन अयोग्य है? ऐसैं पूर्ववादी प्रश्नकी समाप्ति करैहै ॥

३८ जानश्रुति जो है सो जातिशूद्र नहीं है किंतु क्षत्रिय है। इसविषै गौण शूद्र शब्द है। ऐसैं एक आचार्यके मतके उपन्यासकरि सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिस शोकसैं आविष्ट होनेकरि यह जानश्रुति शोकरूप हेतुकरि रैक्ककेप्रति आद्रवण करैहै यातैं शूद्र है। वा हंसके वाक्यकूं सुनिके रैक्ककेप्रति आद्रवण करैहै यातैं शूद्र है। इसरीतिसैं तिसविषै नैमित्तिक (निमित्तका किया) शूद्रपद है ॥

राजा शोककरि वा रैक्कके महिमाकूं श्रवण करिके द्रवताहै । यातैं [39]ऋषि आपकी परोक्षज्ञताकूं दिखावता हुया हे शूद्र ! ऐसैं कहता भया इति ॥ [40]वाँ शूद्रकीन्यांई धनकरिहीं याके प्रति विद्याग्रहणकेअर्थ उपगमन करता भया । शुश्रूषाकरि नहीं । [यातैं ताकूं शूद्र कहा] परंतु [41]जातिकरिहीं शूद्र नहींहै इति ॥ [42]दूसरे फिर कहतेहैं किः—इसनैं अल्पधन आनयन किया । यातैं रोषकरिहीं इस राजाकूं हे शूद्र! ऐसैं कहता भया औ [43]धनके बहु आनयनविषै ग्रह-

३९ तथापि क्यूं ऐसैं शूद्रपदकरि राजाकेप्रति ऋषि संबोधन करैहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां कहे जे दो प्रकार तिनकी समाप्तिविषै इति शब्द है ॥

४० अन्यप्रकारसैं जानश्रुतिके गौण शूद्रपनेकूं व्युत्पादन करैहैं ॥ इहां शुश्रूषाकरि नहीं । तिसकरि शूद्र है । यह शेष है ॥

४१ राजाके मुख्य शूद्रपनैंकूं क्षत्ता (दासीपुत्र)के संबंधकरि निषेध करैहैं ॥

४२ क्षत्रियरूप जानश्रुतिविषै शूद्र शब्दकी प्रवृत्तिमैं अन्य निमित्तकूं कहैहैं ॥

४३ तहां गमक (लिंग)कूं दिखावै हैं ॥ इहां जो ऋषिके मतकूं । याका अधिक धनार्थिपनैकूं । यह अर्थ है औ अ-

तᳬ हाभ्युवाद-रैकेदं सहस्रं ग-

अर्थः-ताकूं कहताभयाः-हे रैक्क! यह

णरूप लिंग है ऐसैं॥ ॥ तिस ऋषिके मतकूं जानिके फेरहीं जानश्रुति पौत्रायण। गौ-चनके अधिक सहस्रकूं अरु ऋषिकूं अभिमत आपकी दुहिता (कन्या)रूप जायाकूं तिस-धनकूं ग्रहण करिके गमन करताभया॥३॥

टीकाः-हे रैक्क! यह गौअनका सहस्र। यह निष्क। यह अश्वतरीयुक्त रथ। यह जाया होनेअर्थ मेरी दुहिता (पुत्री) आनय-नकरी है औ यह ग्राम है जिसविषै तूं स्थित हैं सो तेरेअर्थ मैंनैं कल्पनाकिया है॥ तिस इस सर्वकूं लेके। हे भगवन्! मुजकूं अनु-

---

धिक। षट्शतोंतैं। यह शेष है औ विद्यादानविषै ता (राज-कन्या)की द्वारताकूं औ ताके दाता राजाकी श्रेष्ठ ज्ञानदा-नकी तीर्थता (पात्रता)कूं जानताहुया कहताभया। ऐसैं सं-बंध है॥

वामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जा-
याऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भ-
गवः ! शाधीति ॥ ४ ॥

गौअनका सहस्र है । यह निष्क है । यह
अश्वतरीयुक्त रथ है । यह जाया है । यह
ग्राम है जिसविषै स्थित हैं । हे भगवन् !
मुजकूं शिक्षाहीं कर ॥ ४ ॥

शिक्षाहीं कर ॥ ऐसें उक्तहुया रैक्व । तिस
जाया होनेअर्थ ल्यायी राजाकी दुहिताकेहीं
मुख (विद्याके द्वारपनै)कूं औ राजाके विद्या-
के दानविषै तीर्थपनैकूं उपग्रहण करता हु-
या । अर्थ यह जोः—जानता हुया कहिये "ब्र-
ह्म[44]चारी धनदायी मेधावी श्रोत्रिय (पंडित)
प्रिय वा विद्याकरि विद्याकूं कहताहै । ये मेरे

---

४४ धनदाताके विद्यादानके तीर्थपनैविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति॥ते हैते रैक्कपर्णा नाम महावृषेषु य-

---

अर्थः—ता (राजकन्या)के हीं मुख (द्वारपनै)कूं ग्रहण करताहुया कहताभयाः—हे शूद्र! इन (गौअन)कूं ल्यावताभयाहैं। इसी (कन्यारूप)हीं मुख (विद्याके द्वार)सैं आलापकूं करताहैं ऐसैं॥ ये वे प्रसिद्ध ये रैक्कपर्ण नाम हैं महावृष (पुण्यदेशरूप) जिन

(विद्याके) षट् तीर्थ (पात्र) हैं" ऐसा विद्याका वचन प्रसिद्ध जानियेहै।[४५] ऐसैं जानताहुया कहताभया॥ हे शूद्र! तूं [४६]जो इन गौव-

---

४५ विद्याके दानविषै तिस राजकन्याकी द्वारताकूं औ ताके दाता राजाकी तीर्थताकूं जानता हुया रैक कहताभया। ऐसैं उक्त अर्थकूं अनुवाद करैहैं॥

४६ रैकनैं क्या कहा इस अपेक्षाके हुये कहैहैं॥

त्रास्मा उवास । तस्मै होवाच ॥ ५ ॥
इति चतुर्थप्रपाठकस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ग्रामों]विषै वास करताभया । [तिनकूं] इसके अर्थ [देताभया] तिस (राजा)के अर्थहीं कहताभया ॥ ५ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०द्वितीयः खंडः२

नकूं औ जो अन्य धनकूं ल्यावताभया हैं सो साधु (शोभन) है । यह वाक्यशेष है ॥ इहां हे शूद्र ! ऐसैं जो फेर कहा सो पूर्व उक्तका अनुकरणमात्र है परंतु अन्य कारणकी अपेक्षासैं नहीं ॥ पूर्वकीन्यांई इसीहीं मुख-(द्वार)रूप विद्याग्रहणके तीर्थकरि आलापन कर्ताहैं । ऐसैं अर्थ यह जोः—मेरे प्रति क-

---

४७ तहां वैधर्म्य (विपरीतधर्मवाले) दृष्टांतकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—अलपधनके ग्रहणकी अनिच्छाविषै कारणकी अपेक्षाके हुये पूर्व कथन किये हे शूद्र! ऐसैं । संबोधनकीन्यांई । यह पूर्ववत् शब्दका अर्थ है ॥

हताहैं ॥ वे[४८] प्रसिद्ध ये ग्राम रैक्कपर्ण नाम विख्यात हैं महापुण्यदेशरूप जिनग्रामोंविषै रैक्क निवास करताभया तिन ग्रामोंकूं यह राजा इस रैक्ककेअर्थ देताभया । तिस धनकूं देनेवाले राजाकेअर्थ सो रैक्क विद्याकूं कहताभया ॥ ४ ॥ ५ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठ०द्वितीयः खंडः ॥ २ ॥

---

४८ रैक्कनैं ग्रामआदिककूं ग्रहणकरिके जानश्रुतिकेअर्थ विद्या दयी । यह हमारेप्रति श्रुति जनावती है ॥ इहां महावृष (नविषै) याका महापुण्यरूप (नविषै) यह अर्थ है ॥

[इहांसैं आगे तृतीय खंडकरिके प्राणोपासक ब्रह्मचारी औ कापेय अरु अभिप्रतारी इन दो राजाओंके संवादपूर्वक रैक्कका जानश्रुतिके प्रतिसूत्रका उपदेश है । ऐसैं जानना] ॥

इति श्री० चतुर्थप्रपाठकगत द्वितीयखंडस्य टिप्पणम् ॥ २ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः ॥३॥

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वा-

अथ श्री॰मूलभाषा॰चतुर्थप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः॥३॥

अर्थः—वायुहीं संवर्ग है ॥ जब अग्नि

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपा॰तृतीयः खंडः॥३॥

आख्यायिकासहितसर्वोपलब्धिफलकसंवर्गविद्या ८

टीकाः—[49]वायुहीं संवर्ग है कहिये । [50]वायु जो बाह्य [इहां वाव । यह शब्द अवधारण अर्थ है] संवर्ग है । संवर्जनतैं कहिये संग्रहणतैं वा सम्यक् ग्रसनतैं वायु संवर्ग है । [51]वक्ष्यमाण अग्निआदिक देवताओंके प्रति आत्मभावकूं सं

अथ चतुर्थप्रपाठकगततृतीयखंडस्य टिप्पणम् ॥ ३ ॥

४९ रैक किस प्रकारसैं विद्याकूं कहताभया? यह आशंका-करिके। अधिदैवतरूप ताकी उक्तिके प्रकारकूं श्रुति दिखावैहै ॥

५० "प्राणहीं संवर्ग है" ऐसैं आगे कहनेके वाक्यसैं अ-पुनरुक्तिके अर्थ वायुकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां संवर्जनतैं । इसपदकी व्याख्या संग्रहणतैं । यह है ॥

५१ सम्यक्ग्रहणरूप पक्षकूं प्रतिपादन करैहैं ॥

यति वायुमेवाप्येति। यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति। यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ॥ १ ॥

उद्वासन (नाश)कूं पावताहै [तब] वायुके ताईंहीं लय होवैहै। जब सूर्य अस्तकूं पावताहै [तब] वायुके ताईंहीं लय होवैहै। जब चंद्र अस्तकूं पावताहै वायुके ताईंहीं लय होवैहै ॥ १ ॥

पाद॰करैहै यातैं संवर्ग है । संवर्जननामवाला जो गुणहै सो वायुकीन्यांईं ध्यानकरनेकूं योग्य है । कृतनामक अय (अक्ष)विषै अन्य त्रेता आदिक नामवाले अक्षनके अंतर्भावके दृष्टांततैं ॥ ॥ [५२]नंनु वायुकूं संवर्गपना कैसैंहै? यह कहैहैं:–जब (जिसकालविषै) प्रसिद्ध अग्नि उ

---

५२ ननु वायुकी संवर्गरूपता क्यूं उपदेश करिये है? तहां पूर्व उक्त दृष्टांतरूप श्रुतिकूं आचार्य प्रमाण करैहैं ॥

५३ वा सम्यक् ग्रसणेतैं संवर्ग है। ऐसैं उक्त द्वितीय पक्षकूं आकांक्षापूर्वक व्युत्पादन करैहैं ॥

ह्रासन (उपशम)कूं पावताहै तब यह अग्नि वायुकेताँईहीं लीनहोवैहै कहिये वायुके स्वभावकूं पावताहै। ऐसैं जब सूर्य अस्तकूं पावताहै तब वायुकेताँईहीं लीन होवैहै । जब चंद्र अस्तकूं पावताहै तबवायुकेताँईहीं लीन होवैहै ॥ ॥ नं[54]नु स्वरूपकरि अवस्थित चंद्रसूर्यका वायुविषै विलय कैसैं संभवैहै ? यं[55]ह दोष नहीं है:—काहेतैं अस्तमनके हुये अदर्शनकी प्राप्तिकूं वायुरूप निमित्तवाली होनेतैं । जा[56]तैं वायुकरि सूर्य अस्तकूं पावताहै। चलनकूं

५४ सूर्य अरु चंद्रके वायुविषै विलयकूं पूर्ववादी निषेध करैहै ॥ इहां प्रलयपर्यंत तिन सूर्य चंद्रकी अधिकाररूप पदविषै स्थितिके अंगीकारतैं तिनका स्वरूपविषै अवस्थितपना देखनेकूं योग्य है ॥

५५ सूर्यआदिकके स्वरूपविषै अवस्थानके होतेबी वायुविषै लय संभवै है । ऐसैं सिद्धांती समाधान करैहैं ॥

५६ अस्तकेहुये सूर्यआदिककी अदर्शनकी प्राप्तिके वायुके अधीनपनेकूं व्युत्पादन करैहैं ॥ इहां सूर्यका ग्रहण जो है सो चंद्रकाबी उपलक्षण है ॥

यदाऽऽप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापि यन्ति। वायुर्ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥

अर्थः—जब जल सूकजातेहैं वायुके तांईहीं लय होवैहैं। जातैं वायुहीं इन सर्वकूं सम्यक् ग्रसताहै [तातैं संवर्ग है]। यह अधिदैवत है ॥ २ ॥

वायुका कार्यहोनेतैं ॥ अँथवा प्रलयविषै सूर्य चंद्रके स्वरूपके नाशहुये तेजोरूप तिन दोनूंका वायुविषैहीं विलय होवैहै॥ १ ॥

टीकाः—तैसें जब जल शोषणकूं पावतेहैं (सूखजातेहैं) तब वायुकेतांईहीं विलीन होतेहैं। वायु जातैंहीं इन महाबलवाले अग्नि आदिकनकूं ग्रसन करैहै। यातैं वायु संवर्गगुणवाला उपास्य है। यह अर्थ है ॥ ऐसें आधि-

---

५७ तब सूर्यआदिकका वायुविषै लय (नाश) गौण होवैगा? यह आशंकाकरिके। अन्यपक्षकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—वा संगति (अभेद)के समयविषै संहार करैहै ॥

अथाध्यात्मं-प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणꣳ श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्ये-

---

अर्थः-अनंतर अध्यात्म हैः-प्राणहीं संवर्ग है ॥ सो (पुरुष) जब सोवताहै [तब] प्राणके तांईहीं वाक् लय होवैहै। प्राणके तांई चक्षु। प्राणके तांई श्रोत्र । प्राणके तांई मन [लय होवैहै] ॥ जातैं प्राणहीं

दैवत कहिये देवताओंविषै संवर्गका दर्शन कहा ॥ २ ॥

टीकाः-अनंतर अध्यात्म कहिये आत्माविषै संवर्गका दर्शन यह कहियेहैः-मुख्य (मुखगत) प्राणहीं संवर्ग है। [58]सो पुरुष जब (जिसकालविषै) सोवताहै तब वायुकेतांई अग्निकीन्यांई प्राणके तांईहीं वाक् लीनहोवै

---

५८ प्राणका संवर्गपना कैसैं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां तातैं संवर्ग है। यह अध्यात्म है। यह शेष है ॥

वैतान्सर्वान् संवृङ्क्त इति ॥ ३ ॥
तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ॥ ४ ॥

इन सर्वकूं ग्रसताहै [तातें संवर्ग है] यह [अध्यात्म है] ॥ ३ ॥

अर्थः—वे प्रसिद्ध ये दोनूं संवर्ग हैं। वायुहीं देवनविषै। प्राण प्राणोंविषै ॥ ४ ॥

है। प्राणके तांई चक्षु। प्राणके तांई श्रोत्र। प्राणकेतांई मन [लीन होवैहै]॥ प्राण जातैंहीं इन वाक्‌आदिक सर्वकूं ग्रसन करैहै ऐसैं ॥ ३ ॥

टीकाः—वे[५९] प्रसिद्ध ये दो संवर्ग (संवर्जनरूप गुणवाले) हैं। वायुहीं देवनविषै संवर्ग है। मुख्य प्राण वाक्‌आदिक प्राणोंविषै संवर्ग है ॥ ४ ॥

---

५९ वायु अरु प्राण अधिदैवत अरु अध्यात्म भेदकरि संवर्गरूप गुणवाले कहे तिनकूं उपसंहार करैहैं ॥

अथ ह शौनकञ्च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे। तस्मा उ ह न ददतुः॥५॥

अर्थः—अनंतर शौनक कापेय औ अभिप्रतारी काक्षसेनि परिविष्यमाण दोनूंके प्रति ब्रह्मचारी भिक्षाकूं मांगताभया । तिसकेअर्थहीं नहीं देतेभये ॥ ५ ॥

टीकाः—[६०]अनंतर इन दोनूंकी स्तुतिअर्थ यह आख्यायिका आरंभकरियेहैः—[इहां "ह" ऐसा शब्द परंपरारूप ऐतिह्य अर्थ है] शुनकके अपत्य शौनक ऐसे कपिगोत्रवाले कापेयकूं औ नामतैं अभिप्रतारी ऐसें कक्षसेनके अपत्य काक्षसेनिकूं भोजनकेअर्थ बैठे अरु सूपकारों

---

६० "अनंतरहीं" इत्यादि अनंतरके (पंचम)वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां ब्रह्मवित्शौंड । याका ब्रह्मवेत्ताओंके मध्य आपकूं शूर माननेवाला। यह अर्थ है औ जानिके लिंगविशेषसैं । यह शेष है ॥

स होवाच-महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेय!

अर्थः—सो कहताभया:—महात्मा (बडे स्वरूपवाले) च्यारीकूं देव एक क (प्रजापति) भुवनका गोपा है सो ग्रसतभाया ॥

(पाचकों) करि परिविष्यमाण (परिवेषणकूं प्राप्तभये) इन दोनूंके प्रति ब्रह्मचारी (ब्रह्मवित्शौंड) भिक्षा मांगताभया ॥ ब्रह्मचारीकी ब्रह्मवित्पनैकी मानिताकूं लिंगविशेषसैं जानिके ताकूं जाननेकूं इच्छते (परीक्षा करते) हुये तिसकेअर्थ भिक्षाकूं नहीं देते भये। [६१]कैंया यह कहैगा ऐसैं ॥ ५ ॥

टीकाः—सोई ब्रह्मचारी कहताभयाः—महात्मा च्यारीनकूं [इहां यह द्वितीयों[६२]का बहुव-

---

६१ जाननेकूं इच्छते हुये। ऐसैं उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं॥
६२ "चतुरः (च्यारीनकूं)" इस द्वितीया विभक्तिके बहु-

नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन्ब-
हुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा ए-
तन्न दत्तमिति ॥ ६ ॥

हे कापेय! हे अभिप्रतारिन्! तिस बहुप्र-
कारसैं वसतेवालेकूं मर्त्य (मनुष्य) नहीं
देखतेहैं। जिसकेअर्थ यह अन्न है। तिस-
केअर्थ यह (अन्न) नहीं दिया ऐसैं ॥ ६ ॥

चन है। याहीतैं ग्रसताभया] देव[६३] एक। अग्नि-
आदिकनकूं वायु। औ वाक् आदिकनकूं प्राण॥
[६४]सो कः(प्रजापति)ग्रसताभया ॥ जो तिनकूं

वचनके देखनैतैं "महात्मनः (बडेनकूं)" यह पदवी तैसा (द्वितीयाका बहुवचन)हीं है। ऐसैं कहैहैं ॥

६३ यद्वाः—"महात्मनः" इसपदकी पंचमी आदिकविषै औ "चतुरः" इसपदके समीचीनरूप अर्थविषै प्रयोगके देखनेतैं। इहां तैसा प्रयोग मति होहू। ऐसैं मानिके कहैहैं। याहीतैं। ग्रसताभया। ऐसैं संबंध है ॥

६४ "कः" शब्द जो है सो प्रजापतिकूं विषयकरनेवाला व्याख्यान किया। अब अन्यपक्षकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ

कहताभया सो कौंन होवैगा ? ऐसैं प्रश्नकूं केइक कहतेहैं ॥ भूत (प्राणी) होवैहैं इसविषै ऐसा जो भूरादि सर्व लोक सो भुवन है। तिस भुवनका गोपा कहिये गोपायिता (रक्षिता)। अर्थ यह जोः-गोप्ता है । हे कापेय ! तिस प्रजापतिकूं मरणधर्मवाले वा अविवेकी ऐसे मर्त्य कहिये मनुष्य नहीं देखतेहैं कहिये नहीं जानतेहैं ॥ हे अभिप्रतारिन् ! बहुधा कहिये अध्यात्म अधिदैव अरु अधिभूत इनप्रकारोंकरि वसनेवालेकूं [मर्त्य नहींदेखतेहैं] ॥ जिसके[६५] अर्थ हीं दिन दिनविषै भक्षणअर्थ यह अन्न ल्यायियेहै औ संस्कारयुक्त (पक्व) करियेहै तिस प्रजापतिकेअर्थ यह अन्न तुमनैं नहीं दिया ऐसैं ॥ ६ ॥

हैः-जो तिनकूं ग्रसताभया सो कौंन होवैगा ? ऐसैं केईक प्रश्नकूं कहते हैं ॥

६५ अत्ता (भक्षक) प्राणकूं औ आपकूं एकभावकरि देखता हुया ब्रह्मचारी । तुम दोनूं जो मेरेअर्थ भिक्षाकूं नहीं

तद्धु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायाऽऽत्मा देवानां जनिता प्रजा-

---

अर्थः—ताहींकूं शौनक कापेय मानता-हुया आवताभयाः—देवनका आत्मा प्रजा-

---

टीकाः—तिस ब्रह्मचारीके वचनकूं शौनक कापेय मानताहुया (मनकरि आलोचन कर-ताहुया) ब्रह्मचारीके प्रति जाताभया औ जायके कहताभयाः—जिसकूं तूं कहताभया कि-"मर्त्य नहीं देखतेहैं" ऐसें ताकूं हम देखतेहैं ॥ [६६]कैसें देखतेहो किः—सर्व स्थावर जंगमनका आत्मा है। किंवाः—अग्निआदिक देवनकूं [६७]आँ-

---

देतेभये सो तिस देवके अर्थहीं नहीं देतेभये । ऐसें तिन दो-नूंके अज्ञानीपनैकूंहीं दिखावताहुया कहैहै ॥

६६ दर्शनकूंहीं प्रश्नद्वारा स्पष्ट करैहैं ॥ इहां अधिदैवत अग्नि आदिकनका वायुरूपसैं जनिता है । ऐसें संबंध है ॥

६७ ताकी प्रथमताकूं करिके दिखावै हैं ॥ इहां अग्निआ-दिकनकूं प्रलयकालविषै देव स्वात्माविषै वायुरूपसैं ग्रसिके फेर उत्पत्ति अवस्थाविषै उत्पादयिता है । ऐसें योजना है ॥

नाꣳ हिरण्यदꣳष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महा-
न्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यद-

ओंका जनिता हिरण्यदंष्ट्र भक्षणशील अ-
नसूरि (पंडितकीन्यांई) है । इसके बडे
महिमाकूं कहतेहैंः—जातें अभक्ष्यमाणहुया
अनन्न (अभक्षणीय अग्निआदिक देव)कूं

त्मा (आप)विषै संहारकरिके (ग्रसण करिके)
फेर वायुस्वरूपसैं अग्निआदिक देवनका जनिता
(उत्पादयिता) अधिदैवत है औ प्राणरूपसैं
[68]अध्यात्म है । अरु वाक्आदिक प्रजाओंका ज-
निता(जनक) है ॥ [69]अथवा अग्नि वाक् आदि-

---

६८ अध्यात्म वाक् आदिकनकूंबी निद्रा अवस्थाविषै प्रा-
णरूप स्वात्माविषै संहारकरिके । फेर प्रबोध (जागरण) अव-
स्थाविषै तिनका उत्पादयिता देव प्राणरूपसैं है। ऐसैं कहैहैं ॥

६९ अग्निआदिक देवनका वाक्आदिक प्रजाओंका जनिता
है । ऐसैं कहा । अब अन्य व्याख्यानकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ
हैः—अभग्नदंष्ट्रावाला है । इसकरि सर्वके संहारके कर्त्ताकूंबी
कोईबी ग्लानि नहीं होवैहै ॥

नन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपा-
स्महे । दत्तास्मै भिक्षामिति ॥ ७ ॥

भक्षण करैहै ऐसा है [तातें] ॥ हे ब्रह्म-चारिन्! इसकूं हम च्यारी ओरतें उपासते हैं ॥ इसकेअर्थ भिक्षाकूं देहू ऐसें [कापेय भृत्यनकूं कहताभया] ॥ ७ ॥

क देवनका आत्मा है । औ स्थावर जंगमरूप प्रजाओंका जनिता है औ हिरण्यदंष्ट्र कहिये अमृतदंष्ट्र है । अर्थ यह जोः—अभग्नदंष्ट्र है औ बभस कहिये भक्षणशील है औ अनसूरि है। सूरि (मेधावी) नहीं होवै सो असूरि है । ताका जो प्रतिषेध सो अनसूरि है । अर्थ जोः—सूरि (पंडित) की न्यांई है ॥ ब्रह्मवेत्ता जे हैं वे महान् कहिये अतिप्रमाणवाले अरु अप्रमेय इस प्र-जापतिके महिमा (विभूति) कूं कहतेहैं जांतें

---

७० प्रजापतिके महिमाकी अतिप्रमाणताकूं प्रकट करैहै ॥ इहां इति शब्दतें परे यत् शब्दका संबंध है औ ताका अर्थः—

आप अन्योंकरि अनद्यमान कहिये अभक्ष्यमाण हुया अग्नि वाकूआदिक देवतारूप अन्न (अभक्ष्य)कूं भक्षण करैहै । ऐसा जातैं है तातैं प्रजापतिके महिमाकूं अतिप्रमाण कहतेहैं [इहां वै ऐसा शब्द अर्थरहित है]॥ हम हे ब्रह्मचारिन्! इस (उक्तलक्षणवाले ब्रह्म)कूं च्यारीओरतैं उपासतेहैं [इहां हम ऐसे अंतराय रहितपदसैं संबंध है]॥ ॥ अन्यः—हम इसकूं उपासते नहीं । किंतु परब्रह्मकूं हीं उपासतेहैं। ऐसैं वर्णन करतेहैं ॥ इस (ब्रह्मच्यारी)केअर्थ

जातैं ऐसैं कहा तातैं प्रजापतिके महिमाकूं अतिप्रमाणवाला कहते हैं । ऐसैं पूर्वसैं संबंध है ॥

७१ "वै वयं (हम)" इत्यादि वाक्यके भागकूं पदच्छेदपूर्वक लेके व्याख्यान करैहैं ॥

७२ उपासते हैं इस क्रियापदके साथि "हम" इसपदके उक्त संबंधकूं उपपादन करैहैं ॥

७३ हे ब्रह्मचारिन्! इस ब्रह्मकूं हम च्यारीओरतैं उपासते हैं । ऐसैं कहिके । अब अन्य प्रकारसैं पदच्छेदपूर्वक अन्य व्याख्यानकूं कहैहैं ॥

७४ शौनकके औ अभिप्रतारीके ज्ञानके अतिशयकूं दि-

तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वा-

---

अर्थः—ताकेअर्थहीं [भिक्षाकूं] देतेभये॥ वे ये अन्य पंच अन्य पंच दश हुये सो कृत

भिक्षाकूं देहू । ऐसैं किंकरनकूं कापेय कहताभया ॥ ७ ॥

टीकाः—येई तिसकेअर्थ हीं भिक्षाकूं देतेभये ॥ वे[75] जे ग्रहण[76] करियेहैं अग्निआदिक औ जो तिनका ग्रहणका कर्त्ता वायु है। वे ये वाक्आदिकनतैं अन्य पंच हैं॥ तैसैं[77] तिनतैं

खायके। अब "यति (संन्यासी) औ ब्रह्मचारी दोनूं पक्वअन्नके स्वामी हैं" इत्यादि स्मृतिकूं अनुसरिके कहैहैं ॥

७५ आख्यायिकाद्वारा प्रकृत संसर्गविद्याविषै "आत्मा देवनका" इत्यादि गुणनके समूहकूं उपदेश करिके। अब अन्य गुणकूं उपदेश करनेकूं पीछले वाक्यकूं अवतार देते हैं ॥

७६ ता वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां वे ये वाक् आदिकनतैं अन्य पंच हैं। ऐसैं संबंध है ॥

७७ अधिदैवतरूप वायुसहित अग्निआदिक पांचकूं क-

सु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतꣳ सैषा विराड-न्नादी तयेदꣳसर्वं दृष्टꣳ सर्वमस्येदं दृष्टं

होवैहै। तातैं सर्व दिशाओंविषै अन्नहीं दश कृत है। सो यह विराट् अन्नादी है। तिसकरि यह सर्व दृष्ट है। इसकूं यह सर्व दृष्ट होवैहै।

अन्य वाक्आदिक पंच अध्यात्म हैं ॥ [७८] वें सर्व संख्याकरि दश होवैहैं । दशहुये सो कृत [कृत नामक भागकरि उपलक्षित द्यूत] होवैहै ॥ [७९] च्यारीअंकवाले एकाय (एकभाग) विषै ऐसैं

हिके । तिसीहीं प्रकारसैं अध्यात्मरूपबी तिन (अग्नि आदिकन) तैं अन्य प्राणसहित वाक्आदिक पांच हैं। ऐसैं कहैहैं ॥

७८ अवांतरसंख्याके निवेश (प्रवेश)कूं कहिके । अब तहांहीं महासंख्याके निवेशकूं दिखावै हैं ॥ इहां दशसंख्याके संबंधतैं तिनकी संख्याकरि ऐसैं कृतनामक अय (अक्षकेभागकरि उपलक्षित जो द्यूत (जुगार) सो "कृत" ऐसैं कहिये है॥ ऐसैं तिसविषै दशसंख्यावान्पनैंकूं कहनेकूं योग्य होनेतैं । देखनेकूं योग्य है ॥

७९ जो कहाकिः—अग्निआदिक औ वाक्आदिक दशहुये सो कृत होवैहै ऐसैं । ताकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ

भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अन्नाद होवैहै। जो ऐसें जानताहै। जो ऐसें जानताहै ॥ ८ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०तृतीयःखंडः॥३॥

च्यारी हैं । तीन अंकवाले भागविषै ऐसें अन्य तीनि हैं । दो अंकवाले भागविषै ऐसें दो अन्य हैं । एक अंकवाले भागविषै ऐसें एक अन्य है इति ॥ ऐसें दश हुये सो कृत (द्यूत) होवैहै ॥

है:-प्रथम द्यूतविषै च्यारीअंकवाला अक्षका एकभाग देखिये है । ताकीन्यांई अग्निआदिक अरु वाक् आदिक ग्रस्यमान हुये च्यारी होवैहैं ॥ औ जैसें द्यूतविषै त्रेतानामक अय (अक्षका भाग) तीन अंकवाला ग्रहण करिये है । तैसें अग्निआदिक अरु वाक्आदिक एक एकसें न्यून हुये तीनि हैं ॥ औ तैसें तहां (द्यूतविषै) द्वापर नामवाला अय दोअंकवाला होवैहै । ताकीन्यांई वाक्आदिकनविषै अरु अग्निआदिकनविषै दो दोकूं वर्जनाकरिके दो दो होवैहैं ॥ औ तैसें कलिसंज्ञक जो अय है सो एकअंकवाला होवैहै । जो अग्निआदिकनका ग्रसिता वायु है अरु वाक्आदिकनका ग्रसिता प्राण है सो एक है अरु

[८१]जांतैं ऐसैं है तातैं सर्व (दश) दिशाओविषैबी अग्निआदिक औ वाक्आदिक दशसंख्याके सामान्यतैं अन्नहीं है। [८२]जातैं दश अक्षरवाली विराट् है औ विराट् अन्न है" ऐसी श्रुति है। [८२]यातैं दश संख्याके होनेतैं अन्नहीं है । [८३]ताहीतैं

तिन ग्रस्यमानोंतैं अन्य है। ऐसैं ग्रसिता होनैंकरि औ ग्रस्यमान होनैंकरि दशहुये वे पूर्वोक्त कृत (द्यूत) होवैहै॥

८० द्यूतके सर्वअन्नके अत्तापनैकी प्रसिद्धिकरि दशसंख्यावाले देवनका कृतपनैके संपादनकरि अत्तापना संपादन किया। अब दशसंख्यावान्‌पनैंकरिहीं विराट्भावके संपादनसैं तिन देवनके अन्नपनैकूं संपादन करैहैं॥

८१ मिलित अग्निआदिकनविषै औ वाक्आदिकनविषै दशसंख्यावान्‌पनैंके हुयेबी इसकरि तिसवान्‌पना कैसैं है औ तैसैं संख्या सामान्यरूप तिनके अन्नसंख्याके सामान्यका संपादन कैसैं है। यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

८२ विराट्देवता दशसंख्यावाली प्रसिद्ध है औ सो अन्न है ऐसैं सुनिये है। तैसैं हुये यथोक्त अग्निआदिकनविषै औ उक्त वाक्आदिकनविषै संख्याके सामान्यतैं विराट्भावकूं संपादन करिके अन्नभावका संपादन सुखसैं शक्य है। ऐसैं कहैहैं॥

८३ तिनविषै कृतपनैंकरि संपादन किये अन्नभावकूं उपसंहार करैहैं॥ इहां यह अर्थ है:-द्यूतकूं आगोंके चतुष्टयसैं

दश कृत है । काहेतें चतुराय (च्यारीभाग) पनैंकरि कृतविषै तिन दशके अंतर्भावतें । ऐसैं हम कहतेभये ॥ ८४ सो यह विराट् देवता दश-संख्यावाली हुई अन्न है और कृतपनैकरि अन्नादी कहिये अन्नादिनी है ॥ जैतें कृतविषै

विशिष्ट होनैंकरि कृतनामक भागकरि उपलक्षित कृतरूप हो-नैंकरि तिस द्यूतविषै दशसंख्याके सद्भावतें औ तातैंहीं क-हिये संख्याके सामान्यतैं अग्निआदिक कृत होवैहैं औ तातैं तिनका अत्तापना है । ऐसैं कहा ॥

८४ अब प्रकृत अग्निआदिकनविषै विराट्पना । अन्नपना। अत्तापना । इन तीनकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— विराट्कूं विधेय होनेतें ताकूं स्त्रीलिंगवान्ताकरि "सो यह" ऐसैं विधेय देवताके लिंगका भजना है । वे ये प्रकृत देव "विराट् है" ऐसैं जाननेकूं योग्य है औ सो विराट् देवता दशदेवतास्वरूप दशसंख्यावाली हुई अन्न होवैहै । ऐसैं देव-ताओंके अन्नभावकी सिद्धि है औ "अन्नादी" इस पदका वि-राट् देवताके साथि संबंधतैं "अन्नादिनी" ऐसा व्याख्यान है औ तातैं देवतास्वरूप विराट् कृत (द्यूत)रूप होनेकरि अन्ना-दिनी है । यातैं तिसस्वरूपवाले अग्निआदिक देवनकेबी अ-त्ताभावकी सिद्धि है ॥

८५ विराट्भावकरि अन्नपना है औ कृत (द्यूत) भावकरि अत्तापना है । ऐसैं अग्निआदिक देवनविषै दिखाई दो संप-त्तिकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—कृतकरि उपल-

दशसंख्या अतर्भूत हैं। यातैं सो (विराट् देवता) अन्न अरु अन्नादिनी (अन्नकी भक्षक) है॥ [८६] तैसैं विद्वान् दश देवताओंका आत्मभूत हुया विराट्भावकरि दश संख्यासैं अन्न होवै है औ कृतसंख्यासैं अन्नादी होवैहै। तिसँ कृ-

---

क्षित द्यूतविषै दशसंख्या अंतर्भूत प्रसिद्ध है औ सो अग्नि-आदिकविषै दिखाई। ऐसैं हुये संख्याके सामान्यतैं द्यूतगत जो अत्तापना है सो अग्निआदिकनविषै संपादन करिये है। तिसकरि यह दशक "अन्नादी" ऐसैं कहिये है। वेदविषै विराट् दशसंख्यावाली है ऐसैं कहा औ सो (विराट्) अन्न है। काहेतैं "विराट् अन्न है" ऐसैं श्रुतिविषै उक्त होनेतैं औ तातैं विराट्की संपत्तिकरि प्रकृत दशक अन्न होवैहै॥

८६ सगुणरूप संवर्गके उपासनकूं कहिके। अब ताके फलकूं कहनेकूं विद्वान्के स्वरूपकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:-जैसैं अग्निआदिक देवनका विराट्भावकरि अन्नपना है औ कृत (द्यूत) भावकरि अन्नाद (अत्ता)पना है। तैसैं अग्नि-आदिकस्वरूप वायुकूं औ वाक्आदिकस्वरूप प्राणकूं आत्मभावकरि एकरूपकरिके विद्वान् दशदेवताओंका स्वरूपभूत हुया दशसंख्यासैं विराट्भावकरि अन्न होवैहै औ कृतशब्दका वाच्य जो कृतनामक भाग अरु तिसकरि उपलक्षित द्यूतरूप युगल। तद्वत दशसंख्याकरि अवच्छिन्न होनैसैं कृतभावकरि अन्नादी होवैहै॥

८७ फलकी उक्तिविषै उपयोगी होनेकरि अन्य अर्थकूं क-

तसंख्याभूत अन्नादिनीकरि यह सर्व दशदिशाओंविषै स्थित जगत् दृष्ट (उपलब्ध) है ॥ इस कृतसंख्याभूत ऐसैं[८८] जाननेवालेकूं सर्व दशदिशाओंसैं संबधवाला यह जगत् दृष्ट (उपलब्ध) होवैहै । किंवा अन्नाद (अन्नका भोक्ता) होवैहै जो ऐसैं जानता है कहिये य-

---

हैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—कृतकरि उपलक्षित जो द्यूत तिसविषै स्थितसंख्याकरि विशिष्ट होनेकरि अवस्थित अरु अन्नभावकरि औ अन्नादिभावकरि व्यवस्थाकूं प्राप्त तिस दशदेवतास्वरूप अन्नादिनीकरि सर्व यह दशदिशाओंविषै स्थित जगत् दृष्ट (उपलब्ध) होवैहै । जातैं देवताके दशककूं छोडिके जगत् नाम किंचित् नहीं है । ऐसैं हुये देवताके दशकके देखेहुये सर्व जगत् दृष्टहीं होवैहै ॥

८८ ऐसैं भूमिकाकूं करिके । अब विद्याके फलकूं दिखावैहैं ॥ इहां वायु अरु प्राणरूप अत्ताकूं आत्मभावकरि देखनेवाले अरु कृतकी संख्यासैं युक्त होनेकरि स्थित दशदेवताभूत विद्वान्कूं सर्व जगत् दृष्ट होवैहै । काहेतैं दृष्ट देवताओंतैं भिन्न जगत्के अभावतैं । यह अर्थ है ॥ औ जो यथोक्तका दर्शी है सो प्राणरूप होयके सर्वत्र अन्नाद होवैहै । यह अन्य फल है ॥

इति श्री०चतुर्थप्रपाठकगततृतीयखंडस्य टिप्पणम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य चतुर्थः खंडः॥४॥

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मा-

अथ श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपाठ०चतुर्थः खण्डः ॥४॥

अर्थः-सत्यकाम जाबाल। जबाला मा-

थोक्तका दर्शी है ॥ इहां दो अभ्यास इस उ-
पासनकी समाप्तिरूप अर्थवाला है॥ ८ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः॥३॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य चतुर्थः खंडः४

सत्यकामकरि ब्रह्मचर्यार्थ गौतमगुरुगोचारण ५

टीकाः-सर्व वाक् आदिक औ अग्निआदिक अन्न अरु अन्नादभावकरि संस्तुत जगत्कूं एकरूपकरिके (मिलायके) षोडशप्रकारसैं विभागकरिके तिसविषै ब्रह्मदृष्टि करनेकूं योग्य है

अथ श्री०चतुर्थप्रपाठकगतचतुर्थखंडस्य टिप्प० ॥४॥

८९ पूर्व खंडके साथि संबंधकूं दिखावनेकूं उत्तरखंडके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां एकरूप करिके। याका कारणरूपसैं एकताकूं ग्रहण करिके। यह अर्थ है ॥

तस्मामन्त्रयाञ्चक्रे-ब्रह्मचर्यं भवति! विवत्स्यामि। किंगोत्रोऽहमस्मीति ॥ १ ॥

ताकूं आमंत्रण करताभयाः—हे भवति! ब्रह्मचर्य जैसें होवै तैसें वास करूंगा। किस गोत्रवाला मैंहूं? ऐसें ॥ १ ॥

यातें आरंभकरियेहै। श्रद्धा अरु तपकूं ब्रह्मके उपासनका अंगपना दिखावनेकेअर्थ आख्यायिका हैः—नामतें सत्यकाम [इहां "ह" शब्द परंपरारूप अर्थवाला है] ऐसा जबालाका अपत्य (पुत्र) जो जाबाल सो। जबाला नामवाली स्वमाताकूं आमंत्रण करताभया (बुलावताभया) ॥ इहां ब्रह्मचर्य जो कहा है सो स्वाध्यायके ग्रहणअर्थ है॥ हे भवति (पूज्यमाता)! मैं आचार्यके कुलविषै ब्रह्मचर्य जैसें

९० ननु तब तिसविषै ब्रह्मदृष्टिहीं करनेकूं योग्य है। आख्यायिका क्यूं रचिये है? तहां कहैहैं ॥

९१ ब्रह्मचर्यपूर्वक वासके उद्देश्य (कहने योग्य) फलकूं दिखावै हैं ॥

सा हैनमुवाच-नाहमेतद्वेद तात! यद्गोत्रस्त्वमसि। बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे। साऽहमेतन्न वेद य-

अर्थः—सो इसकूं कहतीभयीः—हे तात! मैं यह नहीं जानतीहूं किः—जिस गोत्रवाला तूं हैं। मैं बहु परिचर्याकूं करतीहुयी परिचारिणीहूं। यौवनविषै तुजकूं प्राप्तभयीहूं। सो मैं यह नहीं जानतीहूं किः—

होवै तैसैं वासकरूंगा। मैं किंगोत्र हूं[९२] कहिये क्या है गोत्र इस मुजका सो मैं किंगोत्र (किस गोत्रवाला) हूं? ऐसैं ॥ १ ॥

टीकाः—ऐसैं पूंछी हुई जो जबाला सो इस पुत्रकूं कहतीभई। हे तात! मैं इस तेरे गोत्रकूं नहीं जानतीहूं। जिस गोत्रवाला तूं हैं॥ ॥ काहेतैं नहीं जानती हैं? ऐसैं

९२ आचार्य जातैं विज्ञात कुलगोत्रवालेहीं बालककूं उपनयन करैहैं। ऐसैं मानताहुया सत्यकाम माताकूं पूंछता है॥

द्गोत्रस्त्वमसि। जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि। स सत्यकाम एव जाबालो ब्रवीथा इति ॥ २ ॥

जिस गोत्रवाला तूं हैं ॥ जबाला नाम तो मैं हूं। सत्यकाम नाम तूं हैं। सो [तूं] स-"त्यकामहीं जाबाल" कहना ऐसें ॥ २ ॥

उक्त हुई । कहैहैः—जातें बहु जैसें होवै तैसें अतिथि अभ्यागत आदिककूं आश्रयकरिके प-रिचर्या (सेवा) का समूह बहु जैसें होवै तैसें आचरतीहुयी भर्त्ताके ग्रहविषै जातें मैं स्थि-तभयी हूं । तिसकारणकरि मैं परिचारिणी (परिचरणशीला) हुई परिचरण (सेवा) विषै चित्तवाली होनेकरि गोत्रआदिककूं नहीं पूंछती-भई। तैसें हुये गोत्रआदिकके स्मरणविषै मेरा मन न होताभया। औ यौवन[९३]विषै (तिसका-

---

९३ गोत्रआदिकके प्रश्नके अभावविषै माता अन्य हेतुकूं कहैहै ॥

लमैं) तुजकूं प्राप्तभयीहूं । [९४]तबहीं तेरा पिता उपरामभया । [९५]यांतैं अनाथ हुयी जो मैं । [९६]सो मैं यह नहीं जानतीहूं किः—जिसगोत्रवाला तूं हैं ॥ परंतु [९७]जैबाला नाम मैं हूं । सत्यकाम नाम तूं हैं । [९८]सो तूं "सत्यकामहीं मैं जाबाल हूं" ऐसैं आचार्यकेतांई कहना । [९९]जैब आचार्यकरि पृष्ट होवैं तब । यह अभिप्राय है ॥२॥

---

९४ यद्यपि तिस अवस्थाविषै लज्जाकरि गोत्रआदिककूं तूं नहीं पूंछतीभयी । तथापि कालांतरविषै मेरे पिताकूं तूं क्यूं नहीं पूंछतीभयी ? यह आशंकाकरिके माता कहैहै ॥

९५ तथापि अन्य ज्ञाताकूं तूं क्यूं नहीं पूंछतीभयी ? यह आशंकाकरिके माता कहैहै ॥

९६ प्रथम लज्जाकरि तेरे पिताकेप्रति नहीं पूंछया औ फेर ताकूं उपराम (मृत) होनेतैं पीछे दुःखकी बहुलतातैं अन्यकेप्रति प्रश्न नहीं किया । ऐसैं स्थितहुये प्रश्नके अभावरूप फलकूं माता कहैहै ॥

९७ तब तुजकूं क्या ज्ञान है ? सो माता कहैहै ॥

९८ ऐसैं स्थितहुये आचार्यकेप्रति मुझकरि क्या कहनेकूं योग्य है ? यह आशंकाकरिके माता कहैहै ॥

९९ "किसीकाबी नहीं पूंछया हुया नहीं कहै" इस न्यायकूं सूचन करैहै ॥

स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच-ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥ ३ ॥

अर्थः—सो (सत्यकाम) हारिद्रुमान् गौतमके प्रति जायके कहताभयाः—ब्रह्मचर्य जैसैं होवै तैसैं भगवान्विषै वासकरूंगा । भगवान्के प्रति उपगमनकरताहूं । ऐसैं ॥३

टीकाः—[100]सो सत्यकाम हरिद्रुमान्के अपत्य हारिद्रुमान् ऐसैं गोत्रतैं गौतमके प्रति जायके कहताभयाः—तुज भगवान् (पूजावान्) विषै मैं ब्रह्मचर्य जैसैं होवै तैसैं वसूंगा । [101]यातैं शिष्यभावकरि भगवान् (आप)के प्रति उपगमनकरताहूं (शरणहोताहूं) ॥ ऐसैं क-

१०० माताके वचनके श्रवणके अनंतर सत्यकाम क्या करताभया ? इस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥

१०१ आचार्यके समीपमैं ब्रह्मचर्यपूर्वक वास शिष्यभावतैं विना नहीं सिद्ध होवैहै ? ऐसैं माननेवाले गौतमकेअर्थ सत्यकामनैं कहा ॥

तꣳ होवाच-किंगोत्रो नु सोम्यासी-ति॥स होवाच-नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽ-हमस्म्यपृच्छं मातरꣳ सा मा प्रत्यब्र-वीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वा-

---

अर्थः–ताकूं [गौतम] कहताभयाः–हे सोम्य ! किसगोत्रवाला हैं ? ऐसैं ॥ ॥ सो (सत्यकाम) कहताभयाः–भोः मैं यह नहीं जानताहूं जिसगोत्रवाला मैं हूं। माताकूं पूंछताभया। सो मेरे प्रति कहतीभयीः–मैं बहु परिचर्याकूं करतीहुयी परिचारिणी (परिचर्यारूप स्वभाववाली) हूं। यौवनविषै

हनेवाले तिस सत्यकामकेप्रति गौतम कह-ताभयाः–हे सोम्य (प्रियदर्शन)! तूं किस-गोत्रवाला हैं ऐसैं विज्ञातकुलगोत्रवाला[१०२] शिष्य

---

१०२ ननु इस काकके दंतोंकी परीक्षाकरि क्या है। आप करितो मैं उपनयन करनेकूं योग्य हूं? यह आशंकाकरिके गौतम कहैहै ॥

मलभेसाहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि। जबाला तु नामाऽहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति। सोऽ हꣳ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥

तुजकूं प्राप्तभयी हूं। सो मैं यह नहीं जानतीहूं किः—जिसगोत्रवाला तूं हैं। जबाला नाम तो मैं हूं। सत्यकाम नाम तूं हैं ऐसैं ॥ भोः! "सो मैं सत्यकाम जाबालहूं" ऐसैं ४

उपनयन करनेकूं योग्य है? ॥ ऐसैं पूंछ्या हुया सत्यकाम प्रत्युत्तर कहैहैः—सो (सत्यकाम) कहैहैः—भो भगवन्! मैं यह नहीं जानताहूं जिसगोत्रवाला मैंहूं। किंतु मैं[१०३] माताकूं पूंछताभयाहूं। सोमाता मुजकरि पृष्ट (पूंछी) हुयी मेरेप्रति कहतीभयीः—"मैं बहु जैसैं होवै तैसैं परिचरण (अभ्यागतोंका सेवन) करती

---

१०३ माताकूं पूंछिके जानिके आवना? यह आशंका करिके (मनमैं लायके) सत्यकाम कहैहै ॥

तꣳ होवाच-नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति।समिधꣳ सोम्याहरोप त्वा नेष्ये।न

अर्थः–ताकूं [गौतम] कहताभयाः–यह (ऐसा वचन) अब्राह्मण विशेषकरि कहनेकूं योग्य नहीं है। सत्यतैं रहितभया नहीं हैं। हे सोम्य! समिधकूं ल्याव तुजकूं

हुयी" इत्यादि पूर्ववत् है॥ भो भगवन्! मैं ता माताके वचनकूं स्मरण करताहूं। सो मैं सत्यकाम। जाबालहूं। ऐसैं॥ ३॥ ४॥

टीकाः–ता सत्यकामकूं गौतम कहताभयाः–इस आर्जव अरु अर्थकरि संयुक्त वचनकूं अब्राह्मण विशेषकरि कहनेकूं योग्य नहीं है। [104]जौतैं ब्राह्मण स्वभावतैं ऋजु (शरल) होते हैं

---

१०४ ननु वा ब्राह्मणका अनृत (जूठ) विना आर्जव (सरलताकरि संयुक्त वचन कैसैं होवैगा? यह आशंकाकरिकैं कहैहैं॥

सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानाम-
बलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचे-
माः सोम्यानुसंव्रजेति॥ता अभिप्रस्था-

उपनयन करूंगा। ऐसें ताकूं उपनयनक-
रिके कृश अरु बलरहितनके मध्य चतुः-
शत गौअनकूं निकाशिके कहताभयाः–हे
सोम्य! इनकेतांई पीछे जा ऐसें ॥ ॥ [स-
त्यकाम] तिनकूं अभिप्रस्थान करावताहु-

ई[105]तैंर नही। जां[106]तैं सत्यरूप ब्राह्मणजातिके ध-
र्मतैं तूं रहितभया नहीं यातैं तुज ब्राह्मणकूं
मैं उपनयन (यज्ञोपवीत) करूंगा। यातैं
हे सोम्य! संस्कारकेअर्थ होमके वास्ते समि-
धकूं ले आव। ऐसें कहिके ताकूं उपनयनक-

---

१०५ केईक क्षत्रिय आदिकनकूंबी आर्जव है? यह आशं-
काकरिके कहैहैं॥

१०६ सरलवचनवान्ताकरि ब्राह्मणपनैकूं प्रतिज्ञा करैहैं॥
इहां उपनयनकरिके औ अध्यापन करिके। यह शेष है॥

पयन्नुवाच-नासहस्रेणावर्तयेति। स ह व-
र्षगणं प्रोवास। ता यदा सहस्रꣳसम्पेदुः५

इति चतुर्थप्रपाठकस्य चतुर्थः खंडः ॥ ४ ॥

या कहताभयाः—असहस्रकरि पीछे आऊं-
गा नहीं ऐसैं ॥ सो वर्षोंके गणपर्यंत पर-
देशविषै रहताभया ॥ वे (गौआं) जब
सहस्र संपन्न होतीभयी ॥ ५ ॥

इति श्री॰मूलभाषा॰चतुर्थप्रपा॰चतुर्थःखंडः ४॥

रिके [अरु अध्यापन करायके][१०७]कृश अरु नि-
र्बल गौअनके मध्य गौअनके यूथरूप गौ-
अनके च्यारीशतनकूं निकासिके कहता-
भयाः—"हे सोम्य! इन गौअनके पीछेजा"
[१०८]ऐसैं उक्त हुया सत्यकाम। तिन गौअनकूं अ-

---

१०७ ताके अनुग्रहअर्थ सेवाकूं उपदेश करताभया। ऐसैं कहैहैं ॥

१०८ आचार्यका नियोग (आज्ञा) शिष्यकरि सफल करनेकूं योग्य है ॥ इस आशयकरि कहैहैं ॥ जब संपन्न होती-

रण्य (वन)के प्रति अभिप्रस्थान करावता हुया कहताभयाः—मैं असहस्र (अपूर्णसहस्र)करि पीछे नहीं आउंगा॥सो ऐसैं कहिके गौअनकूं बहुत तृण उदकवाले द्वंद्व(व्याघ्रादि) रहित अरण्यके प्रति प्रवेश करायके वर्षगण (दीर्घकाल) पर्यंत परदेशविषै वासकरताभया। वे गौआं सम्यक् रक्षितहुई जब (जिसकालविषै) सहस्र संपन्न (सिद्ध) होतीभयी [तब इसकूं वृषभ कहताभया] ॥ ५ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य चतुर्थःखंडः ॥ ४ ॥

भयी तब इस सत्यकामकूं ऋषभ (प्रसन्न भई वायुदेवताके आवेशकरि युक्त बलीवर्द) कहताभया। ऐसैं आगिले खंडसैं संबंध है ॥

इति श्री०चतुर्थप्रपाठकगतचतुर्थखंडस्य टिप्पणम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य पंचमः खंडः॥५॥

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद-सत्यकाम३ इति॥ भगव!इति ह प्रतिशुश्राव॥प्राप्ताः

अथ श्री॰मूलभाषा॰चतुर्थप्रपाठकस्य पंचमःखण्डः ५

अर्थः–अनंतर इसकूं ऋषभ (बैल)। हे सत्यकाम! ऐसैं कहताभया॥ ॥ हे भगवन्! ऐसैं [सत्यकाम] प्रतिउत्तर देताभ-

---

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपाठ॰पंचमःखंडः ॥५॥

बलीवर्द (वायु)करि सत्यकामकेअर्थ ब्रह्मके
प्रथमपादकी उक्ति ३

टीकाः–तिसैं¹⁰⁹ इस श्रद्धा अरु तपकरि सिद्ध-

अथ श्री॰चतुर्थप्रपाठकगतपंचमखंडस्य टिप्पणम्५

१०९ ननु ऋषभ जो बैल सो तो सत्यकामकेप्रति उत्तर-कहनेकूं कैसैं समर्थ भया। जातैं लोकविषै बलीवर्दका प्रतिवचन (उत्तर) देख्या नहीं? यातैं कहैहैं॥ इहां श्रद्धा आदिककरि संपन्न इस सत्यकामकेप्रति अनंतर कहिये तिस (वायुदेवताके आवेशयुक्त) अवस्थाविषै ऋषभ अनुग्रहकेअर्थ कहताभया। ऐसैं संबंध है॥

सोम्य! सहस्रꣳ स्मः प्रापय न आचार्य-कुलम् ॥ १ ॥

या ॥ ॥ [ऋषभ कहताभयाः—]हे सोम्य! सहस्रकूं प्राप्तभये । हमकूं आचार्यके कुल-केप्रति प्राप्तकर ॥ १ ॥

भये सत्यकामकेप्रति दिशौंकी[११०] संबंधिनी वायु[१११]-देवता तुष्ट(प्रसन्न)हुयी ऋषभ(बलीवर्द) केतांई अनुप्रवेशकरिके ऋषभ (बलीवर्द)रूप संपन्नहुयी । अनंतरहीं इससत्यकामकूं अ-नुग्रहकेअर्थ हे सत्यकाम ! ऐसैं संबोधनकरिके कहताभया ॥ ॥ ताकेप्रति यह सत्यकाम हे भगवन् ! ऐसैंहीं प्रतिवचन देताभ-या ॥ ॥ हे सोम्य ! हम सहस्रकेप्रति प्रा-

---

११० ऋषभके स्वरूपकूं कहैहैं ॥

१११ ननु अरण्यविषै तहां तहां गौअनकूं चरावनेवाले अरु श्रद्धापूर्वक तपकूं आचरनेवाले सत्यकामकूं वायु देवता कैसैं तुष्ट भई ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ॥ ब्रवीतु मे भगवानिति॥तस्मै होवाच-प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलो-

---

अर्थः—औ तेरेअर्थ ब्रह्मकेपादकूं कहताहूं ऐसें ॥ ॥भगवान् मेरेअर्थ कहहू ऐसें [सत्यकाम कहताभया]॥ ॥ ताकेअर्थ [ऋषभ] कहताभयाः—प्राचीदिशा कला है। प्रतीचीदिशा कला है। दक्षिणदिशा कला

सभये। तेरी प्रतिज्ञा पूर्णभयी। यातैं हमकूं आचार्यके कुल(गृह)केप्रति प्राप्तकर ॥१॥

टीकाः—किंवाः—मैं[११२] परब्रह्मके पादकेताईं तेरेअर्थ कहताहूं ॥ ॥ ऐसैं उक्त हुया सत्यकाम प्रत्युत्तर कहताभयाः—भगवान् (पूजावान् आप) मेरेअर्थ कथन करहू ॥ ॥ ऐसैं

---

११२ औ मेरा अन्य वचन सुननेकूं योग्य है। ऐसैं बैल कहैहै ॥

दीची दिक्कलैष वै सोम्य! चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥ २ ॥

है। उदीचीदिशा कला है ॥ हे सोम्य! यहहीं ब्रह्मका चतुष्कल पाद "प्रकाशवान्" नाम है ॥ २ ॥

उक्त हुया ऋषभ तिस सत्यकामकेअर्थ कहताभया:—प्राची[११३] (पूर्व) दिशा कला कहिये ब्रह्मके पादका चतुर्थ भाग है । तैसैं प्रतीची (पश्चिम) दिशा कला है। दक्षिणदिशा कला है। उदीची (उत्तर) दिशा कला है ॥ हे सोम्य ! यहहीं ब्रह्मका चतुष्कल पाद है कहिये च्यारी हैं कला (अवयव) जिसके ऐसा है सो यह चतुष्कल ब्रह्मकापाद प्रकाशवान् नाम है कहिये प्रकाशवान् ऐसाहीं है नाम

---

११३ वायुदेवता दिशाकी संबंधिनी। ऐसैं उक्त होनेतैं दिशागोचरहीं दर्शन (उपासन)कूं कहताभया। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां ब्रह्मके अरु पादका । ये दो षष्ठीविभक्ति व्यधिकरण (भिन्नअर्थवाली) हैं ॥

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते। प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति॥ प्रकाशवतो ह लो-

---

अर्थः—जो इसकूं ऐसे विद्वान् हुया ब्रह्मके चतुष्कल पादकूं "प्रकाशवान् है" ऐसैं उपासता है। सो इस लोकविषै प्रकाशवान् होवैहै। प्रकाशवालेहीं लोकनकूं जीतताहै

(अभिधान) जिसका ऐसा है ॥ तैसैं[114] ब्रह्मके उत्तर (पीछले) तीनि पादबी चतुष्कल हैं॥२॥

टीका:—सो[115] जो कोइकबी ऐसैं (यथोक्त) इस ब्रह्मके चतुष्कलपादकूं विद्वान् हुया "प्रकाशवान् है" ऐसैं इस गुणकरि विशिष्ट उपासताहै। ताकूं यह फल है:—इस लोकविषै प्रकाशवान् होवैहै। अर्थ यह जो:—प्र-

---

११४ एकपादवालाहीं ब्रह्म है। इस विभ्रमकूं दूरी करैहैं॥
११५ प्रथमपादके उपासककूं दृष्ट अरु अदृष्टरूप फल कहैहैं॥

काञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥ ३ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य पञ्चमः खंडः ॥ ५ ॥

जो इसकूं ऐसैं विद्वान्‌हुया ब्रह्मके चतुष्कल पादकूं "प्रकाशवान्" ऐसैं उपासताहै ॥३॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०पंचमः खंडः॥५॥

ख्यात होवैहै ॥ तैसैं अदृष्ट फलः—प्रकाशवालेहीं देवादिकनके संबंधी लोकनकूं मृतहुया जीतताहै (पावता है) ।जो[116] इसकूं ऐसैं जानताहुया ब्रह्मके चतुष्कल पादकूं "प्रकाशवान् है" ऐसैं उपासताहै ॥ ३ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य पंचमः खंडः ॥५॥

---

११६ किसकूं यह फल होवैहै? ऐसैं कहेहुये । पूर्व उक्तहीं उपासककूं अनुवाद करैहैं ॥

इति श्री०चतुर्थप्रपाठकगत पंचमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥६॥

अग्निष्टे पादं वक्तेति॥स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार। ता यत्राभि सा-

---

अथ श्री॰मूलभाषा॰चतुर्थप्रपाठकस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

अर्थः—अग्नि तेरेअर्थ पादकूं कहैगा। ऐसें [ऋषभ कहताभया]॥ ॥ सो (सत्यकाम) अन्य दिवसविषै गौअनकूं अभिप्रस्थान (अभिगमन) करावताभया। वे

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः॥६॥

अग्निकरि सत्यकामके अर्थ ब्रह्मके द्वितीय पादकी उक्ति ४

टीकाः—सो[११७] ऋषभ। अग्नि तेरेअर्थ पादकूं वक्ता (कहैगा)। ऐसें कहिके उपराम होताभया॥ ॥ सो [११८]सत्यकाम श्वोभूत (अन्य-

---

अथ चतुर्थप्रपाठकगतषष्ठखंडस्य टिप्पणं ॥ ६ ॥

११७ अवशेष रहे तीनिपाद कैसैं देखनेकूं योग्य हैं ? ऐसें जाननेकूं इच्छनेवाले सत्यकामकेप्रति ऋषभ कहैहै ॥

११८ अविद्वान् (अज्ञानी)कूं विद्याके अभिमानरूप निमि-

यं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उप-रुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेःप्राङुपो-पविवेश ॥ १ ॥

जहां सायंकालकूं अभिमुख होती भई । तहां अग्निकूं उपसमाधानकरिके गौअनकूं उपरोध (बंधन)करिके समिधकूं लेके अग्निके पश्चात् पूर्वाभिमुख हुया समीप बैठता भया ॥ १ ॥

दिवस)विषै नित्यकर्मकूं करिके गौअनकूं आ-चार्यके गृहके प्रति अभिप्रस्थान करावताभ-या । वे गौआं शनैः (धीरेसैं) चरती आचार्यके गृहके अभिमुखी हुयी प्रास्थित (प्रस्थानकूं प्रा-प्त)भयी । जहां (जिसकालविषै जिसदेशविषै) सायंकालकूं अभिमुख होतीभई (प्राप्तभई)

त्तकरि कर्मका त्याग युक्त नहीं है । ऐसैं मानिके कहैहैं ॥
इहां सायंकालकूं अभिमुख होती भई । याका सायंकालकूं प्राप्तभई । यह अर्थ है ॥

तमग्निरभ्युवाद-सत्यकाम३इति॥भगव! इति प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

अर्थः-ताकूं अग्नि हे सत्यकाम! ऐसैं कहता भया ॥ ॥ [सत्यकामः-] हे भगवन्! ऐसैं प्रत्युत्तर देता भया ॥ २ ॥

कहिये रात्रिविषै एकत्र अभिमुखी होतीभयी। [११९] तहां अग्निकूं उपसमाधानकरिके गौअनकूं उपरोधकरिके समिधकूं ग्रहणकरिके । अग्निके पश्चात् (पश्चिमभागविषै) पूर्वाभिमुख हुया समीप बैठताभया ॥ क्या करता हुया किः-[१२०] ऋषभके वचनकूं ध्यावता हुया ॥ १ ॥

टीकाः-ताकूं अग्नि । हे सत्यकाम! ऐसैं

११९ ता सत्यकामका ब्रह्मचर्य खुल्ला है । ऐसैं सूचन करैहैं ॥ इहां दो उपशब्दोंकरि गौअनके अरु अग्निके समीपविषै इस सत्यकामका बैठना कहियेहैं ॥

१२० अर्थीके अर्थ विद्या कहनेकूं योग्य है । ऐसैं सूचन करैहैं ॥ इहां आत्मगोचर । याका इस अग्निके विद्यमान । यह अर्थ है ॥ यद्वाः-पृथिवी आदिरूपसैं अग्निके अवस्थानतैं अग्निकूं । विषयकरनेवाले । यह अर्थ है ॥

ब्रह्मणः सोम्य! ते पादं ब्रवाणीति॥ब्रवीतु मे भगवानिति॥तस्मै होवाच- पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला स-

---

अर्थः–[अग्नि कहता भयाः–] हे सोम्य ! तेरेअर्थ ब्रह्मके पादकूं कहताहूं ऐसें ॥ ॥भगवान् मेरेअर्थ कहहू ऐसें [सत्यकाम कहता भया] ॥ ॥ तिसकेअर्थ [अग्नि] कहता भयाः–पृथिवी कला है। अंतरिक्ष कला है। स्वर्गलोक कला है।

संबोधन करिके कहताभया ॥ ॥ ताकूं यह सत्यकाम । हे भगवन्! ऐसें प्रतिवचन देताभया ॥ २ ॥

टीकाः–हे सोम्य! ब्रह्मके पादकूं तेरे अर्थ कहताहूं । ऐसें [अग्नि कहताभया] ॥ ॥ [सत्यकामः–] भगवान् मेरेअर्थ कथन करहू । ऐसें [कहताभया] ॥ ॥ ताकेअर्थ [अग्नि]

मुद्रः कलैष वै सोम्य! चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं

समुद्र कला है ॥ हे सोम्य! यह हीं ब्रह्मका चतुष्कल पाद "अनतवान्" नाम है ॥ ३ ॥

अर्थः—जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया

कहताभयाः—पृथिवी कला है । अंतरिक्ष कला है । स्वर्गलोक कला है । समुद्र कला है । ऐसैं आत्मगोचर (इस अग्निकूं विद्यमान)हीं दर्शनकूं अग्नि कहताभया ॥ हे[121] सोम्य! यहहीं ब्रह्मका चतुष्कल पाद "अनंतवान्" नाम है ॥ ३ ॥

टीकाः—सो[122] जो कोईकबी यथोक्त पादकूं

---

१२१ यथोक्त पादविषै गुणविशेषकूं कीर्त्तन करैहैं ॥
१२२ द्वितीयपादके उपासककूं द्विविध फल दिखावै हैं ॥

ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जयति॥य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥

ब्रह्मके चतुष्कल पादकूं "अनंतवान् है" ऐसें उपासताहै। सो इसलोकविषै अनंतवान् होवैहै । अनंतवान्हीं लोकनकूं जीतताहै जो इसकूं ऐसें विद्वान्हुया ब्रह्मके चतुष्कल पादकूं "अनंतवान् है" ऐसें उपासताहै ॥ ४ ॥

इति श्री॰ मूलभाषा॰ चतुर्थप्रपा॰षष्ठः खंडः॥ ६॥

अनंतवान्तारूपगुणकरि उपासताहै । सो

इहां यथोक्त । याका चतुष्कल । यह अर्थ है औ तैसैंहीं । याका उपास्य गुणके अनुसारकरि । यह अर्थ है । औ तिस गुणवाला होवैहै । नाम तिस गुणकरि गुणवान् कहिये (अनंतवान्) । अर्थ यह जोः—विच्छेदरहित संतानवाला होवैहै॥ औ अनंतवान् लोकनकूं । याका अक्षय लोकनकूं।यह अर्थ है॥

इति श्री॰चतुर्थप्रपाठकगतषष्ठखंडस्य टिप्पणम् ॥ ६ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः॥७॥

हꣳसस्ते पादं वक्तेति॥स ह श्वोभूते गा

अथ श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः॥७॥

अर्थः–हंस तेरेअर्थ पादकूं कहैगा ऐसैं

तैसैंहीं इसलोकविषै तिसगुणवाला होवैहै औ मृतहुया अनंतवान् लोकनकूं सो जीतताहै जो इसकूं ऐसैं जानताहुया। इत्यादि पूर्ववत् है ॥ ४ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः७

हंस (सूर्य)करि सत्यकामकेअर्थ ब्रह्मके
तृतीयपादकी उक्ति ४

टीकाः–सो[१२३] अग्नि। हंस तेरेअर्थ पादकूं

अथ श्री०चतुर्थप्रपाठकगतसप्तमखंडस्य टिप्पणम् ७

१२३ अवशेषरहे दो पाद कैसैं जाननेकूं योग्य हैं? ऐसैं जिज्ञासमान सत्यकामकेप्रति अग्नि कहैहै ॥

अभिप्रस्थापयाञ्चकार। ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

त ँ्हँ्स उपनिपत्याभ्युवाद- स-

[अग्नि कहता भया]॥ ॥ सो (सत्यकाम) अन्यदिनविषै गौअनकूं अभिगमन करावता भया । वे जहां सायंकालकूं प्राप्त होती भई तहां अग्निकूं उपसमाधान (प्रकट) करिके गौअनकूं उपरोध करिके समिधकूं लेके अग्निके पश्चात् पूर्वमुख हुया समीप बैठता भया ॥ १ ॥

अर्थः—ताकूं हंस (समीप पतन होयके)

१२४

कहैगा । ऐसैं कहिके उपराम होताभया ॥ हंस

१२४ हंस शब्दकी पक्षीविशेषकी विषयताकूं निषेध करैहैं ॥

त्यकाम ३ इति॥भगव! इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

ब्रह्मणः सोम्य! ते पादं ब्रवाणीति ॥

हे सत्यकाम! ऐसैं कहता भया ॥ ॥[सत्यकामः—] हे भगवन्। ऐसैं प्रतिवचन देताभया ॥ २ ॥

अर्थः—[हंस] सोम्य! तेरेअर्थ ब्रह्म-

आदित्य है। काहेतैं [१२५]शुक्ल होनेतैं औ पतन (उडने)के सामान्यतैं ॥ सो (सत्यकाम)। श्वोभूत (आगिले दिवस)विषै। इत्यादि समान है ॥ १ ॥ २ ॥

टीकाः—[१२६]अग्नि कला है। सूर्य कला है। चंद्र कला है। विद्युत् (बीजली) कला है॥

---

१२५ तिस सूर्यविषै हंस शब्दकी प्रवृत्ति कैसैं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

१२६ आदित्यबी आपकूं विषय करनेवालेहीं दर्शनकूं कहताभया। ऐसैं कहैहैं ॥

ब्रवीतु मे भगवानिति॥तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत् कलैष वै सोम्य! चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्यो-

---

के पादकूं कहताहूं ऐसैं [कहताभया]॥ ॥ [सत्यकामः–] भगवान् मेरेअर्थ कहहू। ऐसैं [कहताभया] ॥ ॥ ताकेअर्थ [हंस] कहताभयाः–अग्नि कला है। सूर्य कला है। चंद्र कला है। विद्युत् कला है॥ हे सोम्य! यहहीं ब्रह्मका चतुष्कल पाद "ज्योतिष्मान्" नाम है॥ ३ ॥

अर्थः–जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया ब्रह्मके चतुष्कलपादकूं "ज्योतिष्मान् है"

हे सोम्य! यहहीं[१२७] [ब्रह्मका पाद] है। ऐसैं॥

१२७ ब्रह्मके तृतीयपादविषैबी गुणविशेषकूं उपदेश करैहैं ॥

तिष्मानस्मिँल्लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

ऐसैं उपासताहै । सो इसलोकविषै ज्योतिष्मान् होवैहै । ज्योतिवालेहीं लोकनकूं जीतताहै जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया ब्रह्मके चतुष्कल पादकूं "ज्योतिष्मान् है" ऐसैं उपासताहै ॥ ४ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपाठ०सप्तमः खंडः ७

जातैं ज्योतिकूं[१२८] विषयकरनेवालेहीं दर्शनकूं सूर्य कहताभया । यातैं हंस (सूर्य)का आदित्यपना

---

१२८ जिस हेतुतैं ज्योतिकूं विषय करनेवालेहीं दर्शनकूं कहताभया याहींतैं ताका आदित्यपना भासता है । ऐसैं हं-सके आदित्यपनैविषै अन्य गमक (लिंग)कूं कहैहैं ॥ इहां "जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया" । इत्यादि उत्तर वाक्य है ॥

इति श्री०चतुर्थप्रपाठकगतसप्तमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ७ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्याष्टमः खंडः ॥८॥

मद्गुष्टे पादं वक्तेति ॥ स ह श्वोभूते गा

अथ श्री॰ मूलभाषा॰चतुर्थप्रपाठक॰ अष्टमः खंडः ८

अर्थः—मद्गु (प्राण) तेरेअर्थ पादकूं क-हैगा। ऐसैं [सूर्य कहता भया] ॥ ॥ सो

प्रतीत होवैहै ॥ विद्वानकूं फलः—इसलोकविषै ज्योतिष्मान् (दीप्तियुक्त) होवैहै । औ म-रिके चंद्रआदिकनके ज्योतिवालेहीं लोकनकूं जीतताहै । उत्तर वाक्य समान है ॥ ३ ॥ ४ ॥

इति श्री॰ भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः॥७॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपाठकस्याष्टमः खंडः ८

मद्गु(प्राण)करि सत्यकामके अर्थ ब्रह्मके
चतुर्थपादकी उक्ति ४

१२९

टीकाः—हंस (सूर्य) बी । मद्गु (प्राण) तेरेअर्थ पादकूं कहैगा। ऐसैं कहिके उप-

अथ श्री॰चतुर्थप्रपाठकगताष्टमखंडस्य टिप्पणम् ८

१२९ तब अवशेष रहा जो अन्य (चतुर्थ) पाद सो कैसैं जाननेकूं योग्य है? यह आशंकाकरिके सूर्य कहैहै ॥

अभिप्रस्थापयाञ्चकार। ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

(सत्यकाम) आगिले दिवसविषै गौअनकूं प्रस्थान करावताभया (चलावताभया)। वे (गौआं) जहां सायंकालकूं प्राप्तभई तहां अग्निकूं उपसमाधान करिके गौअनकूं उपरोध करिके समिधकूं लेके अग्निके पश्चात् पूर्वाभिमुख हुया समीप बैठताभया ॥ १ ॥

राम होताभया ॥ इहां मद्गु[130] नाम जलचर पक्षी है औ सो[131] जलके संबंधतैं प्राण है ॥ सो (सत्यकाम) अन्य दिवसविषै। इत्यादि पूर्ववत् है ॥ १ ॥

---

१३० मद्गु शब्दके वाच्यअर्थकूं कहैहैं ॥

१३१ ता (जलचरपक्षी)का सत्यकामके प्रति उपदेष्टापना कैसैंहै? यातैं कहैहैं ॥

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद-सत्यकाम ३इति॥भगव! इति ह प्रतिशुश्राव॥२॥

ब्रह्मणः सोम्य! ते पादं ब्रवाणीति॥ ब्रवीतु मे भगवानिति॥ तस्मै होवाच

अर्थः—ताकूं मद्गु (प्राण) समीप पतन-होयके हे सत्यकाम! ऐसैं कहता भया॥॥ [सत्यकाम] हे भगवन्! ऐसैं प्रत्युत्तर देताभया ॥ २ ॥

अर्थः—[मद्गुः—] हे सोम्य! तेरेअर्थ ब्रह्मके पादकूं कहताहूं ऐसैं [कहताभ-या] ॥ ॥ [सत्यकामः—] भगवान् मेरे-अर्थ कहहू ऐसैं [कहताभया]॥ ॥ तिस-

---

टीकाः—औ सो[१३२] मद्गु (प्राण)। "प्राण कला है" इससैं आदि लेके । "आयतनवान्" ऐसे

---

१३२ "ताके तांई मद्गु समीप पतन होयके (उडिके)" इस वाक्यविषै पूर्व उक्तहीं मद्गु शब्दके अर्थकूं स्मरण करावै है॥

प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य ! चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥ ३ ॥

केअर्थ [मद्गु] कहताभयाः—प्राण कला है। चक्षु कला है। श्रोत्र कला है। मन कला है॥ हे सोम्य ! यहहीं ब्रह्मका चतुष्कल पाद "आयतनवान्" नाम है ॥ ३ ॥

नामवाले अपनेकूं विषय करनेवालेहीं दर्शनकूं कहताभया ॥ सर्व कारणोंकरि ग्रहणाकिये भोगोंका आयतन[133] नाम मन है। सो जिस पादविषै विद्यमान है ऐसा जो पाद। सो "आयतनवान्" नाम पाद है ॥ २ ॥ ३ ॥

---

१३३ प्राण कला है ॥ इससैं आदिलेके आयतनवान् है। ऐसें यथोक्त गुणकूं समर्थन करैहैं ॥ इहां सो आयतन जिसपादविषै वर्त्तता है सो यह आयतनवान् नाम पाद है। ऐसैं देखनेकूं योग्य है। इसरीतिसैं योजना है ॥

मद्गु(प्राण)करि सत्यकामार्थ ब्रह्मके चतुर्थपादकी उक्ति ४

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्त आयतनवानस्मिँल्लोके भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ४॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अर्थः—जो इसकूं ऐसैं विद्वान्हुया ब्रह्मके चतुष्कलपादकूं "आयतनवान् है" ऐसैं उपासताहै । सो इस लोकविषै आयतनवान् होवैहै । आयतनवालेहीं लोकनकूं जीतताहै जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया ब्रह्मके चतुष्कलपादकूं "आयतवान् है" ऐसैं उपासताहै ॥ ४ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०अष्टमःखंडः॥८॥

टीकाः—तिसैं[१३४] पादकूं तैसैंहीं जो उपासता

---

१३४ द्विविध (दृष्ट अदृष्टरूप) विद्याके फलकूं कथन करैहैं ॥ इहां तैसैंहीं । याका आयतनवान्पनैरूप गुणकरि आक्रांत (विशिष्ट) होनेकरिहीं । यह अर्थ है ॥

इति श्री०चतुर्थप्रपाठकगताष्टमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ८ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य नवमः खंडः॥९॥

प्राप हाचार्य्यकुलं ॥ तमाचार्योऽभ्युवाद-सत्यकाम ३ इति ॥ भगव ! इति ह प्रतिशुश्राव ॥ १ ॥

अथ श्री०मूलभाषा० चतुर्थप्रपाठक० नवमः खंडः ९

अर्थः-[सो सत्यकाम] आचार्यके कुलकेप्रति प्राप्तभया। ताकूं आचार्य हे सत्यकाम! ऐसैं कहताभया॥ ॥[सत्यकामः-] हे भगवन्! ऐसैं प्रतिवचन देताभया॥१॥

है। सो इस लोकविषै आयतनवान् (आश्रयवान्) होवैहै। तैसैं आयतनवाले (अवकाशसहित) लोकनकूं मृत हुया जीतता है। जो इसकूं ऐसैं जानताहुया। इत्यादि पूर्ववत् है॥ ४॥

इति श्री० भाष्यभाषा० चतुर्थप्रपाठकस्याष्टमः खंडः॥८॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य नवमः खंडः ९

सत्यकामका वनतैं गुरुकुलविषै पुनर्गमन ३

टीकाः-सो सत्यकाम ऐसैं ब्रह्मवित् हुया

ब्रह्मविदिव वै सोम्य ! भासि को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह

अर्थः–[आचार्यः–] हे सोम्य! ब्रह्मवित्की न्यांईही भासता हैं। कौंन तुजकूं अनुशासन करताभया? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ "मनुष्यनतैं अन्य (देव)"

आचार्यके कुलकेप्रति प्राप्त होताभया। ताकूं आचार्य हे सत्यकाम! ऐसैं कहताभया ॥ ॥ [सत्यकामः–]हे भगवन्! ऐसैं प्रतिवचन देताभया ॥ १ ॥

टीकाः–हे सोम्य! ब्रह्मवित्कीन्यांईही तूं भासताहैं । प्रसन्नइंद्रियवाला[१३५] अरु प्रहसित वदनवाला निश्चिंत कृतार्थ ब्रह्मवित् होवैहै । यातैं

अथ श्री०चतुर्थप्रपाठकगतनवमखंडस्य टिप्पणम् ९

१३५ ब्रह्मवित्कीन्यांई भासता हैं। ऐसैं कहेहुये किस प्रकारका ब्रह्मवित् होवैहै? इस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥ इहां सत्यकामकूंबी तिस लक्षणवान्‌ता है। यह अतः (यातैं) शाब्दका अर्थ हैं ॥

प्रतिजज्ञे । भगवाꣳस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् ॥ २ ॥

ऐसैं [सत्यकाम] प्रतिज्ञा करता भया। भगवान् हीं तो मेरे काम (इच्छा)के होते कहहू ॥ २ ॥

आचार्य । ब्रह्मवित्कीन्यांई भासताहैं ऐसैं कहिके "कौंन" ऐसैं वितर्क करताहुया कहताभया:—कौंन[१३६] तेरेकूं अनुशासन (उपदेश) करताभया ऐसैं ॥ ॥ तब सो सत्यकाम कहैहैः— मनुष्यनतैं अन्य जे देवता[१३७] वे मेरेकूं अनुशासन करतीभई । कौंन[१३८] अन्य मनुष्य हुया भग-

---

१३६ तेरे आचार्यरूप मुजकूं अवज्ञाकरिके मेरे शिष्यरूप तुजकूं कौंन अन्य मनुष्य मेरे शापतैं अभीत (भयरहित) हुया शिष्यभावकरि ग्रहणकरिके अनुशासन (उपदेश) करताभया। किस अनुशासनतैं तुजकूं ब्रह्मविद्या उपजी है? ऐसैं आचार्य आक्षेपसहित सत्यकामकूं पूंछता है ॥

१३७ मनुष्यनतैं अन्य मुजकूं अनुशासन करतेभये । ऐसैं सामान्य प्रतिज्ञाकूं सत्यकाम विभाग करैहै ॥

१३८ देवताओंकेहीं उपदेष्टापनैंकूं व्यतिरेकद्वारा शिष्य स्पष्ट करैहै ॥

श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्या-

अर्थः–जातैं भगवत् सदृशोंतैं श्रुतहीं

वान् (पूजावान् आप)के शिष्य मुजकूं अनुशा-सन करनेकूं उत्साह करैगा। कोईबी नहीं। यह अभिप्राय है। [139]यांतैं "मनुष्यनतैं अन्य" ऐसैंहीं प्रतिज्ञा करताभया॥ [140]भगवान् (आप) हींतो मेरी इच्छाके होते कहहू। अन्योंकरि उक्तसैं क्या है। मैं तिसकूं गणना करता नहीं। यह अभिप्राय है॥ २॥

टीकाः–[141]किंवाः–जातैं इस अर्थविषै भग-वान् (आप) सदृशनतैं कहिये भगवान्के सम ऋषिनतैं। [142]श्रुत (शुन्या) मेरेकूं विद्यमान (या-

१३९ प्रतिज्ञाकूं निगमन करैहैं॥

१४० तब अब मेरेसाथि तेरा कछुबी कर्तव्य (कार्य) नहीं है? इस आशंकाकूं शिष्य निवारण करैहै॥

१४१ इस हेतुतैंबी भगवान् (पूज्य आप)हीं मेरेअर्थ वि-द्याकूं कहहु। ऐसैं शिष्य कहैहै॥

१४२ तिसीहीं कारणकूं दिखावै है॥

द्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयती-
ति॥ तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किञ्चन
वीयायेति वीयायेति॥ ३॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

मेरेकूं [अविद्यमान] हैः—आचार्यतैंहीं वि-
दित विद्या श्रेष्ठताकूं (दृढताकूं) पावती है।
यातैं ॥ ॥ तिसकेअर्थ [आचार्य] याहींकूं
कहताभया । इहां (इसविद्यातैं) कछुबी
गया नहीं ऐसैं। गया नहीं ऐसैं ॥ ३ ॥
इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपाठ०नवमः खंडः९

द)हीं है किः—आचार्यतैंहीं[143] विदित (प्राप्त)
जो विद्या सो साधिष्ठकूं कहिये अतिशयकरि

---

१४३ आचार्यतैंहीं विद्या सुननेकूं योग्य है। ऐसे लक्ष-णवाले इस अर्थविषै श्रुत (सुने अर्थ)कूंहीं स्पष्ट करैहै ॥ इहां विदित। याका प्राप्त। यह अर्थ है औ आचार्यके अधीन बु-द्धि (विद्या)हीं फलवाली होवैहै। यह अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है औ आचार्यनैं देवताओंकरि उक्तविद्यातैं अन्य विद्या कही? याशंकाकूं हीं शब्दकेपर्याय एवकारकरि निवारण करैहैं॥

श्रेष्ठताकूं प्राप्त होवैहै ऐसैं । यातैं भगवानहीं कहहू ? ऐसैं उक्त हुया आचार्य ताके अर्थ तिसींहीं दैवतोंकरि उक्त विद्याकूं कहताभयाः- [१४४] इहां षोडश कलावाले ब्रह्मकी विद्याका किंचित्‌बी कहिये एक देशमात्र बी । विगतभया (गया) नहीं । यह अर्थ है ॥ इहां दो अभ्यास विद्याकी परिसमाप्तिरूप अर्थवाला है ॥ ३ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा० चतुर्थप्रपाठकस्य नवमः खंडः॥९॥

---

१४४ दैवतोंकरि अरु आचार्यकरि सत्यकामके अर्थ उक्तविद्याकूं हमारे (आधुनिक मनुष्यनके)प्रति श्रुति जनावती है ॥ इहां विगत (गया) नहीं किंतु पूर्णहीं विद्या वायुआदिक दैवतोंकरि अरु आचार्यकरि उपदेशकरी ॥ यह शेष है औ इहां बी च्यारीपादोंके अनुध्यानकरि सहित एकहीं विज्ञान अरु ताका फल एकत्रकरिके एक विज्ञानका फल होनेकरि ग्रहण करनेकूं योग्य है । काहेतैं एकपादके उपासनकूं कृतार्थताका अहेतु होनेतैं । यातैं आचार्यके उपदेशकीहीं सार्थकता (सफलता) है । ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥

इति श्री०चतुर्थप्रपाठकगतनवमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ९ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य दशमः खंडः १०॥

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास । तस्य ह

अथ श्री० मूलभाषा० चतुर्थप्रपाठक०दशमःखंडः १०

अर्थः–प्रसिद्ध उपकोसल ऐसा कामलायन । सत्यकाम जाबालविषै ब्रह्मचर्य जैसैं होवै तैसैं वास करताभया । द्वादश

अथ श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य दशमः खंडः १०

उपकोसलके अर्थ अग्निउक्त आत्म (३ ब्रह्म) विद्या ५

टीकाः–फेर[१४५] प्रकारांतरकरि ब्रह्मविद्याकूं औ

अथ श्री०चतुर्थप्रपाठकगतदशमखंडस्य टिप्पणं १०

१४५ सविस्तर ब्रह्मके उपासनकूं कहिके । अब कार्यब्रह्मके उपासनकरि मिलित कारणब्रह्मके उपासनकूं कहनेकूं अन्य (दशम) खंडकूं अवतार देते हैं ॥ इहां केवल ब्रह्मविद्याकूं नहीं कहतीहूं किंतु ब्रह्मविद्याकी शेष (उपकारक) होनेतैं ताके वेत्ताकी गतिकूं अरु अग्निविद्याकूं कहतीहूं । यह अर्थ है । औ पूर्वकीन्यांई । याका जैसैं पूर्वखंडविषै श्रद्धा अरु तपके ब्रह्मके उपासनके अंगभावके दिखावनेअर्थ आख्यायिका है ऐसैं कहा । ताकीन्यांई । यह अर्थ है ॥ औ

द्वादशवर्षाण्यग्नीन् परिचचार । स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्तयꣳस्तꣳ ह स्मैव न समावर्तयति ॥ १ ॥

वर्ष ता(आचार्य)के अग्निनकूं परिचरण करताभया ॥ सो (आचार्य) अन्य अंतेवासी (शिष्य) नकूं समावर्त्तन करताहुया तिसी (उपकोसल)कूं हीं नहीं समावर्त्तन करताभया ॥ १ ॥

ताके वेत्ताकी गतिकूं अरु अग्निविद्याकूं कहती हूं । ऐसैं श्रुति आरंभ करैहै औ आख्यायिका पूर्वकी न्यांईं श्रद्धा अरु तपकूं ब्रह्मविद्याकी साधनताके दिखावनेअर्थ हैः—नामतैं उपकोसल ऐसा कमलका पुत्र कामलायन था।सो सत्यकाम जाबालविषै ब्रह्मचर्य जैसैं होवै तैसैं

द्वितीय वाक्यविषै तप्त ऐसैं कहा। ताका हे पते! तुह्मकूं अपेक्षित शुश्रूषाकूं करताहुया बहुत कायक्लेशकूं करताभया । यह अर्थ है ॥

तं जायोवाच-तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन् परिचचारीन्मा त्वाऽग्नयः परि-

---

अर्थः–ताकूं जाया कहती भईः–तप्त ब्रह्मचारी कुशल (सम्यक) अग्नियांकूं परिचर्या करताभया। तुजकूं अग्नियां परिप्रवचन (निंदा) मतिकरैं। इसकेअर्थ

वासकरताभया [इहां "ह" शब्द परंपरा अर्थ है] तिस आचार्यके अग्नियोंकूं (अग्नियोंका) द्वादशवर्ष परिचरण (सेवन) करताभया॥ सो आचार्य अन्यब्रह्मचारीनकूं स्वाध्याय (स्वशाखारूप वेद)कूं ग्रहण करवायके समावर्त्तन करता हुया (गृहजानेकी आज्ञा देता हुया) ताहीं उपकोसल एककूं नहीं समावर्त्तन करताभया ॥ १ ॥

टीकाः–ता आचार्यके प्रति जाया (ताकी धर्मपत्नी) कहतीभईः–तप्त (तपसंयुक्त) ब्र-

प्रवोचन् प्रब्रूह्यस्मा इति ॥ तस्मै हाप्रो-
च्यैव प्रवासाञ्चक्रे ॥ २ ॥

कथनकर ॥ ऐसैं [उक्त हुया आचार्य] तिसकेअर्थ नहीं कहिकेहीं प्रवासकूं करता भया ॥ २ ॥

ह्मचारी कुशल[146] (सम्यक्) अग्निनकूं परिचरण करताभया । औ भगवान्[147] (आप) अग्निनविषै भक्तकूं नहीं समावर्त्तन करते हो । यातैं "हमारे (अग्निनके) भक्तकूं नहीं समा-

---

१४६ कहनेकूं इच्छित शुश्रूषाके करणकूंहीं जाया स्पष्ट करैहै ॥

१४७ ननु तुजपत्नीकरि मेरेप्रति अब यह कहो ऐसैं क्यूं कहिये है । जातैं मुजतैं अन्य ठिकाने तेरा अनुराग (प्रेम) युक्तिमान् नहीं है? यह आशंकाकरिके । भगवान् (आप)विषै इस शिष्यके स्नेह (भक्ति) तैं मुजकरि कहिये है । ऐसैं पत्नी कहैहै ॥ इहां अग्नियोंकूं सेवनकरनेवाले ब्रह्मचारीका असमावर्त्तन जो है सो । प्रथम "अतः (यातैं)" शब्दका अर्थ है औ गर्हा (निंदा)का परिहार (निवारण) द्वितीय अतः (यातैं) शब्दकरि ग्रहण करिये है ॥

स ह व्याधिनाऽनशितुं दध्रे॥ तमाचार्यजायोवाच-ब्रह्मचारिन्नशान किन्नु

अर्थः—सो (शिष्य) व्याधिकरि अनशन करनेकूं मन करताभया ॥ ताकूं आचार्यकी जाया कहतीभईः—हे ब्रह्मचारिन् !

वर्त्तन करताहै ऐसैं जानिके तुह्मारेकूं अग्नियां प्रवचन मतिकरैं कहिये तुह्मारी गर्हा (निंदा)कूं मतिकरैं। यातैं इस उपकोसलके अर्थ इष्ट (वांछित) विद्याकूं कथनकरो ॥
१४८ ऐसैं जायाकरि उक्त हुयाबी सत्यकाम आचार्य। तिस (उपकोसल) के अर्थ कछुबी नहीं कहिके हीं प्रवास करताभया (देशांतर विषै गया) ॥ २ ॥

टीकाः—सो उपकोसल मानस व्याधिरूप दुःखकरि अनशन करनेकूं मन धारण कर-

---

१४८ आचार्यकी सेवाविषै तत्पर शिष्यकेप्रति देवताहीं अनुग्रह करैहै। ऐसैं जनावनेकूं श्रुति आरंभ करैहै ॥

नाश्नासीति ॥ स होवाच-बहव इमेऽस्मि-न्पुरुषे कामा नानाऽत्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ॥ ३ ॥

भोजनकूं कर । क्यूं नहीं भोजन करताहैं ? ऐसें ॥ ॥ सो कहताभया:—इस पुरुषविषै बहुत ये कामरूप नानात्यय (व्याधियां) हैं । [तिन] व्याधिनकरि प्रतिपूर्णहूं [यातें] भोजनकूं करता नहींहूं ऐसें ॥३॥

ताभया ॥ अग्निके आगारविषै तूष्णी स्थितभये तिस उपकोसलकूं आचार्यकी[१४९] जाया कहतीभई:—हे ब्रह्मचारीन् ! भोजनकूं कर । किस कारणतें भोजनकूं नहीं करताहैं ? ऐसें ॥ ॥ सो उपकोसल कहताभया:—

---

१४९ आचार्यके अभिप्रायकूं नहीं जाननेवाले शिष्यकूं दुःखकी प्राप्ति दिखावै है ॥ इहां अतिगमन । याका वस्तुके स्वरूपकूं अतिक्रमणकरिके विषयनविषै प्रवेश । यह अर्थ है औ "नानाऽत्यय" यह कामोंका विशेषण है ॥

अथ हाग्नयः समुदिरे-तप्तो ब्रह्मचा-

अर्थः—अनंतरहीं अग्नियां मिलिके कहते-
भयेः—तप्त ब्रह्मचारी हमारेकूं कुशल परि-

इस अकृतार्थ प्राकृत पुरुषविषै बहुत(अनेक)
कामरूप कहिये कर्त्तव्यके प्रति इच्छारूप
नानाऽत्यय (नाना है प्रतिगमन जिन कर्त-
व्यकी चिंतारूप व्याधिनका वे नानाऽत्यय व्या-
धियां) हैं। [१५०] अर्थ यह जोः—कर्त्तव्यताकी प्राप्ति-
रूप निमित्तवाले चित्तके दुःख हैं। तिन व्या-
धिनकरि मैं प्रतिपूर्ण हूं। यातैं भोजनकूं
नहीं करताहूं ऐसैं ॥ ३ ॥

टीकाः—ऐसैं कहिके ब्रह्मचारीके तूष्णीभूत

---

१५० तिसकरि व्याधियां कैसैं विशेषण युक्त करिये हैं? तहां शिष्य कहैहै ॥ इहां कामहीं व्याधियां हैं यह अर्थ है औ आचार्यके प्रवासतैं अरु ताकी जायाके ब्रह्मचारीविषै अनुग्रहतैं औ ता (शिष्य)के अनशन (अभक्षण)के निश्चयतैं अनंतर। यह अथ शब्दका अर्थ है औ इधर "हंत" शब्द जो है सो यदि (जब)केअर्थ है। यातैंः—जब हमारे (अग्निनके)

री कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः ॥ ४ ॥

चर्या करताभया। जब इसकेअर्थ कथन करैं। ऐसैं तिसकेअर्थ कहते भये:—॥ ४ ॥

हुये। अनंतर शुश्रूषाकरि आवर्जित जे अग्नियां वे करुणाके आवेशकरि युक्त हुये तीनोंबी मिलिके कहतेभये:—जब ऐसैं है तब अब इस हमारे भक्त [151]दुःखित तपस्वी[152] श्रद्धालु ब्रह्मचारीकेअर्थ सर्व हम ब्रह्मविद्याकूं अनुशासनकरैं। ऐसैं धारण करिके तिसकेअर्थ कहतेभये ॥ ४ ॥

भक्त ब्रह्मचारीकूं उपेक्षाकरिके आचार्य देशांतरकेप्रति गया तब। यह अर्थ है ॥

१५१ ननु अनंतर फेरि देशांतरतैं आयके आचार्य इस शिष्यके अर्थ विवक्षित ब्रह्मविद्याकूं कहैगा त्वरासैं क्या है यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

१५२ इस शिष्यकूं ब्रह्मविद्याके साधनोंकी संपत्ति दिखावैहैं ॥ इहां "प्राण ब्रह्म है" ऐसैं आप (अग्नियों)नैं जो कहा ताकूं मैं जानताहूं। ऐसैं संबंध है ॥

प्राणो ब्रह्म। कं ब्रह्म। खं ब्रह्मेति ॥ स होवाच-विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म। कञ्चतु खञ्च न विजानामीति॥ ते होचुर्य-

---

अर्थः-प्राण ब्रह्म है। कं (सुख) ब्रह्म है। खं (आकाश) ब्रह्म है। ऐसें॥ ॥ सो कहता भयाः-जो प्राण ब्रह्म है। [ऐसें कहा सो]मैं जानता हूं। औ कं (सुख)कूं तो औ खं (आकाश)कूं नहीं जानताहूं ऐसें॥ ॥

टीकाः-प्राण ब्रह्महै। क (सुख)ब्रह्महै। आकाश ब्रह्महै। ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ तब सो ब्रह्मचारी कहता भयाः-आपनें कहा जोः-"प्राण ब्रह्म है" ऐसें। सो मैं जानताहूं। प्रसिद्ध[१५३] पदार्थके होनेतें॥ जिसँके होते जीवन होवैहै औ जिसके दूरीभये नहीं होवैहै। ऐसे

---

१५३ तहां हेतुकूं कहैहै॥

१५४ प्राणपदकी प्रसिद्धअर्थवान्‌ताकूंहीं समर्थ न करैहै॥ इहां इस प्रकारका प्राण शब्द है। यह शेष है॥

द्वाव कं तदेव खं। यदेव खं तदेव कमिति प्राणञ्च हास्मै तदाकाशञ्चोचुः ॥ ५ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

वे अग्नियां) कहते भयेः—जोई कं (सुख) है सोई खं (आकाश) है। जोई खं है सोई कं है। ऐसैं प्राणकूं औ ताके आकाशकूं इसकेअर्थ कहतेभये ॥ ५ ॥

इति श्री॰मूलभाषा॰चतुर्थप्रपा॰दशमः खंडः १०

तिस वायुविशेषविषै लोकमैं रूढ प्राणशब्द है। [१५५]यातैं ताका ब्रह्मभाव युक्त है ॥ [१५६]तिसंकरि प्रसिद्धपदार्थके होनेतैं मैं जानताहूं जोः—प्राण ब्रह्महै ऐसैं। [१५७]परंतु सुख औ आकाशकूं नहीं जा-

---

१५५ प्राणशब्दकूं प्रसिद्धअर्थवान्‌ताके हुयेबी किसकारणतैं तिसविषै ब्रह्मभाव प्रसिद्ध है? यह आशंकाकरिके कहैहै ॥ इहां कार्य कारणके संघातके नष्टहुये अग्रहणतैं । यह अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है औ स्वकीय ज्ञानके मिलावनेअर्थ चकार है ॥

१५६ मैं जानताहूं । ऐसैं उक्त अर्थकूं उपसंहार करैहै ॥

१५७ आपकरि अज्ञातकूं ब्रह्मचारी दिखावै है ॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप

अर्थः–जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया उपासताहै सो पापकृत्या (पापरूप क्रिया) कूं नाश करैहै। लोकी होवैहै। सर्व आयुकूं पावताहै। उज्ज्वल जीवताहै ॥ इसके अवर (पीछले) पुरुष क्षयकूं पावते नहीं।

टीकाः–सो[१८४] जो कोइकबी ऐसैं इस यथोक्त अन्न अरु अन्नादभावकरि च्यारीप्रकारसैं विभक्त गार्हपत्य अग्निकूं उपासताहै सो पाप कर्मकूं विनाशकरैहै औ लोकी (लोकवान्) कहिये हमारे आग्नेय (अग्निसंबंधी)लोककरि तिसवाला (लोकवाला) होवैहै। जैसैं हम (अग्नि)हैं ॥ औ इस लोकविषे सर्व (शत

---

१८४ उक्त गार्हपत्य अग्निविषयक विद्याके द्विविधफलकूं दिखावै हैं ॥

वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

हम (अग्नियां) ताकूं इस औ उस लोकविषै पालनकरते हैं । जो इसकूं ऐसें विद्वान् हुया उपासताहै ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०एकादशः खंडः ११

वर्षके) आयुकूं पावताहै अरु उज्वल जीवताहै । अर्थ यह जोः—अप्रख्यात नहीं होवैहै औ इस विद्वानके अवर । अर्थ यह जोः—संततिविषै जनित। पुरुष क्षयकूं पावतेनहीं । अर्थ यह जोः—याकी संततिका उच्छेद नहींहोवैहै ॥ किंवाः—इस लोकविषै जीवते अरु परलोकविषै ताकूं हम (अग्नियां) पालन करतेहैं । [185] जो इसकूं ऐसें विद्वान् हुया उपा-

---

१८५ किसकूं यह फल होवैहै ? इस अपेक्षाके हुये उक्त अर्थकूंहीं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

इति श्री० चतुर्थप्रपाठकस्यैकादशखंडस्य टिप्पणम् ॥ ११ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य द्वादशः खंडः १२

अथहैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशा-
साऽऽपो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति।

अथ श्री॰मूलभाषा॰चतुर्थप्रपा॰द्वादशः खंडः ॥ १२ ॥

अर्थः—अनंतर इसकूं अन्वाहार्य पचन (दक्षिणाग्नि) अनुशासन करताभयाः— जल दिशा नक्षत्र अरु चंद्रमा हैं ऐसें।

सताहै ताकूं यह यथोक्त फल होवैहै। यह अर्थ है ॥ २ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰ चतुर्थप्रपा॰द्वादशःखंडः॥१२॥

उपकोसल अर्थ अन्वाहार्यपचनाग्निविद्या २

टीकाः—अनंतर इस ब्रह्मचारीकूं अन्वाहार्यपचन ऐसा दक्षिणाग्नि अनुशासन करताभयाः— आप (जल) दिशा नक्षत्र औ चंद्रमा ये च्यारी मेरे तनुहैं। मैं अन्वाहार्यपचन आपकूं च्यारी प्रकारसैं विभागकरिके अ-

य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप

जो यह चंद्रमाविषै पुरुष देखियेहै । सो मैं हूं । सोई मैं हूं इति ॥ १ ॥

अर्थः—जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया उपासताहै सो पापकृत्याकूं नाश करैहै । लोकी होवैहै । सर्व आयुकूं पावताहै । उज्ज्वल जीवताहै ॥ इसके अवर पुरुष क्ष-

---

वस्थित हूं ॥ [186]तहां जो यह चंद्रमाविषै पुरुष देखियेहै सो मैं हूं । [187]सोई मैं हूं । यह पू-

---

अथ श्री०चतुर्थप्रपा०द्वादशखंडस्य टिप्पणम् ॥१२॥

१८६ इहां गार्हपत्यनामक अग्निके उपदेशके अनंतर । अथ शब्दका अर्थ है ॥ अब जलआदिक च्यारीकूं अनुवादकरिके दक्षिणाग्निविषै औ चंद्रविषै विशेषकूं दिखावै हैं ॥

१८७ अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि) अरु चंद्रमाके ता-

वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

यकूं पावते नहीं। हम ताकूं इस अरु उस लोकविषै पालन करतेहैं। जो इसकूं ऐसैं विद्वान्हुया उपासताहै ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०द्वादशः खंडः१२

र्वकीन्यांई है ॥ अन्नके संबंधतें अरु ज्योतिर्भावके सामान्यतैं अन्वाहार्यपचन अरु चंद्रमाकी

दात्म्यकरि औ अन्नरूप जल अरु नक्षत्रोंका तिन दोनूंके साथि भोज्यभावकरि संबंध है। ऐसैं कहनेकूं पुनर्वचन है। ऐसैं कहैहैं ॥

१८८ ननु फेर दक्षिणाग्नि अरु चंद्रमाका तादात्म्य कैसे है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं दर्श अरु पूर्णमासविषै अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि)मैं हविका रांधना प्रसिद्ध है औ "वे चंद्रकूं पायके अन्नरूप होवैहैं" इत्यादि वाक्यविषै चंद्रमामैं अन्नका संबंध प्रसिद्ध है। तातैं तिन दोनूंका तादात्म्य है ॥

१८९ तिन दोनूंकी एकताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

एकता है अरु [१९०] दक्षिणदिशाके संबंधतैं [बी तिनकी एकताहै] ॥ औ [१९१] जलोंका अरु नक्षत्रोंका पूर्वकी न्यांई अन्नभावका हीं संबंध है । काहेतैं [१९२] नक्षत्रोंकूं चंद्रमाके भोग्यभावकी प्रसिद्धितैं अरु [१९३] जलोंकूं अन्नके उत्पादक होनेतैं दक्षिणाग्निका अन्नपना है । गार्हपत्यके अन्न पृथिवीकी न्यांई॥ अन्य समान है ॥ १ ॥ ॥ २ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपाठ॰द्वादशः खंडः ॥ १२॥

---

१९० तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं । इहां यह अर्थ है:-जातैं अन्वाहार्यवचन दक्षिणाग्नि कहिये है औ चंद्रमा दक्षिणमार्गकरि प्राप्यमाण हुया दक्षिणदिशाविषै होवैहै । ऐसैं जानिये है । काहेतैं उत्तरदिशाके अधिष्ठाता हुयेबी तिस चंद्रके तिस (दक्षिणदिशा)सैं संबंधके अनिवारणतैं । तातैं तिन दोनूंकी एकता युक्त है॥

१९१ ननु जलोंका अरु नक्षत्रोंका चंद्रकीन्यांई अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि)सैं तादात्म्य है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां पूर्वकी न्यांई । याका पृथिवी अरु अन्नरूप तिन दोनूंका गार्हपत्य अग्नि अरु आदित्यके साथि अन्नभावकरि संबंधकीन्यांई । यह अर्थ है औ संबंध अन्वाहार्यपचन अरु चंद्रमाकेसाथि । यह शेष है ॥

१९२ नक्षत्रोंका अन्नभाव कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥

१९३ फेर जलोंका अन्नभाव कैसैं है ? सो कहैहैं ॥ इहां दक्षिणाग्निका । याका दक्षिणाग्निकेप्रति । यह अर्थ है औ पृ-

अथ चतुर्थप्रपाठ० त्रयोदशः खंडः॥१३॥

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास-प्राण

अथ श्री०मूलभाषा० चतुर्थप्रपा० त्रयोदशः खंडः ॥१३॥

अर्थः-अनंतर इसकूं आहवनीय अग्नि अनुशासन करताभया:-प्राण आकाश स्व-

---

अथ श्री०भाष्यभाषा० चतुर्थप्रपाठ० त्रयोदशः खंड:१३

उपकोसल अर्थ आहवनीयाग्निविद्या २

टीकाः-अनंतर इस उपकोसलकूं आहवनीय नामक अग्नि। अनुशासन करताभयाः-प्राण आकाश स्वर्गलोक अरु विद्युत्। ये च्यारी मेरी तनु हैं॥ [१९४]जो यह विद्युत-

---

थिवीके गार्हपत्य अग्निकेप्रति अन्नभावकी न्यांई। यह उदाहरणका अर्थ है औ "सो जो इसकूं ऐसैं विद्वान्हुया" इत्यादिवाक्य इधर अन्य ऐसैं कहा॥

इति श्री० चतुर्थप्रपाठकगत द्वादशखंडस्य टिप्पणम्॥ १२॥

अथ श्री०चतुर्थप्रपा०त्रयोदशखंडस्य टिप्पणम् १३

१९४ गार्हपत्य अग्निके अरु दक्षिणाग्निके उपासनतैं अनंतर। इहां अथ शब्दका अर्थ है॥ तहां अवांतर भेदकूं दिखावै हैं॥ इहां "सो मैं हूं" इत्यादि अन्य समान है। ऐसैं संबंध है॥

आकाशो द्यौर्विद्युदिति। य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि। स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उपवयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमु-

---

र्गलोक अरु विद्युत् [मेरे तनु] हैं ऐसैं। जो यह विद्युत्‌विषै पुरुष देखियेहै सो मैं हूं। सोई मैं हूं इति ॥ १ ॥

अर्थः—जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया उपासताहै सो पाप कृत्याकूं नाश करैहै। लोकी होवैहै। सर्व आयुकूं पावताहै। उज्ज्वल जीवताहै। इसके अवर पुरुष क्षयकूं पावते नहीं। हम ताकूं इस अरु उस

विषै पुरुष देखियेहै सो मैं हूं। इत्यादि पू-

ष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥२॥
इति चतुर्थप्रपाठकस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

लोकविषै पालन करतेहैं। जो इसकूं ऐसैं विद्वान् हुया उपासताहै ॥ २ ॥
इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्र०त्रयोदशः खंडः १३

वर्त्ते[१९५] है। सामान्यतैं ॥ स्वर्गलोक[१९६] अरु आकाश- का तो तिनकूं आश्रय होनेतैं विद्युत् अरु आहवनीय अग्निके भोग्यभावकरिहीं तिनसैं संबंध है। अन्य समान है ॥ १ ॥ ॥ २ ॥
इति श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपाठकस्य त्रयोदशः खंडः १३

---

१९५ जैसैं पूर्व ज्योतिर्भावके अविशेषतैं गार्हपत्य अग्नि अरु आदित्यका औ दक्षिणाग्नि अरु चंद्रमाका साम्य कहा। तैसैं ज्योतिर्भावके सामान्यतैं विद्युत् अरु आहवनीय अग्निका तादात्म्य अंगीकार करनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं ॥

१९६ ननु तब तिन दोनूंका साथि स्वर्गलोक अरु आकाशका संबंध कैसैं है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— आहवनीय (होमके योग्य) अग्निका फलरूप होनेतैं स्वर्गलोककूं विषयता (ताकी आश्रयता) है। काहेतैं तिस आहवनीयअग्निविषै होमादिद्वारा उत्पन्न अपूर्वकूं स्वर्गलोकरूप फलवान् ताके अंगीकारतैं औ बीजलीकूं तो आकाशकी आश्रयता

अथ चतुर्थप्रपाठ० चतुर्दशः खंडः १४

ते होचुरुपकोसलैषा सोम्य! तेऽस्मद्विद्याऽऽत्मविद्या चाचार्यस्तु ते गतिं व-

---

अथ श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा० चतुर्दशः खंडः ॥१४॥

अर्थः—वे (अग्नि) कहतेभयेः—हे उपकोसल सोम्य! यह तेरी अग्निविद्याहै औ आत्मविद्या है। आचार्यतो तेरेकूं गति

अथ श्री० भाष्यभाषा० चतुर्थप्रपा० चतुर्दशः खंडः १४

उपकोसलके प्रति अग्निनकी उक्ति औ ताका गुरुसैं प्रसंग ३

टीकाः—वे[१९७] अग्नियां फेर मिलिके कहते भयेः—

प्रसिद्ध है। यातैं बीजली अरु आहवनीय अग्निकी भोग्यताकरिहीं तिन दोनूंके साथि स्वर्गलोक अरु आकाशका संबंध है औ "सो जो इसकूं ऐसैं" इत्यादिवाक्य इधर "अन्य" ऐसैं कहा॥

इति श्री० चतुर्थप्रपाठकगत त्रयोदशखंडस्य टिप्पणम्॥ १३॥

अथ श्री०चतुर्थप्रपा० चतुर्दशखंडस्य टिप्पणम् १४

१९७ अग्नियोंके परस्पर विसंवादकूं निषेध करैहैं॥

क्षेत्याजगाम हास्याचार्यस्तमाचार्योऽभ्युवादोपकोसल ३ इति ॥ १ ॥

कहैगा ऐसैं [कहिके उपरामभये] ॥ इसका आचार्य आवताभया। ताकूं आचार्य हे उपकोसल! ऐसैं कहताभया ॥ १ ॥

हे उपकोसल सोम्य! यह तेरी अस्मद्विद्या है। अर्थ यह जोः—अग्निविद्या कही है औ "प्राण ब्रह्म है। कं ब्रह्महै। खं ब्रह्महै" ऐसैं पूर्व उक्त [198]आत्मविद्या है। [199]आचार्यतो तेरेकूं विद्याके फलकी प्राप्तिअर्थ गतिकूं कहैगा। ऐसैं कहिके अग्नि उपराम होतेभये॥ इसका आचार्य कालकरि आवताभया। ता शिष्यकूं आचार्य हे उपकोसल! ऐसैं कहताभया ॥ १ ॥

१९८ तथापि आत्मविद्या सुननेकूं योग्य है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

१९९ आचार्यके उपदेशविना तुह्मारे उपदेशके वशतैंही मेरेकूं विद्या कैसैं फलवती होवैगी। जातैं "आचार्यतैंही विदित विद्या श्रेष्ठताकूं पावती है" इत्यादि पूर्व कहाहै? यातैं अग्नि कहैहैं ॥

भगव! इति ह प्रतिशुश्राव ॥ ब्रह्मविद इव सोम्य! ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति ? ॥ को नु माऽनुशिष्याद्भो

अर्थः–[उपकोसलः–] हे भगवन् ! ऐसैं प्रतिवचन देताभया ॥ ॥ [आचार्यः–] हे सोम्य ! ब्रह्मवेत्ताकीन्यांई तेरा मुख भासता है । कौंन तेरेकूं अनुशासन करताभया ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥[उपकोसलः–] भोः भगवन् ! कौंन मुजकूं अनुशासन करैगा। ऐसैं इहां अस्तव्यस्त

टीकाः–[उपकोसलः–] हे भगवन् ! ऐसैं प्रतिवचन देताभया ॥ ॥ हे सोम्य ! ब्रह्मवेत्ताकीन्यांई तेरा मुख प्रसन्न भासताहै । कौंन तुजकूं अनुशासन (उपदेश) करताभया ? ऐसैं आचार्यकरि उक्त हुया उपकोसल प्रत्युत्तर कहैहैः–हे भगवन् ! तुह्मारे प्रो-

इतिहापेव निन्हुत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इतीहाग्नीनभ्यूदे ॥ किं नु सोम्य! किल तेऽवोचन्निति ?॥ २ ॥

हुयेकीन्यांई भया। ये (अग्नियां) निश्चयकरि अन्य सदृशहुये ईदृश (ऐसे) भये। ऐसैं इहां अग्निनकूं [दिखावताहुया] कहताभया॥॥[आचार्यः–] हे सोम्य ! क्या तेरेअर्थ कहतेभये? ऐसैं [पूंछताभया] २

षित (प्रवासित) हुये कौंन मुजकूं अनुशासन करैगा। ऐसैं इहां अस्त व्यस्त हुयेकीन्यांई भया। ऐसैं अंतरायरहित पदसैं संबंधहै औ अस्त व्यस्त भया नहीं औ [200] अंग्नियों करि उक्तकूं यथावत् नहीं कहैहै। यह अभिप्राय है॥ ॥ कैसैं कि[201]:–ये अग्नियां मुजकरि से-

---

२०० अस्त व्यस्त हुयेकीन्यांई भया । इस वाक्यविषै जो इव (न्यांई) शब्द है ताके तात्पर्यकूं दिखावैहैं ॥

२०१ उक्त अभिप्रायकूं आकांक्षापूर्वक विवरण करैहैं ॥

इदमिति ह प्रतिजज्ञे ॥ लोकान्वाव किल सोम्य! तेऽवोचन्नहन्तु ते तद्वक्ष्यामि—यथा पुष्करपलाश आपो न

अर्थः—[शिष्यः—] "यह" [कहतेभये] ऐसैंही प्रतिज्ञा करताभया ॥ ॥ [आचार्यः—] हे सोम्य! वे (अग्नियां) लोकनकूंहीं कहतेभये। मैं तो तेरेअर्थ ता (ब्रह्म) कूं कहूंगा। जैसें पुष्करके पलाशविषै जल संबंधकूं पावतेनहीं। ऐसैं-इस प्रकारसैं

वित हुये निश्चयकरि कहतेभये। जातैं तुह्मकूं देखिके पूर्व अन्यप्रकारके हुये वेपमान (कंपमान)की न्यांईं इस प्रकारके देखियेहैं ऐसैं इहां अग्निनकूं दिखवता हुया काकु(स्वरभंग) करि कहताभया ॥ ॥ हे सोम्य[202]!

इहां काकुकरि। याका स्वरभंगकरि भीत (भयकूं प्राप्त) हुया अस्पष्ट कहता भया। यह अर्थ है।

२०२ शिष्यकी भीति (भय)कूं दूरि करता हुया आचार्य कहैहै ॥

श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति॥ब्रवीतु मे भगवानिति॥ तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

जाननेवालेविषै पापकर्म संबंधकूं पावता नहीं। ऐसैं [कहताभया]॥ ॥[शिष्यः—] हे भगवान्! मेरेअर्थ कहहूं ऐसैं [कहताभया] ॥ ॥ तिसकेअर्थ [आचार्य] कहता भया ॥ ३ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०चतुर्दशःखंडः१४

वे अग्नियां तुजकूं क्या कहतेभये? ऐसैं आचार्यकरि पूंछ्याहुया शिष्यः—यह[२०३] कहतेभये। ऐसैं प्रतीकमात्र किंचित् प्रतिज्ञा करताभया अग्नियोंकरि उक्त सर्वकूं नहीं कहताभया।

---

२०३ आचार्यके वाक्यविषै स्थित इति शब्दकूं अनुवाद करिके व्याख्यान करैहैं॥ इहां पूंछ्या हुया। ऐसैं पूर्वपदसैं संबंधहै॥

[२०४]जातैं [तातैं] आचार्य कहताभयाः—हे सोम्य! वे अग्नियां पृथिवी आदिक लोकनकूं तेरेअर्थ कहतेभये। [२०५]ब्रह्मकूं शाकल्य (संपूर्णता)करि नहीं कहतेभये। मैं तो तेरे अर्थ जिसकूं तूं सुननेकूं इच्छताहैं तिस ब्रह्मकूं कहूंगा। [२०६]तिसैं मुजकरि कथन करीते [२०७]ब्रह्मके ज्ञानके माहात्म्यकूं प्रथम श्रवणकरः—जैसैं पुष्करपलाश जो पद्मपत्र (कमलपत्र) ताकेविषै जल संबंधकूं पावते नहीं। ऐसैं जैसैं मैं ब्रह्मकूं कहताहूं इस प्रकारसैं जाननेवाले पुरुषविषै पापकर्म सं-

---

२०४ जातैं अग्नियोंकरि उक्त अर्थकूं आचार्यकेअर्थ प्रतीकद्वारा शिष्य निवेदन करता भया। तातैं आचार्य सावकाशकूं प्राप्त भया। ऐसैं कहैहैं ॥

२०५ ननु "कं खं ब्रह्म है" इत्यादि वाक्यकरि ब्रह्मबी तिन अग्नियोंनैं कहा है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२०६ तब संपूर्णताकरि ब्रह्म कैसैं जाननेकूं योग्य है? यह शंका भई। यातैं कहैहैं ॥

२०७ ब्रह्मज्ञानकेहुये क्या होवैगा? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

इति श्री० चतुर्थप्रपाठकगतचतुर्दशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १४ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठक॰पञ्चदशः खण्डः १५

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष

अथ श्री॰मूलभाषा॰चतुर्थप्रपाठ॰ पंचदशः खंडः॥१५॥

अर्थः—अक्षिविषै जो यह पुरुष देखिये-

बंधकूं पावता नहीं ॥ ॥ ऐसैं आचार्यके कथन करते हुये उपकोसल कहैहैः—हे भगवान्! (आप) मेरेअर्थ कहहु ऐसैं ॥ ॥ ताकेअर्थ आचार्य कहताभया ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰ चतुर्थप्रपाठकस्य चतुर्दशः खंडः १४

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपाठ॰पंचदशः खंडः १५

गुरुकरि उपकोसल अर्थ अक्षिपुरुषोपासन औ अ-
र्चिरादिगतिकी उक्ति ९

टीकाः—२०८अक्षिविषै जो यह पुरुष देखिये

अथ श्री॰चतुर्थप्रपाठकगतपंचदशखंडस्य टिप्प॰१५

२०८ उपसत्तिकूं प्राप्त भये ब्रह्मचारीकेअर्थ आचार्य कैसैं ब्रह्मविद्याकूं कहता भया? यह शंका भई। यातैं कहैहैं ॥ इहां अक्षिरूप स्थानविषै तिसकरि उपलक्षित द्रष्टारूप जो यह पुरुष देखिये है। ऐसैं संबंध है ॥

आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मे-

है यह आत्मा है। ऐसैं कहताभया॥ यह अमृत है। अभय है। यह ब्रह्म है इति॥

है विषयनतैं निवृत्तचक्षुवाले[209] ब्रह्मचर्यादिसाधनोंकरि[210] संपन्न शांत[211] विवेकी[212] जनोंकरि॥ "दृष्टिका द्रष्टा चक्षुका चक्षु"[213] इत्यादि अन्यश्रुतितैं॥ ॥ ननु[214] अग्नियोंनैं जो कहा सो मिथ्या हो-

२०९ छायारूप आत्मातैं अतिरिक्त यह पुरुष सर्वकी दृष्टिगोचरताकूं आचरता नहीं? यह आशंकाकरिके। देखनेके अधिकारीनकूं विशेषण देते हैं॥ इहां निवृत्तचक्षु। या पदका निवृत्त हैं कहिये विषयनतैं विमुख हैं। चक्षु कहिये बाह्यकरण जिनके तिनकरि। यह अर्थ है॥

२१० बाह्यकरणोंकी स्ववशताके अधीन करनेवाले अन्यविशेषणकूं ग्रहण करैहैं॥

२११ मनके विषयपरवशतासैं रहितपनैविषै अन्यविशेषणकूं कहैहैं॥

२१२ तिन अधिनकारिनके निवृत्तचक्षुवान्पनैविषै हेतुकूं कहैहैं॥

२१३ "पुरुष अक्षिविषै द्रष्टा है" इस अर्थविषै बृहदारण्यक श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं॥

२१४ ननु आचार्यकरि अपूर्व (अग्निउक्तविद्यातैं विल-

ति। तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सि-
ञ्चन्ति वर्त्मनी एव गच्छति ॥ १ ॥

तिस इस (अक्षि)विषै यद्यपि घृतकूं वा जलकूं सिंचन करै है। दो पक्ष्म (पमणी) के तांईहीं जाता है ॥ १ ॥

वैगा। जातैं "आचार्य तो तेरेअर्थ गतिकूं कहैगा" ऐसैं गतिमात्रका वक्ता है । इसरीतिसैं अग्नि कहतेभये [सो मिथ्याभया] औ अग्नियोंकूं भविष्यत्[215] विषयका अज्ञान होवैगा? यह[216]

क्षण) विद्याके उपदेशतैं अग्नियोंकी उक्ति मिथ्या प्राप्तभई? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

२१५ अग्नियोंके वचनकी अन्यगतिकूं पूर्ववादी कहैहै ॥

२१६ अग्नियोंकी उक्ति मिथ्या नहीं है औ तिनकूं भविष्यत् विषयका अज्ञानवी नहीं है। ऐसैं सिद्धांती पूर्ववादीकी उक्तिकूं दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जो सुखरूप गुणवाला आकाशस्वरूप उपास्य अग्नियोंनैं उपदेश किया तिसींहीं द्रष्टारूप कारणब्रह्मका " अक्षिविषै देखिये है" ऐसा अनुवाद गतिके व्याख्यान अर्थ आचार्यकरि करियेहै। तातैं पूर्ववादीकरि उक्त दो दूषण नहीं हैं ॥

दोष नहीं है:—काहेतैं सुखरूप गुणवाले आकाशस्वरूपहीं दृष्टाके "आक्षिविषै देखियेहै" ऐसैं अनुवादतैं [आचार्यनैं अपूर्वविद्याका उपदेश नहीं किया]। यँह[२१७] प्राणियोंका आत्मा है ऐसैं कहताभया ॥ यह कहिये जिसीहीं आत्मतत्वकूं हम कहतेभये यँह[२१८] अमृत कहिये आमरणधर्मि (अविनाशि)है। याहींतैं अभयहै। जातैं जाकूं विनाशकी आशंका है ताकूं भयकसंभव है ताके अभावतैं अभयहै। याहींतैं यह ब्रह्म (बृहत्) कहिये अनंत है इति ॥ किंवा[२१९]:—

---

२१७ ननु "अक्षिविषै देखिये है" ऐसैं प्रयोगतैं आचार्यकरि छाया (नेत्रगतरूपकाप्रतिबिंब)रूप आत्मा विवक्षित है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२१८ इसतैंबी यह पुरुष छायात्मा (छायास्वरूप) नहीं है। ऐसैं अनंतरके वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां इति शब्द जो है सो यथोक्तगुणोंकरि उपास्य जो पुरुष सो छायात्मा होनेकूं योग्य नहीं है। इस अर्थवाला है ॥

२१९ असंग होनेतैंबी यह छायात्मा नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां माहात्म्य स्थानरूप द्वारकरि कहियेहै। यह शेष है ॥

एतꣳ संयद्वाम इत्याचक्षत एतꣳ

अर्थः–इस (पुरुष)कूं "संयद्वाम (शोभनकी प्राप्तिवाला)है" ऐसैं कहते हैं। जातैं

इस ब्रह्मरूप आक्षिगत पुरुषका माहात्म्य कहियेहैः–तिस इस पुरुषके स्थानरूप अक्षिविषै यद्यपि सर्पि (घृत) वा उदककूं सिंचन करैहैं। सो वर्त्म (नेत्रकी पमणी)न विषैहीं गमन करैहैं। पद्मपत्रके साथि उदककी न्याईं चक्षुके साथि संबंधकूं पावता नहीं॥ जब [222] स्थानकका बी यह माहात्म्य है। तब फिर अक्षिपुरुषरूप स्थानी (स्थानवाले)का निरंजनपना क्या कहनेकूं योग्य है। यह अभिप्रायहै॥ १॥

टीकाः–[221] ईसं यथोक्त पुरुषकूं "संयद्वाम"

---

२२० इतनेकरि पुरुषका क्या आया? यह आशंकाकरिके कहै हैं॥

२२१ तिसीहीं पुरुषकी उपास्यताकेअर्थ अन्यगुणकूं दिखावै हैं॥

हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति । सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद॥२॥

इसके प्रति सर्व वाम (शोभन) प्राप्त होतेहैं [तातैं संयद्वाम है] ॥ इसकूं सर्व वाम प्राप्त होतेहैं । जो ऐसैं जानताहै ॥ २ ॥

ऐसैं कहतेहैं । [222] कौंहेतैं [223] जातैं इसके ताईं सर्व वाम कहिये वननीय (भजनीय) नाम शोभन च्यारीऔरतैं प्राप्त होतेहैं । यातैं यह संयद्वाम है ॥ [224] तैसैं इस ऐसैं जाननेवालेकूं सर्व वाम (शोभन) च्यारीओरतैं प्राप्त होतेहैं जो ऐसैं जानताहै ॥ २ ॥

---

२२२ ननु पुरुषका संयद्वामपना ब्रह्मवेत्ताकी उक्तिकरि सिद्ध हुयाबी अन्वर्थ (योग्य अर्थ)विना स्पष्ट नहीं होवैहै ? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहैं ॥

२२३ अवयवोंके अर्थके उपन्यासकरि सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

२२४ गुणकी उपासनाके फलकूं कहैहैं ॥ इहां तैसैं । याका उपास्यके गुणके अनुसारकरि । यह अर्थ है औ ऐसैं

एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति। सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥ ३ ॥

अर्थः—यह हीं वामनी है। जातैं यह सर्व वामोंकूं नयन करै है [तातैं वामनी है] ॥ सर्व वामोंकूं नयन करै है। जो ऐसैं जानता है ॥ ३ ॥

टीकाः—यैंहहीं[225] वामनी है। जातैं यैंहहीं[226] सर्व वामोंकूं कहिये पुण्यकर्मके फलोंकूं पुण्यके अनुसार प्राणिनकेअर्थ नयन करैहै कहिये प्राप्त करैहै औ आत्मधर्मताकरि वहन करैहै [यातैं वामनी है] ॥ विद्वान्कूं फलः—सर्व वामोंकूं नयन करैहै जो ऐसैं जानताहै ॥ ३ ॥

जाननेवालेकूं। याका संयद्वामरूप गुणकरि विशिष्ट पुरुष मैं हूं ऐसैं जाननेवालेकूं। यह अर्थ है ॥

२२५ अन्य गुणकूं उपास्यताकेअर्थ दिखावै हैं ॥

२२६ ताकूं व्युत्पादन करैहैं ॥

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति । सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४ ॥

अर्थः—यहहीं भामनी है । जातैं यह सर्व लोकनविषै भासताहै [तातैं भामनी है:—] ॥ सर्व लोकनविषै भासताहै । जो ऐसैं जानताहै ॥ ४ ॥

टीका:—[227]येहहीं भामनी है । यह जातैं सर्व लोकनविषै आदित्य चंद्र अरु अग्नि आदिकरूपोंकरि भासताहै (प्रदीप्त होताहै) "[228]तांकी भा (प्रकाश) करि सर्व यह भासताहै" इस श्रुतितैं । यातैं भामोंकूं(प्रकाशोंकूं) नयन करैहै इस कारणतैं भामनी है ॥ जो[229] ऐसैं जा-

---

२२७ अन्य गुणकूं ध्यानअर्थ कहिके ताकूं व्युत्पादन करैहैं ॥

२२८ आदित्यादिरूपसैं याही पुरुषकी दीप्यमानताविषै अन्यश्रुतिकूं अनुकूल करैहैं ॥

२२९ गुणकी उपासनाके फलकूं कहैहैं ॥

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसम्भवन्त्यर्चि-

---

अर्थः—अबबीहीं इस (ज्ञानी)विषै शव्य (शवकर्म)कूं करते हैं औ जब नहीं [करतेहैं तोबी ब्रह्मकूं पावता है]॥ ॥ [वे उपासक] अर्चिकूंहीं पावते हैं। अर्चितैं

नताहै । यहबी सर्व लोकनविषै भासता है॥ ४॥

टीकाः—[230]अब यथोक्तब्रह्मवेत्ताकी गति कहियेहैः—[231]यद्यपि(जबीबी) हीं इसऐसैं जाननेवालेके मृतहुये ऋत्विक् शव्य (शवकर्म)कूं करतेहैं औ जब नहीं करतेहैं। सर्वथा (सर्व प्रकारसैं) बी ऐसैं जाननेवाला तिस नहीं कियेबी शव

---

२३० गतिकूं कहनेकूं पूर्वउक्त ब्रह्मविद्याविषै अधिक गुणनकूंहीं आचार्य अनुवाद करता भया। अब ताही गतिकूं प्रकट करैहैं॥

२३१ ता गतिकूं कहनेकूं भूमिकाकूं करैहैं॥

षोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणप-
क्षाद्यान् षडुदङेति मासाꣳस्तान्मासे-

दिवसकूं। दिवसतैं आपूर्यमाण (शुक्ल)प-
क्षकूं। आपूर्यमाण पक्षतैं जिन षट् मास-
नकूं उत्तरदिशाकेप्रति [सूर्य] जाता है

कर्मकरि प्रतिबद्ध नहीं होवैहै अरु ब्रह्मकूं पाव-
ताहै औ किये शवकर्मकरि इसकूं कोइबी अ-
धिक लोक नहीं होवैहै। काहेतैं? "[२३२]कर्मसैं ब-
ढता नहीं अरु कनिष्ट (न्यून) होता नहीं"
इस अन्यश्रुतितैं॥ अब [२३३]शवकर्मविषै अनाद-
रकूं दिखावतेहुये विद्याकूं स्तुत करैहैं:—[२३४]फेर
ऐसें जाननेवालेका शवकर्म करनेकूं योग्य

---

२३२ मृतक्रियाके करण अरु अकरणकरि विद्वान्कूं वृद्धि नहीं है अरु हानिबी नहीं है। इस अर्थविषै अन्यश्रुतिकूं प्रमाण करैहैं॥

२३३ "अब यद्यपि हीं" इत्यादि पंचमवाक्यके तात्पर्यकूं दिखावै हैं॥

२३४ अन्य तात्पर्यकूं दिखावै हैं॥

भ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादि-

तिनकूं। मासोंतैं संवत्सरकूं। संवत्सरतैं

नहीं ऐसैं नहीं है। [२३५]जातैं शवकर्मके नहीं किये हुये कर्मोंके फलके आरंभविषै कोईबी प्रतिबंध अन्यत्र (अज्ञानीविषै) अनुमान करियेहै। जातैं इहां विद्याफलके आरंभ कालविषै शवकर्म (मरणोत्तरक्रिया) होवै वा न होवै [तोबी प्रतिबंध नहींहै] यातैं विद्वान्के अप्रतिबंधकरि फलके आरंभकूं दिखावैहैं:—जे [२३६]सुखरूप गुणवाले आकाशस्वरूप अक्षिविषै स्थित पुरुषकूं संयद्वाम।

---

२३५ जब विद्वान्कावी शवकर्म (प्रेतक्रिया) कर्त्तव्य है तब ताका अविद्वान्तैं क्या विशेषहै? तहां कहैहैं ॥ इहां अन्यत्र। ऐसैं अविद्यावान् कहिये है औ इहां। ऐसैं प्रस्तुत वाक्यकी वा विद्यावान्की उक्ति है औ ऐसैं शवकर्मविषै अनादरपूर्वक। यह शेष है औ भाव यह है किः—विद्यावान्कूं शवकर्मके भाव वा अभावके होते प्रतिबंधरहित फल सिद्ध होवैहै। अविद्यावान्कूं तो शवकर्मके अकरणके हुये कर्म फलदायक नहीं है। ऐसी विद्याकी स्तुति इहां अभिप्रेत है ॥

२३६ "वे अर्चिकूंहीं पावते हैं" इस वाक्यविषै जो तत् (वे) शब्द है ताके अर्थकूं व्याख्यान करैहैं ॥

त्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः ॥ ५ ॥

आदित्यकूं। आदित्यतैं चंद्रमाकूं। चंद्रमातैं विद्युतकूं । तहां स्थित तिनकेप्रति अमानव पुरुष [ब्रह्मलोकतैं आयके] ॥ ५ ॥

वामनी अरु भामनी। ऐसैं गुणवाला उपासते हैं औ प्राणसहित अग्निविद्याकूं उपासतेहैं तिनकूं अन्यकर्म होवै वा मति होवै सर्वथा बी वे अर्चिकूंहीं कहिके अर्चिकी अभिमानिनी देवताकूं पावतेहैं । यह अर्थ है। अर्चितैं कहिये अर्चिदेवतातैं दिवसकूं कहिये दिवसकी अभिमानिनी देवताकूं। दिवसतैं आपूर्यमाणपक्षकूं कहिये शुक्लपक्षकी देवताकूं । आपूर्यमाणपक्षतैं जिन षट् मासोंकूं उत्तर दिशाके प्रति सूर्य जाताहै तिन मासोंकूं कहिये उत्तरायणकी देवताकूं। तिन मासनतैं संवत्सरकूं कहिये संवत्सरकी देवताकूं। तिस संवत्सरतैं

स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवपथो

अर्थः–सो इनकूं [सत्यलोकस्थ] ब्रह्म-केतांई प्राप्त करैहै । यह देवपथ है ब्रह्म-

आदित्यकूं । आदित्यतैं चंद्रमाकूं । चंद्रमातैं विद्युतकूं । तहां विद्युत्के लोकविषै स्थित तिन ब्रह्मके उपासकनके प्रति । मानवी सृष्टि-विषै जो होवै सो मानव है । नहीं जो मानव ऐसा जो दिव्य पुरुष । सो अमानवहै ॥ ५ ॥

टीकाः–ऐसा सो कोइकबी अमानव पुरुष ब्रह्मलोकतैं आयके इनकूं सत्यलोकविषै स्थित ब्रह्मकेतांई प्राप्तकरैहै । गंता[२३७] गंतव्य अरु गमयिता-के व्यपदेशनतैं । सन्[२३८]मात्रब्रह्मकी प्राप्तिविषै तिनके

२३७ ननु सत्यलोकविषै स्थित ब्रह्मकूं । ऐसैं देशके अंतरायकरि क्यूं ऐसैं व्याख्यान करिये है । मुख्यहीं ब्रह्मशब्दका आलंबन (अर्थ) क्यूं नहीं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां इन हेतुनतैं सत्यलोकविषै स्थित ब्रह्मकूं प्राप्त करैहै मुख्य ब्रह्मकूं नहीं । ऐसैं संबंध है ॥

२३८ ननु मुख्य ब्रह्मकी प्राप्तिविषैबी यथोक्त व्यपदेश

ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ॥ ६ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य पंचदशः खण्डः ॥ १५ ॥

पथ है । इसकरि जाते हुये इस मानव आवर्त्तके तांई आवर्त्तन करते नहीं आवर्त्तन करते नहीं ॥ ६ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्र०पंचदशः खंडः१५

असंभवतैं । जोतैं[239] "ब्रह्महीं हुया ब्रह्मकूं पावता है" ऐसैं तहां कहनेकूं योग्यहै । यातैं [240]सर्व भेदके निरासकरि सन्मात्रब्रह्मकी प्राप्तिकूं यह श्रुति आगे(षष्ठ प्रपाठकविषै) कहैगी औ अ[241]दृष्टमार्ग अगमनकेअर्थ उपस्थित होता नहीं ।

(गंता आदिकव्यवहार) होवैंगे? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥इहां तिनके असंभवतैं तैसा ब्रह्म (ब्रह्मशब्द) नहींहै । यह शेष है॥

२३९ गंताआदिकव्यवहारोंके ब्रह्मविषै असंभवकूंही स्पष्ट करैहैं ॥ इधर "तहां" ऐसैं मुख्यब्रह्मकी प्राप्ति कहिये है ॥

२४० ननु तब किसीकूंबी सन्मात्र ब्रह्मकी प्राप्ति इहां (श्रुतिविषै) नहीं कही है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां कहैगी श्रुति षष्ठ अध्यायविषै । यह शेष है ॥

२४१ ननु जीवका सन्मात्रब्रह्म जब पारमार्थिकरूप है ।

"सो[242] अविदित हुया इसकूं नहीं भोगता(पालन करता)है" इस अन्य श्रुतितैं ॥ यह[243] देवपथ कहिये गमयिता (प्रापयिता) करि अधिकारी ऐसे अर्चि आदिक देवनकरि उपलक्षित पंथा (मार्ग) कहियेहै औ गंतव्य जो ब्रह्म तिसकरि उपलक्षित है यातैं यह ब्रह्मपथ है । इसकरि[244] ब्रह्मकूं जाते हुये पुरुष

तब उपासककूंबी गति (ब्रह्मलोकविषै गमन) उचित नहीं है । काहेतैं ता उपासककेबी ब्रह्मतैं भिन्नस्वरूपके अभावतैं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां एकतारूपमार्ग जब नहीं देख्या है तब अगमनकेअर्थ उपस्थित होता नहीं । जातैं ध्याननिष्ठकूं अदृष्ट जो एकत्व सो ब्रह्मलोकविषै गमनकूं निवारणकरनेकूं समर्थ होता नहीं । काहेतैं अज्ञानरूप प्रतिबंधतैं ता उपासककूं गमनकी भ्रांतिके संभवतैं । यह अर्थ है ॥ यद्वाः—एकत्वरूप मार्ग नहीं अवगत हुया नगमन (मोक्ष)केअर्थ उपस्थित नहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥

२४२ तहां प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां इस श्रुतिका यह अर्थ हैः—सो परमात्मा प्रत्यक् (अंतरात्मा) भावकरि अज्ञातहुया इस अधिकारीकूं मुक्तिके प्रदानकरि पालन करता नहीं ॥

२४३ प्रकृत गतिकूं उपसंहार करैहैं ॥

२४४ गतिरूप फलकूं निगमन करैहैं ॥ इहां "इस (वर्त-

इस मानव (मनुसंबंधी मनुकी सृष्टिरूप) आर्त्तवकेताँई आवर्त्तन करते नहीं। कहिये [245]आवर्त्तन करतेहैं जनन मरणरूप प्रतिबंधके चक्रविषै आरूढ हुये घटीयंत्रकी न्यांई पुनः पुनः इसविषै ऐसा जो संसार सो आवर्त्त है ताकूं नहीं पावतेहैं । आवर्त्तन करते नहीं। ऐसी दोवार जो उक्ति है सो सफलविद्याकी परिसमाप्तिके दिखावनेअर्थ है ॥ ६ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० चतुर्थप्रपाठक० पंचदशः खंडः॥१५॥

मान)कूं'' इस विशेषणतैं इस कल्पविषै अनावृत्ति औ अन्यकल्पविषै तो आवृत्ति (पुनरागमन) उपासककूं होवै है। ऐसैं सूचन करिये है ॥

२४५ आवर्त्तशब्दकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां सफलाकी। याका यथोक्तगतिपूर्वक फलकरि सहित विद्याकी । यह अर्थ है औ कार्यब्रह्मके उपासनकरि मिलित कारण ब्रह्मकी उपासना जो यथोक्त है। सो विवक्षित है। विद्यासहित अविद्या (उपासनासहित कर्म) इहां विवक्षित नहीं है ता (विद्या)की। यह अर्थ है ॥

इति श्री० चतुर्थप्रपाठकगतपंचदशखंडस्य टिप्पणम् ॥१५॥

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य षोडशः खंडः १६

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निदꣳ सर्वं पुनाति ॥ यदेष यन्निदꣳ

अथ श्री० मूलभाषा०चतुर्थप्रपाठ०षोडशः खंडः ॥१६॥

अर्थः—यह प्रसिद्ध जो पवता(चलता) है यह यज्ञ है। यह (वायु) चलताहुया इस सर्वकूं पावन करैहै। जातैं यह चलता-

---

अथ श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपा०षोडशः खंडः ॥१६॥

यज्ञकी उपासना ९

टीकाः—रहस्य[२४६] (उपासन)के प्रकरणविषै प्रसंगतैं औ आरण्यकभावके[२४७] सामान्यतैं यज्ञ[२४८]-

---

अथ श्री० चतुर्थप्रपाठ०षोडशखंडस्य टिप्प०॥१६॥

२४६ पूर्वउत्तरग्रंथकी असंगातिकूं आशंकाकरिके । प्रसंगविषै प्राप्त संगतिकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—रहस्य जो उपासन ताके प्रकरणविषै विद्वानोंकूं फलकी प्राप्तिअर्थ मार्गोपदेशके प्रसंगसैं यज्ञकी समाप्तिविषै गमनअर्थ पीछले ग्रंथकरि मार्गके उपदेशतैं संगति (पूर्व उत्तरग्रंथका संबंध) है॥

२४७ किंवाः—पूर्व उत्तरग्रंथकूं आरण्यक (वनविषै कथित) होनैकरि समान होनेतैंबी दोनूंकी संगति है । ऐसैं कहैहैं ॥

२४८ किंवाः—अग्नियोंकूं विषयकरनेवाली विद्या प्रकृत

सर्वं पुनाति । तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक् च वर्तनी ॥ १ ॥

हुया इस सर्वकूं पावन करैहै तातें यह (वायु)हीं यज्ञ है। ताकी मन औ वाक् वर्त्तनी (मार्ग) हैं ॥ १ ॥

विषै छिद्रके उत्पन्नहुये प्रायश्चित्तकेअर्थ व्याहृतियां करनेकूं योग्यहैं औ ता (प्रायश्चित्त)के अभिज्ञ[२४९] ब्रह्मा नामक ऋत्विक्कूं मौन करनेकूं योग्य है । यातें यह आरंभकरियेहैः—यह[२५०] प्रसिद्ध

है औ यज्ञविषै अग्निके संबंधके सिद्ध भये जब कछुबी छिद्र (न्यूनता) उत्पन्न होवैहै । तब प्रायश्चित्तके अर्थ व्याहृतियां करनेकूं योग्य हैं। यातें पीछले ग्रंथकी प्रवृत्ति है । ऐसैं अन्य संगतिकूं कहैहैं ॥

२४९ प्रकृत उपासनाविषै मौन अंगीकार करिये है । काहेतें वाणीके व्यापारके हुये विक्षिप्त चित्तवान्ताकरि ध्यानके अनुष्ठानकी असिद्धितैं औ इहां (इसखंडविषै) प्रायश्चित्तके जाननेवाले ऋत्विक् विशेष (ब्रह्मा)कूं मौन विधान करियेहै । तिस हेतुकरि पूर्व उत्तरखंडकी परस्पर संगति है । ऐसैं कहैहैं ॥

२५० ननु यज्ञकूं देवताके उद्देशकरि द्रव्यका त्यागस्व-

वायु जो यह पवता (चलता) है यह यज्ञ है [इहां "ह वा" ऐसे प्रसिद्ध अर्थके प्रकाशक दो निपात हैं] [२५१]जातें वायुविषै स्थित यज्ञ श्रुतिनविषै प्रसिद्ध है "[२५२]स्वाहा जो है सो वातेधाः (यज्ञ) है। [२५३]येहीं यज्ञ है जो यह पवता (चलता)है" इत्यादि श्रुतिनतैं। [२५४]वायुहीं क्रियासमवायी (यज्ञ

रूप होनेतें औ क्षणभंगिनी क्रियाकूं गतिमान्‌पनैके अयोगतैं मार्गके उपदेशके असंभवतैं मार्गका उपदेशरूप जो प्रथम संगति (पूर्व उत्तरग्रंथका संबंध) सो कैसैं बनैगा? यह आशंकाकरिके। यज्ञरूप क्रियाकी गतिमान्‌ताकूं संपादन करनेकूं यज्ञकी वायुरूपताकूं कहैहैं ॥

२५१ यज्ञ वायुरूप आश्रयवाला अरु वायुस्वरूप है ऐसी श्रुतिगत प्रसिद्धि है। ताहीकूं प्रकट करैहैं ॥

२५२ श्रुतिनकूं उदाहरण करैहैं ॥ इहां स्वाहाकारकूं उच्चारकरिके वात जो वायु तिसविषै धा कहिये धारण करियेहै (डालियेहै) ऐसा जो यज्ञ सो वातेधा है ॥

२५३ अन्य श्रुतिकूं कहैहैं ॥ इहां आदिशब्दकरि "वात (वायु)तैं यज्ञ योजना करनेकूं योग्य है" यह श्रुति ग्रहण करियेहै ॥

२५४ दिखाई जे श्रुतियां तिनके अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-जो यज्ञ क्रियासमवायी कहिये क्रियासमुदायस्वरूप है सो वायुहीं है। काहेतैं यज्ञ अरु वायु इन

हैं चलनात्मक होनेतैं । औ "वातहीं यज्ञका आरंभक है। वौंतै[255] प्रतिष्ठा(आश्रय)है" ऐसैं श्रवणतैं ॥ येहै[256](वायु)हीं चलता हुया इस सर्व जगत्कूं पावनकरैहै (शोधनकरैहै) जौंतैं[257] नहीं चलनेवालेकूं(शुभक्रियाकेनकरनेवालेकूं) शुद्धि (दोषैका[258] निरास)नहीं है । औ जातैं दोषका निरास चलनें (शुभक्रियाकरनें) वालेकूं

दोनूंकी चलनस्वरूपताके अविशेषतैं । तातैं वायुविषै प्रतिष्ठा (स्थिति)वाला अरु वायुस्वरूप यज्ञ है ॥

२५५ वायुविषै प्रतिष्ठावाला यज्ञ है इस अर्थविषै अन्य श्रुतिकूं कहैहैं ॥

२५६ पवन (चलन) भावकी श्रुतिकरि बी वायु अरु यज्ञकी एकताकूं कहैहैं ॥

२५७ ननु वायु विनाबी शुद्धि सिद्ध होवैहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां नहीं चलनेवालेकूं । याका विहितक्रियाकूं नहीं अनुष्ठान करनेवालेकूं । यह अर्थ है ॥ औ शुद्धि नाम दोषका निरास है । औ सो निषिद्धके तांईं त्यागनेकूं प्रयत्न करनेवालेकूं सिद्ध होवैहै । परंतु निषिद्धक्रियाके त्यागविषै उदासीनकूं दोषकी निरासस्वरूप शुद्धि नहीं संभवैहै ॥

२५८ औ चलनरूप वायु है । तातैं वायुहीं चलनद्वारा सर्व जगत्कूं पावन करैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

हीं देख्या है स्थिरकूं नहीं औ [२५९]जोतैं चलता हुया यह वायु इस सर्वकूं पवित्रकरैहै। तातैं यहहीं यज्ञ है। जातैं पवित्र करैहै यातैं [२६०]तिसैं इस ऐसैं गुणकरि विशिष्ट यज्ञकी मंत्रके उच्चारणविषै प्रवृत्त वाक् औ यथाभूत अर्थके ज्ञानविषै प्रवृत्त मन वे ये वाक् अरु मन व-र्त्तनी (मार्ग)हैं। जिन दोनूंकरि यज्ञ ताय-मान (विस्तारित) हुया प्रवर्त्त होवैहै वे दो वर्त्तनी हैं। "[२६१]प्राण अरु अपानकरि चलनेवाली

---

२५९ ननु वायुकूं पावनता होहु। तिसकरि प्रकृत (प्र-संग)विषै क्या आया ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२६० वायुस्वरूपसैं गतिविशिष्ट यज्ञके वाक् अरु मनरूप दोमार्गनकूं उपदेश करैहैं ॥ इहां एवंविशिष्ट (ऐसैं गुणकरि विशिष्ट) यज्ञके। याका पावन वायुरूप यज्ञके। यह अर्थ है॥

२६१ यज्ञकी उक्त दोमार्गनकरि युक्तताविषै उपस्कार (सामग्री) सहित ऐत्तरेय श्रुतिके वाक्यकूं उदाहरण करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—प्राण अपानरूप जे उच्छ्वास अरु निश्वास तिन दोनूंकरि परिचलन विद्यमानहै जिसका ऐसी जो वाक् तिस वाक्के औ चित्त (मन)के पूर्व अपरभावके क्रमसैं यज्ञ संपादन करियेहै। जातैं मनकरि ध्यावताहुया वाक्कूं उच्चा-रताहुया पूर्व अपरभावकरि यज्ञकूं संपादन करैहै ॥

तयोरन्यतरां मनसा सꣳस्करोति ब्रह्मा।वाचा होताऽध्वर्युरुद्गाताऽन्यतराꣳ

अर्थः–तिन दोनूंके मध्य अन्यतर (एकवर्त्तनी)कूं ब्रह्मा मनकरि संस्कार करैहै। अन्यतर (एकवर्त्तनी)कूं होता अध्वर्यु अरु उद्गाता वाक्करि [संस्कार करैहैं] ॥ सो

प्रसिद्ध वाक्का औ चित्तका उत्तर उत्तर (पूर्व-अपरभाव) करि क्रम है जो यज्ञ है" ऐसी जातैं अन्य श्रुति है। [262]यातैं वाक् अरु मनकरि यज्ञ वर्त्तताहै। यातैं वाक् अरु मन यज्ञके वर्त्तनी (मार्ग) कहियेहैं ॥ १ ॥

टीकाः–तिन[263] दो वर्त्तनीयोंके मध्य अन्यतर (एक) वर्त्तनीकूं विवेकज्ञानवाले मनकरि ब्रह्मा नामक ऋत्विक् संस्कारयुक्त करैहै।

---

२६२ यज्ञकी दो मार्गोंकरि युक्तताकूं उपसंहार करैहैं ॥

२६३ तिन मन अरु वाक्के परस्पर उपकार्य अरु उपकारकभावकूं दिखावैहैं ॥ इहां सम्यक् उच्चारणकरी वाक्करि। यह शेषहै ॥

स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति ॥ २ ॥

ब्रह्मा जिसकालविषै प्रातरनुवाकके प्रारंभकिये हुये पुरा परिधानीया (पूर्व धारण करते योग्य ऋचा)तैं बोलताहै ॥ २ ॥

वाक्रूप वर्त्तनीकरि होता अध्वर्यु अरु उद्गाता ये तीनबी ऋत्विक् अन्यतर (एक) वाक्रूप वर्त्तनीकूं [264] वाक्करिहीं संस्कारयुक्त करैहैं । [265] तहां ऐसैं हुये यज्ञविषै वाक् अरु मनरूप वर्त्तनी संस्कार युक्त करनेकूं योग्यहैं ॥ [266] अनंतर सो

---

२६४ वाक्रूप वर्त्तनी (मार्ग)के संस्कारयुक्त कियेहुये तिसीहीं वाक्करि यज्ञ सिद्ध होवैहै ऐसैं कहैहैं ॥

२६५ ननु तब मनरूप वर्त्तनीकरि क्या संस्कारयुक्त करियेहैं ? यह आशंकाकरिके कहेहैं ॥ इहां ऐसैं हुये । याका दो मार्गोंकरि यज्ञकी निर्वाह करनेकी योग्यताके पूर्वोक्त रीतिकरि स्थित हुये । यह अर्थ है ॥

२६६ मनरूप वर्त्तनी (मार्ग)के संस्कारके अभावविषै प्रत्यवाय (पाप)कूं दिखावैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मनरूप वर्त्तनी । ब्रह्मा नामक ऋत्विक्करि औ वाक्रूप वर्त्तनी । होता

अन्यतरामेव वर्तनीꣳ सꣳस्करोति हीयतेऽन्यतरा ॥ स यथैकपाद्व्रजन्रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य

अर्थः–[तब]अन्यतर (वाक्‌रूप)हीं वर्त्तनीकूं संस्कार करैहै । अन्यतर (मनरूप वर्त्तनी)नाशकूं पावैहै ॥ सो जैसें एक पादवाला चलता हुया वा एकचक्रकरि व-

---

ब्रह्मा जिस कालविषै प्रातः अनुवाक्‌रूप शस्त्रके प्रारंभ किये हुये पुरा परिधानीया (पूर्व पढने योग्य ऋचा) तें ब्रह्मा[२६७] इस अंतर (मध्य) कालविषै जब बोलताहै कहिये मौ-

---

आदिक ऋत्विकोंकरि संस्कारयुक्त करनेकूं योग्य है । ऐसी अन्य व्यवस्था है ॥

२६७ सो ब्रह्मा । इस अन्वयकूं सूचन करैहैं ॥ इहां पुनरुक्ति जो है सो ता ब्रह्मा शब्दके क्रियापदके साथि संबंधके प्रकाशनअर्थ है औ इस अंतरकालविषै याका प्रातः अनुवाकरूप शस्त्रकूं आरंभ करिके ताकी परिसमाप्तिके अंतरकी अवस्थाविषै । यह अर्थ है ॥

यज्ञो रिष्यति। यज्ञꣳ रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति। स इष्ट्वा पापीयान् भवति ॥ ३ ॥

र्त्तमान रथ नाशकूं पावता है। ऐसैं इसका यज्ञ नाशकूं पावता है। नाशहुये यज्ञके पीछे यजमान नाशकूं पावता है। सो यजनकरिके पापीयान् होवैहै ॥ ३ ॥

नकूं त्यागताहै॥२॥ ॥ तब अन्यतर (वाक्रूप) हीं वर्त्तनीकूं संस्कारयुक्त करैहै। औ ब्रह्मा करि संस्कारयुक्त नहीं करी जो मनरूप अन्यतर (एक) वर्त्तनी सो विनाशकूं पावतीहै (च्छिद्रयुक्त होवैहै)॥ [२६८] सो यज्ञ अन्यतर (एक) वाक्रूप वर्त्तनीकरि हीं वर्त्तनेकूं अ-

---

२६८ ननु वाक्की होता आदिककरि संस्कार करनेकी योग्यता होहु। औ मनकी ब्रह्माकरि संस्कार करनेकी योग्यता नहीं होतीभई। इतनेकरि यज्ञकूं क्या आया? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

शक्य हुया नाशकूं पावताहै ॥ [२] ॥ किसकी[२६९] न्यांई ? यह कहैहैः—सो जैसें एक पादवाला पुरुष मार्गके प्रति चलताहुया नाशकूं पावता है। वा एकचक्रकरि वर्त्तमान रथ चलता हुया नाशकूं पावताहै। ऐसें इस यजमानका कुत्सित ब्रह्माकरि यज्ञ नाशकूं पावताहै। नाशकूं पावते यज्ञके पीछे यजमान नाशकूं पावताहै। जातैं[२७०] यज्ञरूप प्राणवाला यजमान है। यातैं यज्ञके भ्रंशके हुये ता (यजमान)का भ्रंश युक्त है ॥ सो (यजमान) तिस तैसे यज्ञकूं यजन करिके पापीयान् (अत्यंत पापी) होवैहै ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥

२६९ यज्ञके भ्रंशकूंहीं आकांक्षाद्वारा व्युत्पादन करैहैं ॥

२७० ननु यज्ञके नाशके हुयेबी यजमानकूं क्या आया ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां वाक्रूप वर्त्तनीके संस्कारके अभावविषै बी तुल्य दोष है ॥

अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदत्युभे एव वर्तनी सꣳस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ॥ ४ ॥

अर्थः–औ जिसकालविषै ब्रह्मा प्रातरनुवाकके प्रारंभकियेहुये[यावत्] पुरा परिधानीया (ऋचाविशेष)तैं नहीं बोलता है [तावत् ब्रह्मासहित सर्व ऋत्विक्]दोनूंहीं वर्त्तनीकूं संस्कार करतेहैं। [तैसें हुये] अन्यतर(एकवर्त्तनी) नाशकूं पावतीनहीं ॥४॥

टीकाः–[२७१]अनंतर फेर जिस कालविषै ब्रह्मा विद्वान्हुया मौनकूं ग्रहण करिके वाक्के विसर्ग (उच्चारण)कूं नकरताहुया वर्त्तताहै। सो जहांलगि पुरा परिधानीया (पूर्वपढने योग्य ऋचा) तैं बोलता नहीं [तहांलगि]। तैसैंहीं

---

२७१ मौनरूप गुणकूं दिखावैहैं ॥ इहां तैसैंहीं । याका सम्यक्अनुष्ठानके करनेवाले। यह अर्थ है ॥

स यथोभयपाद्व्रजन्रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतिष्ठिति। यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यज-

---

अर्थः—सो जैसें दोपाद्वाला चलता हुया वा दोचक्रोंकरि वर्त्तमान रथ प्रतिष्ठित (स्थित) होवैहै। ऐसें इसका यज्ञ प्रतिष्ठित होवैहै। प्रतिष्ठित हुये यज्ञके पीछे

(सम्यक् अनुष्ठान करनेवाले)। सर्व (ब्रह्मा आदिक) ऋत्विक् दोनूंहीं वर्त्तनीकूं संस्कारयुक्त करैहैं। [तैसें हुये] [२७२]अन्यतर (मनरूप वर्त्तनी)बी नाशकूं पावती नहीं ॥ [४] ॥ किसकीन्यांई? यह कहैहैं:—पूर्व उक्ततैं विपरीत दो दृष्टांत हैं। [२७३]ऐसें इस यजमानका

---

२७२ तैसें हुये ब्रह्मा अरु अन्य ऋत्विक् दो वर्त्तनीकूं (मार्गोंकूं) संस्कार युक्त करतेहीं हैं। ऐसें कहैहैं॥

२७३ दोवर्त्तनीके संस्कारके हुये क्या होवैहै? इस जानेकी अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥

इति श्री॰चतुर्थप्रपाठकगत षोडशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १६ ॥

मानोऽनुप्रतितिष्ठति। स इष्ट्वा श्रेयान् भवति ॥ ५ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य षोडशः खंडः ॥ १६ ॥

यजमान प्रतिष्ठित होवैहै। सो यजनकरिके श्रेयान् होवैहै ॥ ५ ॥

इति श्री०मूलभाषा०चतुर्थप्रपा०षोडशः खंडः १६

यज्ञ स्वकीय दो वर्त्तनी (मार्गों)करि वर्त्तमान हुया प्रतिष्ठित होवैहै। अर्थ यह जोः—अपने स्वरूपकरि अविनाशकूं पावताहुया वर्त्तताहै। प्रतिष्ठित हुये यज्ञके पीछे यजमान प्रतिष्ठितहोवैहै ॥ सो यजमान ऐसैं मौनके विज्ञानवाले ब्रह्माकरियुक्त यज्ञकूं यजनकरिके श्रेयान् होवैहै। अर्थ यह जोः—श्रेष्ठ होवैहै ॥४॥५॥

इति श्री०भाष्यभाषा०चतुर्थप्रपा०षोडशः खंडः ॥ १६ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठ॰सप्तदशः खंडः॥१७॥

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाँ रसान् प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः ॥ १ ॥

अथ श्री॰छांदोग्योपनिषदोमूलमात्रभाषादीपिकायाश्चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तदशः खंडः प्रारभ्यते ॥ १७ ॥

अर्थः–प्रजापति लोकनकूं तपावताभया। तिन तप्यमानोंके रसोंकूं उद्धार करताभया ॥ पृथिवीतैं अग्निकूं । अंतरिक्षतैं वायुकूं। स्वर्गतैं आदित्यकूं ॥ १ ॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰चतुर्थप्रपा॰सप्तदशः खंडः॥१७॥
यज्ञक्षत निवृत्तिअर्थ भूरादि ३ व्याहृतिनका विधान १०

टीकाः–ईहाँ[२७४] ब्रह्माकूं मौन विहित है औ ब्रह्माभावरूप कर्मविषे ता (ब्रह्माके मौन)के

अथ श्री॰चतुर्थप्रपाठक॰सप्तदशखंडस्य टिप्पणं १७

२७४ नित्यकर्मके अनुष्ठानकूं कहिके अब नैमित्तिक प्रायश्चित्तके विधानअर्थ आरंभ करैहैं ॥ इहां ताके भ्रंशहुये। याका ब्रह्माके मौनके भ्रंशके हुये। यह अर्थ है ॥

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां

अर्थः—सो इन तीन देवताओंकूं तपाव-

भ्रंशके हुये औ अन्य होताआदिकके कर्मके भ्रंशके हुये व्याहृतिकरि होमरूप प्रायश्चित्त है। यातें ता(प्रायश्चित्त)केअर्थ व्याहृतियां करनेकूं योग्य हैं। ऐसें कहैहैः—प्रजापति लोकनकूं तपावताभया कहिये लोकनकूं उद्देशकरिके तिनविषै सारके ग्रहणकरनेकी इच्छाकरि ध्यानरूप तपकूं करताभया ॥ तिन तप्यमान लोकनके साररूप रसोंकूं उद्धार करताभया। अर्थ यह जोः—ग्रहणकरताभया ॥ ॥ किनं[२७५] रसोंकूं? तहां कहैहैः—पृथिवीतें अग्निरूप रसकूं अंतरिक्षतें वायुकूं। स्वर्गलोकतें आदित्यकूं ॥ १ ॥

टीकाः—फेरबी ऐसैंहीं सो अग्नि आदिक इन

---

२७५ रसोंकूं विशेषकरि जाननेकूं पूर्ववादी पूंछताहै ॥ इहां ऐसैं। याका जैसैं लोकनकूं तपावताभया तैसैं। यह अर्थ है औ ग्रहण करताभया। ऐसैं संबंध है ॥

तप्यमानानाꣳ रसान् प्राबृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूꣳषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्या-

ताभया । तिन तप्यमानोंके रसोंकूं उद्धार करताभया ॥ अग्नितैं ऋचाओंकूं । वायुतैं यजुषनकूं । आदित्यतैं सामोंकूं ॥ २ ॥

अर्थः—सो इस त्रयी विद्याकूं तपावताभया (ताके ध्यानकूं करताभया) ता त-

तीन देवताओंकूं तपावताभया । तिनतैं बी त्रयीविद्यामय साररूप रसकूं ग्रहण करताभया ॥ २ ॥

टीकाः—फेर सो इस त्रयीविद्याकूं तपावताभया । तिस तप्यमानके रसरूप "भूः"[२७६]

२७६ ताही प्रायश्चित्तकूं विवरण करैहैं ॥ इहां प्रथम अतः (यातैं) शब्द । जातैं । इस अर्थविषै है । जब ऋचातैं । यह ऋक् शब्द तिसविषै है ॥

स्तप्यमानाया रसान् प्रावृहद्भूरित्यृग्-भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति साम-भ्यः ॥ ३ ॥

तद्यद्यृक्तो रिष्येद्भूःस्वाहेति गार्ह-

प्यमानके रसोंकूं उद्धार करताभया ॥ भूः ऐसी [व्याहृतिकूं] ऋचाओंतें। भुवः ऐसी यजुषनतें। स्वः ऐसी सामोंतें ॥ ३ ॥

अर्थः—तहां जब ऋचातें नाशकूं पावै [तब] "भूः स्वाहा" ऐसें गार्हपत्यविषै

इस व्याहृतिकूं ऋचाओंतें ॥ "भुवर्" इस व्याहृतिकूं यजुषनतें औ "स्वः" इस व्या-हृतिकूं सामोंतें ग्रहण करताभया ॥ [३]॥ जाहीतैं लोक देव अरु वेदनकी रसरूप महा-व्याहृतियां हैं। यातैं तहां यज्ञविषै जब ऋ-चातैं कहिये ऋचाके संबंधतैं (ऋचाके निमित्त) नाशकूं पावै कहिये यज्ञ क्षत (छिद्र)कूं पावै।

पत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेनर्चां वीर्य्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति ॥४॥

होमकूं करै ॥ ऋचाओंके संबंधी यज्ञके विरिष्ट (क्षत)कूं संधान करैहै । सो ऋचाओंकेहीं रसकरि अरु ऋचाओंके वीर्यकरि [संधान करैहै] ॥ ४ ॥

तब "भूः स्वाहा" ऐसैं गार्हपत्य अग्निविषै होमकूं करै । सो तहां प्रायश्चित्त है ॥ ॥ कैसैंकि[२७७] ? ऋचाओंके संबंधी यज्ञके उत्पन्न क्षतरूप विशिष्ट (अंतराय)कूं ब्रह्मा संधान करैहै । ऐसा जो है । सो ऋचाओंकेहीं [इहां

---

२७७ उक्त प्रायश्चित्तकूंहीं आकांक्षापूर्वक विवरण करैहैं ॥ इहां तत् (सो) यह क्रियाका विशेषण है । यातैं यज्ञके क्षतकूं संधान करताहै ऐसा जो है सो ऋचाओंकेहीं रसकरि संधान करताहै । यह अर्थ है औ ओज (बल)करि संधान करताहै । ऐसैं संबंध है ॥ इहां तैसैं हुये । याका यथोक्त साधनके होते । यह अर्थ है ॥

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टꣳ सन्दधाति ॥ ५ ॥

अर्थः—औ जब यजुष्तैं नाशकूं पावै [तब] "भुवः स्वाहा" ऐसैं दक्षिणाग्निविषै होमकूं करै ॥ यजुषनके संबंधी यज्ञके विरिष्ठ (क्षत)कूं संधान करैहै। सो यजुषनकेहीं रसकरि अरु यजुषनके वीर्यकरि [संधान करैहै] ॥ ५ ॥

"सो" यह क्रियाका विशेषण है]॥ रसकरि अरु ऋचाओंके वीर्य (ओज) करि संधान करैहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

टीकाः—औ जब यजुष्तैं कहिये यजुषूके निमित्त यज्ञ नाशकूं पावै तब "भुवः स्वाहा" ऐसैं दक्षिणाग्निविषै होमकूं करै ॥ तैसैं सा-

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन

अर्थः—औ जब सामतैं नाशकूं पावै [तब] "स्वः स्वाहा" ऐसैं आहवनीयविषै होमकूं करै ॥ सामोके संबंधी यज्ञके विरि-

---

मके कहिये सामके निमित्त यज्ञके भ्रंशके हुये "स्वः स्वाहा"ऐसैं आहवनीय नामक अग्निविषै होमकूं करै। तैसैं हुये पूर्ववर्त्[278] यज्ञ (यज्ञके छिद्र)कूं संधानकरैहै ॥ ॥ परंतु[279] ब्रह्माके निमित्त यज्ञके भ्रंश हुये तीन अग्नियोंविषै तीन

---

२७८ जैसैं पूर्व प्रायश्चित्तविषै यज्ञके क्षतकी न्यांई रसकरि होता संधान करैहै। तैसैं द्वितीय अरु तृतीय प्रायश्चित्तोंविषै बी यजुषनके अरु सामोंके रसकरि अध्वर्यु अरु उद्गाता ता यज्ञके क्षतकूं संधान करैहै। ऐसैं कहैहैं ॥

२७९ होताआदिकके अपराधके अधीन यज्ञके भ्रंश (ध्वंस)विषै प्रायश्चित्तकूं कहिके। अब ब्रह्माके अपराधके किये यज्ञके नाशविषै क्या प्रायश्चित्त है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

साम्ना वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टꣳ सन्दधाति ॥ ६ ॥

ष्टकूं संधान करैहै । सो सामोंकेहीं रसकरि अरु सामोंके वीर्यकरि [संधान करैहै]॥६॥

व्याहृतियोंकरि होमकूं करै । २८०तैं त्रयीविद्याका सो अंश है । काहेतैं " २८१अब किसकरि ब्रह्माभाव है? ऐसैं [पूंछेहुये] इसी हीं त्रयी (ऋक् यजुर् अरु साममय त्यारी वेदरूप) विद्याकरि" इस श्रुतितैं [यह एक न्याय है] । २८२वौ ब्रह्माभावके निमित्त यज्ञके अंशके हुये अन्य न्याय खोजनेकूं योग्य है ॥ ५ ॥ ६ ॥

---

२८० यथोक्त प्रायश्चित्तविषै लिंगकूं दिखावैहैं ॥

२८१ ब्रह्माकी त्रयी (वेद) विद्यारूप सारवान्ताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

२८२ साधारण कार्यकी साधारण सामग्रीकरि जन्यताके नियमतैं तीन वेदनके साधारण ब्रह्माभावविषै तीन वेदनका साधारणहीं प्रायश्चित्त कहनेकूं योग्य है। यह एक न्याय दिखाया ॥ अब इसीहीं सर्व वेदोंके अर्थके अभिज्ञ ब्रह्माके वेदक (ज्ञाता)पनैकी प्रसिद्धितैं ज्ञानके माहात्म्यकरिहीं दोषके निरासतैं अन्य प्रायश्चित कर्त्तव्य नहीं है । इस अन्य न्यायकूं कहैहैं ॥

तद्यथा लवणेन सुवर्णꣳ सन्दध्यात्सुवर्णेन रजतꣳ रजतेन त्रपु त्रपुणा सीसꣳ सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा ॥ ७ ॥

अर्थः—सो जैसेंः—लवण (क्षार)करि सुवर्णकूं संधान करै। सुवर्णकरि रजतकूं। रजतकरि त्रपु (कल्ली)कूं। त्रपुकरि सीसेकूं। सीसाकरि लोहकूं लोहकरि काष्ठकूं। चर्मकरि काष्ठकूं ॥ ७ ॥

टीकाः—[२८३] सो जैसें लवणकरि सुवर्णकूं संधानकरै। जातें टंकणआदिक [२८४] क्षारकरि सो

---

२८३ वस्तुनके स्वभावकी विचित्रतातें उत्पन्न भये बी क्षत (छिद्र)का किसकरि बी संधान होवैहै। इस अर्थविषै अनेक दृष्टांतनकूं कहैहैं ॥

२८४ तहां क्या साधन है? ताकूं दिखावैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अग्निसंयुक्त कठिन सुवर्णके द्रवीभूत हुये टंकणआदिक क्षारके डालनेकरि मृदुकरण अरु परस्पर आवयवोंका सम्यक् जोडनेरूप संधान प्रसिद्ध है ॥

एवमेषां लोकानामासां देवतानाम-
स्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य वि-

अर्थः–ऐसैं इन लोकनके। इन देवताओंके। इस त्रयीविद्याके वीर्यकरि यज्ञके

(लवण) कठिनधातुओंविषै मृदुभावका करनेवाला है। सुवर्णकरि[२८५] अशक्यसंधानवाले रजत (रौप्य)कूं संधानकरै। तैसैं रजतकरि त्रपु (कल्ली)कूं। त्रपुकरि सीसेकूं। सीसाकरि लोहकूं लोहकरि काष्ठकूं अरु चर्मरूप बंधनकरि [बी] काष्ठकूं [लोक संधानकरै है] ॥ ७ ॥

टीकाः–ऐसैं इन लोकनके इन देवताओंके इस त्रयीविद्याके रसनामक ओजरूप

२८५ रजतकूं सुवर्णकरि संधान करै। यद्यपि रजत स्वरसकरि प्रथम अशक्य संधानवाला है तथापि अग्निके संयोगपूर्वक पूर्वकी न्यांईहीं तिसविषै बी संधान प्रसिद्ध है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां रजतकरि। इत्यादिकविषै बी यथोक्त (संधानकूं करै। यह कथन) देखनेकूं योग्य है औ संधानकूं करैहैं ब्रह्मा। यह शेष है औ भेषजकरि कियेकी न्यांई किया। याका संस्कृत (संस्कारयुक्त किया)। यह अर्थ है ॥

रिष्ट॰ संदधाति । भेषजकृतो हवा एष यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवति ॥ ८ ॥

क्षतकूं संधान करैहै । भेषजकरि कियेकी न्यांई किया प्रसिद्ध यह यज्ञ है । जिसविषै एवंवित् (ऐसा ज्ञाता) ब्रह्मा होवैहै ॥ ८ ॥

वीर्यकरि यज्ञके विरिष्ट (छिद्र)कूं ब्रह्मा संधान करैहै ॥ जैसैं सुष्टुप्रकरसैं शिक्षाकूं प्राप्त । चिकित्सक (वैद्य)के भेषज(औषध)सैं नीरोगकिये रोगैंकरि [२८६] पीडत (रोगी) पुरुषकीन्यांई संस्कृत होवैहै॥ ॥ कौंन यह यज्ञहै कि? जहां कहिये जिस यज्ञविषै एवंवित् कहिये यथोक्त व्याहृतिनकरि होमरूप प्रायश्चित्तका वेत्ता ब्रह्मारूप ऋत्विक् होवैहै । सो यज्ञ है । यह अर्थ है ॥ ८॥

---

२८६ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां होवैहै संस्कृत । यह शेष है ॥

एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदँ ह वा एषा ब्रह्माणमनु गाथा यतो यत आवर्त्तते तत्तद्गच्छति ॥ ९ ॥

अर्थः—यह प्रसिद्ध उदक्प्रवण यज्ञ है। जिसविषै एवंवित् ब्रह्मा होवैहै। एवंवित् ब्रह्माकेप्रति प्रसिद्ध यह अनुगाथा हैः—जिस जिसतैं आवर्त्तन करैहै तिस तिसकूं [संधान करताहुया] पालन करैहै ॥ ९ ॥

टीकाः—किंवा[287]ः—यह प्रसिद्ध उदक्प्रवण कहिये उत्तरप्रदेश है निम्न (नीचे) जिसका अरु दक्षिणप्रदेश है उच्छ्राय (उच्च) जिसका ऐसा यज्ञ होवैहै। अर्थ यह जोः—उत्तरमार्गकी प्राप्तिका हेतु है ॥ जहां (जिस यज्ञविषै) एवंवित्

---

२८७ यातैं बी ऐसैं जाननेवाले ब्रह्माकरि [युक्त] होनेकूं योग्य है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां गाथाशब्द जो है सो गायत्रीआदिक छंदनतैं व्यतिरिक्त छंदनकूं विषय करनेवाला है ॥

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरूनश्वाऽभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानꣳ

अर्थः—मानव ब्रह्मारूपहीं एक ऋत्विक् कर्त्ताओंकूं [पालन करैहै] ॥ [जैसैं:—] अश्वा (घोडी) अभिरक्षण करैहै। [तैसैं:—] एवंवित् ब्रह्मा यज्ञकूं यजमानकूं औ सर्व

(ऐसैं जाननेवाला) ब्रह्मा होवैहै ॥ ऐसैं जाननेवाले प्रसिद्ध ब्रह्मारूप ऋत्विक्‌केप्रति यह ब्रह्माकी स्तुतिरूप अनुगाथा हैः—जिस जिस प्रदेशतैं कर्मकूं आवर्त्तन करैहै कहिये [288]ऋत्विजोंका यज्ञ क्षतकूं पावताहै तिस तिस यज्ञके क्षतरूपकूं प्रायश्चित्तकरि संधान करताहुया ब्रह्मा परिपालन करैहै। यह अर्थ है[९]

---

२८८ जिस जिस प्रदेशतैं कर्मकूं आवर्त्तन करैहै। ऐसैं उक्त अर्थकूं विवरण करैहैं ॥ इहां जिस जिस प्रदेश (स्थल) विषै यज्ञकी क्षति (हानि) अध्वर्युआदिकनकी होतीभई तहां तहां यज्ञके क्षतरूपकूं प्रायश्चित्तकरि संधान करताहुया ब्रह्मा कर्त्ताओंकूं परिपालन करैहै। ऐसैं संबंध है ॥

सर्वा॰ऋत्विजोऽभिरक्षति । तस्मादेवं-
विदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं
नानेवंविदम् ॥ १० ॥

इति छांदोग्योपनिषद् चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तदशः
खंडः समाप्तः ॥ १७ ॥

ऋत्विजोंकूं निश्चयकरि अभिरक्षण करैहै । तातैं एवंवित्कूंहीं ब्रह्मा करै । अनेवंवित्कूं (ऐसैं नहीं जाननेवालेकूं) नहीं । अनेवंवित्कूं नहीं ॥ १० ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषदो मूलमात्रभाषादीपिकायां चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तदशः खंडः ॥१७॥

मौनके[२८९] आचरणतैं वा मनतैं ज्ञानवान् होनेतैं मानव ब्रह्मा है । ता (ज्ञानके अतिशय)तैं ब्रह्मारूपहीं एक ऋत्विक् कर्त्ताओंकूं

---

२८९ ब्रह्मारूप ऋत्विक्‌विषै मानवशब्दकी प्रवृत्तिमैं दो निमित्तकूं कहैहैं ॥ इहां ज्ञानका अतिशय तत् (तातैं) शब्दका अर्थ है औ कर्त्ताओंकूं अभिरक्षण करैहै । ऐसैं संबंध है ॥

[अभिरक्षण करैहै] जैसैं[290] अपनेपर आरूढ योद्धाओंकूं अश्वा (वडवा) अभिरक्षण करैहै। तैसैं एवंवित् प्रसिद्ध ब्रह्मा यज्ञकूं यजमानकूं सर्वऋत्विजोंकूं तिनके किये दोषके दूरी करनेतैं अभिरक्षण करैहै॥ जातैं ऐसे[291] गुणकरि विशिष्ट ब्रह्मा विद्वान् है तातैं एवंवितकूंहीं कहिये यथोक्त व्याहृति आदिकके वेत्ताकूं [यजमान] ब्रह्मा करै। ऐसैं नहीं जाननेवालेकूं कदाचित् नहीं करै। इति॥ इहां दो अभ्यास अध्यायकी परिसमाप्तिरूप अर्थवाला है॥ ९॥ १०॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्–भाष्यभाषादीपिकायां चतुर्थप्रपाठकस्य सप्तदशः खंडः समाप्तः॥ १७॥

समाप्तेयं चतुर्थप्रपाठकस्य भाष्यभाषादीपिका॥ ४॥

---

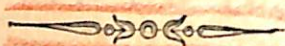
२९० उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि प्रकट करैहैं॥

२९१ प्रकरणके अर्थकूं उपसंहार करैहैं॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां चतुर्थप्रपाठकगतसप्तदशखंडस्य टिप्पणं समाप्तम्॥ १७॥

समाप्तेयं चतुर्थप्रपाठकस्य टिप्पणिका॥ ४॥

अथ पंचमप्रपाठकाऽऽरंभः ५



प्राणके ज्येष्ठताश्रेष्ठतादि अन्नवस्त्र। पंचाग्निविद्या। गतित्रय।
वैश्वानरोपास्ति। विद्वदग्निहोत्र २४

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदः पंचमप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

ॐ॥ यो ह वै ज्येष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च वेद

अथ श्रीछांदोग्योपनिषदो मूलमात्रभाषादीपिकायाः पंचमप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थः-जोई ज्येष्ठकूं औ श्रेष्ठकूं जानता

अथ श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायाः पंचमप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥ १ ॥

इंद्रियसंवादसैं प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठतादि १९

टीकाः-[1]सगुण ब्रह्मकी विद्याकी उत्तरा (उत्तरायणमार्गरूप) गति कही। अनंतर अब पं-

अथ श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायाः पंचमप्रपाठकगतप्रथमखंडस्य टिप्पणम् ॥ १ ॥

१ वृत्त (पूर्व अध्यायके अर्थ)कूं अनुवादकरिके। ताके

ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति। प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ १ ॥

है [सो] ज्येष्ठ औ श्रेष्ठहीं होवैहै । प्राणहीं ज्येष्ठ औ श्रेष्ठ है॥ १ ॥

चम अध्यायविषै पंचाग्निके वेत्ता गृहस्थकी औ श्रद्धालु अरु पंचाग्निविद्यातैं अन्य (सगुण) विद्याविषै निष्ठावाले ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारीआदिक) नकी गतिकूं अनुवाद करिके अन्य दक्षिणदिशाकी संबंधिनी केवल कर्मिनकी धूमादि लक्षणवाली पुनरावृत्तिरूप गति औ तृतीय तिन (उक्तदोगतिन)तैं अत्यंत [२]कष्टरूप संसारकी गति वै-

---

साथि इस पंचम अध्यायकी संगतिकूं कहतेहैं ॥ इहां अन्यविद्या कहिये पंचाग्निविद्यातैं अतिरक्त सगुणविद्या है औ तिस शीलवाले । याका तिसविषै निष्ठावाले । यह अर्थ है औ तिसीहीं गतिकूं । याका अर्चिआदिलक्षणवाली गतिकूं । यह अर्थ है औ तिनतैं कहिये दो गतिनतैं तृतीय (तीसरी) विद्या अरु कर्मसैं रहित पुरुषनकी । यह शेष है ॥

२ अनंतर क्रमकरि मुक्तिके संभवतैं उत्तरा (उत्तरायणमार्गरूप) गति कहनेकूं योग्य है । ऐसैं दक्षिणा (दक्षिणायन-

राग्यरूप हेतुतैं कहनेकूं योग्य है । यातैं यह पंचम अध्याय आरंभ करियेहै ॥ ³प्राण वाक्-आदिकनतैं श्रेष्ठ है औ "प्राणहीं संवर्ग है", इत्यादि बहुत करिके अतीत (गत) ग्रंथविषै प्राणका ग्रहण किया । सर्वके साथि मिलिके कार्यकारिताके अविशेष (तुल्यता)के हुये सो

मार्गरूप) गति औ तीसरी अतिनिकृष्ट संसाररूपगाति क्यूं उपदेशकरिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सगुणब्रह्मकी विद्यावाले पुरुषनकी अर्चिआदिरूप गतिकूं कहिके । अब समुच्चित अरु असमुच्चित कर्मोंके संसाररूप गतिके भेदरूप फलकूं कहनेकूं यह आरंभ है ॥

३ कर्मका विधिबी धनसंपत्तिके होते होवैहै औ तिस धनकी संपत्ति ब्राह्मणकूं श्रेष्ठताके होतेहीं संभवै है । यातैं श्रेष्ठताकी सिद्धिअर्थ पूर्वग्रंथविषै अनुक्तप्राणका उपासन कहनेकूं योग्य है । इसरीतिसैं अनंतरके (पीछले) ग्रंथकी संगतिकूं कहतेहुये प्रसंगकूं करैहैं ॥ इहां "प्राण ब्रह्म है" इत्यादिवाक्य आदिशब्दका अर्थ है औ उदाहरणकरी अरु नहीं उदाहरणकरी अन्य श्रुतिनके ग्रहण अर्थ चकार (औ शब्द) है ॥

४ वाक्आदिकनतैं उक्त प्राणकी श्रेष्ठताके तांई पूर्ववादी आक्षेप करै है ॥ इहां यह अर्थ है:—सर्व वाक्आदिकनके साथि मिलिके प्राणकी कार्यकरताके प्रसिद्ध हुये सोई कैसैं

प्राण वाक्आदिकनविषै कैसैं श्रेष्ठ है? औ ताका उपासन कैसैं होवैहै? ऐसी शंकाभई। यातैं ताके श्रेष्ठताआदिक गुणके विधान करनेकी इच्छाकरि [६]अनंतर यह आरंभ करियेहैः— [७]जो कोईकबीहीं ज्येष्ठकूं कहिये वयकरि प्रथमकूं औ श्रेष्ठकूं कहिये गुणोंकरि अधिककूं जानताहै। सोई ज्येष्ठ औ श्रेष्ठ हो-

---

श्रेष्ठ निर्धार करियेहै। तिनके मध्य अन्यतम (एक)कीहीं श्रेष्ठता क्यूं नहीं होवैगी ॥

५ तिस प्राणकीहीं उपास्यताकरि श्रेष्ठताकूं आशंकाकरिके। वाक्आदिकनके मध्य अन्यतम (एक)की उपास्यताकूं दूरीकरिके प्राणकीहीं उपास्यता नहीं होवैगी हेतुके अभावतैं? ऐसैं पूर्ववादी अन्य आक्षेपकूं कहैहै ॥

६ प्राणके श्रेष्ठता औ ज्येष्ठता इत्यादि गुणके विधान अर्थहीं प्रथम आरंभ करिये है ॥

७ प्रथम प्रश्नकूं सिद्धांती परिहार करै हैं ॥ इहां प्राणकाहीं उपासन है वाक्आदिकनका नहीं। यह अनंतर आरंभ करिये है "अनंतर प्राण उत्क्रमण करनेकूं इच्छता हुया" इत्यादि याके द्वादश आदिक वाक्यसैं। यह प्रथम पदके कहनेका अभिप्राय है ॥

८ द्वितीय प्रश्नकूं सिद्धांती उद्धार करै हैं ॥

वैहै ॥ ऐसें [9]फलकरि पुरुषकूं प्रलोभन करिके (लोभ दिखायके) अभिमुखकरिके श्रुति कहैहैः–प्राणहीं वाक्आदिकनतें वयकरि ज्येष्ठ (बडा)है। [10]जातें गर्भमें स्थित पुरुषविषै वाक्आदिकनतें पूर्व लब्धात्मिका (प्राप्तस्वरूपवाली) प्राणकी वृत्ति होवैहै । [11]जिसकरि गर्भ बढताहै।औ [12]चक्षुआदिकके स्थानरूप अवयवनकी उत्पत्तिके हुये पीछे वाक्आदिकनकी वृत्तिका लाभ होवैहै। [13]यातें प्राण वयकरि ज्येष्ठ होवैहै। याकी श्रेष्ठता तो "सुहय" इत्यादि दृष्टांतकरि

---

९ कौन यह ज्येष्ठता अरु श्रेष्ठतारूप गुणवाला जाननेकूं योग्य है ? यह शंका भई । यातें कहैहैं ॥

१० वाक्आदिकनतें प्राणकी ज्येष्ठता काहेतें प्रतीत होवै है । जातें प्राणसहित सर्व वाक् आदिक साथिहीं गर्भमैं स्थित पुरुषविषै स्वतः (आपतैं) वृत्तिके भागी होवै हैं ? तहां कहैहैं ॥

११ तिसविषै गर्भकी विशेषवृद्धिके दर्शनकूं प्रमाण करैहैं॥

१२ तब वाक्आदिकनकूं वृत्तिका लाभ कब होवै है ? तहां कहैहैं ॥

१३ प्राणकी प्रतिपादनकरी ज्येष्ठताकूं निगमन करैहैं ॥

योहवैवसिष्ठंवेदवसिष्ठोहस्वा-
नांभवति। वाग्वाववसिष्ठः ॥ २ ॥

अर्थः—जोई वसिष्ठकूं जानताहै [सो] स्वजनोंके मध्य वसिष्ठहीं होवैहै। वाक्हीं वसिष्ठ है ॥ २ ॥

यह श्रुति आगे प्रतिपादनकरैगी। यातैं इस कार्य कारणके संघातविषै प्राणहीं ज्येष्ठ औ श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

टीकाः—[१५] जोई वसिष्ठकूं कहिये अत्यंत वसनेवालेकूं (अत्यंत आच्छादन करनेवालेकूं) वा अत्यंतवसुमान्(धनवान)कूं जो जानताहै। सो तैसैंहीं अपनी ज्ञातिनके मध्य वसिष्ठ हो-

---

१४ उपास्यभावकेअर्थ दिखाए दो गुणोंकूं निगमन करैहैं ॥

१५ तिस (उपास्यता)के अर्थ होनेकरिहीं अन्यगुणकूं दिखावै हैं ॥ इहां वसुमत्तमकूं (अतिशयकरि धनवान्कूं)। याका धनवान् होनेतैं अन्योंके निवासके कारणकूं। यह अर्थ है ॥ औ तैसैंहीं। याका उपासनाके अनुसारकरि। यह अर्थ है ॥ औ वसिष्ठहीं होवैहै। याका वासयिता (वासकरावनेवाला) होवै है। यह अर्थ है ॥

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च । चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥

अर्थः-जोई प्रतिष्ठाकूं जानता है [सो] इस औ उस लोकविषै प्रतिष्ठितहीं होवैहै। चक्षुहीं प्रतिष्ठा है ॥ ३ ॥

वैहै ॥ ॥ कौंन तव वसिष्ठ है? यह कहैहैः-वाक्हीं वसिष्ठ है । [16]जातैं वाग्मी (वाचाल) पुरुष वसतेहैं कहिये अन्योंकूं अभिभव (तिरस्कार) करतेहैं । औ वसुमत्तम हुये [तिसकरि अन्योंकूं वासकरावतेहैं] । यातैं वाक् वसिष्ठ है ॥ २ ॥

टीकाः-[17]जोई प्रतिष्ठाकूं जानताहै सो इस लोकविषै औ उस (पर) लोकविषै प्रतिष्ठित

---

१६ वाक्के प्रतिष्ठापनैकूं उपपादन (निरूपण) करै हैं ॥ इहां औ वसुमत्तम हुये (अत्यंत धनवान् हुये) तिस धनकरि अन्योंकूं निवास करावते हैं । यह शेष है ॥

१७ चारी ओरतैं ध्यानअर्थ अन्य गुणकूं उपदेश करैहैं ॥

यो ह वै सम्पदं वेद सꣳहास्मै कामाः पद्यन्ते दैवाश्च मानुषाश्च । श्रोत्रं वाव सम्पत् ॥ ४ ॥

अर्थः–जोई संपत्कूं जानताहै । इसके अर्थ दैव अरु मानुष काम(भोग) सम्यक् प्राप्त होतेहीं हैं। श्रोत्रहीं संपत् है॥४॥

होवैहै कहिये प्रतिष्ठाकूं पावताहै ॥ ॥ कौंन तब प्रतिष्ठा है? यह कहैहैः–चक्षुहीं प्रतिष्ठा है। [18]जातैं चक्षुकरि देखता हुया सम औ दुर्ग (विषम देशकाल)विषै प्रतिष्ठित होवैहै । यातैं चक्षु प्रतिष्ठा है ॥ ३ ॥

टीकाः–[19]जोई संपत्कूं जानताहै तिस इसकेअर्थ दैव मानुष काम प्राप्त होतेहैं ॥ ॥ कौंन तब संपत् है? यह कहैहैः–श्रोत्रहीं सं-

---

१८ चक्षुके प्रतिष्ठापनैंकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१९ अन्य गुणकूं कहैहैं॥ इहां दैव (देवनकेसंबंधी) काम स्वर्गआदिक हैं वा मानुष्य (मनुष्यनके संबंधी) काम पशुआदिक हैं ॥

यो ह वा आयतनं वेदाऽऽयतनꣳ ह स्वानां भवति। मनो ह वा आयतनम् ॥ ५ ॥

अर्थः—जोई आयतन (आश्रय)कूं जानताहै [सो] स्वजनोंका आयतनहीं होवैहै। मनहीं आयतन है ॥ ५ ॥

पत् है। [20]जांतैं श्रोत्रकरि वेद ग्रहण करियेहैं औ तिनके अर्थका विज्ञान ग्रहण करियेहै। तिसतैं कर्म करियेहै। तिसतैं कामोंकी संपत् होवैहै। ऐसैं जातैं है तातैं कामोंकी संपत्तिका हेतु होनेतैं श्रोत्रहीं संपत् है ॥ ४ ॥

टीकाः—[21]जोई आयतनकूं जानताहै। सो अपने जनोंका आयतन होवैहै। अर्थ यह जोः—आश्रय होवैहै ॥ ॥ क्या सो आयतन है? यह कहैहैः—मनहीं आयतन है। काहेतैं

---

२० श्रोत्रके संपत्पनैंकूं साधते हैं ॥ इहां ऐसैं जातैं है तातैं। ऐसैं योजना है ॥

२१ अब अन्य गुणकूं कहैहैं ॥

अथ ह प्राणा अहꣳश्रेयसि व्यूदिरेऽहꣳश्रेयानस्म्यहꣳश्रेयानस्मीति ॥६॥

अर्थः—अब प्राण (वाक्आदिक) मैं श्रेयविषै हूं। कहिये "मैं श्रेष्ठतर हूं। मैं श्रेष्ठतर हूं" ऐसैं विवादकूं करतेभये ॥ ६ ॥

इंद्रियैंनकरि[22] ग्रहण किये भोक्ताके अर्थवाले प्रत्ययरूप विषयनका जातैं मन आयतन (आश्रय) है। यातैं मनहीं आयतन है। ऐसैं कहा ॥ ५ ॥

टीकाः—अनंतर[23] प्राण ऐसैं यथोक्त गुणवाले

---

२२ ननु फेर मनका आयतपना (आश्रयपना) कैसैं सिद्ध भया ? यातैं कहैहैं ॥

२३ यथोक्त गुण मुख्यप्राणगामी है। एक एक वाक् आदिकनविषै नहीं होवैहै। ऐसैं कहनेकूं आख्यायिकाकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां किसीकूंबी। याका विराट्रूप वा कश्यप आदिकनके मध्य अन्यतम (एक) प्रजापतिकूं। यह अर्थ है औ शरीरका जो पापिष्ठपना है सो पापके कार्यका प्रधानपना है औ इव (न्यांईके ठिकाने हीं) शब्द जो है सो अवधारण (निश्चय)के अर्थ है ॥

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्! को नः श्रेष्ठ इति ? तान् होवाच यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठ-

---

अर्थः—वे प्राण प्रजापति पिताके प्रति आयके कहतेभयेः—हे भगवन् ! "हमारे मध्य कौंन श्रेष्ठ है" ऐसैं ॥ ॥ तिनकूं [पिता] कहताभयाः—तुह्मारे मध्य जिसके उत्क्रांतहुये शरीर अतिशय पापिष्ठकीन्यांई

हुये मैं श्रेयविषै हूं कहिये मैं अत्यंत श्रेष्ठ हूं। मैं अत्यंत श्रेष्ठ हूं। इस प्रयोजनविषै नाना विरुद्ध कहतेभये ॥ ६ ॥

टीकाः—वे प्राण (करण) ऐसैं विवदमान (विवाद करते) हुये आपकी श्रेष्ठताके विज्ञानअर्थ प्रजापतिरूप किसी बी पिता (जनक)के तांई आयके कहतेभयेः—हे भगवन् ! हमारे मध्य कौंन श्रेष्ठ है कहिये गुणोंकरि अधिक है? ऐसैं पूंछतेभये ॥ ॥ तिनकूं पिता कह-

तरमिव दृश्येत स वःश्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥
सा ह वागुच्चक्राम । सा संवत्सरं प्रोष्य

दीखै सो तुह्मारे मध्य श्रेष्ठ है ऐसैं ॥ ७ ॥
अर्थः—सो वाक् उत्क्रमण करतीभई ।

ताभयाः—तुह्मारे मध्य जिसके उत्क्रांत (शरीरतैं निकसते) हुये यह शरीर जीवतेकाहीं अतिशयकरि पापिष्ठहीं है औ सम्यक् निर्गत प्राणवाला हुया तिसतैं बी अतिशयकरि पापिष्ठ हीं देखनेंमैं आवै कहिये शैंबरूप[24] अस्पृश्य अशुचि देखनेमैं आवै । सो तुह्मारे मध्य श्रेष्ठ है । ऐसैं तिनके दुःखकूं हरण करनेकूं इच्छताहुया पितौं[25] काकु (स्वरभंग)करि कहताभया ॥ ७ ॥

टीकाः—प्राणोंके पिताकरि तिस प्रकारसैं उक्त

---

२४ उक्तहीं अर्थकूं संक्षेप करिके कहेहैं ॥ इहां कुणप । याका त्यक्तप्राण ऐसा शबरूप । यह अर्थ है ॥

२५ ननु प्रजापति सर्वज्ञ हुया मुख्य प्राणकूंहीं क्यूं श्रेष्ठ नहीं कहताहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"यह श्रेष्ठ

पर्य्येत्योवाच-कथमशकतर्त्ते मज्जीवितु-
मिति ? यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः

सो संवत्सर प्रवासकरिके पीछे आयके क-
हतीभई:-मुजविना कैसें जीवनेकूं शक्त
होतेभये ? ऐसें ॥ ॥ जैसें:-कल (मूक)
नहीं बोलतेहुये प्राणकरि प्राणनकूं करतेहुये

हुये सो वाक् उत्क्रमण करतीभई कहिये श-
रीरतैं निकसतीभई । औ सो उत्क्रमण करिके
संवत्सर मात्र परदेशविषै स्थितिरूप प्रवास
करिके कहिये स्वव्यापारतैं निवृत्त हुयी । फेर
पीछे आयके इतर प्राणोंकूं कहतीभई:-तुह्म
मेरेविना जीवनेकूं (अपनेकूं धारण करनेकूं)
कैसें (किस प्रकारसैं) समर्थ होतेभये ? ऐसें
॥ ॥ तब वे (इतर प्राण) कहतेभये:-" जैसें

है" ऐसें कहे हुये जो तिन वाक् आदिकनकूं दुःख होवैहै
ताकूं परिहार करनेकूं इच्छताहुया प्रजापति स्वरभंगरूप
उपायविशेषकरि श्रेष्ठकूं कहता भया । स्पष्ट नहीं ॥

प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥

चक्षुकरि देखतेहुये श्रोत्रकरि सुनते हुये मनकरि ध्यावतेहुये [जीवते हैं] [ऐसैं हम जीवतेरहे] ॥ ॥ ऐसैं [जानिके] वाक् प्रवेशकूं करतीभई ॥ ८ ॥

कल" इत्यादि । कहिये कल जे मूक वे जैसैं लोकविषै वाणीकरि नहीं बोलतेहुये जीवते हैं ॥ ॥ कैसैं किः—प्राणकरि प्राणनकूं करतेहुये चक्षुकरि देखतेहुये श्रोत्रकरि सुनतेहुये मनकरि ध्यावतेहुये । अर्थ यह जोः—ऐसैं सर्व करणोंकी चेष्टाकूं करतेहुये ऐसैं हम जीवते रहे । यह अर्थ है ॥ प्राणोंविषै आपकी अश्रेष्ठताकूं जानिके वाक् फेर प्रवेश करतीभई । अर्थ यह जोः—स्वव्यापारविषै प्रवृत्त होतीभई ॥ ८ ॥

चक्षुर्होच्चक्राम। तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच-कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथाऽन्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥९॥

अर्थः–चक्षु उत्क्रमण करताभया। सो संवत्सर प्रवासकरिके पीछेआयके कहताभयाः–मुजविना कैसें जीवनेकूं शक्त होतेभये? ऐसें ॥ ॥ जैसें अंध नहीं देखतेहुये प्राणकरि प्राणनकूं करतेहुये वाक्करि बोलतेहुये श्रोत्रकरि सुनतेहुये मनकरि ध्यावतेहुये [जीवते हैं] ऐसें [हम जीवतेरहे] ॥ ॥ ऐसें [जानिके] चक्षु प्रवेश करताभया ॥ ९ ॥

टीकाः–अन्य समान है ॥ [२६] चक्षु उत्क्रमण

२६ अन्य। इस पदके विषय(अर्थ)कूं कहेहैं ॥

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम। तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्यैत्योवाच-कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति! यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥

अर्थः—श्रोत्र उत्क्रमणकूं करताभया। सो संवत्सर प्रवासकरिके पीछे आयके कहताभयाः—मुजविना कैसें जीवनेकूं शक्त (समर्थ) होतेभये ? ऐसें ॥ ॥ जैसें बधिर नहीं सुनतेहुये प्राणकरि प्राणनकूं करतेहुये वाक्करि बोलतेहुये चक्षुकरि देखतेहुये मनकरि ध्यावतेहुये [जीवते हैं]। ऐसें हम [जीवतेरहे]॥ ॥ ऐसें [जानिके] श्रोत्र प्रवेश करताभया ॥ १० ॥

करताभया। श्रोत्र उत्क्रमण करताभया। मन उत्क्रमण करताभया इत्यादि जैसें बा-

मनो होच्चक्राम। तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्यैत्योवाच-कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति? यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः॥ ११॥

अर्थः–मन उत्क्रमण करताभयाः–सो संवत्सर प्रवासकरिके पीछे आयके कहताभयाः–मुजविना कैसैं जीवनेकूं शक्त होतेभये? ऐसैं॥॥ जैसैं बाल अमन (दृढ मनसैं रहित) हुये प्राणकरि प्राणनकूं करतेहुये वाक्करि बोलतेहुये चक्षुकरि देखतेहुये श्रोत्रकरि सुनतेहुये [जीवते हैं]। ऐसैं [हम जीवतेरहे]॥॥ ऐसैं [जानिके] मन प्रवेश करताभया॥ ११॥

लक अमन हुये। याका अँप्ररूढ (अदृढ) म-

२७ बालकनकूंबी बाहिर भीतरके इंद्रियवान्‌पनैके अवि-

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन् स यथा सुहयः पड्वीशशंकून् संखिदेदेवमि-

अर्थः—अनंतर सो प्राण उत्क्रमण करनेकूं इच्छताहुया । जैसैं सुहय (श्रेष्ठ अश्व) पादबंधनके कीलोंकूं उखाडे । ऐसैं इतर प्राणोंकूं उखाडताभया ॥ ॥

नवाले हुये । यह अर्थ है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

टीकाः—ऐसैं[२८] वाक् आदिकनके परीक्षित हुये अनंतर सो मुख्य प्राण उत्क्रमण करनेकूं इच्छता हुया क्या करताभया? यह कहियेहैः—

शेष (तुल्यता)तैं बालक मनरहित हैं ऐसा बालकनका विशेषण कैसैं संभवै ? यातैं कहैहैं ॥ इहां परीक्षित हुये । याका श्रेष्ठतारहित निरूपण करिके निश्चित हुये । यह अर्थ है ॥

२८ पद्न (गमन करनेरूप) स्वभाववाले पाद हैं तिनकी जो संहति (समूह) सो पड्वि कहियेहै ताके ईश कहिये नियामक (रोधक) ऐसे जे शंकु कहिये पादबंधनके कीलक (खूंटे) वे पड्वीशशंकु कहियेहैं । इहां वर्णलोप जो है सो छांदस है ॥ तिन यथोक्त कीलनकूं अश्व एकदम जैसैं उखाडता है । ऐसैं दृष्टांतकूं कहिके दार्ष्टांतिककूं कहैहैं ॥

तरान् प्राणान् समखिदत्तꣳ हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वन्नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति ॥ १२ ॥

[तब वे वाक् आदिक] आयके ता (मुख्य प्राण)केप्रति कहतेभयेः—हे भगवन्! वृद्धिकूं पाव। तूं हमारे मध्य श्रेष्ठ हैं। उत्क्रमणकूं मतिकर ऐसैं ॥ १२ ॥

जैसैं लोकविषै सुहय कहिये शोभन अश्व परीक्षा करनेअर्थ आरूढ (ऊपर चढे पुरुष)करि चाबुकसैं हत हुया पादबंधनके कीलन (खूंटन)कूं सम्यक् उखाडताहै। ऐसैं इतर वाक् आदिक प्राणोंकूं सम्यक् उखाडताभया॥ वे प्राण सम्यक् चलित हुये स्वस्थानविषै स्थित होनेकूं उत्साहरहित हुये इकठे होयके तिस मुख्य प्राणकूं कहतेभयेः—हे भगवन्! वृद्धिकूं प्राप्त हो। जातैं हमारा स्वामी तूं हमारे

अथ हैनं वागुवाच-यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच-यदहं प्रतिष्ठाऽस्मि त्वं तत्प्रतिष्ठोऽसीति ॥ १३ ॥

अर्थः-अनंतर इसकूं वाक् कहतीभई:-मैं वासिष्ठ हूं जो सो तूं वसिष्ठ (वसिष्ठतारूप गुणवाला) हैं ऐसें ॥ ॥ अनंतर इसकूं चक्षु कहताभयाः-मैं प्रतिष्ठाहूं जो सो तूं प्रतिष्ठा (प्रतिष्ठारूप गुणवाला) हैं ऐसें ॥ १३ ॥

मध्य श्रेष्ठ हैं यातें इस देहतैं उत्क्रमणकूं मतिकर ऐसें ॥ १२ ॥

टीकाः-[२९]अनंतर वाक्आदिक प्राणकी श्रेष्ठताकूं कार्यकरि संपादन करतेहुये राजाकेअर्थ

---

२९ मुज प्राणविषै तुम वाक्आदिकनकूं श्रेष्ठताकी बुद्धि है। यह कैसें जाननेकूं शक्य है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

अथहैनꣳ श्रोत्रमुवाच-यदहꣳ सम्पदस्मि त्वं तत्सम्पदसीत्यथ हैनं मन

अर्थः-अनंतर इसकूं श्रोत्र कहताभया:-मैं संपत् हूं जो सो तूं संपत् (संपत्रूप गुणवाला) हैं ऐसैं ॥ ॥ अनंतर इसकूं

बलि (कर)कूं देनेवाले वैश्यन (प्रजाओं)की-न्यांई इस मुख्य प्राणकूं कहतेभये ॥ [३०] ॥ कैसैंकिः-वाक् प्रथम कहतीभईः-जो मैं वसिष्ठ हूं [इहां यत् कहिये जो । यह जो पद है। सो क्रियाका विशेषण है] अर्थ यह जोः-[३१] जो मैं वसिष्ठपनैरूप[३२] गुणवालीहूं। तूं तद्वसिष्ठ हैं कहिये तिस वसिष्ठपनैरूपगुणकरि तूं तद्व-

---

३० वचनकूं प्रश्नपूर्वक प्रकट करैहैं ॥

३१ क्रियाकी विशेषणताकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां वसिष्ठतारूप गुणकरि मैं वाक् गुणवाली हूं । ऐसा जो है सो तूंहीं हैं । ऐसैं योजना है ॥

३२ अनंतरके वाक्यकूं ग्रहणकरिके व्याख्यान करैहैं ॥

उवाच-यदहमायतनमस्मि त्वं तदाय-
यतनमसीति ॥ १४ ॥

मन कहताभया:-मैं आयतन हूं जो सो
तूं आयतन (आयतनरूप गुणवाला) हैं
ऐसैं ॥ १४ ॥

सिष्ठ हैं। अर्थ यह जो:-तिस गुणवाला हैं ॥
[33] अथवा तत् (सो) शब्द बी [यत् (जो) श-
ब्दकीन्यांई] क्रियाका विशेषणहीं है। अर्थ यह
जो:-तेरी[34] किया तेरा यह वसिष्ठतारूप गुण अ-
ज्ञानतें "मेरा है" ऐसैं मैनैं मान्या है ॥ तैसैं[35]

---

३३ "तद्वसिष्ठ हैं" ऐसैं समस्त (तृतीयातत्पुरुष समास-करियुक्त) पदकूं ग्रहणकरिके ताका व्याख्यानकरिके। अब अन्यपक्ष (तत्पदके अन्यअर्थ)कूं कहैहैं ॥ इहां यत् (जो) शब्दकी न्यांई। ऐसा अपि (बी) शब्दका अर्थ है ॥

३४ मैं वसिष्ठपनैरूप गुणवाली हूं। ऐसा जो है सो तूंहीं वसिष्ठपनैरूप गुणवाला हैं। ऐसैं अबी तुजकरि क्यूं कहिये है। जातैं पूर्व तेरा अन्यथा अभिधान (कथन) होताभया? यह आशंकाकरिके वाक् इंद्रिय कहैहै ॥

३५ वाक्‌विषै दिखाये न्यायकूं चक्षुआदिकनविषै अतिदेश (जाननेकी आज्ञाका विषय(करैहैं ॥

न वै वाचो न चक्षुंषि न श्रोत्राणि

अर्थः—नहीं वाक्। न चक्षु। न श्रोत्र।

पीछले चक्षु श्रोत्र अरु मनविषै जोडनेकूं योग्य है ॥ १३ ॥ १४ ॥

टीकाः—[३६]श्रुतिका यह वचन हैः—वाक्आदिकोंनैं मुख्य प्राणके प्रति जो कहा यह [३७]युक्त

---

३६ वाक्आदिकके वचनतैं उत्थान करिके वाक्आदिककी प्राण अधीनताकूं श्रुतिहीं कथन करैहै। ऐसैं "नहीं वाक् [ऐसैं कहते हैं]" इत्यादि वाक्यरूप उत्तरवाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

३७ तिसीहीं वाक्यकूं सामग्रीसहित व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जब सर्वहीं करण (इंद्रिय) वाक्के अधीन होवैं तब "वाक्" ऐसैंहीं तिन इंद्रियनकूं जन कहैं ॥ औ जब चक्षुके अधीन होवैं तब सर्वकूंहीं "चक्षु" ऐसैं कहैं। औ ऐसैं कहते नहीं किंतु "प्राण" ऐसैं तिन सर्व करणोंकूं प्राणनामकरि कहते हैं। तातैं करणोंकी प्राणपरतंत्रता (प्राणपराधीनता) सिद्ध है ॥ औ वाक्आदिकोंनैं कहा किः—"तूं तद्वसिष्ठ (तिस वसिष्ठपनैरूप गुणकरि युक्त) हैं" इत्यादि यथोक्त गुणवाले प्राणकाहीं ध्येयपना है। यह प्रकरणका अर्थ है ॥ औ इहां साक्षात् उपसंहारके अदर्शनतैं भाष्यकारनैं श्रुति तिस प्रकरणके अर्थकूं उपसंहारकरनेकूं इच्छती है। ऐसैं कहा ॥

न मनाꣳसीत्याचक्षते। प्राणा इत्येवाचक्षते। प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति १५

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदि पंचमप्रपाठकस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

न मन। ऐसैं [इन इंद्रियनकूं लोक] कहतेहैं [किंतु]। "प्राण" ऐसैंहीं कहतेहैं। जातैं प्राणहीं इन सर्वके ताँई होवैहै॥१५॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपा०प्रथमः खंडः॥१॥

है ॥ जातैं लोकविषै लौकिकजन वा शास्त्रज्ञजन वाक्आदिक करणोंकूं वाणियां नहीं। [कहते] चक्षु नहीं। मन ऐसैं नहीं कहते हैं किंतु। "प्राणहीं हैं" ऐसैं कहतेहैं। जातैं प्राणहीं इन सर्व वाक्आदिककरणोंके समूहोंकेप्रति होवैहै। यातैं मुख्य प्राणके प्रति वाक्आदिकोंनैं अनुरूप हीं कहा। ऐसैं श्रुति प्रकरणके अर्थकूं उपसंहार करनेकूं इच्छती है

॥ ॥ [३८]ननु चेतनवाले पुरुषनकीन्यांई "मैं श्रेष्ठताकेअर्थ हूं" ऐसें विवादकूं करतेहुये करण परस्पर स्पर्द्धाकूं करतेभये। यह कैसें युक्त होवै। [३९]जातें चक्षुआदिकनका वाक्कूं निषेध करिके (छोडिके) प्रत्येकका वदन (संभाषण) नहीं संभवै है। [४०]तैसें देहतें निर्गमन फेर प्रवेश वा ब्रह्माके प्रति गमन अरु प्राणोंकी स्तुति नहीं संभवैहै? [४१]तहां सिद्धांती कहैहैं किः—वाक्‌आ-

---

३८ आख्यायिकाके यथाश्रुत अर्थके तांई पूर्ववादी आक्षेप करैहै॥ इहां यह अर्थ हैः—जैसें चेतनावाले पुरुष विवादकूं करतेहुये स्पर्धाकूं करते हैं। तैसें अचेतन जे वाक् आदिक वे अपनी श्रेष्ठताकी सिद्धिअर्थ विवादकूं करतेहुये परस्पर स्पर्धाकूं करतेभये। यह कथन युक्त नहीं है। काहेतें अचेतनोंविषै स्पर्धाआदिकके अदर्शनतें॥

३९ किंवाः—वाणीतें भिन्न इंद्रियनका परस्पर वचनहीं अनुचित है। काहेतें वचनकूं वाक्का व्यापार होनेतें। ऐसैं पूर्ववादी कहैहै॥

४० किंवाः—वाक्‌आदिकनका देहतें अपसर्पण (निकसजाना) आदिक अयुक्त है। काहेतें तिनकूं अचेतन (जड) होनेतें? ऐसें पूर्ववादी कहैहै॥ इहां वा शब्द "नहीं" इस पूर्व उक्तपदके अनुकर्षण (खीचनैं) अर्थ है॥

४१ अग्नि आदिक चेतनावालियां जे देवता हैं तिनकरि

दिकनकूं अग्निआदिक चेतनावाले देवताओं-करि अधिष्ठित होनेतैं वाक्आदिकनका चेतना-वान्पना प्रथम आगम (श्रुति)तैं सिद्ध है॥ ॥ ननु एक देहविषै अनेक चेतनावान्ताके हुये तैं[४२]-किकोंके मतका विरोध होवैगा ? ऐसैं जो कहै। [४३] सो बनै नहीं:—काहेतैं ॥ ईश्वरकी निमित्तकार-

---

अधिष्ठित होनेतैं तादात्म्यके अभिप्रायकरि वाक्आदिकनके चेतनावान्पनैके संभवतैं तिनका वदन (वचन) आदिक व्य-वहार संभवै है। यातैं "अग्नि वाक् होयके मुखकेप्रति प्रवेश करता भया" इत्यादि श्रुतिकूं अनुसरिके सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

४२ ननु एक देहविषै अनेक चेतनावानोंके बलात्कार-करि विरुद्ध अनेक अभिप्रायोंका अनुसारी होनेकरि देहके उन्मथनके प्रसंगतैं वा क्रियारहितताके प्रसंगतैं एक देहका अनेक चेतनोंकरि अधिष्ठित (आश्रित)पना नहीं संभवै है ? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

४३ क्या एक शरीर अनेक चेतनोंकरि अधिष्ठित नहीं होवै है ? किंवा:—तिन अनेक चेतनोंकरि निर्णीत कर्त्ता भो-क्ताकरि अधिष्ठित नहीं होवै है ? ऐसैं विकल्पकरिके प्रथम विकल्पके प्रति सिद्धांती दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं पर (तार्किक)के मतविषै जीवकरि अधिष्ठितहीं श-रीरका [जीवनकीन्यांई सर्व अल्प पदार्थनके साथि संयोगी

णताके अंगीकारतैं ॥ [44] जे तार्किक प्रथम ईश्वरकूं अंगीकार करतेहैं वे ईश्वरकरि अधिष्ठितहीं आध्यात्मिक मनआदिक कार्य करणोंकी औ बाह्य पृथिवीआदिकनकी नियमकरि प्रवृत्तिकूं इच्छते (मानते) हैं । [45] रथआदिककीन्यांई ॥ औ [46] हमोंकरि अग्निआदिक चेतनावाली बी देवता अध्यात्मरूप भोक्ती (भोगकी करनेवाली) नहीं अंगीकारकरिये हैं ॥ [47] तब क्या कि ? [48] कार्य

होनेकरि व्यापक] ईश्वरकरि अधिष्ठितपना है ॥ तैसैं माने हुये एक शरीर अनेक चेतनोंकरि अधिष्ठित (आश्रित) नहीं होवैहै । ऐसी सेश्वरवादीनकी शंका नहीं है ॥

४४ संग्रहरूप (संक्षिप्त) वाक्यकूं सिद्धांती विवरण करैहैं ॥

४५ चेतनकरि अधिष्ठित अचेतनोंकीहीं प्रवृत्ति होवैहै । इस अर्थविषै सिद्धांती दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

४६ द्वितीय विकल्पकेप्रति सिद्धांती कहैहैं ॥

४७ ननु तब कार्य (देह) अरु करण (इंद्रिय आदिक) नकी अधिष्ठातादेवता जे हैं । तिन देवताओंके कार्य अरु करणोंकी क्या अन्य अधिष्ठाता देवता हैं ? ऐसैं पूर्ववादी पूंछता है ॥

४८ देवताके कार्य अरु करणोंकी अन्य अधिष्ठाता देवता

करणवाली अरु [49]प्राणरूप एक देवताके भेदस्वरूप अरु [50]अध्यात्म अधिभूत अधिदैवतके भेदनकी कोटिनकरि विकल्पवाली तिन देवताओंका [51]अध्यक्षतामात्रकरि नियंता ईश्वर अंगीकार करियेहै। सो[52] ईश्वर जातैं करणरहित है। "सो [53]पाणिपादरहित हुया वेगवान् अरु ग्रहण-

---

जब इष्ट होवैं तब अनवस्था होवैगी? ऐसैं माननेवाले पूर्ववादीके प्रति सिद्धांती प्रत्युत्तर कहते हैं॥

४९ शाकल्यब्राह्मणकूं अनुसरिके कहैहैं॥

५० ननु बहुत देवता हैं। तिनकूं प्राणरूप एक देवताके भेदरूपवान्‌पना कैसैं है? यातैं कहैहैं॥ इहां अध्यात्म अधिभूत अरु अधिदैवनके भेदनकी कोटिनकरि विकल्प है जिनका ऐसैं विग्रह है॥

५१ ईश्वरके नियंतापनैकरि किये व्यापारवान्‌पनैकूं निवारण करनेकूं विशेषण देते हैं॥

५२ अब ईश्वरकूंबी नियंता होनेतैं देवताओंकी न्यांई कार्यकारणवान्‌पना होवैगा? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं॥ इहां ईश्वरका अकरणपना (इंद्रियरूप करणोंसैं रहितपना) जो है। सो अकार्यपनैका (देहरूपकार्यरहितपनैका) उपलक्षण है॥

५३ तहां श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं॥ इहां आदिपदकरि "ताका कार्य औ करण नहीं है" इत्यादि मंत्ररूप वाक्य ग्रहण किया॥

का कर्ता है। चक्षुरहित हुया देखताहै । कर्ण-रहितहुया सुनता है" इत्यादिमंत्ररूप वाक्यतैं औ "जायमान हिरैण्यगर्भकूं देखो। पूर्व हिरण्यगर्भकूं उपजावताभया" इत्यादि श्वेताश्वतरशाखावाले पठन करतेहैं । यातैं देहविषै[55] कर्मफलका संबंधी तिन (देवता अरु ईश्वर)तैं विलक्षण जीव भोक्ता है। ऐसैं हम कहतेहैं ॥ औ इहां वाक्[56] आदिकनका संवाद जो है। सो विद्वान्कूं[57] अन्वय अरु व्यतिरेककरि प्राणकी श्रे-

५४ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ है औ सो एक समष्टिरूप देवता है। ताकी अवस्थाके भेदरूप अनेकदेवताओंका ईश्वर नियंता है। ऐसैं कहा। इसविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां आदिपदकरि "आगे हिरण्यगर्भ सम्यक् वर्त्तताभया" इत्यादिवाक्य ग्रहण करिये है ॥

५५ देवताओंके औ ईश्वरके इस देहविषै भोक्तापनैके अभावके हुये किसका भोक्तापना है? यातैं कहैहैं॥इहां तिनतैं विलक्षण। याका देवता अरु ईश्वरतैं व्यावृत्त (भिन्न)। यह अर्थ है॥

५६ वाक्आदिक शब्दनके वाच्य चेतनावाली देवता हैं। ऐसैं स्वीकारकरिके आख्यायिकाके स्वार्थ (वाच्यार्थ)की सिद्धि अर्थ कहा। अब ता (आख्यायिका)के तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

५७ कल्पनाके प्रयोजनकूं कहैहैं ॥

ष्ठताके निर्धारण अर्थ कल्पित है ॥ [५८] जैसैं लोक-विषै पुरुष आपकी श्रेष्ठताकेअर्थ परस्पर विवादकूं करते हुये। किसीबी गुणविशेषके अभिज्ञकूं पूंछतेहैं:—हमारे मध्य गुणोंकरि कौंन श्रेष्ठ है? ऐसैं ॥ तिसकरि उक्त हुये कहिये [५९] अनुक्रमसैं होयके जैसैं होवै तैसैं इस कार्यकूं साधनेकूं उद्योग करहू। जिसकरि यह कार्य साधियेहै सो तुह्मारे मध्य श्रेष्ठ है। ऐसैं उक्त हुये। तैसैंहीं उद्योग करतेहुये आपकी वा अन्यकी श्रेष्ठताकूं निर्धार करतेहैं ॥ तैसैं श्रुति वाक्-आदिकनविषै इस संव्यवहारकूं कल्पना करतीभई ॥ ॥ [६०] विद्वान् प्राणकी श्रेष्ठताकूं कैसैं निश्चय करैगा कि:—[६१] वाक्आदिकनके मध्य एक एकके अभावके हुयेबी जीवन देख्या है। परंतु

५८ यथोक्त कल्पनाकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥

५९ तिसकरि उक्त हुये। ऐसैं उक्तकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

६० विद्वानकूं। इत्यादिकरि उक्त प्रयोजनकूं प्रकट करैहैं ॥ इहां विद्वान् प्राणकी श्रेष्ठताकू कैसैं निश्चय करैगा। ऐसैं संबंध है ॥

६१ प्रतिपत्ति (निश्चय)के प्रकारकूं संक्षेपकरि कहैहैं ॥ इहां फलवती कल्पना है। यह शेष है ॥

६८

प्राणके अभाव हुये जीवन देख्या नहीं। ऐसैं [विद्वान् प्राणकी श्रेष्ठताकूं निश्चय करैगा ॥ यातैं यह कल्पना फलवती है] ॥ तिसप्रकारसैं कौषीतकि शाखावाले ब्राह्मणोंकी श्रुति हैः—"वाक्‌रहित जीवताहै जातैं हम मूकनकूं देखतेहैं। चक्षुरहित हुया जीवता है जातैं अंधनकूं देखतेहैं। श्रोत्ररहित हुया जीवताहै जातैं बधिरनकूं देखतेहैं। मनरहित हुया जीवताहै जातैं बालकनकूं देखतेहैं बाहुछिन्न (ठूंठा) जीवताहै। उरच्छिन्न (पंगु) जीवताहै" इत्यादिरूप ॥ १५ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
पंचमप्रपाठकस्य प्रथमः खंडः समाप्तः ॥ १ ॥

---

६२ दृष्ट अर्थविषैवी अनुग्राहक होनेकरि श्रुतिकूं दिखावै हैं ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्रपाठ० प्रथमखंडस्य टिप्पणम् १

अथ पंचमप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः २

स होवाच-किं मेऽन्नं भविष्यतीति?

अथ श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपाठ० द्वितीयः खंडः॥ २ ॥

अर्थः—सो (मुख्य प्राण) कहताभयाः—मेरा क्या अन्न होवैगा? ऐसैं ॥ ॥ जो

अथ श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपा०द्वितीयः खंडः ॥ २ ॥

प्राणके अन्नवस्त्रका उपासन ८

टीकाः—सो[६३] मुख्यप्राण कहताभयाः—"क्या मेरा अन्न होवैगा"? ऐसैं ॥ ॥ इहां श्रुति मुख्य[६४] प्राणकूं प्रष्टा (पूंछनेवाले)की न्यांईं क-

---

अथ श्री० पंचमप्रपाठ० द्वितीयखंडस्य टिप्पणम् २

६३ वाक्आदिकनका स्वामी श्रेष्ठताआदिक गुणवाला प्राण मैं हूं। ऐसैं जान ॥ इसरीतिसैं प्रधान विद्याकूं उपदेश करिके तिस दर्शनकी अंगभूत जो प्राणके अन्न अरु वस्त्रकी दृष्टि है ताके विधानअर्थ आरंभविषै प्रथम अन्नकी दृष्टिकूं विधान करनेकूं प्रसंगकूं करते हैं ॥

६४ इहां मुख्य प्राणका प्रष्टापना औ वाक्आदिकनका प्रतिवक्तापना काल्पनिक (कल्पनाकरि किया) है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां "जो यह" ऐसैं उक्तहीं जो यत् (जो) पद है सो

यत्किञ्चिदिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह

कछुक यह श्वानोंकरि सहित अरु पक्षियोंकरि सहित है [सो तेरा अन्न है]। ऐसें कहतेभये ॥ ॥ सो यह अन (प्राण) का अन्न है। अन्नहीं प्रत्यक्ष नाम है। ऐसें

लपना करिके वाक्आदिकनकूं प्रतिवक्ता (उत्तरके देनेवाले)की न्यांई कलपती हुयी कहैहैः— जो यह किंचित् लोकविषै प्रसिद्ध अन्नका समूह श्वानोंकरि सहित अरु शकुनीओं (पक्षियों)करि सहित सर्व प्राणिनका जो अन्न है सो तेरा (प्राणका) अन्न है। ऐसें वाक्आदिक कहतेभये ॥ ॥ [६५]प्राणका सर्व अन्न है। प्राण सर्व अन्नका अत्ता (भोक्ता) है। इस प्र-

---

वाक्यार्थकी कलपना अर्थ "जो अन्न है" इस ठिकानें अनुवाद करिये है ॥

६५ "सोई यह" इत्यादि उत्तरवाक्यके पूर्ववाक्यतैं अर्थभेदके अभावकूं आशंकाकरिके कहैहैं ॥

वै नाम प्रत्यक्षं। न ह वा एवंविदि किञ्च-
नानन्नं भवतीति ॥ १ ॥

जाननेवालेविषै कछुबी अनन्न (अभक्ष्य)
नहीं होवैहै ऐसैं [श्रुति कहतीभई]॥ १ ॥

कारके निश्चयअर्थ कल्पितआख्यायिकारूपतैं
निवृत्त होयके अपनैं श्रुतिरूपसैं कहैहैः—सो
प्रसिद्ध यह जो कछुक अन्न लोकविषै प्राणि-
नकरि भक्षण करियेहै सो प्राणका अन्न है।
अर्थ यह जोः—सो प्राणकरिहीं भक्षण करिये
है ॥ [६६] सर्व प्रकारकी चेष्टाकरि प्राणके व्याप्तिरूप
गुणके दिखावनेअर्थ प्राणका "अन" ऐसा प्र-
त्यक्ष नाम है। [६७] जातैं प्रआदिक उपसर्ग पूर्व-

६६ इहां प्राणशब्दकूं छोडिके "अन" शब्दके प्रयोगविषै तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—"अन । चेष्टाविषै है" ऐसैं धातुतैं जन्य अन शब्दका ग्रहण जो है सो सर्व प्रकारकी चेष्टाकरि प्राणके व्याप्तिरूप गुणके दिखावनेअर्थ है ॥ तैसैं हुये जो कोइबी दहन करताहै शोषण करताहै वा प्लवन (कूदन) करता है सो सर्वबी प्राणहीं है। ऐसैं प्राणका "अन" ऐसा नाम युक्त है औ इधर जो प्रत्यक्ष शब्द है। ताका पूर्वउक्त धातुतैं जन्मवाला नाम है। यह अर्थ है ॥

६७ उक्त अर्थकूंहीं समर्थन करै हैं ॥ इहां अन शब्दका।

कताके हुये अन शब्दकी विशेषगातिहीं (प्राण ऐसा-रूप) होवैहै ॥ तैसैं हुये "अन" ऐसा यह प्रत्यक्ष नाम जो है। सो सर्व[६८] अन्नोंके अत्ताके नामका ग्रहण है॥कहिये यह सर्व अन्नोंके अत्ताका साक्षात् अभिधान (नाम) है ॥ ऐसैं जाननेवालेविषै कहिये "सर्व भूतनविषै स्थित अरु सर्व अन्नोंका अत्ता प्राण मैं हूं" ऐसैं जाननेवाले तिस यथोक्त प्राणके वेत्ताविषै। कछु बी सर्व प्राणिनकरि भक्ष्य जो है सो अनन्न (अभक्ष्य) नहीं होवैहै। अर्थ यह जोः-ऐसैं जाननेवालेविषै सर्व अन्न होवैहै । काहेतैं विद्वान[६९]कूं

यह शेष है ॥ औ प्राणकूं सर्वचेष्टाकी प्राप्ति । यह एवकारका अर्थ नहीं है। औ तैसैं हुये याका प्राणआदिक शब्दके ग्रहणविषै विशेषव्याप्तिहीं है ऐसैं स्थित हुये । यह अर्थ है औ "अन" ऐसा प्रत्यक्ष यह नाम सर्व अन्नोंके अत्ताके नामका ग्रहण है। ऐसैं संबंध है ॥

६८ ताहींकूं व्याख्यान करैहैं ॥

६९ ननु तातैं प्राण शब्दकेअर्थ प्राणके वेत्ताका जब सर्व अन्न है तब ताके वेत्ताकूं भक्ष्य अभक्ष्यके विभागकी असिद्धिकेहुये तिस (उक्तविभागरूप) विषयवाला शास्त्र विरोधकूं पावैगा ? यह आशंकाकरिके । विद्वान्के आध्यात्मिक (व्यष्टि-

स होवाच-किं मे वासो भविष्यतीति-

अर्थः–सो (प्राण) कहताभयाः–मेरा क्या वस्त्र होवैगा? ऐसैं ॥ ॥"जल" ऐसैं

प्राणभूत होनेतैं औ "प्राणतैंहीं[७०] यह (सूर्य) उदित होवैहै अरु प्राणविषे अस्तकूं पावताहै" ऐसैं उपक्रम करिके "ऐसैं जाननेवालेतैंहीं सूर्य उदित होवैहै अरु ऐसैं जाननेवालेविषै अस्तकूं पावताहै" इस अन्य श्रुतितैं ॥ १ ॥

टीकाः–सो[७१] प्राण फेर कहताभयाः–पूर्वकी[७२]

स्वरूप परिच्छिन्न) रूपकूं छोडिके आधिदैविक (समष्टिस्वरूप व्यापक) रूपकरि तिस प्राणवेत्ताके सर्व अन्नवान्ताके हुये भक्ष्यअभक्ष्यके विभागका शास्त्र आध्यात्मिक परिच्छेदरूप विषयवाला होनेकरि अविरुद्ध है। ऐसैं कहैहैं ॥

७० प्राणभूत विद्वान् है । इस अर्थविषै अन्य श्रुतिकूं कथन करैहैं ॥

७१ ऐसैं प्राणविद्याका अंग होनेकरि प्राणके अंगकी दृष्टि उपदेशकरी । अब तिस (प्राणविद्या)का अंग होनेकरि प्राणके वस्त्रकी दृष्टिकूं प्रसंगविषै प्राप्त करैहैं ॥

७२ इहांबी प्राणका प्रष्टापना औ वाक्आदिकनका प्रतिवक्तापना कलिपतहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥

त्याप इति होचुस्तस्माद्वा एतदशि-
ष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिद-

कहतेभये॥ तातैंहीं अशन(भोजन)करतेहुये आगेतैं औ पीछेतैं जलोंकरि इस (आचमनरूप) परिधान (वस्त्र)कूं करतेहैं ॥ लंभुक

न्यांईहीं कल्पना है । क्या मेरा वस्त्र होवैगा? ऐसैं ॥ "आप (जल)" ऐसैं वाक्‌आदिक कहतेभये ॥ [७३]जातैं प्राणका वस्त्र आप हैं तातैंहीं भोजन करनेवाले औ भोजन करचूके विद्वान् ब्राह्मण इसकूं करते हैं ॥ ॥ क्योंकि:— वस्त्रस्थानीय जलोंकरि भोजनतैं पूर्व अरु भोजनतैं ऊर्ध्व (पीछे) मुख्य प्राणके परिधानकूं

---

७३ जलोंकी प्राणके प्रति वस्त्ररूपताविषै गमक (लिंग) कूं कहैहैं ॥

धति । लंभुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति ॥ २ ॥

(मिलजानेवाला) हीं वस्त्र होवैहै [यातैं] अनग्नहीं होवैहै ॥ २ ॥

करते हैं । लँभुक[74] कहिये लंभनशील (प्राप्त होनेके स्वभाववाला) वस्त्र होवैहै । अर्थ यह जोः—वँस्त्रका[75] लब्धा (प्रापक) हीं होवैहै ॥ अनग्न (ढांप्या)हीं होवैहै । कहिये वस्त्रकूं लंभुक (अन्यके साथि मिलजानेवाला) होनेकरि अर्थतैं सिद्धहीं अनग्नता है । ऐसैं अनग्नहीं होवैहै । अर्थ यह जोः—उत्तरीय (अंगवस्त्र) वान् होवैहै ॥ भोजँन[76] करनेवालेकूं औ भोजन

---

७४ वस्त्रकी दृष्टिके फलकूं कहैहैं ॥

७५ "अनग्न (ननंगा) होवैहै" इसवाक्यके पुनरुक्तिपनैकूं आशंकाकरिके अर्थविशेष (अर्थके भेद)कूं कहैहैं ॥

७६ ननु प्राणके वेत्ताकूं मुखशुद्धिअर्थ किये आचमनतैं अन्य आचमन विधानकरियेहै । काहेतैं "ऐसैं जाननेवाला भोजनकूं करता हुया आचमनकूं करै" इस श्रुतितैं ? यह

करचूकेकूं जो आचमन शुद्धिअर्थ विज्ञात है। तिसविषै "प्राणका वस्त्र है" ऐसा दर्शनमात्र इहां विधान करिये है। जलोंकरि परिधान करता है ऐसैं अन्य आचमन नहीं विधान करिये है॥ जैसैं "लौकिक प्राणियोंकारि भक्ष्यमाण अन्न प्राणका है" ऐसा दर्शनमात्र है। ताकी न्यांई। क्या मेरा (प्राणका) अन्न है? क्या मेरा वस्त्र है? इत्यादि प्रश्न अरु उत्तरकूं तुल्य होनेतें॥ जँब अपूर्व (अन्य अधिक) आचमन तिस (अनग्नता) अर्थ होनेकरि करिये तब कृमिआदिकका अन्न बी प्राणका भक्ष्य होनेकरि विहित होवै॥ परंतु तुर्ल्यविज्ञानरूपअर्थवाले

आशंकाकरिके कहैहैं॥ इहां आदिपदकरि दो प्रतिवचन (प्रतिउत्तर) ग्रहण करिये हैं॥

७७ सर्व प्राणिनकरि भोग्य अन्नविषै "ता (प्राण)का अन्न है" इस दृष्टिकीन्यांई आचमन करनेकूं योग्य जलोंविषै ता (प्राण)के वस्त्रकी दृष्टि विधान करिये है। ऐसैं कहा ताकूं व्यतिरेकद्वारा विवरण कहैहैं॥ इहां तिस अर्थ होनेकरि। याका प्राणकी अनग्नता अर्थ होनेकरि। यह अर्थ है॥

७८ अब पूर्व अन्नकी दृष्टिहीं विधान करियेहै काहेतैं सर्व अन्नके भक्षणकूं प्रमाणविरुद्ध होनेतैं। इहां तो अपूर्व

प्रश्न उत्तरके प्रकरणकूं विज्ञानरूप अर्थवाला होनेतैं अर्धजरतीय (आधि जलाई मुर्गीका) न्याय (दृष्टांत) कल्पना करनेकूं युक्त नहीं है॥ औ ⁷⁹जो प्रसिद्ध आचमन पवित्रता अर्थ है औ प्राणकी अनग्नताअर्थ है। यह नहीं होवैहै। ऐसैं तुह्मकरि कहियेहै। तैसैं हम आचमनकूं उभयअर्थ नहीं कहतेहैं। किंतु ⁸⁰पवित्रतारूप अर्थवाले आचमनकी साधनभूत आप (जल) प्राणका वस्त्र है। ऐसा दर्शन (उपासन) विधा-

---

(अलौकिक अन्य) आचमन अविरोधतैं विधान करनेकूं योग्य है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

७९ ननु एक आचमनकूं शुद्धिरूप अर्थवान्ता औ प्राणकी अभन्नतारूप अर्थवान्ता ये दोनूं कहनेकूं अशक्य हैं विरोधतैं? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥ इहां औ जो याका विरोध जैसैं होवै तैसैं। यह अर्थ है॥

८० तब किस प्रकारका आचमन विवक्षित है? यह कहैहैं॥

८१ प्रयत जो पवित्र ताका जो भाव कहिये होना ऐसी जो शुद्धि सो प्रायत्य कहियेहै। ताकेअर्थ जो आचमन किया है तिनके साधनभूत जलोंविषै वस्त्रकी संकल्पन (चिंतन)रूप अन्यक्रिया इहां श्रुतिविषै विधान करनेकूं इच्छित है। ऐसैं कहैहैं॥

नकरियेहै। ऐसैं हम कहते हैं ॥ [82]तहां आचमनकी उभयअर्थताके प्रसंगरूप दोषकी चोदना (विधि) अघटित है ॥ ॥ ननु वस्त्रके अर्थहीं जो आचमन है ताकेविषै ताका दर्शन होवैगा ? ऐसैं जो कहै। [83]सो बनै नहीं:-जातैं वस्त्रके ज्ञानरूप अर्थवाले वाक्यविषै वस्त्रकेअर्थ अपूर्व आचमनके विधानके हुये औ तहां अनग्नताअर्थ होनेकी दृष्टिके विधानके हुये वाक्यका भेद होवैहै। काहेतैं आचमनकी तिस (वस्त्ररूप) अर्थता है औ अन्य (दृष्टि) अर्थता है। इस कथनविषै प्रमाणके अभावतैं ॥ २ ॥

---

८२ क्रियाके भेदके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

८३ अन्य अर्थवाले जलोंविषै अन्य अर्थवान्ताके चिंतनविषै प्रमाणके विरोधतैं विधिके योगकरि वस्त्रकेअर्थ अन्य आचमनहीं कर्त्तव्य है औ तिस वस्त्रअर्थ किये आचमनविषै अनग्नतारूप अर्थवान्ताका चिंतन उचित है ? यह भाष्य (टीका)विषै वक्ष्यमाण उत्तरतैं समीप पूर्व कही शंकाका अर्थ है ॥ तहां आचार्यः-वस्त्रअर्थ अपूर्व (नवीन) आचमनके विधानके हुये औ तिस (वस्त्रअर्थ किये आचमन)विषै अनग्नता अर्थवान्ताकी दृष्टिके विधानके हुये वाक्यभेदके प्रसंगतैं। प्रसिद्ध आचमनके साधनभूत जलोंविषै वस्त्रकी दृष्टिके परहीं

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच- यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ३ ॥

अर्थः—तिस इस (प्राणोपासन) कूं सत्यकाम जाबाल गोश्रुति वैयाघ्रपद्यकेअर्थ कहिके कहताभयाः—यद्यपि इस (प्राणोपासन)कूं शुष्कस्थाणुके अर्थ कहै। इसविषै शाखा उपजें अरु पलाश प्ररोहकूं पावें ऐसें ॥ ३ ॥

टीकाः—सो[८४] यह प्राणका दर्शन स्तुतिका वि-

यह श्रुतिवाक्य है। ऐसें उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां तिस अर्थवान्ता है कहिये वस्त्ररूप अर्थवान्ता है औ अन्य अर्थवान्ताहै कहिये दृष्टिरूप अर्थवान्ता है। ऐसें कहे हुये प्रमाणरूप एक वाक्यकी अप्रमाणताके प्रसंगतैं। यह अर्थ है ॥

८४ "तिस इसकूं" इत्यादि तृतीय वाक्य विधानअर्थ नहीं है औ फलवचनरूपबी नहीं है। तैसें हुये व्यर्थ है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

षय करियेहै ॥ ॥ कैसैं[८५] किः—तिस इस प्राणके दर्शनकूं सत्यकाम जाबाल । नामकरि गोश्रुति ऐसा जो व्याघ्रपत्‌का पुत्र वैयाघ्रपद्य था तिस गोश्रुतिनामक शिष्यकेअर्थ कहिके अन्यबी वक्ष्यमाण वचनकूं कहताभया ॥ ॥ क्या सो (वचन) कहताभया ? यह कहैहैः— यद्यपि शुष्क (सूके) स्थाणु (शुष्कवृक्ष)केअर्थ इस दर्शनकूं प्राणका वेत्ता कहै । तो इस स्थाणुविषै शाखा उत्पन्न होवैं हीं औ पलाश (पत्र) प्ररोहकूं पावैं । तब जीवतें पुरुषकेअर्थ कहै अरु इसविषै महाफल होवैहै यामैं क्या कहना है ऐसैं ॥ ३ ॥

---

८५ स्तुतिकूंहीं प्रश्नपूर्वक विवरण करै हैं ॥ इहां जीवत् पुरुषकेअर्थ प्राणविद्याकीन्याई इस दर्शनकूं कहै तब इसविषै महाफल होवैहै । यामैं क्या कहना है । ऐसैं योजना है ॥

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावस्या-
यां दीक्षित्वा पौर्णमास्याꣳरात्रौ सर्व्वौ-

अर्थः—अनंतर जब महत्कूं प्राप्त हो-
नेकूं इच्छे [तब] अमावस्याविषै दीक्षाकूं
करिके पौर्णमासीविषै रात्रिमैं सर्वौषधिके

टीकाः—[86]यथोक्त प्राणदर्शनके वेत्ताका यह
मंथ नामवाला कर्म आरंभ करियेहैः—अनं-
तर जब महत्पनैकूं प्राप्त होनेकूं इच्छे
अर्थ यह जोः—कामना करै । [87]ताकूं यह कर्म
विधान करियेहै ॥ [88]जातैं महत्पनैके होते श्री

---

८६ गोदोहनकीन्यांई अधिकारीका अधिकाररूप यह कर्म है । इसविषै प्राणवेत्ताकूं अधिकार है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अनंतर प्राणविद्याकी सिद्धितैं । यह शेष है ॥

८७ वाक्यशेषकूं पूरण करैहैं ॥

८८ ननु महत्पनैद्वारा विषयनके उपभोगकी कामनावालेकूं कर्मका विधायक जो शास्त्र है । सो श्येनआदिक शास्त्रनकी न्यांई अनर्थरूप फलवालाहीं होवैगा ? यह आशंका-करिके कहैहैं ॥ इहां "ताका" ऐसैं प्रकृत मंथनामक कर्मकी उक्ति है औ कालआदिकका । यह आदिशब्द द्रव्यआदिकके

षधस्य मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्ये-
ष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हु-
त्वा मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ४ ॥

दधि मधुके संबंधि मंथकूं उपमंथन करिके "ज्येष्ठकेअर्थ श्रेष्ठके अर्थ स्वाहा" ऐसैं घृतका होमकरिके मंथविषै नीचें डाले॥ ४॥

(लक्ष्मी) जुकती है। श्रीमानकूंहीं अर्थतें प्राप्त धन होवैहै। तिसतें कर्मका अनुष्ठान होवैहै। औ तिसतें देवयान वा पितृयाण मार्गकूं पावताहै। ऐसें इस प्रयोजनकूं अंगीकार करिके महत्पनेकूं इच्छनेवालेका यह कर्म है। विषय-

---

संग्रहरूपअर्थवाला है औ दैक्ष कहिये दीक्षाविषै होनेवाला मौंजी (मुंजनामक तृणरचित कमरपट्टा) अरु अभ्यंजन (सुगंधितैलादिककरि स्नान) आदिक। सर्वकूंहीं यह नहीं अनुष्ठानकरता है। जातें प्रकृति (अग्निहोत्र)के धर्म विकृति (दर्शआदिक) विषै वर्त्ततेहैं। काहेतें "प्रकृतिकी न्यांई विकृति कर्त्तव्य है" इस न्यायतें औ यह मंथकर्म किसीकावी विकृति नहीं है। यातें यथोक्त धर्मवान्ताहीं इहां विवक्षित है। यह अर्थ है ॥

नके उपभोगकी कामनावालेका नहीं ॥ ता (मंथ नामक कर्म)का यह कालादिकका विधि कहियेहैः-अमावस्याविषै दीक्षाकूं करिके दीक्षितकीन्यांई भूमिशयनआदिक नियमकूं करिके। अर्थ यह जोः-तपोरूप सत्यवचन अरु ब्रह्मचर्य। इत्यादि धर्मवान् होयके। फेर दीक्षाविषै होनेवालेहीं सर्व कर्मके समूहकूं नहीं ग्रहण करताहै। काहेतें मंथनामक कर्मकूं ताका अविकार होनेतें ॥ औ "उपसद्व्रती होयके" ऐसी अन्य (बृहदारण्यक) श्रुतितें पयके भ-

---

८९ दीक्षाकरिके। इसकरि विवक्षित अन्यधर्मकूं ॥ कहैहैं इहां उपसद् नाम इष्टियां प्रवर्ग्यनामक कर्मके दिनोंविषै प्रसिद्ध हैं। तिनोंविषै व्रत जो पयोमात्रका भक्षण तिसकरि युक्त हुया मंथकूं संपादन करिके होमकूं करता है। ऐसैं वाजसनेयकमैं समानप्रकरणविषै श्रवणतैं। यह अर्थ है औ पिष्ठकूं करिके तिस आम (अपक्व)कूंहीं दधिमधुके संबंधी पात्रविषै डालिके। ऐसैं संबंध है औ इधर पात्रकी उदंबरवृक्षके काष्ठकरि रचिताविषै नियम है पात्रके आकारविषै तो विकल्प है ॥

९० ननु नहीं सुन्या पात्र इहां कैसैं कल्पना करिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां औदुंबर ऐसैं कंसके आकारवाले वा च-

क्षणरूप शुद्धिके कारण तपकूं ग्रहण करताहै ॥ पौर्णमासीविषै रात्रिमैं कर्मकूं आरंभ करैहै ॥ सर्व औषधके कहिये ग्रामकी अरु अरण्यकी औषधिनके यथाशक्ति अल्पकूं अल्पकूं ग्रहण करिके ताकूं त्वचारहित करिके मंथकूं कहिये कच्चेहीं पिष्ट (धान्यचूर्ण)कूं दधि अरु मधुके संबंधी औदुंबर (उदंबरके काष्ठसैं रचित) ऐसैं कंसके आकारवाले वा चमसके आकारवाले पात्रविषै अन्यश्रुतितैं डालिके उपमंथन करिके आगे स्थापन करिके "ज्येष्ठकेअर्थ श्रेष्ठके-अर्थ स्वाहा" इस मंत्रकरि आवसथ्य अग्नि-विषै आहुति डालनेके स्थान (प्रदेश)मैं घृ-

---

मसके आकारवाले पात्रविषै। याका "कंसविषै वा चमस-विषै" ऐसैं वाजसनेयविषै श्रवणतैं सर्व शाखाके प्रत्ययके न्यायकरि अपेक्षितपात्र इहां ग्रहण किया है। यह अर्थ है ॥ औ आवसथ (गृह)का संबंधी जो लौकिक अग्नि सो आव-सथ्य विवक्षित है। जिसविषै औपासन नामक कर्म करिये है ॥ औ आज्यका होम करिके। ऐसैं संबंध है औ आवा-पस्थान जो है सो आहुतिके डालनेका प्रदेश गृह्यसूत्रविषै कहा है ॥

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत्सम्पदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हु-

---

अर्थः—"वसिष्ठके अर्थ स्वाहा" ऐसैं अग्निविषै घृतका होम करिके मंथविषै नींचे डाले ॥ "प्रतिष्ठाके अर्थ स्वाहा" ऐसैं अग्निविषै घृतका होम करिके मंथविषै नींचे डाले ॥ "संपत्के अर्थ स्वाहा" ऐसैं अग्नि-

---

तका होमकरिके [पात्रमैं धरे] मंथ [नामक द्रव्य]विषै स्रुवमैं जो संलग्न है ताकूं संपातकूं करै कहिये संस्रव (घृतके स्राव)कूं नींचे डाले ॥ ४ ॥

टीकाः—[९१]अंन्य समान है ॥ [९२]वसिष्ठकेअर्थ ।

---

९१ "वसिष्ठकेअर्थ स्वाहा" इत्यादिवाक्य पूर्ववाक्यकरि तुल्यअर्थवाला है ॥

९२ तुल्यताकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां "स्वाहा" इसमंत्रकू

त्वा मन्थे सम्पातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ५॥

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय

विषै घृतका होम करिके मंथविषै नींचे डाले ॥ ॥ "आयतनकेअर्थ स्वाहा" ऐसें अग्निविषै घृतका होम करिके मंथविषै नींचे डाले ॥ ५ ॥

अर्थः—अनंतर अग्नितैं किंचित् लेके

प्रतिष्ठाकेअर्थ । संपत्केअर्थ । आयतनकेअर्थ । स्वाहा । ऐसैं प्रत्येककेताईं मंत्रकूं उच्चारकरिके होमकरिके । तैसैंहीं संपातकूं करै ॥ ५ ॥

टीकाः—अनंतर अग्नितैं किंचित् दूरी जायके अंजलिविषै मंथ [नामक द्रव्य]कूं धा-

---

उच्चारणकरिके होमकरिके । ऐसैं संबंध है औ तैसैंहीं । याका प्रथम होमके अनंतर । यह अर्थ है औ आहुतिके अनंतर । यह अथ शब्दका अर्थ है ॥

जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाऽधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं ग-

---

अंजलिविषै मंथकूं धारणकरिके जपताहै:— "अम नाम हैं। अमकरि सहित जातैं तेरा सर्व यह है। सोई (प्राणभूत मंथ) ज्येष्ठ श्रेष्ठ राजा अधिपति है। सो मेरेकूं ज्येष्ठ-ताकूं श्रेष्ठताकूं राज्यकूं आधिपत्यकूं प्राप्त

रण करिके इसमंत्रकूं जपता है:—अम नाम हैं। जातैं अमकरि सहित तेरा प्राणका अम ऐसा नाम है। [९३]जातैं अन्नकरि प्राण देहविषै प्राणनरूप क्रियाकूं करैहै। यातैं मंथरूप द्रव्य प्राणका अन्न होनेतैं प्राणभावकरि स्तुत करिये है "अम नाम हैं" ऐसैं॥ ॥ [९४]कौंहैतैं जातैं अम-

---

९३ ननु प्राणका यह नाम होहू। परंतु मंथकी मंत्रार्थता कैसैं है? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

९४ प्रतिज्ञा किये अर्थविषै प्रश्नपूर्वक हेतुकूं कहैहैं॥ इहां यातैं तूं अम नाम हैं। ऐसैं पूर्वले पदसैं संबंध है॥

मयत्वहमेवेद९ सर्वमसानीति ॥ ६ ॥
अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति

करहु । मैंहीं यह सर्व होऊं" ऐसें ॥ ६ ॥
अर्थः–अनंतर इस ऋचाकरि पादसैं

सहित हैं यातैं अम नाम हैं ॥ जातैं तुज प्राणभूतका सर्व (समस्त) यह जगत् है यातैं ॥ जातैं सो प्राणभूत मंथ । ज्येष्ठ औ श्रेष्ठ है औ याहीतैं राजा (दीप्तिमान्) औ अधिपति कहिये अधिष्ठान होयके सर्वका पालक है । सो मंथरूप प्राण । मेरे प्रति बी आयके ज्येष्ठपनै आदिक गुणनके समूहकूं प्राप्त करहु । मैंहीं प्राणकीन्यांई यह सर्व जगत् होऊं इति ॥ इहां इतिशब्द मंत्रकी परिसमाप्तिअर्थ है ॥ ६ ॥

टीकाः–अनंतर इस वक्ष्यमाण ऋचाकरि

---

९५ हेतुकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां अनंतर जपकर्मतैं । यह शेष है ॥

तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति। वयं देवस्य भोजनमित्याचामति। श्रेष्ठꣳसर्व-

---

आचमनकूं करताहै:—सविताके तिस (भोजन)कूं मांगते हैं। ऐसें [कहिके] आचमनकूं करताहै॥ देवके भोजनकूं [मांगते हैं] ऐसें आचमनकूं करताहै॥ श्रेष्ठ सर्वधा-

---

पादसैं आचमन (भक्षण)कूं करता है कहिये मंत्रके[९६] एक एक पादकरि मंथके एक ग्रासकूं भक्षण करताहै॥ सर्वके प्रसविता (उत्पादक)सूर्यके तिस मंथरूप भोजनकूं॥ प्राणकूं औ आदित्यकूं एककी न्यांई करिके सो [सूर्यका भोजन कहियेहै]॥ [९७]आदित्यके मंथरूप

---

९६ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं॥ इहां मंत्रके एक एक पादकरि मंथके एक एक ग्रासकूं भक्षणकरैहै। ऐसें योजना है औ भोजन मंथरूप। ऐसें संबंध है॥

९७ ननु सो भोजन सूर्यका कैसैं होवैगा। जातैं प्राणका मंथद्रव्य अन्न है ऐसें कहा है? तहां कहैहैं॥ इहां कहियेहै सूर्यका भोजन। यह शेष है॥

९८ प्राण अरु आदित्यकी एकताकेहुये फलित वाक्या-

धातममित्याचामति। तुरं भगस्य धीमहीति सर्वं पिबति ॥ ७ ॥

तम [भोजन]कूं ऐसैं आचमनकूं करताहै॥ भग(सूर्यदेव)के[स्वरूप]कूं शीघ्र ध्यावतेहैं॥ ऐसैं कंसकूं वा चमसकूं धोयके सर्व (मंथके लेप)कूं पीवताहै ॥ ७ ॥

तिसभोजनकूं हम प्रार्थना करते हैं ॥ सो भोजन कैसा है किः—उँपभुक्तकिये जिस सूर्यके संबंधी अन्नरूप भोजनकरि हम सविताके स्वरूपकूं प्राप्त होनेवाले होवैं। यह अभिप्राय है। सविता (सूर्यरूप) देवके [तिस भोजनकूं हम मांगते हैं] ऐसैं पूर्वले पदसैं संबंध है ॥ ॥ फिर कैसा सो भोजन है किः—श्रेष्ठ है कहिये

र्थकूं कहैहैं ॥ इहां मंथरूप तिस भोजनकूं । ऐसैं पूर्वके पदसैं संबंध है ॥

९९ प्रार्थनाकेविषय भोजनकूंहीं विशेषण देते हैं ॥ इहां तिसींहीं भोजनका अन्य विशेषण "श्रेष्ठ" इत्यादि है ॥

सर्व अन्नोंतैं अतिशय प्रशंसा करनेकूं योग्य है अरु सर्वधातम है कहिये सर्व जगत्का अत्यंतधारयिता (धारणकरनेवाला) है[100] वाँ अतिशयकरि अत्यंतविधाता (जनक) है। सर्वथा (उभयप्रकारसैं) यह भोजनका विशेषण है॥ फिर तुर (त्वर) कहिये तूर्ण। अर्थ यह जोः- शीघ्र। भग जो सूर्यदेव ताके [स्वरूपकूं] हम ध्यावते हैं (चिंतन करते हैं)। कैसे हुये किः- [101]श्रेष्ठभोजनकरि संस्कारयुक्त शुद्धचित्तवाले हुये। यह अभिप्राय है॥ [102]अथवा भग जो लक्ष्मी ताके कारण महत्पनैकूं प्राप्त करनेकूं कर्मकूं करते हुये हम तिस उक्त सूर्यके रूपकूं ध्यावते हैं (चितवते हैं)॥ ७॥

---

१०० अन्नकी स्थितिकी कारणताकूं कहिके। अब जनकतारूप अन्यपक्षकूं कहैहैं॥ इहां जगत्विषै व्याप्तिमैं औ फलदानमैं ध्याताकी शीघ्रता है॥

१०१ ननु भोजनके कथ्यमान हुये क्यूं ध्यान कहिये है? तहां कहैहैं॥

१०२ शुद्धबुद्धिपनैरूप ध्यानके कारणकूं कहिके प्रकृतकर्मकीन्यांई वांछित महत्पनैविषै हेतु होनेतैंबी ध्यान अ-

निर्णिज्य कꣳसं चमसं वा । पश्चा-

अर्थः—अग्निके पीछे चर्मविषै वा स्थं-
डिलविषै वाक्कूं नियमन करनेवाला अरु

टीकाः—ऐसें कहिके सर्व मंथके लेपकूं कंस
(कंसपात्रके आकारवाले) वा चमस (च-
मसके आकारवाले) औदुंबर (उदंबरवृक्षके
काष्ठतें रचित) पात्रकूं प्रक्षालन करिके (धो-
यके) पीवताहै। [१०३] पान करिके आचमन करिके
अग्निके पश्चात् कहिये पश्चिमभागविषै पूर्व-
दिशाके तर्फ शिरवाला हुया चर्मविषै कहिये

नुष्ठान करनेकूं योग्य है। ऐसें कहैहैं॥ इहां उक्त सावित्र
(सूर्यसंबंधी)रूपकूं [हम ध्यावतेहैं] ऐसें अन्वय है ॥ औ
नियमकरि औदुंबर पात्र है औ ताके विकल्पकिये आकार-
विषै विशेष (भेद) है औ पात्रकूं प्रक्षालनकरिके पीवता है।
ऐसें संबंध है॥

१०३ मंथके लेपवाले पात्रकूं प्रक्षालनकरिके पानकरिके
आचमनपूर्वक अग्निके पश्चिमभागविषै कृष्ण अजिनकरि व्य-
वहित (अंतरायवाली) वा केवल भूमिविषै पूर्व दिशाके त-
रफ मस्तकवाला होयके शयन करै। ऐसें कहैहैं॥

दग्नेः संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा।
वाचं यमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियं पश्येत्
समृद्धं कर्मेति विद्यात् ॥ ८ ॥

संयमितचित्तवाला हुया शयनकूं करैहै ॥
सो जब स्त्रीकूं देखे [तब] कर्म समृद्धभया ऐसैं जानै ॥ ८ ॥

कृष्णमृगके अजिनरूप बिछानेकरि युक्त भूमिविषै वा स्थंडिलविषै कहिये केवलभूमिविषै शयनकूं करताहै। क्या करताहुया किः—वाँक्[104]कूं नियममैं राखता हुया। अर्थ यह जोः—वाग्यत (मौनी) हुया औ अप्रसाह हुया कहिये स्त्रीआदिक अनिष्ट स्वप्नके दर्शनकरि जैसैं नहीं अभिभवकूं पावैहै तैसा हुया। अर्थ यह जोः—संयत (नियमित) चित्तवाला हुयासोवताहै ॥ सो[105] एवंभूत (इस प्रकारका) हुया

---

१०४ शयन करनेवालेके कर्त्तव्यकूं दिखावैहैं ॥
१०५ ताकूं स्वप्नविषै किसी प्रकारसैं बी उत्तम स्त्रीके द-

तदेष श्लोको-यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳ स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने। तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥ ९ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अर्थः-तहां यह श्लोक हैः-जब काम्यकर्मोंविषै स्वप्नोंमैं स्त्रीकूं देखै तहां (तब) समृद्धिकूं जानै। तिस स्वप्नदर्शनके हुये। तिस स्वप्नदर्शनके हुये ॥ ९ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपा०द्वितीयःखंडः॥२॥

जब स्वप्नविषै स्त्रीकूं देखे तब जानेकिः-मेरा यह कर्म समृद्ध(समृद्धियुक्त)भया ऐसैं ॥८॥

टीकाः-तिस इस अर्थविषै यह श्लोक (मंत्र) बी होवैहैः-जब काम्य (कामरूप अर्थवाले) कर्मोंविषै स्वप्नोंमैं कहिये स्वप्नके द-

---

र्शनके हुये शुभका आगम (प्राप्ति) सूचित होवैहै। ऐसैं कहैहैं॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगतद्वितीयखंडस्य टिप्पणम् ॥ २ ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः॥३॥

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समि-

अथ श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः॥३॥

अर्थः—श्वेतकेतु आरुणेय पंचालोंकि स-

र्शनोंमैं वा स्वप्नके कालनमैं स्त्रीकूं देखताहै। तहां समृद्धिकूं जानै। अर्थ यह जोः—कर्मोंके फलकी सिद्धि होवैगी ऐसैं जानै। तिस स्त्री-आदिक श्रेष्ठ स्वप्नके दर्शनके हुये। यह अभिप्राय है॥ इहां दो वार उक्ति जो है। सो कर्मकी समाप्तिरूप अर्थवाली है॥ ९॥

इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य द्वितीयः खंडः॥२॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपा०तृतीयः खंडः॥ ३॥

पंचाग्निविद्यार्थ श्वेतकेतु प्रवाहणसंवाद (पंचप्रश्न) ७

टीकाः—ब्रह्मासैं[१०६] आदिलेके स्तंब (तृणगुच्छ)

अथ श्री०पंचमप्रपाठगततृतीयखंडस्य टिप्पणम् ३

१०६ प्राणविद्या औ ताका अंगरूप कर्म ये दो कहे। अब अग्निविद्याकूं कहनेकूं इच्छतेहुये आचार्य प्रथम आख्यायिकाके तात्पर्यकूं कहैहैं॥

तिमेयाय। तँह प्रवाहणो जैवलिरुवाच

भाकेप्रति आवताभया ॥ ताकूं प्रवाहण जैवलि कहताभयाः—हे कुमार! तुजकूं पिता अनुशासन करताभया [क्या] ? ऐसैं ॥ ॥

पर्यंत संसारकी गतियां कहनेकूं योग्य हैं। मुमुक्षुनकूं वैराग्यके हेतुतैं। यातैं आख्यायिका आरंभ करियेहैः—नामतैं श्वेतकेतु ऐसा [इहां "ह" ऐसा निपात परंपराके अर्थ है] अरुणका पुत्र जो आरुणि (उद्दालक) ताका पुत्र आरुणेय था। सो पंचाल नामक देशनकी सभाकेप्रति आवताभया ॥ तिस आवनेवालेकेप्रति नामतैं प्रवाहण ऐसा जीवलका पुत्र जैवलि राजा कहताभयाः—हे कुमार! तुजकूं पिता अनुशासन करताभयाहै [क्या]?

१०७ औ तिन संसाररूप गतिनकी कहनेकी योग्यताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां राजा हे कुमार! ऐसैं संबोधन करता हुया श्वेतकेतुके विद्याभिमानकूं दूरी करनेकूं इच्छताहै ॥

कुमारानु त्वाऽशिषत्पितेत्यनु हि भगव! इति ॥ १ ॥

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति?

हे भगवन्! अनुशिष्ट हूं। ऐसैं [श्वेतकेतु कहताभया] ॥ १ ॥

अर्थः—[जैवलिः—] इसतैं ऊर्ध्व प्रजा-जिसके प्रति जावैहैं? [सो क्या] जानताहैं

अर्थ यह जोः—तूं पिताकरि अनुशिष्ट (अनुशासन प्राप्तभया) हैं क्या? ऐसैं उक्त हुया सो श्वेतकेतु कहताभयाः—हे भगवन्! अनुशिष्ट (अनुशासनकूं प्राप्तभया) हूं ऐसैं सूचन करताहुया कहताभया ॥ १ ॥

टीकाः—ता (श्वेतकेतु)कूं जैवलि कहताभया जैवलिरुवाचः—जब तूं अनुशिष्ट हैं तब इस लोकतैं ऊर्ध्व प्रजा जिसकेप्रति गमन करैहैं ताकूं क्या जानताहैं? यह अर्थ है ॥ ॥

न भगव! इति॥वेत्थ यथा पुनरावर्त्तन्त ३ इति? न भगव!इति॥वेत्थ पथोर्देवया-

---

ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ [श्वेतकेतुः—] हे भगवन्! नहीं। ऐसें [कहताभया] ॥ ॥ [जैवलिः—] जैसें फेर आवर्त्तन करैहैं [सो क्या] जानताहैं? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ [श्वेतकेतुः—] हे भगवन्! नहीं। ऐसें

श्वेतकेतुरुवाचः—हे भगवन्! जिसकूं आप पूंछतेहो जिसकूं मैं नहीं जानताहूं। ऐसें इतर (श्वेतकेतु) कहताभया ॥ ॥ जैवलिरुवाचः— जब ऐसें है तब जैसें (जिसैंप्रकारसैं प्रजा) फेर आवर्त्तन करैहैं सो क्या जानताहैं? ऐसें ॥ ॥ श्वेतकेतुरुवाचः—हे भगवन्!

---

१०८ जैसें। इसके अर्थकूं कहैहैं॥ इहां तुल्यमार्गवाले विद्यमान हुये (साथि जानेवाले) विद्वान् अरु अविद्वान्के दो मार्ग हैं। तिनके मध्य देवयानकी। इत्यादि वाक्ययोजना करनेकूं योग्य है॥

नस्य पितृयाणस्य च व्यावर्त्तना ३ इति? न भगव! इति ॥ २ ॥

[कहताभया] ॥ ॥ [जैवलिः–]दो मार्गनके मध्य देवयानकी अरु पितृयाणकी व्यावर्त्तना (परस्परके वियोगकास्थान) है [ताकूं क्या] जानता हैं? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ [श्वेतकेतुः–] हे भगवन्! नहीं। ऐसें [कहताभया] ॥ २ ॥

नहीं [जानताहूं] ऐसें प्रत्युत्तर देताभया ॥ ॥ जैवलिरुवाचः–साथि प्रयाणवाले विद्वान् अविद्वानके दो मार्गनके मध्य देवयानकी औ पितृयाणकी व्यावर्त्तना कहिये व्यावर्त्तन है। अर्थ यह जोः–साथि गमन करनेवालोंका[१०९] परे

---

१०९ उक्त वाक्यार्थकूं संक्षेपसैं कहेहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः–दो मार्गोंकूं आश्रय करिके (भिन्न भिन्न मार्गके तांई जानिके निश्चयकरि) साथि प्रयाणवाले विद्वानोंका (उपासकोंका) औ कर्मिओंका जहां परस्पर वियोग होवैहै सो क्या जानताहैं ॥

वेत्थ यथाऽसौ लोको न सम्पूर्यत

अर्थः-[जैवलिः-]जैसें यह (पितृसंबंधी) लोक [म्रियमाणोंकरि] नहीं संपूर्ण होवैहै [सो क्या] जानता हैं? ऐसें [पूं-

---

स्परके वियोगका स्थान है। ताकूं क्या जानता हैं?॥ ॥ श्वेतकेतु रुवाचः-हे भगवन्! नहीं [जानताहूं] ऐसें ॥ २ ॥

टीकाः-जैवलिरुवाचः-जैसें यह पितृसंबंधी लोक है। जाकूं पायके फेर आवर्त्तन करते हैं

---

११० पितृलोकसंबंधी लोककूंहीं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां आहुतिकरि सिद्ध। याका व्याख्यान आहुतिरूप साधनवाले। यह है औ अपूर्व (अदृष्ट)रूप जलोंके मध्य अन्य आकाशादि भूतनके मिलावनेअर्थ चकार (औ शब्द) है ॥ अथवा पय अरु घृत आदिरूपसैं आहुतिकूं साधते हैं औ फेर आहुतितैं अपूर्वरूपकरि सिद्ध। यह अर्थ है औ क्रमसैं याका श्रद्धा सोम वृष्टि अन्न अरु रेतके हवनरूप द्वारकरि। यह अर्थ है औ षष्ठ आहुतिभूत। याका अंत्य इष्टिके विधानकरि शरीरसंबंधी आहुतिद्वारा सूक्ष्मताकूं प्राप्त। इन जलोंका। यह अर्थ है ॥

३ इति? न भगव! इति ॥ वेत्थ यथा

छताभया] ॥ ॥ [श्वेतकेतुः–] हे भगवन्! नहीं। ऐसैं [कहताभया] ॥ ॥ [जैवलिः–] जैसैं पंचमी आहुतिके हुतहुये आप (जल) पुरुष ऐसे वचन (नाम)

(पुनर्जन्मकूं पावते हैं) सो लोक बहुत मरनेवालोंकरि बी जिस कारणसैं। संपूर्ण होता नहीं। सो क्या जानता हैं? ऐसैं [उक्त हुया] ॥ ॥ श्वेतकेतुरुवाचः–हे भगवन्! नहीं [जानताहूं] ऐसैं प्रत्युत्तर देताभया ॥ ॥ जैवलिरुवाचः–जैसैं (जिस क्रमसैं) पंचमी कहिये पंचसंख्यावाली आहुतिके हुत (होमकिये) हुये आहुतिकरि सिद्ध कहिये आहुतिरूप साधनवाले औ (अन्यभूत अरु) जल जे हैं वे पुरुषवचन कहिये पुरुष ऐसा वचन (अभिधानका पर्याय नाम) है हूयमान (होमकूं प्राप्तकरी) अरु क्रमकरि षष्ठ आहुतिभूत जिन-

पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भव-
न्तीति ? नैव भगव ! इति ॥ ३ ॥

अथानु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो

वालीयां होवैहैं [सो क्या] जानता हैं? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ [श्वेतकेतुः—] हे भगवन्! नहीं [जानताहूं] ऐसैं [कहताभया] ॥ ३ ॥

अर्थः—अनंतर [जैवलिः—] "अनुशि-

का। वे जल (अपूर्व) पुरुषवचन कहिये पुरुष शब्दके वाच्य होवैहैं। अर्थ यह जोः—पुरुषनामकूं पावैहैं। सो क्या जानता है? ॥ ॥ ऐसैं उक्तहुया कहैहै। श्वेतकेतुरुवाचः—हे भगवन्! नहीं [जानताहूं]। अर्थ यह जोः—मैं इनविषै कछुबी नहीं जानताहूं। ऐसैं कहताभया ॥ ३ ॥

टीकाः—अनंतर राजा कहताभया। जैवलि-

हीमानि न विद्यात् कथꣳ सोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति ॥ स हाऽऽयस्तः पितुरर्द्धमेयाय । तꣳ होवाचाऽननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनु त्वाऽशिषमिति ४

ष्ट हूं" क्यूं कहताभया हैं । जातें जो इनकूं नहीं जानै सो "अनुशिष्ट हूं" कैसें कहैगा । ऐसें [कहताभया] ॥ ॥ सो (श्वेतकेतु) खेदयुक्त हुया पिताके स्थानके प्रति आवताभया । ताकूं कहताभयाः—अनुशासन नकरिकेहीं भगवान् मुजकूं "तेरेकूं अनुशासन करताभयाहूं" ऐसें कहतेभये ॥४॥

रुवाचः—इस प्रकारसैं अज्ञानी हुया तूं क्या (किस कारणतें) "मैं [111]अनुशिष्टहूं" ऐसें क-

---

१११ ननु तुज (राजा)करि पूंछे अर्थके समूहतें भिन्न विषयवाला अनुशासन (शिक्षण) मेरेकूं है । यातें "मैं अनुशिष्ट हूं" ऐसें मैंनें कहा? यह आशंकाकरिके राजा कहैहै॥

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षी-

अर्थः–राजन्यबंधु मेरेप्रति पांच प्रश्नोंकूं

हताभयाहैं ॥ जोई इन मेरेकरि पूंछे अर्थके समूहोंकूं नहीं जानै सो विद्वानोंविषै "मैं अनुशिष्टहूं" यह कैसैं कहै॥ ॥इस रीतिसैं सो श्वेतकेतु राजाकरि आयास (खेद)कूं प्राप्त हुया पिताके स्थानकेतांई आवताभया औ ता पिताकूं कहताभया:–अनुशासनकूं न-करिकेहीं मुजकूं भगवान् (पूजावान् आप) समावर्त्तन कालविषै "तुजकूं मैं अनुशासन करताभयाहूं" ऐसैं [क्यों] कहतेभये ॥ ४ ॥

टीकाः–श्वेतकेतुरुवाचः–हे तात! [112]जातैं

११२ अनुशासन न करिके मैं पिता "तुजकूं अनुशासन करताभयाहूं" इसप्रकार कैसैं कहताभयाहूं । [अर्थात् नहीं कहताभया हूं]? यह आशंका करिके श्वेतकेतु कहैहै ॥ "क-छुबी नहीं" ऐसैं कहाहीं जो नञ् पद सो "शक्त न भया" ऐसैं संबंधकूं दिखावनेकूं फेर ग्रहण किया है। यातैं मेरेप्रति तुह्मारी मिथ्यावादिता सिद्धभई । यह शेष है ॥

त्तेषा नैकञ्च नाशकं विवक्तुमिति ॥ स होवाच-यथा मा त्वं तदैतानवदो यथा-

---

पूंछताभया। तिनके मध्य एककूं बी कहनेकूं शक्तभया नहीं हूं ऐसें ॥ ॥ सो (पिता) कहताभयाः—जैसें मेरेकूं तूं तब इन (प्रश्नों)कूं कहताभया हैं। जैसेंः—"मैं इनके

पंचसंख्यावाले प्रश्नोंकूं राजन्य हैं बंधु इसके ऐसा जो राजन्यबंधु। अर्थ यह जोः—आप दुराचारी। सो मुजकूं पूंछताभया। तिन प्रश्नोंके मध्य एककूं बी मैं कहनेकूं। अर्थ यह जोः—विशेषकरि अर्थतैं निर्णय करनेकूं शक्तभया नहीं हूं ऐसें ॥ ॥ सो[११३] पिता कहताभया ॥ उद्दालक उवाचः—हे वत्स! जैसें। तूं तब कहिये आगतमात्रहीं। इन प्रश्नोंकूं "तिनके मध्य एककूं बी कहनेकूं शक्त भया

---

११३ अपनैविषै मिथ्यावादीपनैकी शंकाकूं पिता परिहार करैहैं ॥

हमेषा नैकञ्च न वेद । यद्यहमिमानवे-
दिष्यं कथं तेनावक्ष्यमिति ॥ ५ ॥

मध्य एककूं बी नहीं जानताहूं । [तैसैं मु-
जकूं जान] जब मैं इन (प्रश्नों)कूं जान-
ताभयाहूं [तब] कैसैं तेरे अर्थ नहीं कह-
ताभयाहूं । ऐसैं कहिके ॥ ५ ॥

नहीं" ऐसैं मेरेप्रति कहताभया हैं । तैसैं
मुजकूं जान । अर्थ यह जोः—तेरे अज्ञानरूप
लिंगकरि मेरे तिस विषयवाले अज्ञानकूं जान॥
११४ कैसैं कि ?—जैसैंः—मैं इन प्रश्नोंके मध्य ए-
ककूंबी नहीं जानताहूं । अर्थ ११५ यह जोः—हे
अंग ! जैसैं तूं हीं इन प्रश्नोंकूं नहीं जानताहैं ।
तैसैंः—मैं बी इनकूं नहीं जानताहूं । यातैं मेरे-
विषै तेरेकरि अन्यथाभाव करनेकूं योग्य नहीं

---

११४ "जैसैं मेरेकूं तूं" इत्यादि वाक्यकूं पूरण करिके व्याख्यान करिके अनंतरके वाक्यकूं आकांक्षापूर्वक उठावतेहैं॥
११५ ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां अज्ञानका अविशेष

स ह गौतमो राज्ञोऽर्द्धमेयाय। तस्मै ह प्राप्तायार्हाञ्चकार। स ह प्रातः सभाग

अर्थः–सो गौतम राजाके स्थानकूं जाताभया। सो प्रातःकालमैं [राजाके] समागत हुये सभाग (पूज्यमान) गमन

है॥ ॥ ¹¹⁶काहेतैं यह ऐसैं है [यह कहो] जातैं मैं नहीं जानताहूं? [तहां पिता कहैहैः–] जब मैं इन प्रश्नोंकूं जानता होऊं तब तुज प्रिय पु-

---

(तुल्यपना) अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है औ अन्यथाभाव। याका मुजकरि विषयके जाने हुयेबी तेरेकूं अनुक्ति। यह अर्थ है॥

११६ तुह्मारा अज्ञान किस हेतुतैं मुजकरि जाननेकूं योग्य है? इस पुत्रकी आशंकाकूं उद्भवकरिके अनंतरके वाक्यकरि पिता उत्तरकूं कहैहैं॥ इहां यातैं तुज पात्रभूतकूं अनुपदेशतैं मेरा अज्ञान जाननेकूं योग्य है। यह शेष है औ अर्हणा। याका योग्यपूजा। यह अर्थ है औ इधर सभागपद जो है सो सप्तमी विभक्तिरूप अंतवाला हुया राजाकूं विषय करनेवाला है अरु प्रथमा विभक्तिरूप अंतवाला हुया गौतमकूं विषय करनेवाला है। यह भेद है॥

उदेयाय ॥ तꣳ होवाच-मानुषस्य भगवन्! गौतम! वित्तस्य वरं वृणीथा इति॥

करताभया ॥ ॥(राजा) तिस प्राप्तकेअर्थ पूजाकूं करताभया ॥ ताकूं (राजा) कहताभयाः—हे भगवन् गौतम ! मानुषवित्तके वरकूं मांग ऐसैं ॥ ॥ सो (गौतम) कह-

---

त्रकेअर्थ समावर्त्तनकालविषै पूर्व कैसैं नहीं कहताभयाहूं ॥ ॥ऐसैं कहिके सो गोत्रतैं गौतम ऐसा उद्दालक मुनि । जैवलि राजाके स्थानकेप्रति जाताभया ॥ तिस प्राप्त गौतमकेअर्थ राजा योग्य पूजाकूं करताभया औ सो गौतम कृतातिथ्य (भोजनकूं प्राप्त) हुया निवासकरिके अन्यदिनविषै प्रातःकालमैं राजाके सभाकेप्रति प्राप्त हुये जाताभया ॥ वा भजन जो भाग कहिये पूजा (सेवा) तिस भागकरि सहित वर्त्तमान ऐसा जो अन्योंकरि पूज्यमान आप गौतम सो सभाग है । सो राजा-

स होवाच-तवैव राजन्! मानुषं वित्तं। यामेव कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति ॥ ६ ॥

ताभयाः—हे राजन्! मानुष वित्त तेरेपासहीं रहहू। कुमारके समीपमैं जिसीहीं वाक्कूं कहताभया हैं ताहीकूं मेरेअर्थ कथन कर॥ ॥ ऐसैं [उक्त हुया] सो (राजा) दुःखी होताभया ॥ ६ ॥

केप्रति जाताभया ॥ तिसँ[११७] गौतमकेप्रति राजा कहताभया ॥ जैवलिरुवाचः—हे भगवन् गौतम! मनुष्यनके संबंधि ग्रामादि वित्तके वरकूं कहिये वरणीय (मंगनेकूं योग्य काम)कूं मांग कहिये प्रार्थना कर॥ ॥ सो गौतम कहताभया ॥ उद्दालक उवाचः—हे राजन्! मानुष (मनुष्यसंबंधि) वित्त (ग्रा-

---

११७ आये गौतमकूं योग क्षेमका अर्थी जानिके राजा प्रसन्न हुया कहताभया। ऐसैं कहैहैं ॥

स ह कृच्छ्री बभूव। तꣳ ह चिरं वसेत्याज्ञापयाञ्चकर। तꣳ होवाच-यथा

अर्थः-ता (गौतम)कूं "चिर वासकर" ऐसें (राजा) आज्ञा करताभया ॥ ता (गौ-

---

मादि धन) तेरे पासहीं स्थित होहू। परंतु मेरो[११८] कुमार जो पुत्र। ताके समीप जिस पंचलक्षणवाली वाणीकूं तूं कहताभया हैं। तिसीहीं वाणीकूं मेरेअर्थ कथन कर ॥ ॥ ऐसें गौतमकरि उक्त हुया सो राजा दुःखी होताभया ॥ [११९]यह तो कैसें होवैगा ऐसें ॥ ५ ॥६॥

टीकाः-[१२०]सो दुःखीभूत हुया नहीं निषेध

---

११८ तब कृतकृत्य भये तुज गौतमका क्यूं आगमन भया है? यह आशंका करिके गौतम कहैहै ॥

११९ कृच्छ्री (दुःखी) भावकूं आकारकरि दिखावैहैं ॥

१२० गौतमका वचन जब राजाके दुःखीभावका कारण है तब ता गौतमकूं प्रत्याख्यान (नहीं कहूंगा ऐसें निषेध) किया चाहिये?-यह आशंकाकरिके राजा कहैहै ॥

मा त्वं गौतमाऽवदो यथेयं न प्राक् त्व-
त्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति । त-

तम)कूं कहताभयाः—हे गौतम! जैसैं यह
तूं मेरेप्रति कहता भया हैं जैसैं यह
विद्या तुजतैं पूर्व ब्राह्मणोंकेप्रति नहीं जा

करनेकूं योग्य ब्राह्मणकूं मानता हुया [121] न्यायकरि
विद्या कहनेकूं योग्य है। ऐसैं मानिके तिस गौ-
तमकेप्रति "चिर (दीर्घकालपर्यंत) वासकर"
ऐसैं आज्ञा करताभया ॥ [122] राजा जो पूर्व वि-
द्याकूं निषेध (नांहीं) करताभया औ जो पीछे
"चिर वासकर" ऐसैं आज्ञा करताभया। तिस

---

१२१ तब "चिर वस" ऐसैं राजा क्यूं कहताभया? यातैं कहैहैं ॥ इहां चिर वस। याका संवत्सरपर्यंत वासकर। यह अर्थ है ॥ औ कहनेकूं योग्य है विद्या। यह शेष है ॥

१२२ ब्राह्मणकेप्रति आज्ञाकूं करनेवाले राजाकूं कैसैं प्रत्यवाय नहीं होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां प्रत्याख्यान (निषेध) आदिककूं विषय करनेवाला हेतु वचन है औ केवल विद्याके वशतैंहीं तेरा श्रेष्ठपना नहीं किंतु जातितैं बी है। यह अपि (बी) शब्दका अर्थ है ॥

स्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशास-
नमभूदिति तस्मै होवाच ॥ ७ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

तीभई। जातैं पूर्व सर्व लोकनविषै क्षत्रि-
यकाहीं प्रशासन होताभया। ऐसैं (कहिके)
तिस (गौतम)केअर्थ [विद्याकूं] कहताभ-
या ॥ ७ ॥

इति श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपा॰तृतीयः खंडः ३

निमित्त हेतु वचनकी उक्तिकरि ब्राह्मणकूं क्ष-
मापन करावै है ॥ ता गौतमकूं राजा कहता-
भया ॥ जैवलिरुवाचः—हे गौतम! सर्व वि-
द्यावान् ब्राह्मण बी हुया तूं जैसैं (जिस प्र-
कारसैं) मेरेप्रति "तिसीहीं विद्यारूप वाणीकूं
मेरेअर्थ कथनकर" ऐसैं अज्ञानतैं कहताभया
हैं। तिसकरि तूं जान। तहां[123] कहनेकूं योग्य

---

१२३ तब तिस वाणीकूं कथन कर? यह आशंका क-
रिके राजा कहैहै ॥ इहां तहां याका विद्याके कथनके प्रस्तु-
तहुये। यह अर्थ है ॥

हैः-जिसप्रकारसैं यह विद्या तुजतैं पूर्व ब्राह्मणोंकेप्रति नहीं गमन करतीभई औ ब्राह्मण इसविद्याकरि नहीं अनुशासनकूं करतेभये। [124]तैसैं यह लोकविषै जातैं प्रसिद्ध है। [125]तातैं पूर्व सर्वलोकनविषै क्षत्रियजातिकाहीं इस विद्याकरि प्रशासन कहिये शिष्यनका प्रशास्तापना होताभया। यातैं [126]क्षत्रियनकी परंपरासैंहीं यह विद्या इतने कालपर्यंत आइ है। तथापि मैं इस विद्याकूं तेरेअर्थ कहूंगा। तेरेअर्थ संप्रदानतैं ऊर्ध्व (पीछे) यह विद्या ब्राह्मणोंके प्रति धावैगी। यातैं मैंनैं जो कहा सो क्षमा करनेकूं योग्य हैं। ऐसैं कहिके राजा तिस गौतमकेअर्थ विद्याकूं कहताभया ॥ ७ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य तृतीयः खंडः ३

---

१२४ "जैसैं" इसवाक्यके अपेक्षितकूं पूरण करैहैं ॥

१२५ प्रसिद्धकूंहीं राजा स्पष्ट करैहै ॥ इहां तातैं। याका ब्राह्मणोंके इस विद्याकरि प्रशास्तापनैके पूर्व अभावतैं। यह अर्थ है ॥

१२६ इतिशब्दकरि ग्रहण किये अर्थकूं राजा कथन क-

अथ पंचमप्रपाठकस्य चतुर्थः खंडः ॥४॥

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्या-

अथ श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपाठ॰चतुर्थः खंडः ॥ ४ ॥

अर्थः—हे गौतम ! वह (स्वर्गरूप) हीं

अथ श्रीभाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठ॰चतुर्थः खंडः॥४॥

स्वर्गलोकरूपाग्निविद्या २

टीकाः—"[१२७]पंचमी आहुतिके हुत हुये आप (जल)" ऐसा यह पंचम प्रश्न प्रथम होनेकरि अपाकरणकरियेहैं । ताके अपाकरणके पीछे इतर प्रश्नोंका अपाकरण (निराकरण) अनुकूल होवै। यातैं [१२८]अग्निहोत्रकी दो आहुतिनके का-

---

रैहै ॥ इहां उक्त प्रत्याख्यान (नांहीं करने)आदिकका कारण अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है ॥

इति श्री॰ पंचमप्रपाठकगततृतीयखंडस्य टिप्पणम् ॥ ३ ॥

अथ श्री॰पंचमप्रपाठकगतचतुर्थखंडस्य टिप्पणम् ४

१२७ ननु यथाप्रश्नहीं कहिये जिस क्रमसैं प्रश्न है तिस क्रमसैंहीं प्रतिवचन (उत्तर) उचित है । परंतु पंचम प्रश्नके प्रति प्रथमपनैंकरि प्रतिउत्तर देनेवाले तुह्मनैं क्रम निराकरण किया । तहां क्या कारण है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अर्थके क्रमकूं अनुसरिके पाठका क्रम कहनेकूं योग्य है॥

१२८ ननु वाजसनेयकविषै अग्निहोत्रके प्रकरणमैं अग्नि-

दित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चि-
श्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फु-
लिङ्गाः ॥ १ ॥

लोक अग्नि है। ताका आदित्यहीं समित्
है। रश्मियां (किरण) धूम है। दिवस
अर्चि है। चंद्रमा अंगार हैं। नक्षत्र
विस्फुलिंग हैं ॥ १ ॥

र्यका आरंभ जो है सो वाजसनेयक (बृहदार-
ण्यक) विषै कहा है। [१२९] तां (कार्यके आरंभ)के प्रति

होत्रकी दो आहुतिनतैं अपूर्वका परिणाम (अदृष्टद्वारा होनेवाला) जगत् है। ऐसैं कहा। सोई इहां बी कहियेगा। ऐसैं जब है तब इस पिष्टपेषण (पीसे हुयेके पीसनेके) न्यायकरि क्या होवैगा? यह आशंका करिके। तिसतैं अर्थके भेदकूं कहनेकूं अग्निहोत्रके प्रकरणविषै स्थित अर्थकूं अनुवाद करैहैं ॥

१२९ उक्तप्रकारकूंहीं दिखावते हुये प्रथम याज्ञवल्क्यके जनककेप्रति षट् प्रश्नोंकूं उठावतेहैं ॥ इहां कार्यका आरंभ तत् (ताके प्रति) शब्दका अर्थ है औ अग्निहोत्रकी आहुति अन्न अरु अपूर्वका परिणाम जगत् अंगीकार करियेहै ॥ तहां अग्निहोत्रविषै सायंकालमैं अरु प्रातःकालमैं हवनकरी दो

षट् प्रश्न हैंः—दो आहुतिनकी उत्क्रांति। गति। प्रतिष्ठा। तृप्ति। इस लोककेप्रति फेरि आवृत्ति अरु लोकेप्रति उत्थायी अरु कहिये (स्वर्ग) लोकके प्रति उत्थायी पुरुष [कैसें होवैहै]ः—ऐसें ॥ औ तिनका[130] अपाकरण। तहां (वाजसनेयकविषै)

आहुतिनकी इस लोकतैं उत्क्रांति (निर्गमन) होवैहै। औ उत्क्रांतभई तिन दो आहुतिनकी परलोककेप्रति गति होवैहै औ गत (गई तिन दो आहुतिन)की तहां प्रतिष्ठा होवैहै औ प्रतिष्ठितभई तिन दो आहुतिनकी अपनैं आश्रयविषै प्राप्तभई तृप्ति होवैहै औ तृप्तिकूं संपादन करिके अवस्थित तिन दोनूंकी फेर इस लोककेप्रति आवृत्ति (आगमन) होवैहै औ आवृतभई तिन दो आहुतिनका आश्रय जो पुरुष सो उस (स्वर्ग) लोककेप्रति उत्थानशील कैसें होवैहै? ऐसें कार्यके आरंभकूं आश्रयकरिके याज्ञवल्क्यके षट् प्रश्न प्रवृत्तभये हैं। यह अर्थ है ॥

१३० तहां हीं वाजसनेयकविषै याज्ञवल्क्यके जनकके प्रतिवचन (उत्तर)कूं दिखावैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अपूर्वरूप हुयी दो आहुतियां उत्क्रमण करनेवाले यजमानकूं परिवेष्टन करिके उत्क्रमणकूं करैहैं औ वे दो आहुतियां धूमादिकरि यजमानके अंतरिक्षकेप्रति प्रवेश करतीहुयी ताके आश्रित होनेतें ता (अंतरिक्ष)केप्रति प्रवेश करैहैं ॥ वे दो आहुतियां फेर अंतरिक्षविषै स्थित यजमानकी अनुकूलताकरि आप अंतरिक्षरूप अधिकरणविषै स्थित हुयी ता (अंतरिक्ष)कूं आहवनीय

हीं कहा है:—"वे प्रसिद्ध ये दो आहुतियां हुतहुयी उत्क्रमण करै हैं। वे अंतरिक्षकेप्रति प्र-

---

अग्निकी न्यांई करैहैं। काहेतैं आहुतिके अधिकरणकूं आहवनीयरूप अग्नि होनेतैं ॥ तहां (अंतरिक्षविषै) वायुकूं समिधकी न्यांई करैहैं। काहेतैं वायुकरि अंतरिक्षकूं प्रदीप्त हुया होनेतैं॥ वे शुक्ल (शुद्ध) आहुतिकी न्यांई मरीचिन (सूर्यके किरणन)कूं हीं धारण करैहैं। मरीचिनकूं अंतरिक्षविषै व्याप्त होनेतैं ॥ औ वे दो आहुतियां अंतरिक्षविषै स्थित हुयी तिस (अंतरिक्ष)विषै स्थित यजमानकूं फलके सन्मुख धारण करैहैं। वे फेर अंतरिक्षतैं उत्क्रमणकूं करतेहुये यजमानके साथि उत्क्रमण करैहैं औ यजमानके स्वर्ग लोककेप्रति प्रवेश करतेहुये साथि प्रवेश करैहैं औ ता (स्वर्गलोक)केप्रति प्रवेश करिके ताहीकूं आहवनीयरूप अग्नि करैहैं। आदित्यकूं समिध करैहैं। इत्यादि अंतरिक्षकी न्यांईहीं कहा है ॥ वा जैसैं दो आहुतियां पूर्व अंतरिक्षके तांई तर्पण करैहैं ऐसैं कहा। तैसैंहीं स्वर्गलोकविषै स्थित यजमानकूं फलदानकरि सुखी करैहैं औ वे आहुतियां प्रारब्धके क्षय हुये तिस स्वर्गलोकतैं यजमानके पृथिवीके प्रति प्रवेश करतेहुये जलरूप हुयी साथिहीं आवर्त्तन (आगमन) करैहैं औ पृथिवीके प्रति प्रवेश करिके व्रीहि आदिकके साथि अपने आश्रयकूं मिलायके रेतके सिंचन करनेवाले पुरुषकेप्रति आश्रयरूप द्वारकरि प्रवेश करैहैं औ पुरुषतैं रेतद्वारा द्वितीय प्रकृति (उपादान)के प्रति प्रवेश करिके गर्भरूप हुये अपने आश्रयकूं कर्म अनुष्ठानके योग्य देहका भागी संपादन करैहैं। तिसतैं यह पुरुष पारलौकिक कर्मकूं

वेश करैहैं। वे अंतरिक्षकूंहीं आहवनीय [नामक अग्नि] करै हैं। वायुकूं समिध [करै हैं]। मरीचिनकूं शुद्ध आहुति [करै हैं]। वे अंतरिक्षके तांई [स्थित हुयी यजमानकूं] तर्पण करै हैं (फलके सन्मुख करै हैं)। वे तिस (अंतरिक्ष)तैं [यजमानके साथि] उत्क्रमणकरै हैं" इत्यादि। ऐसैंहीं पूर्वकीन्यांई स्वर्गलोकके तांई [स्थित यजमानकूं] तर्पण (तृप्त) करैहैं वे तहांतैं आवर्त्तन करै हैं। या (पृथिवी)केतांई प्रवेशकरिके तर्पणकरिके पुरुषकेप्रति प्रवेश करैहैं। तिसतैं स्त्रीके प्रति प्रवेश करिके उस लोकके प्रति उत्थायी पुरुष होवैहै। ऐसैं॥ [१३१]तहां (वाजसनेयक)विषै अग्निहोत्रकी दोआहुतिनके कार्यका आरंभमात्र इस (उक्त) प्रकारवाला हो-

---

अनुष्ठान करिके अंतविषै लोककेप्रति उत्थानशील (जानेवाला) होवैहै। ऐसैं सर्व जनक राजानैं याज्ञवल्क्यके प्रति कहा॥

१३१ तथापि बृहदारण्यकविषै उक्त अरु इहां उक्त पंचाग्निके प्रकरणके भेदकी सिद्धि कैसैं है? यह आशंका करिके। उक्त अर्थकूंहीं संक्षेप करिके कहैहैं॥ इहां वाजसनेयक ब्राह्मण "तहां" इस सप्तमीका अर्थ है॥

वैहै। ऐसैं कहा है॥ [132]ईहां तो अग्निहोत्रके अपूर्वके विपरिणामरूप तिसकार्यके आरंभकूं पांचप्रकारसैं विभागकरिके अग्निभावकरि उत्तरमार्गकी प्राप्तिकेसाधन उपासनकूं विधानकरनेकूं इच्छतीहुयी श्रुति राजाके वचनद्वारा कहैहै:–"हे गौतम! वह (स्वर्गरूप)हीं लोक अग्नि है"इत्यादि॥ [133]ईहां [134]दुग्धआदिक साधनवाली श्रद्धापूर्वक [135]आहवनीयरूप अग्नि समिध धूम अर्चि (ज्वाला) अंगार अरु विस्फलिंगकरि

---

१३२ प्रकृत श्रुतिके अर्थविशेषकूं दिखावैहैं॥ इहां पांच प्रकारसैं। याका स्वर्गलोक पर्जन्य पृथिवी पुरुष अरु स्त्रीरूप प्रकारोंकरि। यह अर्थ है॥

१३३ पंचाग्निके संबंधकूं अवतारदेके प्रथम पर्यायके तात्पर्यकूं कहैहैं॥ इहां यह लोक कहिये भूलोक तिसविषै। यह अर्थ है॥

१३४ दो आहुतिनके जलसैं संबंधिपनैकी सिद्धिअर्थ विशेषण देतेहैं॥ इहां तिन दो आहुतिनके श्रद्धाभावकी सिद्धिअर्थ "श्रद्धापूर्वक ऐसैं कहा॥

१३५ तिन दो आहुतिनका अधिकरण अग्नि है। इत्यादि कल्पनाविषै उपयोगी होनेकरि अन्य विशेषणकूं ग्रहण करैहैं॥

भावित (भावनाकरी) औ [१३६]कर्त्ताआदिक कारकोंकरि भावित अरु अंतरिक्षके क्रमसैं उत्क्रमणकरिके स्वर्गलोकके तांईं प्रवेश करनेवाली सूक्ष्मभूत अरु जलसमवायी होनेतैं जलशब्दकी वाच्य औ श्रद्धारूप हेतुवाली होनेतैं श्रद्धाशब्दकी वाच्य जे सायंकालविषै अरु प्रातःकालविषै अग्निहोत्रकी दो आहुतियां हुत (हवनकरी) होवैहैं तिनका अधिकरण अग्नि औ तिससंबंधी अन्य [१३७]समिधआदिक है। ऐसैं कहियेहै औ जो यह दो आहुतिनके अग्निआदिककी भावना है सोबी तैसैंहीं निर्देश करियेहैः—

[१३८]हे गौतम! वह (स्वर्गरूप) हीं लोक अग्नि

---

१३६ तिन दो आहुतिनकी स्वतंत्रताकूं परिहार करैहैं॥ इहां अधिकरण शब्द भावप्रधान होनेतैं धर्मी (आश्रय) पर है औ स्वर्गलोक नामवाला जो अग्नि है सो काल्पनिक (कल्पनाकरि किया) है औ तिस संबंधी। इहां तत् (तिस) शब्द अग्निकूं विषय करनेवाला है॥

१३७ औ अन्य। ऐसैं उक्तकूं स्पष्ट करैहैं॥ इहां आदि शब्द धूम अर्चि अरु अंगार आदिककूं विषय करनेवाला है॥

१३८ पर्यायके तात्पर्यकूं कहिके ताके अक्षरनकूं व्याख्यान करैहैं॥ इधर "इहां" ऐसैं इस लोकका कथन है सो पूर्वले

है। जैसैं इहां (इसलोकविषै) अग्निहोत्रका अधिकरण आहवनीय नामक अग्नि है तैसैं ॥ तिस स्वर्गलोकनामक अग्निका आदित्यहीं समित् है। जातैं तिस (आदित्य)करि प्रकाशित हुया वह लोक प्रदीप्त होवैहै। यातैं सम्यक् इंधनतैं (प्रदीप्तकरनेतैं) आदित्य समित् है ॥ रश्मियां (सूर्यकेकिरण) धूम हैं तिस (सूर्य)तैं उत्थानतैं। जातैं समिधतैं धूम ऊठता है ॥ दिवस अर्चि (ज्वाला)है प्रकाशके सामान्यतैं औ दिवसकूं आदित्यका कार्य होनेतैं॥ चंद्रमा अंगार हैं। दिवसके उपशमके हुये अभिव्यक्ति (चंद्रमाके आविर्भाव)तैं। जातैं अर्चिके उपशम हुये अंगार अभिव्यक्त होवैहैं ॥ नक्षत्र विस्फुलिंग हैं। चंद्रमाके अवयवनकीन्यांई विप्रकीर्ण (विखरनें)पनैंके सामान्यतैं ॥ १ ॥

पदके साथि संबंधकूं पावताहै औ तिसतैं उत्थानतैं। इहां "तिस" शब्दकरि आदित्य ग्रहण किया है ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जु-

अर्थः-तिस इस अग्निविषै देव श्रद्धाकूं

टीकाः-तिस इस उक्तलक्षणवाले अग्नि-विषै देव कहिये अग्निआदिरूप अधिदैवतस्व-रूप [139]यजमानके प्राण। श्रद्धाकूं कहिये [140]अग्नि-होत्रकी आहुतिनकी परिणामअवस्थारूप श्र-द्धाकरिभावित सूक्ष्मजल श्रद्धा कहिये हैं। का-हेतैं "[141]पंचमी आहुतिके हुत हुये जल पुरुषव-चन होवैहैं" ऐसैं जलोंकूं होमनेकूं योग्य होने-

---

१३९ अध्यात्म अरु अधिदैवके विभागकरि देवनकूं वि-भाग करैहैं ॥

१४० प्रत्ययविशेष (वृत्तिनका भेद) होनेकरि श्रद्धाकूं होम करनेकी योग्यताका असंभव है? यह आशंका करिके। श्रद्धाकूं व्याख्यान करैहैं ॥

१४१ किंवाः-प्रश्न अरु उत्तरकूं एक अर्थवाले होनेतैं औ प्रश्नविषै जलोंकूं होम करने योग्य होनेकरि सुने होनेतैं। उत्तरविषै बी श्रद्धा शब्दके वाच्य वे (जल) होम करनेकूं योग्य होनेकरि विवक्षित हैं। ऐसैं कहैहैं ॥

ह्वति । तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भवति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

होमते हैं । तिस आहुतितैं सोम राजा संभवैहै ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा० पंचमप्रपाठ०चतुर्थः खंडः ४

करि प्रश्नविषै सुने होनेतैं [142] श्रद्धाहीं आप (जल) हैं । औ [143] श्रद्धाकूंहीं आरंभ करिके संपादन करिके प्रवृत्त होतेहैं । ऐसैं जानियेहै । ता जल-

---

१४२ ननु जलोंविषै श्रद्धाशब्दके वृद्धोंके व्यवहारकरि प्रयोगके अभावतैं ऐसैं (श्रद्धाशब्दका अर्थ जल) बनैं नहीं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१४३ ननु जल श्रद्धाशब्दकरि प्रसिद्धकी न्यांई कैसैं कहियेहैं ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—" श्रद्धापूर्वक होमकूं उद्देश करिके दुग्ध सोम अरु घृतआदिक होमके साधनकूं संपादन करिके होमकूं करताहै " ऐसैं तैत्तिरीयशाखावाले ब्राह्मण पठन करैहैं । तिसप्रकार हुये जलोंविषै श्रद्धाशब्द संभवैहै ॥

रूप श्रद्धाकूं होमते हैं ॥ तिस आहुतितैं सोमराजा कहिये श्रद्धाशब्दके वाच्य अरु स्वर्गलोकरूप अग्निविषै होम किये जलोंका परिणामरूप सोमराजा (चंद्रमा) उपजता है। [144]जैसैं ऋग्वेदादिपुष्पका रस ऋक् आदिक भ्रमरोंकरि गृहीत हुये वे आदित्यविषै रोहित (रक्त) आदिकरूपमय यशआदिक कार्यकूं आरंभ करतेहैं। ऐसैं पूर्व तृतीय अध्यायविषै कहा है। ऐसैं ये अग्निहोत्रकी दो आहुतिनके संबंधि सूक्ष्म अरु श्रद्धाशब्दकेवाच्य जल स्वर्गलोकके-प्रति अनुप्रवेशकरिके अग्निहोत्रकी दो आहुतिनके फलरूप चांद्र कार्यकूं आरंभ करै हैं। औ [145]ताके कर्त्ता यजमान आहुतिमय अरु [146]आहुतिकी

१४४ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥ इहां कहाहै मधुविद्याविषै। यह शेष है औ चांद्र कार्यकूं। याका चंद्रके समीपस्थित तिसके सदृश शरीरकूं। यह अर्थ है॥

१४५ तथापि यजमानोंका फलितपना कैसें है? यातैं कहैहैं ॥ इहां "ताके कर्त्ता" इस शब्दविषै दो आहुतियां "तत् (ताके)" शब्दके वाच्य हैं ॥ औ प्रधानपना आहुतिमय। इस शब्दगत "मयट्" प्रत्ययका अर्थ है ॥

१४६ तांहींकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां आहुतिकी भावनाकरि

भावनाकरि भावित अरु [147]आहुतिरूप कर्मकरि आकर्षित अरु [148]श्रद्धारूप जलकेसाथि संबंधवाले-हुये स्वर्गलोककेतांई अनुप्रवेश करिके सोम-भूत (चंद्र सदृशरूपवाले) होवै हैं। [149]जौंतैं ति-सकेअर्थ तिनोंनैं अग्निहोत्र होम किया है। [150]ईहां तो (आहवनीय अग्निविषै) आहुतिका प-रिणामहीं पंचाग्निके संबंधके क्रमसैं मुख्यता-

---

भावित। याका तिन (आहुतिन)करि सम्यक् स्तुत कहिये तिनके अनुसारि। अर्थ यह जो तिनके आश्रय॥

१४७ तिसकरि भावितपनैके फलकूं कहैहैं॥ इहां तिस-करि आकृष्ट (आकर्षित)पना कहिये वशीकृतपना॥

१४८ आहुतिनकरि भावित। ऐसैं उक्त अर्थकूं स्पष्ट क-रैहैं॥ इहां श्रद्धारूप जलके समवायी। याका तिस श्रद्धा-पूर्वक पय अरु सोम आदिककरि साध्य जो कर्म है ताके आश्रय। यह अर्थ है औ सोमभूत होवैहैं। याका तिस सोम शब्दके वाच्य चंद्रके समीपस्थित शरीरकूं पायके तिसके स्वरूपवाले होवैहैं। यह अर्थ है॥

१४९ ननु चंद्रका सारूप्य (समानरूपता) धर्मियोंकूं (श्र-द्धाके आश्रयभूत पुरुषनकूं) कैसैं फल होवैहै? यह आशंका करिके कहैहैं॥

१५० ननु यजमानोंका चंद्रभाव गतिविना नहीं सिद्ध होवै-है। तैसैं हुये गति कहनेकूं योग्य है? यह आशंका करिके कहै-हैं॥ इधर आहवनीय अग्नि "इहां" इस सप्तमीका अर्थ है॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य पंचमः खंडः॥५॥

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायु-

अथ श्री॰मूलभाषा॰ पंचमप्रपाठ॰पंचमः खंडः॥ ५ ॥

अर्थः—हे गौतम ! पर्जन्यहीं अग्नि है।

करि उपासनके अर्थ कहनेकूं वांछित है। यज-मानोंकी गति नहीं ॥ अविद्वानोंकि[१५१] ता (गति) कूं तो धूमआदिकके क्रमसैं आगे यह श्रुति कहैगी औ विद्वानोंकी विद्याकृत (उपासनाकि फलरूप) उत्तरा (उत्तरायणमार्गरूप गति)कूं कहैगी ॥ २ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपा॰चतुर्थः खंडः४

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठकस्य पंचमः खंडः ५

पंचमप्रश्ननिर्णयमैं पर्जन्यरूपाग्निविद्या २

टीकाः—[१५२]द्वितीय होमपर्यायके अर्थकूं कहैहैः—

---

१५१ सो (गति) तब कहां कहियेहै। जातैं ताके कथन-विना यथोक्त फल नहीं सिद्ध होवैहै। यातैं कहैहैं ॥

इति श्री॰ पंचमप्रपाठकगतचतुर्थ खंडस्य टिप्पणम् ॥ ४ ॥

अथ श्री॰पंचमप्रपाठकगत पंचम खंडस्य टिप्पणम् ५

१५२ इहां द्वितीय होमके पर्यायके अर्थकूं कहैहैं। याका

रेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गा-
रा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

ताका वायुहीं समित् है । अभ्र (बादल) धूम है। विद्युत् अर्चि है। अशनि अंगार हैं। ह्रादिनि विस्फुलिङ्ग हैं ॥ १ ॥

हे गौतम ! पर्जन्य हीं अग्नि है ॥ पर्जन्य नाम वृष्टिकी सामग्रीका अभिमानी देवताविशेष है ॥ ताका वायुहीं समित् है। जातैं वायुकरि पर्जन्यरूप अग्नि सम्यक् प्रदीप्त होवैहै । पुरोवात (पूर्ववायु) आदिकके प्रबलप-

---

द्वितीय होमका संबंधि जो द्वितीय पर्याय ताके अर्थकूं जनावनेकूं तिसीहीं पर्यायकूं श्रुति ग्रहण करैहै । यह अर्थ है औ पुरोवातआदिक । इस आदिशब्दकारि वर्षाका हेतु वायुका भेद ग्रहणकरियेहै ॥ औ बादलोंकी धूमकार्यता पौराणिकोंनैं कही है:—"यज्ञके धूमकरि उद्भववाला बादल तो द्विजोंका सदा हितरूप है औ दावाग्नि (वनके अग्नि)के धूमकरि उपज्या बादल वनका हितरूप कहा है औ मृतकके धूमतैं उद्भववाला बादल तो अशुभके अर्थ होवैगा औ हे द्विज! अभिचार (शत्रुके मारण अर्थ कियेश्येनयागादिकर्म)के अग्निके धूमतैं उत्पन्न हुया [बादल] भूतनके नाशअर्थहीं कहाहै" ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमꣳ राजानं जुह्वति। तस्या आहुतेर्वर्षꣳ सम्भवति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अर्थः–तिस इस अग्निविषै देव सोमराजाकूं होमते हैं। तिस आहुतितैं वर्षा संभवै है ॥ २ ॥

इति श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपाठ॰पंचमः खंडः ५

नैके हुये वृष्टिके दर्शनतैं ॥ अभ्र (बादल) धूम है। धूमका कार्य होनेतैं औ धूमकीन्यांई लक्ष्यमाण (दृश्य) होनेतैं ॥ विद्युत् अर्चि है। प्रकाशके सामान्यतैं ॥ अशनि (वज्र) अंगार हैं। कठिन होनेतैं वा विद्युत्के साथि संबंधतैं ॥ ऱ्हादनि विस्फुलिंग हैं। ऱ्हादनि गर्जितरूप शब्द हैं। मेघोंके मध्य विप्रकीर्णपनै(फैलते)के सामान्यतैं ॥ १ ॥

टीकाः–तिस इस अग्निविषै देव [१५३]पूर्वकी

---

१५३ अध्यात्मरूप यजमानके प्राण (इंद्रिय) हैं। इंद्र आदिक तो अधिदैवतरूप देव हैं। ऐसैं कहैहैं ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥६॥

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः सं-

अथ श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपाठ०षष्ठःखंडः ॥ ६ ॥

अर्थः—हे गौतम ! पृथिवीहीं अग्नि है।

न्यांई सोमराजाकूं होमते हैं। तिस आहुतितैं वर्षा संभवैहै। कहिये [154]श्रद्धानामवाली जे आप वे सोमआकारसैं परिणामकूं प्राप्त हुयी द्वितीयपर्यायविषे पर्जन्यरूप अग्निकूं पायके वृष्टिपनैकरि परिणामकूं पावै हैं ॥

इति० श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य पंचमःखंडः ॥५॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥६॥

पंचमप्रश्नके निर्णयमैं पृथिवीरूपाग्निविद्या २

टीकाः—हे गौतम ! पृथिवीहीं अग्नि है। इत्यादि पूर्वकीन्यांई है ॥ तिस पृथिवी नामक अग्निका संवत्सरहीं समित् (इंधन)है ।

---

१५४ "सोम राजाकूं" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगतपंचमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ५ ॥

वत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रि-
रर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फु-
लिङ्गाः ॥ १ ॥

ताका संवत्सरहीं समित् है। आकाश धू-
म है। रात्रि अर्चि है। दिशा अंगार हैं।
अवांतरदिशा विस्फुलिंग हैं॥ १ ॥

जातैं संवत्सररूप कालकरि प्रदीप्तहुयी पृथिवी
व्रीहिआदिककी सिद्धिअर्थ होवैहै ॥ आकाश
धूम है। पृथिवीतैं उत्थितकीन्यांई आकाश
देखियेहै। जैसें अग्नितैं धूम ॥ रात्रि अर्चि
है। जातैं अप्रकाशरूप पृथिवीके अनुरूप (अ-
नुसारिणी) रात्रि है । अंधकाररूप होनेतैं अ-
ग्निके अनुरूप अर्चिकीन्यांई॥ दिशा अंगारहैं।
उपशांतपनैके सामान्यतैं।अवांतर दिशा विस्फु
लिंग हैं। क्षुद्र (तुच्छ)पनैके सामान्यतैं ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नꣳ सम्भवति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव

अर्थः—तिसइसअग्निविषै देव वर्षाकूं होमतेहैं। तिस आहुतितैं अन्न संभवैहै ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपा०षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥

अथ श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपाठ० सप्तमः खंडः ७ ॥

अर्थः—हे गौतम ! पुरुषहीं अग्नि है।

टीकाः—"तिसविषै" इत्यादि समान है ॥ तिसआहुतितैं व्रीहि यवादि अन्न उपजताहै ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥

अथ श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य सप्तमःखंडः ॥ ७ ॥

पंचम प्रश्नके निर्णयमैं पुरुषरूपाग्निविद्या २

टीकाः—हे गौतम ! पुरुषहीं अग्नि है ॥ ताका वाकूहीं समित् है। जातैं वाक्करि मु-

समित्प्राणो धूमो जिव्हाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुव्हति। तस्या आहुते रेतः सम्भवति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

ताका वाक्हीं समित् है। प्राण धूम है। जिह्वा अर्चि है। चक्षु अंगार हैं। श्रोत्र विस्फुलिंग हैं ॥ १ ॥

अर्थः-तिसइसअग्निविषै देव अन्नकूं होमतेहैं। तिस आहुतितैं रेत संभवैहै ॥२॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्र०सप्तमः खंडः ॥७॥

खसैं पुरुष सम्यक् प्रकाशित होवैहै मूकनहीं ॥ प्राण धूम है। धूमकीन्यांई मुखतैं निर्गमनतैं ॥ जिह्वा अर्चिहै । रक्त होनेतैं ॥ चक्षु अंगार हैं। प्रभाका आश्रयहोनेतैं ॥ श्रोत्र विस्फुलिंग हैं । विप्रकीर्णपनैं(फैलनैं) के सामान्यतैं ॥ १ ॥

टीकाः-अन्य समान है ॥ व्रीहिआदिक

अथ पंचमप्रपाठकस्याष्टमः खंडः ॥८॥
योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

अथ श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपाठकस्याष्टमः खंडः ८

अर्थः—हे गौतम ! योषाहीं अग्नि है। ताका उपस्थहीं समित् है। जो उपमंत्रण करियेहै सो धूम है । योनि अर्चि है । जो भीतर करताहै वे अंगार हैं । अभिनंद विस्फुलिंग हैं ॥ १ ॥

संस्कारयुक्त (पाचित) अन्नकूं होमतेहैं । तिस आहुतितैं रेत(वीर्य) उपजताहै ॥२॥
इति॰श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठकस्य सप्तमः खंडः॥ ७॥
अथ श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठकस्याष्टमः खंडः॥८॥
पंचमप्रश्नके निर्णयमैं योषित्रूपाग्निविद्या २

टीकाः—हे गौतम! योषा (स्त्री) हीं अग्नि

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुव्हति।

अर्थः—तिस इस अग्निविषै देव रेतकूं

है ॥ ताका उपस्थहीं समित् है । जातैं तिसकरि सो पुत्र आदिकके उत्पादनअर्थ प्रदीप्त होवैहै ॥ जो उपमंत्रण (गुह्यभाषण) करियेहै सो धूम है । उपमंत्रणके स्त्रीकेसाथि संभवतें ॥ योनि अर्चि है । रक्त होनेतें ॥ जो भीतर करताहै कहिये भीतर करता जो मैथुनरूप व्यापार वे अंगार हैं । अग्निके साथि संबंधतें ॥ अभिनंद (सुखके लव) विस्फुलिंग हैं । क्षुद्र होनेतें ॥ १ ॥

टीकाः—तिस इस अग्निविषै देव रेतकूं होमतेहैं । तिस आहुतितैं गर्भ संभवैहै (उपजताहै) ॥ [१५५] इसरीतिसैं श्रद्धा सोम वर्षा अन्न

अथ श्री० पंचमप्रपाठकगताष्टम खंडस्य टिप्पणम् ८।

१५५ "तिस आहुतितैं गर्भ संभवैहै" ऐसैं कहा ताकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां श्रद्धा सोम वर्षा अन्न अरु रेतरूप हव-

तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

होमते हैं। तिस आहुतितैं गर्भ संभवै है ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपाठ०अष्टमः खंडः८

अरु रेतरूप पांच हवनोंके पर्यायविषै जो क्रम है तिसकरि वे आप (उक्तजल)हीं गर्भीभूत (गर्भरूप) होवैहैं। [156]तहां जलोंके दो आहुतिनके समवायी(संबंधी)पनैतैं प्रधानभावकी विवक्षा है ॥ वे आप पंचमी आहुतिके हुत हुये पुरुष नामवाली होवैहैं ऐसैं है। [157]परंतु केवल आ-

---

नोंके पर्यायविषै जो क्रम है तिसकरि। याका यथोक्त रीतिकरि श्रद्धासैं आदिलेके रेतपर्यंत जे स्वर्गलोकसैं आदिलेके स्त्रीपर्यंत पंचअग्नियोंविषै हवन हैं। तिनके एक एक पर्यायविषै जो क्रम व्याख्यान किया तिसकरि। यह अर्थ है ॥

१५६ ननु फेर जल कैसैं गर्भरूप होवैहैं। अन्य भूतोंका बी गर्भभाव तुल्य है। काहेतैं ता (गर्भभाव)कूं पंचभूतनका कार्य होनेतैं? यातैं कहैहैं ॥

१५७ भूतनके मध्य [अमुख्यतासैं अन्य च्यारी भूतनकूं

पहीं सोमादिकार्यकूं नहीं आरंभ करैहैं औ [158]अप त्रिवृत्करणसैं रहित नहीं हैं ऐसैं है ॥ [159]त्रिवृत्कृतताके हुयेबी विशेषसंज्ञाका लाभ "यह पृथिवी है यह जल है यह अग्नि है"। ऐसैं अन्यतम (बहुतनकेमध्य एक)की बहुलतारूप निमित्तवाला देख्या है ॥ [160]तातैं कथन कियेहीं

कार्यकी आरंभकताके होते बी] जलोंका प्रधानभावसैं विवक्षाकरिहीं निर्देश क्यूं है। औ केवल तिन जलोंकी हीं कार्यके आरंभकताकी विवक्षा (कहनेकीइच्छा) क्यूं नहीं होवैगी? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:–अन्यभूतनकी सहायकतासैं रहित केवल जलोंकूंआरंभकताके हुये जो आरंभ किया कार्य सो भोगकास्थान नहीं होवैगा । काहैतैं ता (केवल जलतैं किये कार्य)कूं जलबुद्बुदकी न्यांई अत्यंत चंचल होनेतैं ॥

१५८ केवल जलोंके जलपनेकूं अंगीकारकरिके कहा। अब सोई (जलकी केवलता) नहीं है। ऐसैं कहैहै। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां इति शब्द जो है सो "तिन (तेज जल अरु पृथिवीरूप तीनभूतन)के मध्य एक एककूं त्रिवृत् (तीनप्रकारकी) करताभया" इस श्रुतितैं। इस हेतुरूप अर्थवाला है ॥

१५९ सर्वकी त्रिवृत् करणकरि युक्तताके हुये देख्या जो विशेषकथन सो कैसैं घटेगा? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१६० जलोंके प्रधानभावकी विवक्षाकरि प्रश्न उत्तर दोनूंविषै अप् (जल) शब्द है। ऐसैं उक्त अर्थकूं उपसंहार क-

भूत जलकी बहुलतातैं कर्मसैं संबंधि हुये सोम-आदिक कार्यके आरंभक "आप (जल)" ऐसैं कहियेहैं औ सोम[161] वृष्टि अन्न रेत अरु देह इनविषै द्रव (द्रवीभाव)की बहुलता देखियेहै औ शरीर यद्यपि पार्थिव है [तथापि] बहु[162]द्रव (बहुत आर्द्र) है॥तहां[163] (योषारूप अग्निविषै)पंचमी आहुतिके हुत (हवनकिये) हुये रेतरूप हुयी आप गर्भीभूत (पुरुषनामवाली) होवैहैं ॥ २ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्रपाठकस्याष्टमः खंडः॥८॥

रैहैं ॥ इहां तातैं । याका केवल जलोंके असद्भावतैं । यह अर्थ है ॥

१६१ आरंभक भूतनविषै जलोंका बहुलपना कैसैं जान्या है? यह आशंका करिके । कार्यद्वारा ताका ज्ञान होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

१६२ सोम (चंद्र) आदिकनके मध्य जलकी बहुलता (अधिकता)के हुये बी पृथिवीके कार्य शरीरकूं ता (जल)की बहुलता कैसैं है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१६३ पंचम प्रश्नके निर्णयकूं उपसंहार करनेकूं अवतरणि-काकूं करैहैं ॥ इहां "तहां" याका योषारूप अग्निविषै । यह अर्थ है औ गर्भरूप हुये पुरुषवचन (पुरुषशब्दके वाच्य) होवैहैं । ऐसैं संबंध है ॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगताष्टमखंडस्य टिप्पणम् ॥ ८ ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य नवमः खंडः॥९॥

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुष-

अथ श्री॰ मूलभाषा॰पंचमप्रपाठकस्य नवमः खंडः ९

अर्थः—इस रीतिसैं तो पंचमी आहु-तिके हुत हुये आप (जल) पुरुषवचन

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठकस्य नवमःखंडः॥९॥

प्रथम प्रश्नोपक्रम-कर्मसैं गमनागमनवान् जीवके
अग्निसंबंधी जन्मनाश २

टीकाः—[१६४] इसरीतिसैं तो पंचम आहुतिके होम किये हुये आप (जल) पुरुषवचन (पु-रुष नामवाली) होवैहैं। ऐसैं एक (पंचम) प्रश्न व्याख्यान किया॥ [१६५] औ जो स्वर्गलोकतैं इस पृ-

---

अथ श्री॰ पंचमप्रपाठकगतनवमखंडस्य टिप्पणम् ९

१६४ उक्त अर्थविषै वाक्यकूं जोडतेहैं॥

१६५ ननु जलोंके गर्भभावकी उक्तिमात्रकरि पुरुष नाम-वानूपनैकूं निर्णीत होनेतैं उत्तर ग्रंथकरि बहुतभया? यह आशंका करिके। ता (उत्तर ग्रंथ)के तात्पर्यकूं कहैहैं॥ इहां दो आहुतिनका संबंधी। यह शेष है औ प्रासंगिक। याका

वचसो भवन्तीति स उल्बाऽऽवृतो गर्भो दश वा नव मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते ॥ १ ॥

होवैहै ऐसें [व्याख्यानकिया] ॥ सो गर्भ उल्बकारि आवृत हुया दश वा नव मास भीतर शयनकरिके वा जितनेकाल-करि अनंतर जन्मता है ॥ १ ॥

थिवीके प्रति पुनरागमनकूं प्राप्तभई दो आहु-तिनका संबंधी जीव । पुरुषके प्रति अरु स्त्रीके प्रति क्रमसैं प्रवेश करिके लोकके प्रति उत्था-यी होवैहै । ऐसें वाजसनेयकविषै कहा है । सो प्रसंगसैं प्राप्तअर्थ इहां कहियेहै औ इहां[१६६]

गर्भभावकी उक्तिके प्रसंगतैं आगत । यह अर्थ है औ "इहां" ऐसें प्रकृत श्रुतिकी उक्ति है ॥

१६६ प्रसंगप्राप्त संगतिकूं त्यागिके साक्षात्हीं पूर्व उ-त्तर ग्रंथनकी संगतिहै । ऐसें अन्य तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-प्रजाओंका ऊर्ध्वगमन उत्तरग्रंथविषै (आगे) निरूपण करियेगा । तिसअर्थ होनेकरि तिन प्रजाओंकी उत्पत्ति जो है सो आदिविषै कहियेहै ॥

प्रथम प्रश्नविषे "इस [लोक]तैं ऊपर प्रजा जावैहैं। सो क्या जानता हैं"? ऐसैं कहा। ताका यह उपक्रम (आरंभ)है। सो[167] आहुतिरूपकर्मकी संबंधिनी अरु श्रद्धाशब्दकी वाच्य आप(जल)का पंचम परिणामविशेष गर्भ उल्ब (जरायु) करि आवृत (वेष्टित) हुया दश वा नव मासपर्यंत माताकी कुक्षिके भीतर शयन करिके जितनैं न्यून वा अधिक कालकरि अनंतर जन्मकूं पावताहै ॥ इहां "[168]उल्ब-

१६७ दो प्रकारसैं संगतिकूं कहिके । अब वाक्यके अक्षरनकूं योजना करैहैं ॥ इहां सोम वृष्टि अन्न अरु रेतकूं अपेक्षाकरिके गर्भनामवाले परिणामका पंचमपना देखनेकूं योग्य है औ जलोंके प्रकृतपनैके प्रकाशकरनेअर्थ "आहुति" इत्यादि जलके दो विशेषण[भाष्यविषे]हैं ॥ अथवा पूर्वोक्त कालतैं न्यून वा अधिक जितने कालकरि जंतु समग्रअंगवाला होवैहै तितने कालकरि कुक्षिविषै शयनकरिके । ऐसैं संबंधहै। अनंतर योनितैं निर्गमनके कारणभूत कर्मके आविर्भावतैं। यह शेष है ॥

१६८ ननु उल्बकरि आवृतपना । कुक्षिविषै चिरकाल शयन अरु योनितैं निःसरण (निकसना)। यह संपूर्ण अति प्रसिद्ध है। सो श्रुतिकरि क्यूं कथनकरियेहै ? तहां कहैहैं ॥

करि आवृत" इत्यादि यह वैराग्यके हेतुतैं कहियेहै । [169] जातैं मूत्र पुरीष (विष्ठा) वात पित्त अरु श्लेष्म (कफ)आदिककरि पूर्ण माताके उदरविषै तिन (उक्तमलों)करि अनुलिप्त अरु उल्बरूप अशुचि पटकरि आवृत अरु रजवीर्यरूप अशुचिबीजवाले अरु माताकरि भक्षणकिये अन्न अरु पान किये वस्तुनके रसके अनुप्रवेशकरि बढनेवाले अरु निरुद्ध शक्ति बल वीर्य तेज बुद्धि अरु चेष्टावाले गर्भका शयन कष्ट है । [170] तिसतैं योनिरूप द्वारकरि पीडितका

---

१६९ याकी वैराग्यरूप अर्थवान्ताकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां श्लेष्मआदि । इस आदि शब्दकरि रुधिर पूय स्नायु अरु मज्जाआदिक ग्रहण करियेहैं औ तिनकरि अनुलिप्त [का] । यह तत् (तिन) शब्द । मूत्र अरु पुरीष आदिक विषय (अर्थ) वालाहै औ शक्ति कहिये बुद्धिका सामर्थ्य औ बल कहिये देहका सामर्थ्य औ वीर्य कहिये इंद्रियनका सामर्थ्य औ तेज कहिये शरीरगत कांति औ प्रज्ञा कहिये चेतनारूप जीवनधर्म औ चेष्टा कहिये प्राणका धर्म । वे निरुद्ध (रोके) हैं जिसके तिस गर्भका । ऐसैं विग्रह है ॥

१७० माताके उदरविषै शयन करनेवालेकूं कष्टवान्ताकेहुयेबी ताके उदरतैं योनिद्वारा निकसना सुखकर होवैगा ? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

स जातो यावदायुषं जीवति । तं प्रेतं

अर्थः—सो जन्म्या हुया यावत् आयुष जीवताहै ॥ तिस प्रेत अरु दिष्टकूं

निःसरणरूप जन्म अतिशयकरि कष्ट है । ऐसैं श्रुति वैराग्यकूं ग्रहण करावै है ॥ औ जो [171] मुहूर्त्त-पर्यंत बी दुःसह है । सो दश वा नव मासपर्यंत अतिदीर्घकाल भीतर (माताके उदरविषै) शयनकरिके [बाहिर निकसना अति दुःसह है । ऐसैं श्रुति वैराग्यकूं ग्रहण करावैहै] ॥ १ ॥

टीकाः—सो [172] ऐसैं जन्मकूं पायाहुया यावत्

---

१७१ ताकी ग्राहकताके प्रकारकूंहीं आकारकरि दिखावैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जो माताके भीतर (उदरविषै) शयन मुहूर्त्त (दो घटिका) पर्यंत बी दुःसह है। सो दीर्घकाल शयन करनेकूं कैसैं शक्य होवै औ दश वा नव मासपर्यंत भीतर शयनकरिके फेर योनिद्वारा दुष्कर निःसरण जो दुःसह्य (सहनकरनेकूं अशक्य) है सो कैसैं होवै । इसप्रकारसैं श्रुति वैराग्यकूं ग्रहण करावैहै ॥

१७२ ननु जन्मकूं प्राप्तभये जंतुकूं फेर अनर्थ नहींहै ? यह आशंकाकारिके कहैहैं ॥

दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति । यत एवेतो यतः सम्भूतो भवति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

इस (ग्राम) तैं अग्निकेअर्थहीं लेजातेहैं। जाहींतैं इसतैं [आया] है औ जातैं संभूत होवैहै ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपाठ०नवमः खंडः९

आयु कहिये [173] पुनः पुनः घटीयंत्रकीन्यांई गमनागमनकेअर्थ वा कुलालचक्रकीन्यांई तिर्यक् (टेढे) भ्रमणकेअर्थ कर्मकूं करता हुया यावत् कर्मकरि संपादित आयु है तावत् जीवताहै। तिसैं[174] इस क्षीण आयुष्वाले प्रेत (मृत)

---

१७३ यावत् आयुष । इसपदकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः–घटीयंत्रकीन्यांई ऊर्ध्वगमनअर्थवा निषिद्ध कर्मकूं पुनः पुनः आचरताहुया जहां लगि कर्मकरि संपादनकिया आयु है तहांलगि इस देहविषै जीवताहै। तदनंतर मरताहै। तैसैं हुये जन्मकेतांई प्राप्तभयेकूं मृत्युके निश्चयतैं सम्यक् ज्ञानविना कल्याणकी प्राप्ति नहींहै ॥

१७४ ननु तब मृतभये जंतुकी कृतकृत्यता (कृतार्थता) होवैगी ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

अरु दिष्टकूं कहिये परलोकके प्रति कर्मकरि निर्देशकिये जंतुकूं [[175]जब जीवता हुया वैदिककर्मविषै वा ज्ञानविषै अधिकारी होवै। तब तिस इस मृतकूं] इस ग्रामतैं ऋत्विक् वा पुत्र अग्निकेअर्थ (अंत्यकर्मकेअर्थ) लेजातेहैं। [176]जाहींतें इस अग्नितैं श्रद्धा आदिक आहुतिनके क्रमसैं आया है औ जातैं पंचअग्निनतैं संभूत (क्रमतैं उत्पन्न) होवैहै [यातैं] तिसींहीं अग्निकेअर्थ लेजाते हैं। अर्थ यह जोः—अपनीहीं योनि (कारण) अग्निके प्रति प्राप्त करैहैं। यह अर्थ है ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभावा०पंचमप्रपाठकस्य नवमः खंडः॥ ९॥

---

१७५ ननु तब सर्व मृत (मरेजंतु) कूं परलोकीपना होवैगा? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं॥ इहां तब परलोकके प्रति कर्मकरि निर्देशकियेकूं। ऐसैं पूर्वकेसाथि संबंध है॥

१७६ औ सो मृतका अग्निकेअर्थ लेजाना युक्त है। ऐसैं कहैहैं॥

इति श्री०पंचमप्रपाठकगतनवमखंडस्याटिप्पणम् ॥ ९ ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य दशमः खंडः १०

तद्य इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये "श्रद्धा तप" इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसम्भवन्त्य-

---

अथ श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपाठकस्य दशमः खंडः १०

अर्थः—तहां जे इस प्रकारसैं जानते हैं औ जे ये अरण्यविषै "श्रद्धा अरु तप" ऐसैं (इस आदिककूं) उपासतेहैं। वे अर्चिकूं पावतेहैं। अर्चितैं दिवसकूं। दिवसतैं

अथ श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठ०दशमः खंडः १०

१–४ प्रश्ननिर्णय–साधिकारी उत्तरमार्ग दक्षिणमार्ग औ तृतीयस्थान १०

टीकाः— "ईस[177][लोक] तैं ऊर्ध्व प्रजा जिसकेप्राति प्रयाण करैहैं [सो क्या] जानताहैं" यह प्रथम प्रश्न निराकरण करनेकी यो-

---

अथ श्री०पंचमप्रपाठ०दशमखंडस्य टिप्पणम्॥१०॥

१७७ "सो उल्वकरि आवृत" इत्यादि वाक्यकरि उक्त अर्थकूं अनुवाद करैहैं॥ इहां प्रत्युपस्थित। याका प्रजाकी उत्पत्तिके दिखावनेकारि प्रसंगतैं प्राप्त है। यह अर्थ है॥

**र्चिषोऽहरह्नआपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाण-
पक्षाद्यान् षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान् ॥ १ ॥**

शुक्लपक्षकूं। शुक्लपक्षतैं जिन षट्मासनकूं [सूर्य] उत्तरदिशाकेतांई जाता है तिन (मासन)कूं ॥ १ ॥

ग्यताकरि स्थित है। [178]तहां [179]लोकके प्रति उत्थित (उत्पन्न) अधिकारी गृहस्थनके मध्य जे "[180]स्वर्गलोकआदिक अग्नियोंतैं हम क्रमकरि उपजेहुये अग्निस्वरूप अरु पंचाग्निरूप आत्मावाले हैं" ऐसें यथोक्त पंचाग्निके दर्शनकूं जानते

---

१७८ "तहां जे ऐसें जानतेहैं" इस वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

१७९ "तहां" इस सप्तमीके अर्थकूंहीं स्पष्टकरैहैं ॥ इहां षष्ठी जो है सो निर्धारणरूप अर्थवाली है ॥

१८० जाननेके प्रकारकूंहीं अनुवाद करैहैं ॥ इहां वे अर्चिकूं प्राप्त होतेहैं । ऐसें उत्तर (अनंतरके वाक्यकेपद) विषै संबंध है ॥

हैं ॥ ॥ ननु[181] ईसै प्रकारसैं जानते ऐसैं गृहस्थ-हीं कहियेहैं अन्य नहीं । यह कैसैं जानियेहै? [तहां कहैहैं:–][182] ग्रहस्थनके मध्य "जे तो ऐसैं नहीं जाननेवाले केवल इष्ट पूर्त्त अरु दत्तके परायण हैं वे धूमआदिककरि चंद्रकेतांई जातैं हैं" ऐसैं यह श्रुति आगे कहैगी ॥ औ जे[183] अरण्यकरि उपलक्षित वैखानस (वानप्रस्थ) औ परिव्राजक (संन्यासी) हुये "श्रद्धा अरु तप" ऐसैं उपासतेहैं । तिनके ऐसैं (उक्तप्रकारसैं) जाननेवालोंकेसाथि अर्चिआदिककरि गमनकूं आगे कहैगी । [184] पारिशिष्यतैं औ [185] अग्निहोत्रकी दो

---

१८१ ननु साधारण उक्तिका विशेषविषै संकोच जो है सो हेतुविना नहीं सिद्ध होवैहै ? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

१८२ पारिशेष्य संकोचका करनेवालाहै । ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां षष्ठी निर्धारणविषै है औ यातैं केवल कर्मी गृहस्थ "नहीं जानतेहैं" ऐसैं ग्रहणकरनेकूं योग्यहैं । यह शेष है ॥

१८३ ननु परिव्राजक औ वानप्रस्थ ग्रहणकिये चाहिये ? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं ॥

१८४ तब किनोंका इहां ग्रहण है ? यातैं कहैहैं ॥

१८५ गृहस्थविषैहीं अन्यहेतुकूं करैहैं ॥ इहां यह अर्थ

आहुतिनकेसाथि संबंधतैं "इसप्रकारसैं जानतेहैं" ऐसैं गृहस्थहीं ग्रहण करियेहैं ॥ ॥ ^१८६^ ननु ग्रामकी श्रुतिकरि ग्रहण किये अरु अरण्यकी श्रुतिकरि अनुपलक्षित ब्रह्मचारी बी विद्यमान हैं । पारिशेष्यकी सिद्धि कैसैं होवैगी ? ^१८७^ यह

हैः-तिन दो आहुतिनके अपूर्वके परिणामस्वरूप जगत्कूं इहां पांच प्रकारसैं विभाग करिके अग्निभावकरि दर्शन उत्तरमार्गकी प्राप्तिका साधन विधान करियेहै। यातैं विद्याके तिन (गृहस्थन) सैं संबंधतैं गृहस्थनकूंबी तिस (विद्या) सैं संबंधकूं प्राप्तहोनेतैं तिन गृहस्थनकाहीं इहां ग्रहण उचित है ॥

१८६ पारिशेष्यकेप्रति पूर्ववादी आक्षेप करैहै ॥ इहां यह अर्थहैः-ग्रामविषै पत्नीसहित वास होवैहै औ ब्रह्मचारीनका पत्नीसैं संबंध नहींहै । तातैं ब्रह्मचारी ग्रामश्रुतिकरि ग्रहणकिये नहीं औ गुरुकुलविषै निवासी होनेतैं अरण्य श्रुतिकरि उपलक्षित नहींहैं । तातैं इहां तिन(ब्रह्मचारीन)के ग्रहणके संभवतैं पारिशेष्य नहीं है ॥

१८७ क्या नैष्ठिक ब्रह्मचारी इहां "ऐसैं जानतेहैं" इस प्रकारसैं ग्रहणकरियेहैं किंवा उपकुर्वाणक ब्रह्मचारी? ऐसैं विकल्पकरिके सिद्धांती प्रथमपक्षकूं दूषणदेतेहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-"ऊर्ध्वरेता यतिनके अष्टाशीति सहस्र (८८०००) हैं जो तिनका स्थान कहा है सोई गुरुवासिनका है" इत्यादि पुराणरूप स्मृतिकी श्रुतिमूलकताकरि प्रमाणतातैं

दोष बनै नहीं:—पुराणरूप स्मृतिके प्रामाण्यतैं ऊर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारीनका अर्यमातैं उत्तरकरि मार्ग प्रसिद्ध है । यातैं वे (नैष्ठिक ब्रह्मचारी)बी अरण्यवासिनकेसाथि गमनकरैंगे । [188]उपकुर्वाणक (गुरुकुलतैं समावर्त्तनकरनेवाले ब्रह्मचारी) तो स्वाध्याय (वेदाध्ययन)के ग्रहणरूप अर्थवाले हैं यातैं विशेषनिर्देशके योग्य

ऊर्ध्वरेता नैष्ठिकब्रह्मचारीयोंका आदित्यसैं संबंधवाले उत्तरायणकरि उपलक्षित देवयान नामक मार्ग जितनेकरि प्रसिद्ध है । तातैं तिनकूं अरण्यवासियोंके साथि अखंडब्रह्मचर्यकरिहीं अर्चिरादिगतिके लाभतैं पंचाग्निवित्पनैसैं प्रयोजन नहीं है। यातैं पारिशेष्यकी सिद्धि है ॥

१८८ द्वितीय विकल्पके प्रति कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं वे उपकुर्वाणक ब्रह्मचारी स्वाध्यायके ग्रहणरूप अर्थवालेहैं। वे तिस (स्वाध्याय) के ग्रहण किये हुये स्वइच्छाके वशतैं अन्य आश्रमकूं ग्रहणकरतेहुये ता (अन्य आश्रम) के फलकरिहीं फलवाले होवैहैं । यातैं वे गृहस्थ आदिकनतैं विभागकरिके "ऐसैं जानतेहैं" इसरीतिसैं निर्देशकूं योग्य नहींहैं ॥ औ क्या नैष्ठिक ब्रह्मचारीनकूं उत्तरमार्गकी प्राप्तिके संभवतैं "ऐसैं जाननेवान्पना" व्यर्थ प्राप्तभया। ऐसैं श्रुतिके विरोधतैं द्वितीयपक्षविषैतो पारिशेष्यकी असिद्धिकी तुल्य अवस्था है? यह उक्त समाधानके पीछे"ननु" इत्यादिवाक्यकरि भाष्य (टीका)विषै कही शंकाका अर्थ है॥

नहीं हैं ॥ ॥ ननु ऊर्ध्वरेतापना जब पुराणरूप स्मृतिके प्रामाण्यतैं उत्तरमार्गकी प्राप्तिका कारण अंगीकार करियेहै । तब इसप्रकारसैं जाननेवालेपना व्यर्थ प्राप्तहुवा ? सो कथनबनै नहीं:—काहेतैं [१८९] गृहस्थनके प्रति अर्थवान् होनेतैं॥
[१९०] जे गृहस्थ ऐसैं नहीं जाननेवाले हैं तिनका स्वभावतैं दक्षिणरूप धूमादिमार्ग प्रसिद्ध है ॥ तिन (गृहस्थन)के मध्य जे इस प्रकारसैं [पंचाग्निके दर्शनकूं] जानते हैं । वा अन्य सगुणब्रह्मकूं जानतेहैं "[१९१] अनंतर जोईबी इस (वि-

१८९ क्या ऐसैं जाननेवान्पना नैष्ठिकब्रह्मचारीयोंकेप्रति व्यर्थ है ऐसैं कहियेहै किंवा सर्वके हीं प्रति व्यर्थहै ऐसैं कहियेहै ? इसरीतिसैं विकल्परिके सिद्धांती प्रथमपक्षकूं अंगीकारकरिके द्वितीयपक्षकूं दूषणदेतेहैं ॥

१९० तिन गृहस्थनके प्रति ऐसैं जाननेवान्पनैके अर्थवान्पनैकूं विभागकरिके समर्थनकरैहैं ॥ इहां स्वभावतैं । याका तिनकरि अनुष्ठित इष्ट अरु पूर्त्तरूप कर्मके बलतैं । यह अर्थ है औ तिनहीं गृहस्थनके मध्य जे केईक उक्तप्रकारसैं ऐसैं पंचाग्निके दर्शनकूं जानतेहैं वा अग्नियोंतैं अन्य सगुणब्रह्मकूं जानतेहैं वे देवयानरूप उत्तरमार्गकरि गमन करतेहैं । ऐसैं संबंध है ॥

१९१ गृहस्थनकूं केवल पंचाग्निका वेत्तापनाहीं नहीं

मासेभ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादि-

अर्थः-मासनतैं संवत्सरकूं। संवत्स-

द्वान्) विषै शव्य (शवसंबंधी दाहादिकर्म)कूं करते हैं औ जब नहीं करते हैं। [तौबी] अर्चिकूंहीं जाते हैं" इस लिंगतैं वे (सगुणब्रह्मके उपासक) उत्तरमार्गकरि जाते हैं ॥ ॥ ननु[192] ऊर्ध्वरेताओंके औ गृहस्थोंके आश्रमीपनेके समान हुये [गृहस्थनकूं] [193]अग्निहोत्र आदिक वैदिक कर्मकी बहुलताके होते। ऊर्ध्वरेताओंका

है किंतु सगुण ब्रह्मका वेत्तापनाबी तिनकूं है। ऐसैं प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः-अंत्य इष्टिके करण अरु अकरणके अविशेष (तुल्यता)करि ब्रह्मवेत्ता (सगुणब्रह्मके उपासक)नकूं अर्चिरादि गतिके श्रवणतैं गृहस्थनकूंबी ब्रह्मवेत्तापना होवैहै। ऐसैं जानियेहै औ परिव्राजक आदिकनविषै अंत्यइष्टिके असंभवकरि विद्याकी स्तुतिकूंबी दुःखसैं कहनेकूं योग्य होनेतैं ॥

१९२ विहितपनैकी तुल्यतातैं आश्रमोंकी तुल्यताकूं आश्रयकरिके पूर्ववादी शंकाकरैहै ॥

१९३ आश्रमोंकी समताकूं कहिके गृहस्थनविषै विशेषकूं पूर्ववादी दिखावैहै ॥ इहां यह अर्थहैः-वैदिक कर्म बहुत हैं औ [गृहस्थनकूं] तिनकी बहुलताके हुये। अवि-

त्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं

रतैं आदित्यकूं। आदित्यतैं चंद्रमाकूं। चंद्रमातैं विद्युतकूं। तहां अमानव पुरुष

हीं उत्तरमार्गकरि गमन होवैहै गृहस्थनका नहीं। यह युक्त नहीं है? [१९४] यहँ दोष बनै नहीं:—जातैं वे (गृहस्थ) अपूत (अशुद्ध) हैं। [१९५] जातैं शत्रुमित्रके संयोगनिमित्त तिन (गृहस्थन)कूं राग द्वेष होवैहैं। तैसैं हिंसा अरु अनुग्रहरूप निमित्तवाले धर्म अधर्म होवैहैं औ

ज्ञान् ऊर्ध्वरेताओंकाहीं देवयान मार्गकरि गमन होवैहै। गृहस्थनका नहीं। यह कथन अयुक्त है। काहेतैं साधनोंकी बहुलताके हुये फलकी बहुलताका न्याय है ताके विरोधतैं॥

१९४ आश्रमीपनैकी तुल्यताके हुयेबी धर्मविशेषतैं विशुद्धिके तारतम्य (अधिक न्यूनभाव)के संभवतैं तिन आश्रमोंकी एकरूपता नहींहै। ऐसैं सिद्धांती परिहारकरैहैं॥

१९५ ननु अग्निहोत्रादि अधिक धर्मवाले विद्याहीनबी गृहस्थनका अपूत (अपवित्र)पना कैसैंहै? तहां कहैहैं॥ इहां अब्रह्मचर्यआदिक इस आदिपदकारि परिग्रहीपना (संग्रहीपना) आदिक ग्रहण करियेहै औ अशुद्धिकी बहुलताका कारण अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है॥

तत्पुरुषो मानवः स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ॥ २ ॥

सो इनकूं ब्रह्मकेताई प्राप्त करैहै। यह देवयान मार्ग है इति ॥ २ ॥

हिंसा[१९६] जूठ माया(छल) अरु अब्रह्मचर्य (मैथुन) आदिक बहु अशुद्धिका कारण तिनं[१९७] (गृहस्थन)कूं अनिवार्य है। यातैं वे अपूत (अशुद्ध) हैं। अपूत होनेतैं तिनका उत्तरमार्गकरि गमन नहीं होवै है ॥ औ हिंसा जूठ माया अरु अब्रह्मचर्यआदिकके परिहारतैं शुद्धचित्तवाले औ शत्रुमित्र [रूप निमित्तवाले] राग द्वेषआदिकके परिहारतैं विरज (निर्मल) जातैं इतर (ऊर्ध्वरेता) हैं यातैं तिनकूं उत्तरमार्ग युक्त है॥ तिसंप्र[१९८]-

---

१९६ ननु ऊर्ध्वरेताओंकाबी अशुद्धिके कारणोंकी बहुलतातैं अपूतपना तुल्य है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१९७ ऊर्ध्वरेताओंकी पूतताके सिद्धभये फलितकूं कहैहैं ॥

१९८ ऊर्ध्वरेताओंके देवयान मार्गविषै अनुप्रवेशमैं प्रमाणकूं कहैहैं। इहां पौराणिक कहतेहैं। ऐसैं संबंध है ॥

कारसैं पौराणिकः–"जे अधीर प्रजाकूं इच्छते भये वे श्मशानोंकूं पावते भये औ जे धीर प्रजाकूं नहीं इच्छते भये वे अमृतभावकूं पावते भये" ऐसैं कहते हैं ॥ ॥ ननु[199] ऐसैं जाननेवाले गृहस्थनकूं औ अरण्यवासिनकूं समानमार्गवान्ताके हुये औ अमृतभावरूप फलके हुये अरण्यवासिनकूं विद्याकी व्यर्थता प्राप्त भई । तैसैं[200] हुये ? तहां । "दक्षिण (दक्षिणमार्ग)सैं जानेवाले नहीं जाते हैं अरु अविद्वान् तपस्वी नहीं जाते हैं" इस श्रुतिका विरोध होवैगा औ "सो अविदित हुया याकूं नहीं पालन करै है" यह वाक्यबी विरुद्ध है ? सो कथन[201] बनै नहीं:–काहेतैं सर्व

---

१९९ ऊर्ध्वरेताओंके उक्त आश्रमधर्ममात्रमयमार्गरूप द्वारकरि अमृतपनैकूं पूर्ववादी आक्षेपकरैहै ॥

२०० ननु तिनकूं विद्याकी व्यर्थता इष्टहीं है ? यह सिद्धांतीकी आशंका करिके पूर्ववादी कहैहै ॥ इहां यह अर्थ है:–सो परमात्मा आप अज्ञात हुया इस अधिकारीकूं अपवर्ग (मोक्ष) के प्रदानकरि पालन करता नहीं । ऐसा श्रुतिवाक्य विद्याविना अमृतभावके प्रति कहनेवालेकूं विरुद्ध होवैगा ॥

२०१ ऊर्ध्वरेताओंके अमृतभावकूं आपेक्षिक होनेतैं ति-

ओरतैं भूतनके प्रलयरूप स्थानकूं इहां अमृतभावकरि विवक्षित होनेतैं ॥ [२०२] तहांहीं पौराणिकोंनैं कहा हैः—"आभूतसंप्लव (महाप्रलय) रूप स्थान जातैं अमृतभाव कहियेहै" ऐसैं ॥ औ जो [२०३] तिस (महाप्रलयरूप आपेक्षिक अमृतभाव)की अपेक्षासैं आत्यंतिक (निरपेक्ष) अमृतभाव है "तहां दक्षिण [मार्गकेगामी] नहीं जाते हैं । सो अविदित हुया याकूं नहीं पालन करैहै" इत्यादिक श्रुतियां हैं । यातैं विरोध नहीं है ॥ ॥ [२०४] ननु "फेर आवर्त्तन क-

---

सविषै विद्याकी व्यर्थता हीं है । ऐसैं सिद्धांती परिहारकरैहैं ॥

२०२ आपेक्षिक अमृतभाव है । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां जहां प्रजा कामनाकरती हुयी मुक्तिकेभागी नहीं होवैहैं । ऐसें कहा ॥ तहांहीं (ताकी संनिधिविषै) यह अर्थहै ॥

२०३ ननु तब यथोक्त श्रुतिके विरोधका समाधान कैसैं होवैहै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां आदिशब्द "ताकूं ऐसैं जानताहुया इहां अमृत होवैहै" इत्यादि श्रुतिके संग्रह अर्थ है ॥

२०४ ननु आपेक्षिक अमृतभावके हुये श्रुतिका विरोध परिहार करनेकूं शक्य नहीं होवैहै ? ऐसैं पूर्ववादी शंका

रता नहीं" ऐसें औ "इस मानव आवर्त्तके तांई आवर्त्तन करता नहीं" इत्यादि श्रुतिनका विरोध होवैगा? ऐसें जो कहै[२०५]। सो बनै नहीं:—काहेतें "इस मानव[कूं]" इस विशेषणतें "तिनकूं इहां (इस कल्पविषै) पुनरावृत्ति नहीं है" ऐसें [जानियेहै]। [२०६]जब निश्चयकरि नियमसैंहीं आवृत्तिकूं करै नहीं तब " इस मानव[कूं] " औ "इहां" ये दो विशेषण व्यर्थ होवैंगे॥ ॥ ननु "इसकूं औ इहां" ऐसें आकृतिमात्र कहियेहै? ऐसें जो कहै। [२०७]सो बनै नहीं:—काहेतें अनावृत्तिशब्दकरि हीं नित्य अनावृत्तिरूप अर्थकूं प्र-

---

करैहै॥ इहां आदिशब्द "तिनकूं इहां पुनरावृत्ति नहीं होवैहै" इत्यादि वाक्यके संग्रह अर्थ है॥

२०५ " इस [मानव आवर्त्त]कूं औ इहां " इन दो विशेषणोंके आश्रयकरि सिद्धांती निराकरण करैहैं॥

२०६ ताहीकूं व्यतिरेकरूप मुख (द्वार)करि स्पष्ट करैहैं॥

२०७ सर्व कल्पोंविषै श्रुतिकूं एतादृश (इसप्रकारकी) होनेतें "इसकूं औ इहां" इन दो पदोंके सामान्यकरि सर्वकल्पोंविषै विशेषणकी व्यर्थता दुर्वार (अनिवार्य) है। ऐसें सिद्धांती उक्तशंकाके उत्तरकूं कहैहैं॥

तीतहोनेतैं आकृतिकी कल्पना व्यर्थ है ॥ [२०८] यातैं "इसकूं औ इहां" इन दो विशेषणोंके अर्थवान् होनेअर्थ अन्यत्र (अन्यकल्पविषै) आवृत्ति कल्पना करनेकूं योग्य है [२०९] औ "सत् एकहीं अद्वितीय है" ऐसैं प्रत्ययवानोंका मस्तकगत सुषुम्णा नाडीकरि अर्चिरादिमार्गसैं गमन नहीं संभवैहै। काहेतैं "[२१०] ब्रह्म हीं हुया ब्रह्मकूं पावताहै। तातैं सो सर्व होताभया। ताके प्राण उत्क्रमण करते नहीं इहां हीं विलीनहोतेहैं" इत्यादि सैंकडों श्रुतिनतैं ॥ [२११] ननु "उत्क्रमण करनेकूं इ-

---

२०८ अन्यप्रकारसैं विशेषणोंके अर्थके संभवहुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां जिसकल्पविषै ब्रह्मलोककी प्राप्तिहोवैहै तिसतैं अन्यकल्प "अन्यत्र" ऐसैं कहा ॥

२०९ आश्रमधर्ममात्रविषै निष्ठावाले ऊर्ध्वरेताओंकूं आपेक्षिक अमृतभाव कहा। अब साक्षात् कियाहै ब्रह्मतत्व जिनोंनैं ऐसे तिनहीं ऊर्ध्वरेताओंकूं आत्यंतिक अमृतभाव गतिकी अपेक्षासे रहित सिद्ध होवैहै। ऐसैं कहैहैं ॥

२१० तिनकूं गति (गमन) आदिककी अपेक्षासैं रहित आत्यंतिक अमृतभाव होवैहै । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

२११ ननु "तिसतैं प्राण उत्क्रमण करतेनहीं" इस माध्यंदिन शाखावालोंकी श्रुतिकूं अनुसरिके "तिस (ज्ञानी)

च्छनेवाले तिस जीवतैं प्राण उत्क्रमण करते नहीं किंतुसाथिहीं गमनकरतेहैं" ऐसा यह अर्थ कल्पना करियेहै ? ऐसैं जो कहै। सो[२१२] बनै नहीं:- काहेतैं "इहां हीं विलीन होतेहैं" इस विशेषणकूं व्यर्थ होनेतैं औ [२१३] सर्व प्राण (इंद्रिय) पीछे उत्क्रमण करतेहैं । ऐसैं प्राणोंके साथि जीवके गमनकूं प्राप्त होनेतैं । तातैं उत्क्रमण करतेहैं । यामैं यह शंका हीं नहीं है ॥ [२१४] जब वी मोक्षकूं संसाररूप गतितैं विलक्षण होनेतैं प्रा-

---

के प्राण उत्क्रमण करतेनहीं" इत्यादि काण्व शाखा वावालोंकी श्रुति वी लगानेकूं योग्य है ? ऐसैं पूर्ववादी शंका करैहै ॥

२१२ वाक्यशेषके विरोधतैं इस प्रकार बनै नहीं। ऐसैं सिद्धांती दूषण देतेहैं ॥

२१३ अन्य श्रुतिकी आलोचना (विचार) के हुयेबी स्वयूथ्य (वेदांतके एकदेशी) की कल्पना बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां प्राणोंकरि सहित जीवके । यह शेष है ॥

२१४ ननु संसारदशाविषै प्राणोंकरि सहित विज्ञानात्मा (जीव)के गमनके हुयेबी मोक्षविषै प्राणोंका जीवकरि सहित गमन नहींहै ? इस आशंकाके हुये "तिसतैं प्राण उत्क्रमण करतेनहीं" इत्यादिवाक्य है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

णोंके जीवके साथि अगमनकूं आशंकाकरिके "तातें उत्क्रमण करते नहीं" ऐसें कहियेहै? तब बी "इहां हीं विलीन होतेहैं" यह विशेषण व्यर्थ होवैगा ॥ औ[२१५] प्राणोंकरि वियुक्तकूं गति वा[२१६] जीवभाव नहीं संभवैहै । काहेतें सत्[२१७] रूप आत्माकूं सर्वगत होनेतें अरु निरवयव होनेतें अरु जातें अग्नितें विस्फुलिंगकी न्यांई जीव-

२१५ ननु प्राणोंका इहांहीं विलय होहू। तथापि जीवके गमनके अधीन अमृतभाव है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां "किसके उत्क्रांतहुये मैं उत्क्रांत होवोंः—वा किसके प्रतिष्ठितहुये मैं प्रतिष्ठित होवों। ऐसें सो प्राणकूं सृजताभया" इस श्रुतितें। यह शेष है ॥

२१६ किंवा प्राणोंसैं वियुक्त चिदात्माकूं जीवभाव नहीं संभवैहै। काहेतें प्राण उपाधिवालेहीं तिसकूं जीवशब्दका वाच्य होनेतें। ऐसें कहैहैं ॥

२१७ उक्त अर्थकूं समर्थनकरैहैं ॥ इहां चिदात्मा प्रसिद्ध कल्पनाविषै अधिष्ठानके होते जातें निर्भाग (विभागरहित) सर्वका आत्मा है तातें अग्नितें विस्फुलिंगकीन्यांई जीवभाव नाम भेदकासंपादन ताकूं प्राणका संबंधमात्रहींहै। यह वैदिकोंकूं प्रसिद्ध है। तैसें हुये प्राणोंके वियोगके होते चिदात्माकूं जीवभाव वा गति कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है ॥ औ यातें (तातें) याका पूर्णता आदिककी प्रतिपादक श्रुतिनकूं प्रमाण होनेतें। यह अर्थ है ॥

भाव नामक भेदका कारण प्राणोंसैं संबंधमात्र-हीं है। जातैं ता (प्राणसंबंध)के वियोगके हुये जीवभाव वा गति (गमन) कल्पना करनेकूं शक्य नहींहै औ श्रुतियां जब प्रमाणहैं तब [२१८]सैंतूतैं जीवनामक अणु अवयव स्फुटित (फुट्या) हुया सत् रूपके प्रति छिद्र करता-हुया गमन करैहै। ऐसैं कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है। [२१९]तातैं "तिस (नाडी)करि ऊर्ध्वके तांईं गमन करता हुया अमृतभावकूं पावता है" ऐसैं सगुणब्रह्मके उपासकका प्राणोंके साथि नाडीकरि गमन औ सापेक्ष हीं अमृतभाव होवैहै। साक्षात् मोक्ष नहीं। ऐसैं जानियेहै

---

२१८ ननु सर्वगत सदात्माके जीवनामक भेदका करना प्राणउपाधिका किया नहीं किंतु स्वतःहीं ताका अंश जीव है। तैसैं हुये अग्नितैं विस्फुलिंगकीन्यांईं ताकी गतिका संभव है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां "निष्कल निष्क्रिय शांत है" इत्यादि श्रुतितैं। यह शेष है॥

२१९ प्रकरणके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां तातैं। याका निर्गुण ब्रह्मके वेत्ताओंके आत्यंतिक अमृतभावकूं गमन आदिककी अपेक्षासैं रहित होनेतैं। यह अर्थ है ॥

साधिकारी उत्तरमार्ग दक्षिणमार्ग औ तृतीयस्थान १०

"[२२०]तहां अपराजिता पुरी है । तहां ऐर (रसविशेषकरि पूर्ण) अरु मदीय (हर्षका उत्पादक होनेकरि मदकर) सर है" इत्यादि कहिके "तिनहींकूं यह ब्रह्मलोक होवैहै" इसविशेषणतैं॥ [२२१]यातैं पंचाग्निके वेत्ता गृहस्थ औ जे ये अ-

---

२२० सगुण ब्रह्मके उपासककूं सापेक्ष (गतिआदिककी अपेक्षावाला) अमृतभाव होवैहै । इस अर्थविषै विशेषणकी श्रुतिकूं अनुकूल करैहैं ॥ इहां आदिपदकरि? "तहां अश्वत्थ (पिप्पलवृक्ष) सोमसवन (अमृतके स्राववाला) है" इत्यादि ग्रहण करियेहै औ "तिनहीं ब्रह्मवेत्ताओंकूं यह पूर्व उक्त विशेषगुणवाला सत्यनामक ब्रह्मका लोक होवैहै अन्य अकृतात्माओंकूं (पुण्यरहित चित्तवालोंकूं) नहीं" ऐसैं विशेषके दर्शनतैं अमृतभाव तिनकूं तिस लोकके निवासिनकरि सम सापेक्षहीं होवैहै । ऐसैं निर्धारित है । यह अर्थ है ॥

२२१ आश्रममात्रविषै निष्ठावाले ऊर्ध्वरेताओंकूं बी ब्रह्मलोक प्राप्त होवैहै । फेर विद्वान् (पंचाग्निके वेत्ता वा सगुण ब्रह्मके उपासक)हीं गृहस्थनकूं [ब्रह्मलोक प्राप्त होवैहै] ऐसैं उपपादन करिके । प्रकृत श्रुतिके व्याख्यानकूं अनुसरतेहैं ॥ इहां यातैं । याका पूर्व उक्त पारिशेष्यआदिकके वशतैं । यह अर्थहै औ परिव्राजक । ऐसैं अमुख्य संन्यासी त्रिदंडी ग्रहण करियेहैं । काहेतैं मुख्य संन्यासिनकूं "ब्रह्मसंस्थ (ब्रह्मनिष्ठ) अमृतभावकूं पावताहै" ऐसैं पृथक् किया होनेतैं औ "श्रद्धाकूं सत्यकूं ऐसैं उपासतेहैं" यह अन्य श्रुति है । औ पंचाग्निके

रण्य (वन) विषै वानप्रस्थ अरु परिव्राजक नैष्ठिकब्रह्मचारिनकरि सहित "श्रद्धा अरु तप" ऐसें इस श्रद्धाआदिककूं उपासतेहैं ॥ अर्थ यह जोः—श्रद्धालु औ तपस्वी हैं" [इहां उपासनशब्द तात्पर्यरूप अर्थवाला है] जैसें "इष्ट पूर्त्त अरु दत्त" ऐसें उपासतेहैं यह है औ अन्यश्रुतितें जे हिरण्यगर्भनामक सत्यब्रह्मकूं उपासतेहैं। वे सर्व अर्चिकूं कहिये अर्चिकी अभिमानिनी देवताकूं पावतेहैं॥[२२२] अन्य [अर्थ] चतुर्थ अध्याय उक्त गतिके व्याख्यानकरि समान है। [२२३] यह देवयानमार्ग व्याख्यान किया सो सत्यलोकरूप अवसानवाला है। [२२४] ब्रह्मांडतैं बाहिर नहीं।

वेत्ता गृहस्थ अरु स्वआश्रममात्रविषै तत्पर ऊर्ध्वरेता सत्य ब्रह्मके उपासक। ये दोनूं सर्व शब्दकरि कहियेहैं ॥

२२२ चतुर्थ अध्यायविषै जो उपकोसलकी विद्याविषै गतिका व्याख्यान व्यतीत भया। तिसकरि समान "अर्चितैं दिवसकूं" इत्यादि वाक्यका व्याख्यान है। ऐसें हुये सो पृथक् कर्तव्य नहींहै। ऐसें कहैहैं ॥

२२३ उत्तरमार्गके व्याख्यानकूं उपसंहार करैहैं ॥

२२४ देवयान मार्गकरि ब्रह्मांडतैं बाहिर स्थित ब्रह्म गं-

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्त्ते दत्तमि-

अर्थः–औ जे ये ग्रामविषै इष्ट पूर्त्त

काहेतैं [225]"जो पिता (स्वर्गलोक)के प्रति औ माता (पृथिवी)के प्रति मध्यविषै" इस मंत्र-वर्णतैं ॥ १ ॥ २ ॥

टीकाः–इहां अथशब्द अन्य अर्थकी प्रस्तावनाकेअर्थ है ॥ औ जे ये गृहस्थ ग्रामविषै [इहां] "[226]ग्रामविषै" यह गृहस्थनका असाधारण

तव्य (प्राप्य) है । ऐसैं केईक पूर्ववादी (भर्तृप्रपंचके अनुसारी) मानतेहैं । तिनके प्रति कहैहैं ॥

२२५ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थहैः–पिताके प्रति कहिये स्वर्गलोकके प्रति औ माताके प्रति कहिये पृथिवीके प्रति मध्यविषै इन दो मार्गनकूं मैं सुनताभयाहूं तिन दो मार्गोंकरि इस कर्म ज्ञानके आश्रित विश्वके प्रति गमन करताहै औ ब्रह्मांडतैं बाहिर दो गतियां नहीं हैं ॥

२२६ "इस [लोक]तैं ऊपर जिसके प्रति प्रजा जावैहैं सो [क्या] जानताहैं" इस प्रश्नका प्रति वचन । देवयान मार्गके उपदेशकरि व्याख्यान किया ॥ अब पितृयाण मार्गके उपदेशकरिवी ग्राम निवासीपनेके अविशेषतैं [सर्व आश्रमोंके निमित्त व्याख्यान करियेहै] यह आशंका करिके कहैहैं ॥

त्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति धूमा-
द्रात्रिं रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्द-

अरु दत्तकूं ऐसैं उपासते हैं। वे धूमकूं पावतेहैं। धूमतैं रात्रिकूं। रात्रितैं कृष्ण-पक्षकूं। कृष्णपक्षतैं जिन षट् मासोंकूं

(इसएकविषैहीं वर्त्तनेवाला) विशेषण अरण्य-वासीनतैं व्यावृत्ति (गृहस्थनके भेदज्ञान)अर्थ है। २२७ जैसें वानप्रस्थनका अरु परिव्राजकोंका अरण्य विशेषण गृहस्थनतैं व्यावृत्तिअर्थ है। ताकी-न्यांई] इष्ट जो अग्निहोत्रादिवैदिक कर्म औ

इहां यह अर्थहै:—जातैं पत्नी सहित जो वास सो ग्राम ऐसैं कहिये है औ पत्नीसहितपना ऊर्ध्वरेताओंकूं उक्त नहींहै। तैसें हुये गृहस्थनका हीं ग्रामरूप विशेषण असाधारणहै औ सो व्यर्थ नहीं है। काहेतैं ऊर्ध्वरेताओंतैं तिन गृहस्थनकी व्यावृत्तिरूप अर्थवाला करैहैं॥

२२७ ताहींकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट कहैहैं॥ इहां वेदी विषै अंतर्भावके निषेधतैं "बहिर्वेदि" ऐसा विशेषणहै औ आदि-विषै "दत्त" ऐसैं प्रतीकका ग्रहणहै सो फेर व्याख्यानकियेका अनुवादहै। यातैं अपुनरुक्ति (पुनरुक्तिरूप दोषका अभाव) हैं॥

क्षिणैति मासाꣳस्तान्नैते संवत्सरमभि-
प्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

[सूर्य] दक्षिणादिशाकेतांई जाता है तिन (मासन)कूं ॥ ये संवत्सरकूं पावते नहीं ॥ ३ ॥

पूर्त्त जो वापी कूप तडाग अरु आराम (बगीचा) आदिकका करना औ दत्त जो यज्ञकी वेदितैं बाहिर जैसैं होवै तैसैं यथाशक्ति योग्य पात्रोंकेअर्थ द्रव्यका सम्यक् विभागरूप दान। २२८ ऐसैं इस प्रकारके परिचरण (सेवन) अरु परित्राण (रक्षण) आदिककूं उपासते हैं ॥ २२९ इति शब्दकूं प्रकारके दिखावनेरूप अर्थवाला

---

२२८ इति शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां परिचरण गुरुआदिककी शुश्रूषा है औ परित्राण रक्षण है औ आदिपद नित्यस्वाध्यायआदिकके ग्रहण अर्थ है औ उपासतेहैं। याका तात्पर्यकरि अनुष्ठान करतेहैं। यह अर्थ है ॥

२२९ ननु इतिशब्दकूं यथोक्त अर्थवान्‌पना कैसैं होवैगा।

होनेतैं [इहां (इसप्रकारके) ऐसैं कहा]। वे गृहस्थ दर्शन (उपासन) करि रहित होनेतैं धूमकूं कहिये धूमकी अभिमानिनी देवताकूं पावते हैं। तिसदेवताकरि अतिवाहित (चलायमान) हुये धूमतैं रात्रिकूं कहिये रात्रिकी देवताकूं। रात्रितैं अपरपक्ष (कृष्णपक्ष)की अभिमानिनी देवताकूं। अपरपक्षतैं जिन षट्मासोंकेतांई सूर्य दक्षिण कहिये दक्षिणदिशाकेतांई जाताहै तिन मासोंकूं॥ अर्थ यह जोः—दक्षिणायनरूप षट्मासोंकी अभिमानिनी देवताओंकूं पावते हैं॥ तहांतैं संगचारिणी (साथिचलनेवाली) षट्मासनकी देवता हैं। यातैं तिनविषै "मासोंकूं" ऐसैं बहुवचनका प्रयोग है॥ [२३०] ये प्रकृतकर्मी संवत्सरकूं क-

---

काहेतैं "ऐसैंहीं उपाध्याय कथन करैहै" याकीन्यांई इति शब्दकूं प्रकृत (प्रसंगतैं प्राप्त अर्थ) मात्रविषै गामी होनेतैं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥

२३० देवयानके अधिकारीनतैं पितृयाणके अधिकारीनविषै अन्यविशेषकूं कहैहैं॥

हिये संवत्सरकी अभिमानिनी देवताकूं पावते नहीं ॥　॥ ननु[231] फेर संवत्सरकी प्राप्तिका प्रसंग काहेतें भया । जातें निषेध करियेहै ? [तहां कहैहैं:-]प्रसिद्ध[232] प्रसंग है । जातें एक संवत्सरके अवयवभूत दक्षिणायन अरु उत्तरायण हैं । तिन दोनूंमेंसें अर्चिरादिमार्गकरि प्रवृत्त भये पुरुषनकूं उत्तरायणरूप मासोंतें अवयवी संवत्सरकी प्राप्ति कहीहै । यातें इहांबी ता (संवत्सर)के अवयवभूत दक्षिणायनरूप मासोंकी प्राप्तिकूं सुनिके तिनके अवयवी संवत्सरकीबी पूर्वकीन्यांई प्राप्ति प्राप्त भई । यातें तिस (संवत्सर)की प्राप्ति प्रतिषेध करियेहै "ये संवत्सरकूं पावते नहीं" ऐसें ॥ ३ ॥

---

२३१ ननु यह अप्राप्तका प्रतिषेध है ? ऐसें पूर्ववादी शंका करैहै ॥

२३२ प्राप्तिकूं दिखावतेहुये सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां पूर्ववत् (पूर्वकीन्यांई) । याका जैसें पूर्व देवयानमार्गकरि मासरूप अवयवनतें अवयवी संवत्सरकी प्राप्ति होवैहै । तैसें । यह अर्थ है ॥

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादा-

अर्थः—मासनतैं पितृलोककूं। पितृलो-

टीकाः—मासोंतैं पितृलोककूं पितृलोकतैं आकाशकूं। आकाशतैं चंद्रमाकूं॥ ॥ कौंन यह चंद्रमाहै जो तिन (कर्मिन) करि प्राप्त करियेहै? जो यह अंतरिक्षविषै सोमरूप ब्राह्मणोंका राजा देखियेहै। सो देवनका अन्न है। तिस चंद्रमारूप अन्नकूं इंद्रादिक देव भक्षणकरतेहैं। यातैं वे कर्मी धूमआदिक मार्गकरि जायके चंद्रभूत हुये देवनकरि भक्षण करियेहैं॥ ॥ [२३३]ननु जब अन्नरूप हुये वे कर्मी देवनकरि भक्षण करियेहैं तब इष्टआदिक कर्मका करना अनर्थके अर्थहीहै? [२३४]यह दोष नहीं है:—काहेतैं "अन्न" इस शब्दकरि उपकरण

२३३ अन्य शब्दके यथाश्रुत अर्थकूं ग्रहणकरिके पूर्ववादी शंका करैहै॥

२३४ अब सिद्धांती औपरिचारिक (आरोपकरि किये कथनमात्र) अर्थकूं ग्रहणकरिके परिहार करैहैं॥

काशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥ ४ ॥

कतैं आकाशकूं। आकाशतैं चंद्रमाकूं॥ यह सोमराजा। सो देवनका अन्न है। ता (चंद्रमारूप अन्न)कूं देव भक्षण करते हैं॥ ४॥

(भोगके साधन) मात्रकूं विवक्षित होनेतैं। जातैं वे कर्मी कवल (ग्रास)नके मुखमैं डालनैसैं देवनकरि नहीं भक्षण करियेहैं किंतु वे स्त्री पशु भृत्य (किंकर) आदिककीन्यांई देवनका उपकरण मात्र होवैहैं॥ औ [२३५] उपकरणों विषे अन्नशब्द देख्याहै "राजाओंका स्त्रियां अन्नहैं पशु अन्न हैं प्रजा अन्न हैं" इत्यादि॥ औ तिन [२३६] स्त्री आदिकनकूं पुरुषकरि उपभो-

---

२३५ ननु वृद्धोंके प्रयोगविना उपकरणरूप विषय (अर्थ)वाला अन्नशब्द कैसैं व्याख्यान करियेहै? तहां कहैहैं॥

२३६ ननु कर्मीनका देवनकेप्रति उपकरण (भोगका साधन)पना होहु। तथापि आप (करि) उपभोगके अभावतैं

ग्यता (भोग्यकी साधनता)के हुये बी उपभोग नहीं है ऐसैं नहीं। तातैं कर्मीजन देवनके उपभोग्य बी हुये सुखी हुये देवनके साथि क्रीडाकूं करतेहैं औ तिनका[237] शरीर सुखके उपभोगके योग्य चंद्रमंडलविषै आप्य (जलरचित) आरंभ करियेहै ॥ सो[238] पूर्व कहा है:—"श्रद्धाशब्दके वाच्य जे जलहैं वे स्वर्गलोकरूप अग्निविषै हुत हुये सोमराजा संभवैंहै" ऐसैं ॥ वे जल[239] कर्मसंबंधी हुये अरु इतर भूतोंकरि अनुगत (व्याप्त) हुये स्वर्गलोककूं पायके चंद्रभावकूं प्राप्त हुये इष्टआदिकके उपासकोंके शरीर

इष्ट (अग्निहोत्रादि) आदिककर्मका करना अनर्थकर होवैगा ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२३७ इहां अन्योंकरि उपभोग्य (भोगनेकूं योग्य)नकूंबी आपके भोगका सद्भाव "तातैं" ऐसैं कहियेहै। तथापि मृत भये अरु शरीररहित तिनकूं मुख्य उपभोग कैसैं संभवै है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२३८ ननु जलोंकूं चंद्रलोकविषै तिनके देहकी आरंभकता कैसैं है ? सो कहैहैं ?

२३९ ननु अब जलोंकी सोम (चंद्र)रूपताहीं इहां प्रतीत होवैहै परंतु कर्मीनके देहकी आरंभकता नहीं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

तस्मिन्यावत्सम्पातमुषित्वाऽथैतमे-

अर्थः–तिस (चंद्रमंडल)विषै यावत्सं-
पात (कर्मके क्षयपर्यंत) निवासकरिके अ-

आदिकके आरंभक होवैहैं औ [240]अग्निविषै अंत-
संबंधी शरीररूप आहुतिके हुत हुये अग्निकरि
शरीरके दह्यमान हुये तिसतें उत्पन्न जल धू-
मके साथि यजमानकूं वेष्टन करिके ऊर्ध्व चंद्र-
मंडलके प्रति प्राप्त होयके कुश (दर्भ) अरु
मृत्तिका स्थानीय (उपकरणभूत) बाह्य श-
रीरके आरंभक होवैहैं औ [241]तिनकरि आरंभ
किये शरीरसैं इष्ट आदिक कर्मके फलकूं भो-
गते हुये वे कर्मी स्थितहोवैहैं ॥ ४ ॥

टीकाः–[242]जहांलगि तिस उपभोगके निमित्त

---

२४० ननु कर्मसमवायी (कर्मसैं संबंधी) अरु कर्मके अ-
पूर्व (तज्जन्यसंस्कार)द्वारा यजमानके देहविषै स्थित जलोंका
स्वर्गलोक आदिकविषै प्रवेश आदिक कैसैं संभवैहै ? यह
आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२४१ जलोंकरि आरंभ किये शरीरकी भोगायतनता (भोगके
योग्य स्थानरूपता)कूं दिखावैहैं ॥

२४२ "सो देवनका अन्न हैं" इत्यादिवाक्यकूं व्याख्यान

वाध्वानं पुनर्निवर्त्तन्ते । यथेतमाकाश-

नंतर इसी (वक्ष्यमाण) मार्गकेताँई जैसैं आये तैसैं फेर निवर्त्त होते हैं (पीछे लौटते हैं)॥ [इस चंद्रलोकतैं] आकाशकूं ।

कर्मका क्षयहोवै [सम्यक्[२४३] पतन होतेहैं जिस करि सो संपात है ऐसा जो संपात कहिये कर्मका क्षय सो यावत् संपात है । अर्थ यह जो जहांलगि कर्मका क्षय होवै] तहांलगि तिस चंद्रमंडलविषै निवास करिके अनंतर इसीं हीं (वक्ष्यमाण) मार्गकेताँई फेर निवर्त्त होतेहैं ॥ इहां "फेर[२४४] निवर्त्तहोतेहैं" इस प्र-

करिके । अब "तिसविषै" इत्यादि पंचमवाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां तिस उपभोगतैं । इस पदविषै जो तत् (तिस) शब्द है ताका अर्थ चंद्रलोक है ॥

२४३ ननु "यावत् संपात होवै तावत् निवासकरिके" ऐसैं इसवाक्यविषै सुनिये है । आपकरि अन्यथा (अन्यप्रकारसैं) कैसैं व्याख्यान करियेहै ? तहां कहैहैं ॥

२४४ पुनः (फेर)शब्दके प्रयोगके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

माकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥ ५ ॥

आकाशतैं वायुकूं। वायु होयके धूम होवैहै। धूम होयके अभ्र (बादल) होवैहै ॥ ५ ॥

योगतैं पूर्व बी वारंवार चंद्रमंडलकेतांई प्राप्त औ तिसतैं निवृत्त होतेभये ऐसैं जानियेहै। [२४५]तातैं इस लोकविषै इष्टआदिक कर्मकूं जमा करिके चंद्रलोककूं जातेहैं औ तिस (कर्म)के क्षयभये आवर्तनकूं करतेहैं (इस लोकके तांई पीछे आतेहैं)। क्षणमात्र बी तहां स्थित होनेकूं प्राप्तहोता नहीं। काहेतैं [२४६]स्थितिके निमित्त कर्म-

---

२४५ "अथ (औ)" इत्यादि (तृतीयआदिक) वाक्यनके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

२४६ तत् (तातैं) शब्दकरि स्मरण किये हेतुकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं दीपकी स्नेह (तैल)के क्षयभये स्थितिनिमित्तके अभावतैं अस्थिति होवैहै। तैसैं चंद्रलोकविषै स्थितिके निमित्त इष्टआदिकके भोगकरि क्षयतैं तहां स्थितिके असंभवतैं आवृत्तिहीं होवैहै ॥

के क्षयतैं । स्नेह (तैल)के क्षयतैं प्रदीपकी न्यांई ॥ ॥ [२४७] ननु जिस कर्मकरि चंद्रमंडलके तांई आरूढ भयाहै तिस सर्वके क्षय हुये क्या तिस (चंद्रमंडल) तैं अवरोहण (उतरणा) होवैहै किंवा सावशेष (अवशेष रहै कर्मकरि सहित) हुया [अवरोहणकूं करताहै] ऐसैं दो पक्ष हैं । [२४८] तिनतैं क्या होवैहै । [२४९] जब सर्वहीं कर्मका क्षय होवै तब चंद्रमंडलविषै स्थित पुरुषकूंहीं मोक्ष प्राप्त होवैहै ॥ किंवाः—[२५०] प्रथम तहां

२४७ "इसविषै यावत् संपात (पतन) होवै तावत् निवास करिके" इस वाक्यविषै विचारकूं करैहैं ॥ इधर "तहां" याका तिस चंद्रमंडलके प्रापक औ अतिरिक्त सर्व कर्मके क्षयके हुये । यह अर्थ है औ सावशेष । याका भुक्तकर्मतैं अतिरिक्त (भिन्न) किसीबी कर्मकरि सहित हुया । यह अर्थ है ॥

२४८ उभयपक्षविषैबी पूर्ववादी फलकूं पूंछता है ॥

२४९ तिनमैं प्रथम पक्षकूं पूर्ववादी पूर्वपक्षद्वारा निषेध करताहुया ताके फलकूं कहैहै ॥

२५० तिस (प्रथमपक्ष) विषैहीं पूर्ववादी अन्य दूषणकूं कहैहै ॥ इहां "तहांहीं" इस सप्तमीका अर्थ चंद्रमंडल है औ तातैं । याका चंद्रमंडलतैं । यह अर्थ है औ "इहां" ऐसैं इसलोककी उक्ति है औ शरीर अरु उपभोगआदि ।

(चंद्रमंडलविषै) हीं मोक्ष होवै वा नहोवै यह रहो। परंतु तिसैं[२५१] (चंद्रमंडल)तैं आगत (आये पुरुष)कूं [शेषकर्मके अभावतैं] इसलोकविषै शरीर अरु उपभोगआदिक नहीं संभवैहै । औ तातैं "शेषकरि" इत्यादि स्मृतिका विरोध होवेगा? ननु[२५२] (निश्चयकरि) इष्ट पूर्त्त अरु दत्तरूप कर्म विनाबी मनुष्य लोकविषै शरीर अरु उपभोगके निमित्त अनेक कर्म संभवै हैं औ तिनकर्मोंका[२५३] चंद्रमंडलविषै उपभोग नहीं होवैहै।

यह आदिपद शुभ अशुभके अनुसारी सर्व व्यापारके संग्रह अर्थ है ॥

२५१ सर्व कर्मके क्षयरूप प्रथम पक्षविषै केवल युक्तिहीं विरोधकूं पावती है ऐसैं नहीं किंतु स्मृतिबी विरोधकूं पावती है । ऐसैं पूर्ववादी कहैहै ॥ इहां यह अर्थ हैः-"चंद्रलोकविषै भोगनेयोग्य कर्मके भोगकरि क्षयतैं पीछे शेष अभुक्त कर्मकरि जन्मकूं पावते हैं" इत्यादि स्मृति है सो सर्व कर्मके क्षयरूप प्रथमपक्षके हुये विरोधकूं पावैहै ॥

२५२ सर्व कर्मके क्षयरूप प्रथमपक्षके अन्यथावादी पूर्वपक्षीकरि निषेध कियेहुये सावशेष (भुक्तकर्मतैं भिन्न कर्मकरि सहितता) रूप द्वितीयपक्षकूं उत्तरवादी (सिद्धांती) ग्रहण करैहैं ॥

२५३ ननु वे (भिन्नकर्म)बी चंद्रमंडलविषै भोगेहींहैं।

जातैं वे कर्म अक्षीण हैं। औ जिसैं[254] निमित्त चंद्रमंडलकेतांई आरूढ (आरोहकूं प्राप्त) भया है वे कर्महीं क्षीणभये। ऐसैं अविरोध है औ [255]शेषशब्द जो है सो सर्वकर्मोंके कर्मत्वरूप सामान्य (जाति)तैं अविरुद्ध है ॥ औ याहींतैं[256] तहां (चंद्रमंडलविषै)हीं मोक्ष होवैगा। इस दोषका

यातैं अवशेष नहींहै? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:-जातैं सर्व कर्मोंके वशतैं चंद्रमंडलकी प्राप्ति नहीं होवैहै ॥

२५४ ननु तब चंद्रमंडलविषै कर्मफलके उपभोगके अभावतैं ताके तांई आरोहण (चढने)करि अलं (पूर्ण) भया? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां अविरोध है चंद्रमंडलविषै भोगका अरु शेषकर्मके सद्भावका। यह शेष है ॥

२५५ औ जो "तिसतैं शेषकरि" इत्यादि स्मृतिका विरोध है? ऐसैं कहा। तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-निःशेषबी भुक्त कर्मोंविषै अरु अभुक्त कर्मोंविषै शेषशब्द विरोधकूं पावता नहीं। काहेतैं अभुक्त कर्मोंके कर्मभावकूं तुल्य होनेतैं। इहां सावशेष पक्षविषै स्मृतिका विरोध नहीं है ॥

२५६ जो कहाकि:-चंद्रमंडलविषै स्थितकाहीं मोक्ष होवैगा? ऐसैं। तहां कहैहैं ॥ इहां याहींतैं। याका शेष कर्मके सद्भावतैंहीं। यह अर्थ है ॥

अभाव है ॥ औ विरुद्ध[257] अनेक योनिनके उपभोगरूप फलवाले कर्मौंकूं एक एक जंतु(शरीर) की आरंभकताके संभवतैं [कर्मशेषकी सिद्धि है] ॥ औ ऐक[258] जन्म (शरीर)के हुये सर्व कर्मोंका क्षय नहीं संभवैहै औ ब्रह्म[259]हत्याआदिक एक एक कर्मकूं अनेक जन्मोंकी आरंभकताके स्मरणतैं औ उत्कर्षके हेतु कर्मकूं स्थाँ[260]वरआदिभावकूं प्राप्त अत्यंत मूढोंकी आरंभकताके असंभवतैं औ गर्भ[261]भूत मूर्च्छित जंतुनकूं कर्मके

२५७ यातैंबी कर्मशेषकी सिद्धि है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां आरंभकर्ताके संभवतैं एक जाति (जन्म)करि उपभोग करनेयोग्य कर्मके क्षयहुयेबी कर्मशेष संभवैहै। यह शेष है ॥

२५८ औ एक जन्मविषै सर्व क्षीण होवैहैं कर्मके आशयकूं एक भविक (एक जन्मका हेतु) होनेतैं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—एक भविक (एक जन्म होनेके) न्यायकूं ऊपरके ग्रंथकरि निराकरण किया होनेतैं ॥

२५९ इसतैंबी शेषकर्मकी सिद्धि है ॥ इहां "श्वान शूकर खर अरु उष्ट्रनके [जन्मकूं ब्रह्महत्यावाला पावता है]" इत्यादि स्मरण (स्मृतिवाक्य) है ॥

२६० ननु घृतभांडके स्नेहके शेषकीन्यांई भुक्तकर्मकेहीं शेषतैं पुनरावृत्ति होवैगी ? यातैं कहैहैं ॥

२६१ कर्मशेषकी सिद्धिविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

असंभव हुये संसारका असंभव है। तातें[२६२] एक-जन्मविषै सर्व कर्मोंका उपभोग नहीं होवैहै ॥ औ जो[२६३] किनोंकरि कहियेहै किः—मरणकाल-विषै सर्व कर्मोंके आश्रयके उपमर्दकरि कर्मोंकूं जन्मका आरंभकपना है। तैसें[२६४] हुये केईककर्म अनारंभकपनैकरिहीं स्थित होवैहैं औ केईक अन्य जन्मकूं आरंभकरते हैं। ऐसें नहीं संभवै है। काहेतें मरणकूं सर्वकर्मका अभिव्यंजक

---

२६२ कर्मशेषके सद्भावकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां एककर्मकूंबी अनेक जन्मकी हेतुता तत् (तातें) शब्दका अर्थ है ॥

२६३ अन्य मतकूं उठावतेहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जहांलगि प्रवृत्त (प्रारब्ध) फलवाला कर्म नहीं क्षीण होवैहै तहांलगि प्रवृत्तिके प्रतिबंधतें अन्य कर्म स्वफलकूं आरंभ करते नहीं ॥ मरणकालविषै तो प्रतिबंधकके अभावतें सर्व कर्मोंके आश्रयरूप संघातके नाशकारि तिन (अन्यकर्मों)कूं उत्तर (चंद्रमंडलगत) शरीरकी आरंभकता अविरुद्ध है ॥

२६४ तथापि शेषकर्मके सद्भावकी असिद्धि कैसें है? यह सिद्धांतीकी शंका भई। यातें पूर्ववादी कहैहै ॥ इहां "तहां" याका सर्व अनारब्ध कर्मोंकूं उत्तर शरीरकी आरंभकताके होते। यह अर्थ है ॥

(प्रकाशक) होनेतैं। स्वगोचरप्रकाशक प्रदीपकी न्यांई? ऐसैं॥[२६५] सो असत् हैः—काहेतैं सर्वके सर्वात्मकपनैके अंगीकारतैं।[२६६] जातैं सर्वके सर्वात्मकपनैके स्थितहुये देश कालरूप निमित्त करि कृत होनेतैं किसीकाबी कहूं बी सर्वरूपसैं उपमर्द (नाश) वा सर्वरूपकरि आविर्भाव नहीं संभवैहै।[२६७] तैसैं आश्रयसहित कर्मोंका बी हो-

---

२६५ मरणकालविषै जे कर्म अभिव्यक्त (उद्भूत) भयेहैं। वेई उत्तरशरीरके आरंभक हैं। इतर (अनुद्भूत कर्म)नकूं तो शरीरकी आरंभकता नहीं है। इस रीतिसैं सिद्धांती उक्तमतकूं दूषण देते हैं॥ इहां यह अर्थ हैः—मधुब्राह्मण उक्तन्यायकरि सर्वकी सर्वात्मताके अंगीकारतैं देहकूंबी तिसप्रकारका (सर्वात्मा) होनेतैं सर्वस्वरूपकरि उपमर्द (नाश)का संभव नहींहै॥

२६६ उक्तअर्थकूं उपपादन करनेअर्थ सामान्यन्यायकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—"सर्वका कारण है अरु कार्य है" इस न्यायकरि सर्वकी सर्वात्मताके स्थित हुये किसीकाबी कहूंबी सर्वरूपसैं नाश वा तैसैं आविर्भाव नहीं संभवै है। काहेतैं प्रतीयमान नाशआदिककूं देशविशेष आदिकका किया होनेतैं॥

२६७ उक्तन्यायकूं प्रकृतविषै जोडतेहैं॥

वैगा ॥ औ [२६८] जैसैं पूर्व अनुभूत मनुष्य मयूर (मोर) अरु मर्कटआदिक जन्मोंकरि संपादित जे विरुद्ध अनेक वासना हैं वे मर्कट (बंदर) भावके प्रापक मर्कट जन्मके आरंभकरनेवाले कर्मकरि नहीं उपमर्दन करियेहैं । [२६९] तैसैं अन्य जन्मकी प्राप्तिके निमित्त कर्म बी नहीं उपमर्दन करिये हैं । यह युक्त है ॥ [२७०] जैंबहीं सर्व पूर्वजन्मोंके अनुभवकी वासना उपमर्दित (नष्ट) होवैं तब मर्कटजन्मके निमित्तरूप कर्मकरि मर्कटजन्मके आरंभ किये हुये माताके एक शाखातैं अन्यशाखाके प्रति गमनके हुये जातमात्र (शीघ्रजन्मवाले) मर्कटकूं माताके उदरविषै संलग्नता (चिपटणां) आदिककौशल नहीं प्राप्त

२६८ इसतैंबी कर्मशेष संभवैहै ऐसैं क्रमवान्‌ताविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-पूर्वक्रमकरि अनुभूत जे मनुष्यादि जन्म तिनकरि अभिसंस्कृत कहिये संपादित अरु परस्परविरुद्ध जे बहुत वासना हैं वे । तिस (मर्कट) जातिविशेषके प्रापककर्मकरि तिस (मर्कट जन्म)के आरंभ किये हुये निरोधकूं पावतियां नहीं ॥

२६९ दार्ष्टांतिककूं कहैहैं ॥

२७० दार्ष्टांतिककूं विवरण करैहैं ॥

होवैहै । काहेतैं इसजन्मविषै तिस कौशलकूं नहीं अभ्यास किया होनेतैं औ [271] अतीत अनंतर (भूतपूर्वले) जन्मविषै ताका मर्कट भावहीं होताभया । ऐसैं कहनेकूं शक्य नहीं है । काहेतैं "[272] तां (जीव)कूं विद्या (शुभाशुभध्यान) अरुकर्म-आरंभकरतेहैं (पीछेजाते हैं) औ पूर्वप्रज्ञा (पूर्वजन्मोंविषै संपादित वासना)" इसश्रुतितैं। [273] तातैं वासनाकी न्यांई अशेष कर्मका उपमर्द नहीं होवैहै ॥ इसरीतिसैं शेषकर्मका संभव है

---

२७१ ननु अंतरायसहित वासनाओंके उच्छेदके हुयेबी अंतरायरहित देशवाली वासना उच्छेदकूं पावती नहीं । तैसैं हुये अंतरायरहित (समीपके पूर्वले) जन्मतैं उत्पन्नवासनाके सामर्थ्यतैं मर्कट शिशुका यथोक्त कौशल अविरुद्ध है ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२७२ किंवाः—"औ पूर्वप्रज्ञा [आरंभ करैहैं]" ऐसैं अविशेष (सामान्यभाव)करि पूर्वजन्मविषै संपादित वासना जीवकेप्रति अनुगमन करैहैं (पीछे जावैहैं) । ऐसैं श्रवणतैं अंतरायरहित (समीपके) पूर्वजन्मकी वासनाहीं ता (जीव)केप्रति पीछे जाती है । ऐसैं विशेषकरि कहनेकूं शक्य नहीं है । [किंतु अंतरायसाहित वासनावी जातीहै] ऐसैं कहैहैं ॥

२७३ दृष्टांतकूं उपपादनकरिके अब दार्ष्टांतिककूं निगमन करैहैं ॥

[२७४] जौतैं ऐसैं है तातैं उपभुक्त कर्मतैं जो शेष कर्म है तिसकरि संसार संभवैहै। ऐसैं कोई बी विरोध नहीं है ॥ ॥ [२७५] कौंन यह मार्ग है जाके प्रति निवर्त्त होतेहैं (चंद्रमंडलतैं पीछे लौटते हैं)? यह कहियेहैः–जैसैं आये तैसैं निवर्त्त होतेहैं ॥ ॥ [२७६] ननु "मासोंतैं पितृलोककूं पितृलोकतैं आकाशकूं। आकाशतैं चंद्रमाकूं" ऐसैं गमनका क्रम कहा है। तैसैं निवृत्ति नहीं कही है ॥ तब क्या (निवृत्ति कैसैं कहीहै) किः– "आकाशतैं वायुकूं" इत्यादि [कहीहै। यातैं] जैसैं आये तैसैं निवर्त्त होतेहैं। यह कैसैं कहियेहै? [२७७] यँह दोष नहीं हैः–काहेतैं आकाशकी

---

२७४ शेषकर्मके सद्भावके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां उपभुक्तकर्मके शेषकरि। ऐसैं संबंध है औ कोईबी। याका श्रौत वा स्मार्त वा यौक्तिक वा लौकिक [विरोध नहीं है] यह अर्थ है ॥

२७५ "इसीहीं मार्गकूं" ऐसैं प्रकृत मार्गकूं प्रश्नपूर्वक स्पष्ट करैहैं ॥

२७६ "जैसैं आये तैसैं" इसप्रकारसैं उक्तअर्थके तांई पूर्ववादी आक्षेप करैहै ॥

२७७ क्या "जैसैं आयेहैं तैसैं" यहहीं नहीं संभवैहै।

प्राप्तिकूं औ पृथिवीकी प्राप्तिकूं तुल्य होनेतैं ॥ औ [२७८]ईंहां जैसैं आयेहैं तैसैं निवर्त्त होवैहैं ऐसा नियम नहीं है किंतु [२७९]अन्यप्रकारसैं बी फेर निवर्त्त होवैहैं ऐसा तो नियम है। [२८०]यांतैं "जैसैं आये तैसैं" यह कथन उपलक्षण (अन्यप्रकारके ग्रहण) अर्थ है ॥ [२८१]यांतैं भौतिक आकाश-

---

किंवा "जैसैं आयेहैं तैसैंहीं" ऐसा नियम नहीं संभवैहै? ये दो विकल्पकरिके। तिनमैं प्रथमपक्षकूं सिद्धांती दूषण देतेहैं ॥

२७८ द्वितीय पक्षकेप्रति कहैहैं ॥ इधर "इहां" ऐसैं निवृत्ति कहीहै। औ अनेवंविध (अन्यप्रकारसैं)बी। ऐसैं कहा। याका जैसैं गतिका क्रम दिखाया तैसैं नियमित निवृत्ति नहीं होवैहै किंतु अन्यप्रकारसैंबी संभवै है। यह अर्थ है ॥

२७९ ननु निवृत्तिके क्रमके नियमके अभावके हुये किस प्रकारका नियम कहनेकूं वांछित है? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

२८० तब किस अभिप्रायकरि "जैसैं आये तैसैं" यह श्रुतिनैं कहा? यातैं कहैहैं ॥ इहां गतिके क्रमकीन्यांई निवृत्तिके क्रमविषै नियमका अभाव अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है। औ जैसैं आये तैसैं निवर्त्त होते हैं। अरु अन्यप्रकारसैं निवर्त्त होते हैं। ऐसैं उक्त (श्रुतिनैं कहा) है [यह शेष है] ॥

२८१ निवृत्तिके नियमके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां

कूं प्रथम पावते हैं [आकाशतैं वायुकूं] ॥ औ जे[282] चंद्रमंडलविषै तिनके शरीरके आरंभक जल होतेभये वे तिनके तहां उपभोगके निमित्त कर्मोंके क्षयभये अग्निके संयोगके हुये घृतके काठिन्यकी न्यांई विलीन (गलित) होवैहैं ॥ वे विलीनहुयी अंतरिक्षविषै स्थित आकाशभूत हुयेकी न्यांई सूक्ष्म होवैहैं ॥ वे[283] अंत-

---

परमात्मारूप चिदाकाशकूं भिन्न जनावनेकूं भौतिक आकाशकूं ऐसैं कहा ॥

२८२ ननु पूर्वसिद्ध आकाशकेसाथि तादात्म्यकी प्राप्ति अवरोह करने (चंद्रमंडलतैं उतरनैं) वालोंकूं सिद्ध होवैहै ? यह आशंका करिके । ता (आकाश)के समताकी प्राप्तिहीं ता (आकाश)के भावकी प्राप्ति है। ऐसैं उपचारकरियेहैं "स्वभावकी प्राप्ति होवैहै" इस न्यायतैं। ऐसैं कहैहैं॥ इहां घृतका संस्थान कहिये काठिन्य ॥ औ इधर यह भावार्थ है:—तिन जलोंके आकाशभूत हुये तिनकरि परिवेष्टित जे कर्मी वे चंद्रमंडलतैं ऊतरते हुये तिस आकाशरूप हुयेकी न्यांई होवैहैं ॥

२८३ "आकाशतैं वायुकूं" इस वाक्यके अर्थकूं साधते हैं ॥ इहां उन्नत (ऊंचे) प्रदेशनविषै । याका समुद्रआदिकनतैं व्यतिरिक्त प्रदेशन (स्थलों) विषै यह अर्थ है औ "वे" ऐसैं अनुशयी (चंद्रलोकतैं ऊतरे जीव) निर्देश करियेहैं औ "इहां" ऐसैं पृथिवी कहिये है ॥

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भू-

अर्थः—अभ्र होयके मेघ होवैहै । मेघ

रिक्षतैं वायुरूप होवैहैं ॥ वायुविषै स्थित वायुभूतहुये इहांतैं अरु उहांतैं वहमान (चलित) होवैहैं । तिनकेसाथि क्षीणकर्मवाला पुरुष वायुभूत होवैहै ॥ वायुरूप होयके तिनजलोंके साथिहीं धूम होवैहै ॥ धूम होयके अभ्र कहिये अप् (जल)के भरणमात्र रूपवाला (बादल) होवैहै ॥ ५ ॥

टीकाः—अभ्र होयके तिसतैं सेचनविषै समर्थ मेघ (अभ्रमंडलरूप) होवैहै ॥ मेघ होयके उन्नत (समुद्रादिकसैं भिन्न) प्रदेशोंविषै अनंतर वर्षताहै । अर्थ यह जोः—वर्षाकी धारारूपसैं शेषकर्मवाला जीव पतन होताहै ॥ वे (जीव) इहां (पृथिवीविषै) व्रीहि (तंडुल) यव ओषधि वनस्पति तिल अरु माष (उडद)

त्वा प्रवर्षति । त इह व्रीहियवा ओषधि-
वनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो

होयके वर्षता है॥ वे (जीव) इहां व्रीहि
यव ओषधि वनस्पति तिल माष इस प्र-
कारके उपजतेहैं। यातैं प्रसिद्ध अत्यंत

इस प्रकारके उपजते हैं॥ [[284]इहां क्षीणकर्म-
वाले जीवनकूं अनेक होनेतैं बहुवचनका निर्दे-
शहै औ [285]पूर्वले मेघआदिकनविषै एकरूप होनेतैं
एकवचनका निर्देश है]॥ [286]जातैं वर्षाकी धारा-

---

२८४ इस वाक्यविषै बहुवचनसैं अनुशयी जीवनकूं बहु-
क्तिकरि निर्देश कैसैं किया ? तहां कहैहैं ॥

२८५ तब "मेघरूप होयके वर्षता है" इत्यादिरूप वा-
क्यविषै एकवचनका निर्देश (कीर्त्तन) कैसैं है ? तहां कहैहैं॥
इहां यह अर्थ हैः—जे पूर्व मेघसैं आदिलेके आकाशपर्यंत
पदार्थ हैं तिनविषै एक एकके अभिमानी देवताओंकूं एकरूप
होनेतैं तिनसैं मिलित अनुशयी जीवनका बी एकवचनकरि
निर्देश युक्त है ॥

२८६ "इसतैं प्रसिद्ध" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान
करैहैं ॥

वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥ ६ ॥

दुःखकरि निकसना है ॥ जातैं जो जो अन्नकूं भक्षण करैहै। जो रेतकूं सिंचन करैहै। ताकी अधिकतावाला (ताकी आकृतिवाला)हीं होवैहै ॥ ६ ॥

ओंकेसाथि गिरेहुये जीवनके गिरितट (पर्वतप्रांत) दुर्ग (किल्ले वा दुर्गमदेश) नदीयां समुद्र वन अरु मरुदेशआदिक स्थानोंके सहस्र हैं। यातैं तिस हेतुतैं दुःखसैं तिनका निःसरण होवैहै ॥ [२८७]जाँतैं गिरिके तटतैं जलके प्रवाहसैं वहते हुये जीव नदीनकेताँईं प्राप्त होवैहैं। तिनतैं समुद्रकूं। तिसतैं मकरआदिकनकरि भक्षणकरियेहैं। [२८८]वे (मकरआदिक) बी अन्यकरि भक्षणकरिये-

---

२८७ अनुशयी जीवनका निःसरण (निकसना) दुःशक (दुःखसैं होने योग्य) है। ऐसैं उक्त अर्थकूं विस्तारते हैं ॥

२८८ मकरआदिकरि भक्षित अनुशयी जीवनका तिनतैं

हैं ॥ औ तहां समुद्रविषैहीं मकरके साथि विलीनभये जीव [289] जैलधरों (वादलों) करि समुद्रके जलोंके साथि आकर्षित (खींचे) हुये फेर वर्षाकी धाराओंकेसाथि अगम्य मरुदेशविषै वा शिलातटविषै पतित (गिरे) हुये स्थित होवैहैं ॥ कदाचित् व्याल अरु मृगआदिककरि पीत (पानकिये) औ [290] अँन्योंकरि भक्षित होवैहैं। [291] वे बी अन्योंकरि। इस प्रकारके हुये वर्त्तेहैं ॥

तिनके समानजातिवान्‌पनैकरि समुद्भव (जन्म) होवैगा ? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—मकरआदिकवी अन्य (बडे मकरआदिक) जलचारीनकरि भक्षित होवैहैं। तैसैं हुये समुद्रविषै पतित (गिरे) अनुशायिनका तहांहीं लय होवैहै ॥

२८९ ननु ऐसैं अनुशयी जीव समुद्रविषै लीन होवैहैं औ तिसतैं फेरि उद्धारकरनेकूं शक्य होते नहीं। तैसैं हुये कृतविनाश (किये कर्मका फलभोगविना नाशरूप दोष) होवैगा ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां समुद्रके जलोंकरि। यह तृतीया विभक्ति सह (साथि) अर्थविषै है ॥

२९० तब सर्प अरु व्याघ्रकरि उपभुक्त (भक्षित) अनुशायी जीवनकूं तिन (सर्पादिकन)के समान जातिवाले देहका भोग होवैगा ? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥

२९१ तब जनोंकरि सर्पादिक भक्षण करियेहैं तिनतैं

[२९२]कदाचित् अभक्ष्य स्थावरोंविषै जन्मकूं पाये हुये तहांहीं सूकजाते हैं ॥ [२९३]भक्ष्य स्थावरोंविषै बी जन्मकूं प्राप्तभये तिनकूं रेतके सिंचिनकरनेवाले (पिता)के देहसैं संबंध दुर्लभ हीं है। स्थावरोंकूं बहु होनेतैं। जातैं ऐसैंहै यातैं तिनका दुःखसैं निकसना है ॥ [२९४]अथवा इस व्रीहि अरु यव आदिकभावतैं अत्यंत दुःखसैं निर्गम (निकसना) जिसतैं होवैहै ऐसा है, [इहां मूलविषै जो "दुर्निष्प्रपतर" ऐसा शब्द है तिसविषै एक तकार लुप्त देखनेकूं योग्य है]। अर्थ यह जोः—

तिनके समान जातिवान्पनैकरि अनुशायी जीवनका उद्भव होवैगा ? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥

२९२ तथापि यथोक्तरीतिकरि परिवर्त्तनतैं वे जीव रेतके सिंचक (पिता)के साथि योगकूंबी जबकदाचित् पावैंगे ? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥

२९३ तथापि भक्ष्य जे स्थावर तिनविषै जन्मकूं पाये जीवनकूं रेतके सिंचकके साथि योग सुलभ होवैगा ? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां इति (ऐसैं) शब्द पूर्वले यत् (जातैं) शब्दके साथि संबंधकूं पावता है ॥

२९४ पूर्व अतः (यातैं) ऐसा शब्द हेतुपर होनेकरि व्याख्यान किया। अब व्रीहिआदिक अवधिवाले वस्तुनका वाचक होनेकरि ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥

२९५ व्रीहि यवादिभाव अत्यंत दुःखसैं निर्गम जिसतैं होवैहै ऐसा है। तिस दुर्निर्गमतरतैं बी रेतके सिंचिन करनेवाले (पिता)के देहसैं संबंध दुर्निर्गमतर (अत्यंतदुःखसैं निर्गमन जिसतैं होवैहै ऐसा) है ॥ २९६ जातैं ऊर्ध्वरेता वा बालक वा नपुंसक वा वृद्ध इनकरि भक्षित हुये अंतरालविषै (बीचमैं) विशीर्ण होतेहैं (विनाशकूं पावते हैं)। काहेतैं अन्नके भक्षकोंकूं अनेक होनेतैं ॥ २९७ कदाचित् काकतालीयन्यायकरि रेतके सिंचनकरनेवाले पुरुषनकरि जब भक्षण करिये हैं तब रेतके सिंचनकरनेवालेके भावकूं प्राप्तभये तिनकूं कर्मतैं वृत्तिका लाभ होवैहै ॥ ॥ २९८ कैसैं किः—

२९५ दुर्निष्प्रपतर। ऐसैं तकारसहित पाठके होते विवक्षित अर्थकूं कहैहैं ॥

२९६ तहां हेतुकूं कहैहैं ॥

२९७ तब बीचमैं विनष्ट भये तिन जीवनकूं देहभागी होनेके अभावतैं अनुशयकी व्यर्थता होवैगी ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां काकतालीय वृत्तिकरि। याका यादृच्छिक न्यायकरि (दैवगतिसैं)। यह अर्थ है ॥

२९८ अनुशयनामवाले कर्मकूं भाविदेहके आरंभरूप अर्थवाला होनेतैं मुख्य अर्थकूं प्रश्नपूर्वक विवरण करैहैं ॥

जो जो रेतःसिक् (वीर्यका सिंचक पुरुष) प्रसिद्ध अनुशायी (जीव) नकरि संयुक्त अन्नकूं भक्षण करैहै औ जो ऋतुकालमैं स्त्रीविषै रेतकूं सिंचन करैहै। ताकी अधिकतावालाहीं कहिये तिसकी आकृतिवालाहीं होवैहै ॥ इहां ताके अवयव अरु आकृतिकी बहुलता (अधिकता) "भूयः" ऐसैं कहियेहै ॥ अर्थ यह जोः—रेतरूपसैं स्त्रीके गर्भाशय (गर्भस्थान) विषै भीतर प्रविष्ट हुया जो अनुशयी (जीव) है। तारेतकूं [२९९] रेतके सिंचन करनेवाले पुरुषकी आकृति (अंश) करि भावित होनेतैं औ "[३००] सर्व अंगनतैं

२९९ अनुशयी जीवके रेतके सिंचकके आकारके भागी होनेविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ताकूं रेतके सिंचककी आकृतिकरि (ताके अंशकरि) भावित होनेतैं (संस्कृत होनेतैं) कहिये ताके अंगकरि संभूत होनेतैं ताके रूपसैं गर्भाशयके प्रति अनुप्रविष्ट हुया अनुशयी जीव रेतके सिंचककी आकृतिवाला होवैहै ॥

३०० रेतके सिंचकके अंगके उत्पन्न होनेविषै ऐतरेयक श्रुति प्रमाण है। ऐसैं कहैहैं ॥

तेज उपज्या है" इस प्रसिद्ध श्रुतितैं। [301] यांतें [सो जीव] रेतके सिंचक (पिता) की आकृतिवाला हीं होवैहै ॥ [302] तैसें दिखायियेहैः—पुरुषतैं पुरुष उपजता है। गौतें गौकी आकृतिवाला हीं उपजताहै अन्यजातिकी आकृतिवाला नहीं। तातें "ताकी अधिकतावालाहीं होवैहै" यह युक्त है ॥ औ [303] जे अनुशायी जीवनतैं अन्यजीवहैं वे चंद्रमंडलकेतांई अनारोह करिके (नजायके) इहांहीं घोर पापकर्मोंकरि व्रीहि अरु यव-आदिभावकूं पावते हैं फेर मनुष्यभावकूं पावते

---

३०१ रेतरूपसैं गर्भाशयकेप्रति प्रविष्ट भये जीवकी उक्त रेत सिंचककीआकारताकूं निगमन करैहैं ॥

३०२ अनुशयी जीवकी रेतसिंचककी आकारवान्‌ता-विषै लौकिक अनुभवकूं अनुकूल करैहैं ॥

३०३ चंद्रके स्थलतैं स्खलितभये (गिरे)अरु अवरोह करने-वाले (ऊतरनेवाले) अरु व्रीहि आदिक देहसैं संयोगवाले जीवनकूं जब दीर्घकालकरि देहांतरका लाभ होवै तब व्रीहिआदिक देहके अभिमानियोंकाबी निष्क्रमण (निकसना) दुःशक होवैगा। काहेतैं व्रीहिआदिक देहके साथि संबंधकी (अनुशायी जीवनके देहके संबंधकी) तुल्यतातैं ? यह शंका भई। यातैं कहैहैं ॥

हैं ॥ तिनकूं अनुशायी जीवनकी न्यांई अत्यंत दुःखसैं निकसना नहीं है । [३०४]काहेतैं? जातैं कर्म करि तिनोंनैं व्रीहि अरु यवआदिकका देह ग्रहण किया है । यातैं तिस देहके उपभोगके निमित्तके क्षयभये व्रीहिआदिक स्तंबरूप देहके विनाशके होते विज्ञानसहितहीं हुये कर्मके अनुसार संपादित नये नये अन्य देहकूं जलूका (तृणजंतुविशेष) की न्यांई क्रमसैं पावते हैं ॥ काहेतैं "[३०५]विज्ञानसहित होवैहै । विज्ञान सहित

---

३०४ व्रीहिआदिक देहसैं संबंधकी तुल्यताके हुये तिस (व्रीहिआदिक) देहके भाजीनका काहेतैं तिनतैं निःसरण अशक्य नहीं होवैहै? यह आशंकाकरिके तिनतैं तिनकी विलक्षणताकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"शरीरतैं जन्यकर्मरूप दोषनकरि नर स्थावरभावकूं पावताहै" इत्यादि श्रुतिस्मृतिनविषै जनोंका कर्मरूप निमित्तवाला स्थावर जन्म है। तिनोंका कर्मका क्षयहीं अवधि है ॥ परंतु अवरोहकरनेवाले (लोकांतरतैं ऊतरनेवाले) जीवनकी कर्मके असंकीर्त्तनतैं विषमता (अन्य जीवनतैं विलक्षणता) है ॥

३०५ जैसैं जलूका (घासका घोडानामक लघुजंतुविशेष) तृणतैं अन्यतृणकेतांई दीर्घभूत (लंबी) हुयी संक्रमण (गमन) करैहै । तैसैं अनुशयी जीव व्रीहिआदिक देहके भजनेवाले हुयेबी ताके त्यागकरि अन्य देहकेप्रति गमन करते

जैसें होवै तैसें पीछेगमन करैहै" इस अन्यश्रुतितें ॥ [306] यद्यपि उपसंहार किये (निरुद्ध) करणवाले हुये अन्य देहके तांई गमन करैहैं तथापि स्वप्नकी न्यांई अन्यदेहकी प्राप्तिके निमित्त कर्मकरि उद्भावित (उद्बुद्ध) वासनारूप ज्ञानकरि विज्ञानसहितहीं हुये अन्य देहकेतांई गमन करैहैं। [307] श्रुतिके प्रामाण्यतें ॥ [308] तैसें अर्चिरादि-

---

नहीं। किंतु तिस विषयके विज्ञानवाले हुयेहीं गमन करैहैं। इस अर्थविषै बृहदारण्यककी श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं ॥

३०६ औ उपसंहारकिये करणोंवाले जीवनकूं विज्ञानविषै कारणके असंभवतें विज्ञानसहितपना कैसें होवैहै? तहां कहैहैं ॥

३०७ दृष्टकारणके अभाव हुयेबी अदृष्टरूपहीं एक वासनास्वरूप ज्ञानकी उत्पत्तिविषै निमित्तहै। यातें इस निमित्तकरि विज्ञानसहित हुयेहीं देहांतरकेप्रति जातेहैं। इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां श्रुति जो कही सो बृहदारण्यककी श्रुति जाननी ॥

३०८ जैसें विज्ञानसहित जीवनका हीं व्रीहिआदिक अन्यदेहके प्रति गमन होवैहै। तैसें ज्ञानीनका (उपासकोंका) अर्चिरादि मार्गकरि औ कर्मीनका धूमादिमार्गकरि गमन जो है सो स्वप्नकीन्यांई उद्भूतवासनास्वरूप विज्ञानकरि विज्ञानसहितनकाहीं होवैहै। ऐसें कहैहैं ॥

मार्गकरि औ धूमादिमार्गकरि जो गमन है सो स्वप्नकी न्यांई उद्भूतविज्ञानकरि होवैहै। काहेतें [309] गमनकूं लब्धवृत्तिवालेके कर्मरूप निमित्तवाला होनेतें। तैसें [310] व्रीहिआदिभावकरि जन्मकूं प्राप्तभये अनुशायी जीवनकूं विज्ञानसहितहीं जैसें होवै तैसें रेतके सिंचक पुरुष अरु स्त्रीके देहसैं संबंध नहीं संभवैहै औ [311] जातें व्रीहिसैं आदिलेके लवन (छेदन) कंडन अरु पेषण आदिकविषै विज्ञानसहितनकी स्थिति नहीं है॥ ॥ [312] ननु चं-

---

३०९ तिनकी विज्ञानसहिततताविषै हेतुकूं कहैहैं॥

३१० तब व्रीहिआदिकविषै मिलित अनुशायिनकावी रेतके सिंचकआदिक देहसैं संबंध विज्ञानसहितनकाहीं होवैगा? ऐसें जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसें कहैहैं॥

३११ असंभवविषै हेतुकूं कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:— व्रीहिआदिकसैं मिलित अनुशयिनकूं विज्ञानसहितताके हुये तिन व्रीहिआदिकनके छेदनआदिकनविषै तिनके (व्रीहि आदिकनके) जीवनकीन्यांई तिन अनुशायी जीवनकूंवी प्रवास (अन्यदेशविषै स्थिति)के प्रसंगतैं रेतके सिंचकके देहसैं संबंध नहीं सिद्ध होवैगा॥

३१२ देहांतरकेप्रति जानेवाले व्रीहिआदिकनविषै विज्ञानवान्‌ताकी प्रतीतितैं अनुशयी जीवनविषैबी देहांतरकी प्राप्तिके अविशेषतैं विज्ञानसहितपना युक्त है? ऐसैं पूर्ववादी

द्रमंडलतैं बी अवरोहवाले (उतरनेवाले) पुरुष-नकूं देहांतरविषै गमनकूं तुल्यहोनेतैं जलूकाकी न्यांई विज्ञानसहितताहीं युक्त है ॥ तैसैं हुये इष्ट अरु पूर्त्तआदिकके कर्त्ताओंकूं चंद्रमंडलतैं आरंभकरिके घोर नरकका अनुभव यावत् ब्राह्मणआदिकका जन्म होवै तावत् प्राप्तभया ॥
[313] तैसैं हुये इष्ट अरु पूर्त्तआदिकका उपासन (अनुष्ठान) अनर्थके अर्थहीं विहित होवैगा औ [314] श्रुतिकूं अप्रमाणता प्राप्त होवैगी। काहेतैं वैदिककर्मों-

---

शंका करैहै ॥ इहां ऐसैं योजना है:-तृणतैं [प्रथम अन्य तृणकूं पकरिके] अन्य तृणकेप्रति जलूकाके गमनकीन्यांई चंद्रमंडलतैं [प्रथम अन्यदेहका अभिमान करिके] ऊतरनेवाले अनुशयी जीवनकेबी देहांतरकेप्रति गमनकूं तुल्यहोनेतैं व्रीहिआदिकनकीन्यांई तिन अनुशयी जीवनकी विज्ञानसहितता युक्त है ॥

३१३ तिन अनुशयिनकी विज्ञानसहितता होहु । कौंन हानि है ? यातैं पूर्ववादी कहैहै ॥

३१४ इष्ट पूर्त्तआदिकके कर्त्ताओंकूं बीचमैं नरकअनुभवके होते। औ तैसैं हुये ताके अनुष्ठानकी अनर्थके अर्थ विहितताके हुये श्रेयके साधनकूं विषयकरनेवाला कर्मकांड विरोधकूं पावैगा। ऐसैं पूर्ववादी कहैहै ॥

कूं अनर्थके अनुबंधी (संबंधी) होनेतैं? सो बनै[315] नहीं:—काहेतैं वृक्षके आरोहण अरु तातैं पतनकी न्यांई विशेष (भेद) के संभवतैं। देहतैं[316] देहांतरके तांई प्राप्तहोनेवालेके कर्मकूं लब्धवृत्तिवाला (उद्भूतकर्मवाला) होनेतैं कर्मसैं उद्भवकूं प्राप्तभये विज्ञानकरि फलकूं ग्रहण करनेकूं इच्छनेवाले वृक्षके अग्रकेतांई चढनेवालेकी न्यांई विज्ञानसहितता युक्त है॥ तैसैं अर्चिआदिमार्गकरि गमनकरनेवालोंकूं औ धूमआदिक मार्गकरि चंद्रमंडलकेतांई चढनेकूं इच्छनेवालोंकूं

---

३१५ जैसैं बुद्धिपूर्वक (ज्ञानपूर्वक) वृक्षकेप्रति आरोहकरनेवालोंकी विज्ञानसहितताके हुयेबी तिस (वृक्ष)तैं अबुद्धिपूर्वक (अजानतैं) गिरनेवालोंकी विज्ञानसहितता नहीं जानिये है। तैसैं चंद्रमंडलकेप्रति आरोहकरनेवालोंकी विज्ञानसहितताके हुयेबी तिसतैं अवरोहकरनेवालोंकूं सो नहीं है उद्भूत कर्मके अभावतैं। ऐसैं आरोह अरु अवरोहविषै ज्ञानविशेषके संभवतैं। ऐसैं बनै नहीं। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं॥

३१६ संग्रह (संक्षिप्त) वाक्यकूं विवरण करैहैं॥ चकार (औ शब्द)तैं गमन करनेवालोंकूं विज्ञानसहितता होवैगी। ऐसैं संबंध है॥

औ गमन करनेवालोंकूं विज्ञान सहितता होवैहै॥ तैसें चंद्रमंडलतैं पतनहोनेवालोंकूं वृक्षके अग्रतैं पतनहोनेवालोंकी न्यांई सचेतनता (विज्ञानसहितता) नहीं होवैहै ॥ औ जैसें[317] मुद्गरआदिककरि अभिहतहुये औ तिसकरि किये अभिघातकरि भई वेदनारूप निमित्तकरि सम्यक् मूर्च्छित वा प्रतिबद्ध करणवाले ऐसें स्वदेहकरिहीं देशतैं देशांतरके प्रतिलिये जवानेवाले पुरुषनकी विज्ञानकरि शून्यता देखी है। तैसें चंद्रमंडलतैं मानुषआदिक देहांतरके प्रतिउतरनेवाले अरु स्वर्गभोगके निमित्त कर्मके क्षयतैं नष्ट जलमय देहवाले अरु प्रतिबद्ध करणवाले पुरुषनकूं [वि-

---

३१७ अवरोहकरनेवाले जीवनकूं सर्वथा विज्ञानशून्यता अयुक्त है। काहेतैं तिनके चैतन्यस्वभावतैं। वृक्षतैं गिरनेवालोंकूंबी विज्ञानमात्र है हीं ? यह आशंकाकरिके अन्यउदाहरणकूं कहैहैं ॥ इहां तिस मुद्गरआदिककरि जो अभिघात (प्रहार) है तिस हेतुकरि जो वेदना नामक निमित्त है तिसकरि मूर्च्छित कहिये नष्ट भये वा प्रतिबद्ध भये हैं करण जिनोंके तिनोंकी। यह अर्थ है औ मृदित कहिये नष्ट भया है जलमय स्थूलदेह जिनोंका तिनोंकी । ताहींतैं प्रतिबद्ध करणेवालोंकी विज्ञानशून्यता युक्त है। ऐसैं संबंध है ॥

ज्ञानशून्यता युक्त है] ॥ [३१८]यातैं वे [३१९]अपरित्यक्त-देहभावके बीजभूतकर्मवाले जलोंकरि मूर्च्छितकीन्यांई आकाशआदिकके क्रमसैं या (पृथिवी)केतांई पायके [३२०]प्रतिबद्धकरणवाले होनेकरि अनुद्भूत विज्ञानवाले हुये हीं कर्मरूपनिमित्तवाले जाति अरु स्थावर देहोंके साथि सं-

---

३१८ यथोक्त दृष्टांतके वशतैं चंद्रमंडलतैं ऊतरनेवाले विज्ञानशून्य सिद्ध होवैहैं। ऐसैं निगमन करैहैं ॥

३१९ तथापि मूर्च्छितपुरुषनका स्थूलदेहके सद्भावतैं देशांतरकेप्रति गमन युक्त है। औ चंद्रमंडलतैं ऊतरनेवालोंकूं तो ता (स्थूलदेह)के अभावके हुये व्रीहिआदिभाव कैसैं संभवैहै ? यातैं कहैहैं ॥ इहां नहीं परित्याग कियाहै देहभावका बीजरूप कर्मका अपूर्व जिनोंनैं तिन जलोंकरि युक्त जीव मूर्च्छितकीन्यांई विज्ञानशून्य हुये गगनआदिकके क्रमसैं पृथिवीकूं पायके कर्मके फलभूत जाति अरु स्थावर शरीरनके साथि संबंधकूं पावतेहैं। ऐसैं संबंध है ॥

३२० स्थावरदेहका संबंधी होनेतैं तद्गत जीवकीन्यांई तब विज्ञानसहितपना संभवै ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—व्रीहिआदिकसैं मिलनेकी अवस्थाविषै अनुशयी जीवनके कर्मकूं अनुद्भूत वृत्तिवाला होनेतैं औ करणोंकूं तहां वृत्तिलाभके अभावतैं तिनकूं अनुद्भूत विज्ञानवान्‌पना युक्त है ॥

बंधकूं पावतेहैं ॥ [321] तैसैं लवन(छेदन)कंडन पेषण संस्कार (रंधन) भक्षण अरु रसआदिकके परिणामरूप रेतके सेचनके कालोंविषै मूर्च्छितकीन्यांईंहीं होवैहैं । काहेतैं [322] अन्य देहके आरंभककर्मकूं अलब्धवृत्तिवाला (अनुद्भूत) होनेतैं । [323] देहके बीजभूत जलोंके संबंधके अपरि-

---

३२१ केवल व्रीहिआदिकसैं संयोगकालविषै अनुद्भूत विज्ञानवान्पना नहीं है किंतु व्रीहिआदिकके छेदनादि कालविषैबी है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां पाक (रसोई)रूप संस्कार है औ रसादि । इस आदिशब्दकरि शोणित (रक्त) मांस मेद अस्थि मज्जा अरु रेतरूप षट्धातु ग्रहण करियेहैं ॥

३२२ तिस कालविषै मूर्च्छितकीन्यांई अनुद्भूत विज्ञानवान्ताके हुये देहतैं बाहिर निर्गत जीवनकूं अन्यदेहकी प्राप्तितैं पूर्व सो है हीं । इस हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां अलब्धवृत्तिवाला होनेतैं । ऐसैं पदच्छेद है ॥

३२३ फेर अनुशायी जीवनकूं विज्ञानशून्यताके हुये "सो जैसैं तृणजलायुका तृणके अंतकेप्रति गमनकरिके अन्य आक्रम (आश्रय)कूं आक्रमण (ग्रहण) करिके आपकूं उपसंहार (संकोच) करैहै" इत्यादि वाक्यविषै सचेतन जलूका दृष्टांतपनैकरि कैसैं ग्रहण करियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां तिन सर्वअवस्थाओंविषै व्रीहिआदिकसैं संयोग अरु तिनके छेदनआदिकके वशतैं । यह अर्थ है औ जलूकाके दृष्टांतविषै चेतना-

त्यागकरिहीं सर्वअवस्थाओंविषै वर्त्तते हैं। यातैं जलूकाकीन्यांई चेतनावान्पना विरोधकूं पावता नहीं। [324] अंतराल(मध्य)विषै तो अविज्ञान मूर्च्छितकी न्यांई हीं होवैहै। [325] यातैं अदोष है॥ [326] औ वैदिककर्मोंकूं हिंसायुक्त होने-

वान्पना कहनेकूं वांछित नहींहै किंतु सातत्य (जन्मोंकी निरंतरता) मात्र कहनेकूं वांछित है। यह भाव है औ जलूकावान्पना याका अनुशायी जीवनकूं जलूकाका सादृश्य है। यह अर्थ है॥

३२४ आरोह करनेवालोंकूं विज्ञानसहितता है औ अवरोह करनेवालोंकूं विज्ञानरहितता है। ऐसैं उपपादन करिके। आरोह करनेवालोंका बी यावत् स्वस्थानोंतैं करणोंकूं उपसंहार करिके हृदयविषै अवस्थान है। तावत्हीं विज्ञानसहितपना है औ देहतैं बाहिर निर्गत भये तिनकूं अन्य देहकी प्राप्तितैं पूर्व सो नहीं है औ चंद्रमंडलतैं उतरनेवालेबी अनुशयी जीवनकूं तो भाविदेहपर्यंत दीर्घवासना नहीं होवैहै। प्रमाणके अभावतैं। ऐसैं कहैहैं॥

३२५ चंद्रमंडलतैं अवरोहवालोंके देहांतरकेप्रति गमनकी तुल्यताके हुयेबी विज्ञानशून्यता अदुष्ट (निर्दोष) है ऐसैं उपसंहार करैहैं॥

३२६ औ जो इष्टादि कर्मोंकूं हिंसा अरु अनुग्रहरूप होनेतैं स्थावरता बी तिनका फल हीं है। तैसैं हुये वैदिक कर्मोंकूं अनर्थके संबंधी होनेतैं तिनकी प्रतिपादक श्रुतिकूं अ-

करि उभय (अर्थ अनर्थ)की हेतुता अनुमानकरनेकूं शक्य है ॥ औ हिंसाकूं शास्त्रविहित होनेतैं "तीर्थ (यज्ञआदिक)नतैं अन्यठिकानें सर्वभूतनकूं न हिंसाकरताहुया" इस श्रुतितैं शास्त्रविहित हिंसाकूं अधर्मकी हेतुता नहीं अंगीकार करियेहै औ [327]अधर्मकी हेतुताके अंगीकारकिये बी मंत्रोंकरि विषआदिककीन्यांई ताकी निवृत्तिके

प्रमाणता होवैगी ? ऐसैं पूर्ववादीनैं कहा था। तहां सिद्धांती कहैहैं ॥ इहां उभयहेतुता। याका अर्थ अरु अनर्थकी हेतुता। यह अर्थ है ॥

३२७ "अहिंसा करता हुया" इत्यादि श्रुतितैं शास्त्रविहित वैदिक कर्मोंविषै जो हिंसा है सो अनर्थकी हेतु नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-यद्यपि स्वरूपसैं हिंसा अनर्थकी हेतु अंगीकार करिये है तथापि तिस (हिंसा)करि युक्त वैदिक कर्मोंकूं अनर्थकी आरंभकता नहीं है ॥ जैसैं स्वरूपसैं विष अरु दधिआदिककूं मरण अरु ज्वरआदिककी हेतुताके हुयेबी मंत्र अरु शर्करा (मिसरी) आदिककरि सहित उपयोग किया हुया विषआदिक तिस मरणादिकार्यका आरंभक नहीं है। तैसैं हिंसाकूं स्वरूपसैं अधर्मकी हेतुताके हुयेबी वैदिक कर्मविषै स्थित हिंसाकूं ता (अधर्म)की हेतुता नहीं है। काहेतैं वैदिक कर्मोंकरिहीं ताके किये दोषके दूरीकरनेकी सिद्धितैं ॥

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्रा-

---

अर्थः—तिनविषै जे इहां रमणीयचरण हैं वे रमणीय योनिकूं पावतेहैं। ब्राह्मण-

---

संभवतैं मंत्रें[३२८]करिहीं विषभक्षणकीन्यांई वैदिक कर्मोंकूं दुःखरूप कार्यकी आरंभकताका संभव नहीं है ॥ ६ ॥

टीकाः—तहां[३२९] (तिन व्रीहिआदिकनविषै)

---

३२८ पूर्वोक्तहीं दृष्टांतकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिसकरि सहित भक्षणकिये विषकूं अनर्थकी अहेतुताकरि पुष्टिकी हेतुताकीन्यांई वैदिक कर्मके अनुप्रवेशयुक्त हिंसाकूं पुरुषार्थपना हीं है। औ अशुद्ध है ? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। काहेतैं "शब्द (श्रुतिरूप प्रमाण) तैं" इसन्यायतैं ॥

३२९ "अधिकतावालाहीं होवैहै" इस प्रसंगतैं प्राप्त अर्थकूं परिसमाप्त करिके। प्रकृत श्रुतिके व्याख्यानकूं अनुसरतेहैं ॥ इहां "अन्यकरि अधिष्ठित (आश्रित) विषै पूर्वकीन्यांई अभिलाप (संभाषण)तैं" इस न्यायकरि तिन व्रीहिआदिकनविषै मिले जे अनुशयी जीव तिनके मध्य जे केईक इस लोकविषै चंद्रमंडलकी प्राप्तितैं पूर्व अवस्थाविषै अनुष्ठित अ-

ह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्य-
योनिं वाऽथ य इह कपूयचरणा अभ्या-

योनिकूं वा क्षत्रिययोनिकूं वा वैश्ययोनि-
कूं। ऐसा जो है सो शीघ्रहीं होवैहै ॥ औ
जे इहां कपूयचरण (निंदितकर्मवाले)हैं वे

अनुशायी जीवनके मध्य जे इहां (इस लोक-
विषै) रमणीय कहिये शोभन है चरण कहिये
शील जिनोंका वे रमणीयचरण हैं। कहिये
रमणीयचरणकरि उपलक्षित ऐसा शोभन[330] है
अनुशय नाम पुण्य कर्म जिनोंका वे रमणीय-
चरण कहियेहैं ॥ [331]जातें क्रूरता जूठ अरु माया

युक्त रमणीय (शुभ) आचरणवाले हैं वे रमणीय योनिकूं
पावतेहैं। ऐसैं संबंध है ॥

३३० उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

३३१ रमणीय चरणके अनुसारकरि शोभन अनुशय (पु-
ण्यकर्म) कैसैं लखियेहैं? तहां कहैहैं ॥ इहां ऐसैं योजना
है:–वे प्रसिद्ध अनुशयी जीव रेतः सिंचकसैं योगके अनंतर
तिस कर्मकरि रमणीय योनिकूं पावते हैं। ऐसा जो (फल)
है सो क्षिप्र (शीघ्र)हीं होवैहै ॥

शो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ॥ ७ ॥

कपूय (निंदित) योनिकूं पावतेहैं । कूकरयोनिकूं वा सूकरयोनिकूं वा चंडालयोनिकूं। ऐसा जो है सो शीघ्रहीं होवैहै ॥ ७ ॥

(छल)सैं वर्जित पुरुषनका शुभ अनुशयका सद्भाव उपलक्षित करनेकूं शक्य है । तिस चंद्रमंडलविषै भुक्त कर्मके शेष ऐसे पुण्य कर्मरूप अनुशयकरि वे रमणीय कहिये क्रूरताआदिकसैं रहित योनिकूं कहिये ब्राह्मणयोनिकूं वा क्षत्रिययोनिकूं वा वैश्ययोनिकूं [332]स्वकर्मके अनुसारकरि पावतेहैं । ऐसा जो है सो अभ्यास (क्षिप्र) हीं होवैहै [इहां "जो" यह "पावतेहैं" इस क्रियाका विशेषण है] ॥ औ [333]फेर जे तिनतैं विपरीत कपूयचरण(अशुभ

---

३३२ तहांबी हेतुकूं कहैहैं ॥

३३३ अब "अथ (औ)" इस प्रतीतकूं लेके व्याख्यान

आचरण)करि उपलक्षित कर्मतैं अशुभ अनुशय (अशुभकर्मवाले) हैं । वे यथाकर्म कपूय कहिये धर्मके संबंधसैं रहित योनिकूं कहिये अश्वयोनिकूं वा शूकरयोनिकूं वा चंडालयोनिकूं[334] स्वकर्मके अनुसारकरिहीं पावते हैं ॥ ऐसा जो है सो क्षिप्र (शीघ्र) हीं होवैहै ॥ परंतु जे[335] रमणीयचरण द्विजाति (त्रि-

---

करैहैं ॥ इहां तिनतैं विपरीत । याका तिनतैं विलक्षण । यह अर्थ है ॥ वे कपूय (निंदित) योनिकूं अशुभ अनुशय (कर्म)-के वशतैं रेतः सिंचकसैं योगके अनंतर पावतेहैं । ऐसा जो (फल) है सोबी क्षिप्रहीं होवैहै । ऐसैं योजना है ॥

३३४ तहांबी विकल्प (भेद)विषै कारणकूं कहैहैं ॥

३३५ योनिके विकल्पविषै तृतीय (जायस्व म्रियस्वरूप) मार्गकूं प्रकट करनेकूं पूर्व उक्त दो मार्गोंकूं संक्षेप करिके अनुवाद करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—शुभ अनुशय(शुभकर्म)-के वशतैं जे केईक ब्राह्मण आदिक योनिकूं प्राप्त होवैहैं वे स्व वर्ण आश्रमके विहित कर्मविषै स्थित हुये जब इष्ट आदिक कर्मकूं करतेहैं तब दक्षिण मार्गकारि चंद्रके तांई जातेहैं औ तहां भोगने योग्य कर्मके भोगकारि क्षीणभये फेर अवशिष्ट कर्मकरि पृथिवीके तांई आवतेहैं । ऐसैं घटीयंत्रकीन्यांई पुनः पुनः आरोह करते हुये अरु अवरोह करते हुये केवल कर्मी देखियेहैं ॥ औ जब द्विजाति (त्रिवर्ण) स्वकर्म-

अथैतयोः पथोर्न कतरेणचन ता-

अर्थः—औ इन दोनूं मार्गनके मध्य कि-

वर्ण) हैं वे जब स्वकर्मविषै स्थित हुये इष्ट-आदिक कर्मके करनेवाले होवैं तब वे धूमआ-दिकमार्गकरि पुनः पुनः घटीयंत्रकी न्यांई जा-तेहैं औ आतेहैं औ जब विद्या (उपासना)कूं पावतेहैं तब अर्चिआदिक मार्गकरि जातेहैं॥७॥

टीकाः—[३३६]जब तो विद्याके सेवी नहीं होवैहैं औ इष्टआदिक कर्मकूं बी सेवन करते नहीं तब अनंतर इन कथनकिये अर्चि अरु धूम आदि रूप दोनूं मार्गनके मध्य किसीकरि बी (अ-न्यतरकरि बी) नहीं जातेहैं ॥ वे ये दंश (मक्षिका) मशक अरु कीटआदिक वारंवार आवर्त्तनकरनेवाले क्षुद्र (तुच्छ) भूत (जंतु) होवैहैं । अर्थ यह जोः—यातैं उभयमार्गनतैं

विषै स्थित हुये ध्यान (उपासन)कूं प्राप्त होवैं तब उत्तरा-यणमार्गकरि इहांतैं ब्रह्मलोककूं जातेहैं ॥

३३६ अब तृतीयस्थानकूं उपदेश करैहैं ॥

नीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳ

सीकरिबी नहीं [जातेहैं]। वे ये वारंवार आवर्त्तनवाले क्षुद्रभूत होवैहैं। "जायस्व म्रियस्व (जन्मकूं पाव। मरणकूं पाव)" ऐसा यह तृतीयस्थान है। तिसकरि वह

भ्रष्ट हुये वारंवार जन्मतेहैं अरु मरतेहैं॥ [३३७] तिनके जन्म मरणकी संततिका अनुकरण यह कहियेहै॥ [अथवा] जायस्व म्रियस्व (जन्मकूं पाव अरु मरणकूं पाव) ऐसैं ईश्वर निमित्तचेष्टा कहियेहै। जन्म मरणके क्षणकरिहीं कालकी यापना (क्रमण) होवैहै। परंतु क्रिया-

---

३३७ पुनः पुनः लोट्लकारके मध्यम पुरुषके एक वचनतैं तिन दोनूं क्रियापदोंके सर्व आख्यातनविषै विधानतैं पुनः पुनः जन्मते हैं औ मरते हैं। इस अर्थविषै "जायस्व म्रियस्व" ऐसा प्रयोग है। ऐसैं कहैहैं॥ इहां यद्वाः—सर्वेश्वर जो है सो दोनूं मार्गोंतैं भ्रष्ट देखिके ताकूं "जायस्व म्रियस्व (जन्मकूं पाव। मरणकूं पाव)" ऐसैं प्रेरण करैहै। यह इहां कहिये है। ऐसैं देखनेकूं योग्य है॥

स्थानं । तेनासौ लोको न सम्पूर्यते । तस्माज्जुगुप्सेत । तदेष श्लोकः ॥ ८ ॥

लोक नहीं संपूर्ण होवेहै । तातैं निंदाकूं करै ॥ तिसाविषै यह श्लोक है ॥ ८ ॥

ओंविषै वा भोगोंविषै काल नहीं है । यह अर्थ है ॥ ऐसा यह क्षुद्रजंतुरूप जो कहा सो पूर्व उक्त दो स्थानोंकूं अपेक्षाकरिके संसरणेवालोंका तृतीय स्थान है ॥ जिसँकरि[३३८] ऐसैं दक्षिणमार्गकरि गये लोकबी फेर आगमन करतेहैं । ज्ञान अरु कर्मके अनधिकारिनका दक्षिणमार्गकरि अगमन हीं है । ऐसैं तिसकरि यह लोक नहीं संपूर्ण करियेहै ॥ ॥ पंचमप्रश्न[३३९] तो पं-

३३८ "तिस करि यह लोक" इत्यादिवाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

३३९ उक्तरीतिकरि निर्णीत प्रश्नोंकूं विवेचन करिके निश्चयकी सुगमताअर्थ कथन करैहैं ॥ इहां व्यावर्त्तनाबी व्याख्यानकरी । ऐसैं उत्तर (आगेके) वाक्यविषै संबंध है औ मृतनका । याका मरणकूं पाये अविद्वानोंका अरु विद्वानोंका। यह अर्थ है । औ ता विद्वानोंकी अरु कर्मिनकी अंत्य इष्टितैं

चाग्निविद्याकरि व्याख्यानकिया ॥ प्रथमप्रश्न । दक्षिण उत्तर मार्गोंकरि दूरीकिया ॥ दक्षिण अरु उत्तर दोनूं मार्गोंकी व्यावर्त्तना बी व्याख्यानकरी । मृतपुरुषनका अग्निविषै डालना समान है । तातैं (तदनंतर) व्यावर्त्तना है जोः—अन्य अर्चिआदि मार्गकरि जातेहैं । अन्य धूमआदिककरि । फिर उत्तर अरु दक्षिण अयनरूप मासोंकूं प्राप्तहुये सम्यक् योजनाकूं पायके फेर व्यावर्त्तन (पुनरावृत्ति)कूं करतेहैं । अन्य संवत्सरकूं । अन्य मासोंतैं पितृलोककूं । ऐसी [व्यावर्त्तना जो है सो] व्याख्यानकरी ॥ क्षीण अनुशयवाले जीवनकी पुनरावृत्ति बी चंद्रमंडलतैं आकाशआदिकके क्रमकरि कही ॥ उस (स्वर्गरूप) लोकका अपूरण स्वशब्दकरिहीं कहा । तिसं[३४०]करि यह लोक नहीं संपूर्ण

अनंतर । "संवत्सरकूं" ऐसैं ज्ञानी (उपासनाकरि युक्त विद्वान्) ग्रहण करियेहैं औ "अन्य पितृलोककूं" ऐसैं केवल कर्मी ग्रहण करियेहैं । यह विभाग है ॥ औ क्षीण अनुशयवालोंकूं । याका चंद्रलोकविषै भोगनेयोग्य कर्मकूं भोगकरि क्षय करनेवालोंकूं । यह अर्थ है ॥

३४० स्वशब्दकूंहीं अनुवाद करैहैं ॥

करियेहै ऐसैं ॥ [341]जातैं इस प्रकारकी कष्टरूप संसारकी गति है तातैं ताकी निंदाकूं करै औ [342]जातैं जन्ममरणकरि जनित वेदनाके अनुभव-विषै कृतक्षण (प्राप्तअवसर)वाले क्षुद्र जंतु। घोर अरु दुस्तर अंधकारविषै । अगाध अरु नौकारहित सागरविषै उत्तरणके प्रति निराश हुये पुरुषनकीन्यांई प्रवेशकूं प्राप्तभये हैं। [343]तातैं इस प्रकारकी संसारकी गतिकूं निंदितकरै कहिये दोषदृष्टिरूप बीभत्साकी विषयकरै नाम इस प्रकारके घोर संसाररूप महोदधिविषै पात मति होवै। ऐसा घृणी (दोषदृष्टि वा करुणर-

---

३४१ इनकूं महान् आयासवाली तीव्र संसारकी गति किस अर्थ कही ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

३४२ तृतीय स्थानकी कष्टरूपताकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां जन्मआदिककरि जनित जो वेदना ताके अनुभवविषै किया है क्षण (अवसर) [अन्यठिकानैं नहीं] जिनोंका तैसैं [ऐसैं विग्रह है] औ अप्लव(नौकारहित)विषै । ऐसैं पदच्छेद है ॥

३४३ तृतीयस्थानकीन्यांई इतर दो मार्गनकूं आवृत्तिवाले होनेतैं तिनकी कष्टरूपता तुल्य है। इस अभिप्रायकरिके कहैहैं ॥

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाऽऽचरꣳस्तैरिति ॥ ९ ॥

अर्थः—सुवर्णका चोर । अरु सुराकूं पानकरता हुया । गुरुके तल्पके तांई बैठता हुया औ ब्रह्महा (ब्राह्मणका हंता)। ये च्यारी पतित होते हैं। औ पंचम तिनके साथि आचरता हुया है [सो] ॥ ९ ॥

सकरि युक्त) होवै ॥ तिसै[३४४] इस अर्थविषै पंचाग्निविद्याकी स्तुतिअर्थ यह श्लोक है ॥ ८॥

टीकाः—हिरण्य (ब्राह्मणके सुवर्ण) का स्तेन कहिये हर्ता (चोर)। औ ब्राह्मणहुवा सु-

---

३४४ संसारगतिके उपवर्णनके तात्पर्यकूं कहिके पंचाग्निविद्याविषै अनुष्ठानकी सिद्धिअर्थ ताके स्तावक श्लोक (मंत्र)कूं उदाहरणकरिके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां पंचाग्निविद्याका माहात्म्य जो है सो। "तिस इस अर्थविषै" इस सप्तमी विभक्तिका अर्थ है ॥

अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन् वेद न स ह तैरप्याचरन् पाप्मना लिप्यते शु-

---

अर्थः—औ जो इन ऐसे पंच अग्नियोंकूं जानताहै सो तिन (पातकियों)के साथिबी आचरता हुया पापकरि लिप्त होता नहीं।

राकूं पानकरता हुया औ गुरुके तल्प(दारा) के प्रति वसता (भोगता) हुया औ ब्रह्महा कहिये ब्राह्मणका हंता। ऐसैं ये च्यारी पतित होतेहैं औ पंचम तिनोंकेसाथि आचरता (संगकरता) हुया है सो इति ॥ ९ ॥

टीकाः—[३४५]औ फेर जो यथोक्त पांच अग्नियोंकूं जानताहै सो तिन महापातकियोंके साथि आचरता हुया बी पापकरि लिप्त

---

३४५ ननु पांच महापातकी श्लोकविषै निर्देश करिये हैं। परंतु पंचाग्निविद्याकी स्तुति इहां प्रतीत होती नहीं ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

द्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ १० ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य दशमः खंडः ॥ १० ॥

शुद्ध पूत पुण्यलोकवाला होवैहै । जो ऐसें जानता (नुपासता)है। जो ऐसें जानताहै १०

इति श्री० मूलभाषा० पंचमप्रपा० दशमः खंडः ॥१०

होता नहीं किंतु शुद्धहीं है कहिये तिसें[३४६] पंचाग्निके दर्शनकरि पावित (पावन भया) है। जातें पूत (पवित्र) है अरु पुण्यरूप है प्राजापत्य (प्रजापतिसंबंधी) आदिकलोक जिसका सो यह पुण्यलोक है। ऐसा होवैहै ॥ जो[३४७] ऐसें यथोक्त समस्त पांचप्रश्नोंकरि पूंछे अर्थके समूहकूं जानताहै ॥ इहां दोवार उक्ति जो

---

३४६ शुद्धताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

३४७ कौनकूं यह फल होवैहै ? इस अपेक्षाके हुये पूर्व उक्त विद्वान् (उपासक)कूं अनुवाद करैहैं ॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगत दशमखंडस्य टिप्पणम् ॥ १० ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११
प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः

अथ श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ११

अर्थः—१ प्राचीनशाल औपमन्यव २

है सो समस्तप्रश्नोंके निर्णयके दिखावनेअर्थ है ॥ १० ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठकस्य दशमःखंडः १०

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपा॰एकादशःखंडः १५

उद्दालक सह प्राचीनशालादिकसैं अश्वपतिसंवाद ७

टीकाः—[३४८]दक्षिणमार्गकरि जानेवालोंका "सो देवनका अन्न है । ताकूं देव भक्षण करैहैं" ऐसैं अन्नभाव कहा औ क्षुद्रजंतुस्वरूप कष्टरूप संसारकी गति कही । तिन दोनूं दोषनके निवारण करनेकी इच्छाकरि वैश्वानरनामक अत्ताभावकी प्राप्तिअर्थ उत्तरग्रंथ आरंभ करियेहै

अथ श्री॰पंचमप्रपा॰गतैकादशखंडस्य टिप्पणम् ११

३४८ पूर्व उत्तर ग्रंथनके संबंधकूं दिखावते हुये उत्तर ग्रंथकूं अवतार देते हैं ॥

पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्क-
राक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महा-

सत्ययज्ञ पौलुषि ३ इंद्रद्युम्न भाल्लवेय ४
जन शार्कराक्ष्य औ ५ बुडिल आश्वतरा-
श्वि । वे ये महाशालावाले महाश्रोत्रिय

"[३४९]अन्नकूं भक्षण करताहैं । प्रियकूं देखताहैं"
इत्यादि लिंगतें ॥ आख्यायिका तो सुखसें अ-
वबोधअर्थ औ [३५०]विद्याके संप्रदानके (देनेके अ-
धिकारीके) न्यायके दिखावनेरूप अर्थवाली है:–
१ नामतें प्राचीनशाल ऐसा उपमन्युका पुत्र
औपमन्यव औ २ नामतें सत्ययज्ञ ऐसा पु-
लुषका पुत्र पौलुषि । तैसें ३ नामतें इंद्रद्युम्न

---

३४९ उत्तरग्रंथकी वैश्वानरनामक अत्ताभाव (भोक्ता-
भाव)की प्राप्तिरूप अर्थवानताविषै गमक (लिंग)कूं कहैहैं ॥

३५० औ विद्याका संप्रदान (देनेका पात्र) जो शिष्य ।
ताका न्याय (रीति) जो विनयआदिककी संपत्ति । ताके दि-
खावनेअर्थ आख्यायिका है औ इहां प्राचीनशालआदिक
शिष्यनकूं तिनकी संपत्ति देखियेहै । ऐसें कहैहैं ॥

शाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाꣳसां-
चक्रुः को नु आत्मा किं ब्रह्मेति [?] ॥१॥

हुये मिलिके मीमांसा (विचार)कूं करते-
भयेः—कौंन हमारा आत्मा है ? कौंन ब्रह्म
है ? ऐसैं ॥ १ ॥

ऐसा भल्लविका पुत्र भाल्लवि ताकापुत्र भाल्ल-
वेय औ ४ नामतैं जन ऐसा शर्कराक्षका पुत्र
शार्कराक्ष्य औ ५ नामतैं बुडिल ऐसा अश्व-
तराश्वका पुत्र आश्वतराश्वि । पांच बी वे ये
महाशाल कहिये महागृहस्थ । अर्थ यह जोः—
विस्तीर्णशालाओंकरि युक्त (संपन्न) औ म-
हाश्रोत्रिय। अर्थ यह जोः—श्रवण अध्ययन अरु
वृत्त (सदाचार) करि संपन्न थे। वे इस प्रकारके
हुये मिलिके कहींक मीमांसा (विचारणा)कूं
करतेभये । यह अर्थ है ॥ ॥ कैसैं किः—कौंन
हमारा आत्मा है ? कौंन ब्रह्म है ? ऐसैं
आत्मा अरु ब्रह्म इन दो शब्दनके परस्पर वि-

शेषण-विशेष्यभावकूं [विचारते भये]॥इहां"ब्रह्म"[351] ऐसा शब्द अध्यात्मरूप परिच्छिन्न आत्माकूं निवर्त्त करैहै औ "आत्मा" ऐसा शब्द आत्मातैं व्यतिरिक्त आदित्यादिब्रह्मकी उपास्यताकूं निवृत्त करैहै ॥ [352]अभेदकरि आत्मा हीं ब्रह्म है। ब्रह्महीं आत्मा है । इस प्रकारसैं सर्वात्मा वैश्वानररूप जो ब्रह्म है सो आत्मा है। ऐसा यह सिद्ध होवैहै "[353]मूर्द्धा तेरा पतन होता। अंध होता" इत्यादि लिंगतैं ॥ १ ॥

---

३५१ ननु आत्मा अरु ब्रह्मशब्दका परस्पर विशेषणविशेष्यभाव कैसैं संभवै। काहेतैं व्यावर्त्य (भिन्न करनेकूं योग्य पदार्थ)नके अभावतैं ? यह आशंकाकारिके कहैहैं ॥

३५२ उक्तरीतिकरि परस्पर विशेषणविशेष्यभावके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

३५३ इस कहनेके हेतुतैंबी उपास्य (वैश्वानर)की सर्वात्मता जानियेहै। काहेतैं परिच्छिन्नवस्तुके उपासनकूं निंदित होनेतैं भूमा (ब्रह्मरूप अंगी)कूं क्रतु (यज्ञरूप अंगी)की न्यांई ज्यायपना (अंगनतैं बडेपना) है। इस न्यायतैं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां भगवान् (पूजावान्) हुये संपादन करते भये। ऐसैं पूर्वसैं संबंध है ॥ औ "अश्वपति" इत्यादिरूप वाक्यविषै हे भगवन्! ऐसैं राजाकरि प्राचीनशाल आदिक ब्राह्मण संबोधन [केविषय] करियेहैं ॥

ते ह सम्पादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति। तꣲ हन्ताभ्यागच्छामेति। तꣲ हाभ्याजग्मुः ॥ २ ॥

अर्थः—वे भगवान् (पूजावान्) हुये [उपदेष्टाकूं] संपादनकरते भये ॥ प्रसिद्ध उद्दालक यह आरुणि अबी इस आत्माकूं वैश्वानर स्मरण करताहै। ताकेप्रति अब जावैं ऐसैं [निश्चयकरिके] ता (उद्दालक) के प्रति आवते भये ॥ २ ॥

टीकाः—वे विचारकूं करते हुयेबी निश्चयकूं अप्राप्त होयके भगवान् (पूजावान्) हुये आपके उपदेष्टाकूं संपादन करतेभये ॥ उद्दालक ऐसा नामतैं प्रसिद्ध यह अरुणका पुत्र आरुणि अबी सम्यक् इस अस्मत्अभिप्रेत वैश्वानररूप आत्माकूं स्मरण करताहै ताके

स ह सम्पादयाञ्चकार—प्रक्ष्यंति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्व्वमिव प्रतिपत्स्ये। हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ॥ ३ ॥

अर्थः—सो (उद्दालक) संपादन करता भयाः—ये महाशालावाले महाश्रोत्रिय मेरेप्रति पूंछतेहैं। तिनकेअर्थ सर्वकीन्यांई कहनेकूं उत्साह करता नहींहूं। अब मैं अन्य [उपदेष्टा]कूं अनुशासनकरों (कहों) ऐसें ॥ ३ ॥

प्रति अब हम गमनकरैं। इस प्रकारसैं निश्चय करिके ता आरुणिके प्रति गमन करतेभये ॥ २ ॥

टीकाः—सो (उद्दालक) तिनकूं देखिकेहीं तिनके आगमनके प्रयोजनकूं जानिके संपादन करताभया ॥ ॥ कैसैंकिः—ये बडे गृह-

तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति। तᳪं हन्ताभ्यागच्छामेति। तᳪं हाभ्याजग्मुः ॥ ४ ॥

अर्थः—तिनकेप्रति [उद्दालक] कहताभयाः—हे भगवन्! प्रसिद्ध अश्वपति यह कैकेय अबी इस आत्माकूं वैश्वानर स्मरण करताहै। अबी ताकेप्रति जावैं। ऐसैं[निश्चय करिके] ताके प्रति आवतेभये ॥ ४ ॥

स्थ महाश्रोत्रिय मेरेप्रति पूंछेंगे। तिनके अर्थ मैं पूंछे हुये अर्थकूं सर्वकीन्यांई (संपूर्णकीन्यांई) कहनेकूं उत्साहकरता नहीं। यातैं अब मै इनोंके अन्य उपदेष्टाकूं अनुशासनकरों (कथनकरों) ऐसैं ॥ ३ ॥

टीकाः—ऐसैं संपादन (सिद्ध) करिके तिनकूं कहताभयाः—हे भगवन् (पूजावाले)! नामतैं अश्वपति ऐसा यह केकयका पुत्र कै-

तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार। स ह प्रातः सञ्जिहान उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कदर्य्यो न म-

---

अर्थः—प्राप्तभये तिनकेअर्थ पृथक् पूजनोंकूं करावताभया ॥ सो (राजा) प्रातःकालमैं शयनकूं त्यागता हुया कहताभयाः—मेरे देशविषै चोर नहीं है। कदर्य (अति-

---

केय। अबी सम्यक् इस वैश्वानररूप आत्माकूं स्मरण करताहै। इत्यादि समानहै ॥ ४ ॥

टीकाः—सो अश्वपतिनामक राजा तिन प्राप्तभये अतिथिनकेअर्थ पुरोहितनकरि अरु भृत्य (किंकर) नकरि पृथक् पृथक् पूजनोंकूं करावताभया ॥ सो[३५४] राजा अन्य दिनविषै

---

३५४ "सो (राजा)" इत्यादि वाक्यकूं उपस्कार (सामग्री) सहित व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यथोक्त । याका शास्त्रप्रसिद्ध । यह अर्थ है ॥

द्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तो-

---

कृपण) नहीं है। मद्यपानका कर्त्ता नहीं है। अनाहिताग्नि नहीं है। अविद्वान् नहीं है। स्वैरी (व्यभिचारी पुरुष) नहीं है [तब] स्वैरिणी कहांतैं होवैगी ॥ हे भगवन्!

प्रातःकालमैं शयनकूं त्यागताहुया समीप आयके विनयकरि कहताभयाः–मुजतैं इसधनकूं ग्रहण करहू ऐसैं ॥ तिनोंकरि प्रत्याख्यात कहिये हम नहीं ग्रहण करते ऐसैं निषेधकूं प्राप्तहुया राजा। मुजविषै निश्चयकरि दोषकूं देखतेहैं। जातैं मुजतैं धनकूं ग्रहण करते नहीं। ऐसैं मानताहुया आपकी सदाचारवान्ताकूं प्रतिपादन करनेकूं इच्छता हुया कहताभयाः– मेरे जनपद (देश) विषै स्तेन कहिये परधनका हर्त्ता चोर विद्यमान नहीं है। विभव (ऐश्वर्य)के होते कदर्य (अदाता) न-

ऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु मे भगवन्त इति ॥ ५ ॥

मैं यक्ष्यमाण (यजन करनेवाला) हीं हूं। जितना एक एक ऋत्विक्केअर्थ धन द्यौंगा तितना भगवानोंकेअर्थ द्यौंगा। हे भगवन्! वासकूं करहू ऐसैं ॥ ५ ॥

हीं है। द्विजोत्तम (ब्राह्मण) हुया मद्यप (मदिराकूं पान करनेवाला) नहीं है। शतगु (सो गौआंवाला) हुया अनाहिताग्नि कहिये नित्य अग्निहोत्रके आधान किये अग्निसैं रहित नहीं-है। अधिकारके अनुसार विद्यासैं रहित ऐसा अविद्वान् नहीं है। परदारन (परस्त्रियों)-विषै गमन करनेवाला स्वैरी (व्यभिचारी) पुरुष नहीं है। तब स्वैरिणी कहिये दुष्टचारिणी स्त्री कहांतें होवैगी। अर्थ यह जोः—नहीं संभवैहै॥ ॥औ तिनोंकरि "हम धनसैं अर्थी (अर्थ-

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳ

अर्थः—वे प्रसिद्ध कहते भयेः—जिसीहीं अर्थकरि पुरुष विचरै ताहींकूं कहै। आत्मा-

---

वाले) नहींहैं" ऐसैं॥ ॥ उक्त हुया राजा "ये अतिथि अल्पधनकूं मानिके नहीं ग्रहण करते हैं" ऐसैं मानता हुया कहताभयाः—हे भगवन्! मैं कितनैक दिनोंकरि यजन करनेवाला हूं। ता(यज्ञ)केअर्थ मैनैं धन कल्प्या है। जितना यथोक्त (शास्त्रप्रसिद्ध) धन एक एक ऋ-त्विककेअर्थ द्यौंगा। तितना एकएक भग-वान्के (पूजावान् तुह्मारे) अर्थ बी द्यौंगा। हे भगवन् [आप]! वास करहू औ मेरे या-गकूं देखहू ॥ [५]॥ ऐसैं राजाकरि उक्तहुये वे अतिथि कहतेभयेः—जिसींहींअर्थ (प्रयो-जन)करि पुरुष जाके प्रति गमनकरै ति-सींहींअर्थकूं कहै॥ यह हीं आगमनका प्रयो-जन है। ऐसा यह सत्पुरुषनका न्याय है औ

हैव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरꣳ सम्प्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति ॥ ६ ॥

रूपहीं इस वैश्वानरकूं अबी सम्यक् जानताहैं ताहीकूं हमारेअर्थ कथनकर! ऐसैं॥६॥

---

[३५५]हैंमैं वैश्वानरके ज्ञानके अर्थीहैं। [३५६]इस वैश्वानर रूप आत्माकूंहीं अबी तूं सम्यक् जानताहैं। यातैं ताहीकूं हमारेअर्थ कथनकर!॥[६]॥ ऐसैं उक्तहुया अश्वपति-राजा तिनकूं कहताभयाः—प्रातःकालमैं तुह्मारेअर्थ प्रतिवक्ता कहिये प्रतिवाक्यके प्रति दाता होऊंगा ॥ ऐसैं उक्तहुये वे राजाके अभिप्रायकूं जानने-

---

३५५ तब आपके आगमनका प्रयोजन क्या है? सो कहैहैं॥

३५६ सो मेरेपासबी नहीं है। या शंकाकूं निरास करैहैं॥ इहां शिष्यभावकरि उपसन्न (शरणागत होनेरूप उपसत्तिकूं प्राप्त) इन ब्राह्मणोंकेअर्थ किसी प्रकारसैंबी विद्या नहीं देनेकूं योग्य है। यह राजाका अभिप्राय है॥

तान् होवाच-प्रातर्वः प्रतिवक्ताऽस्मी-
ति ॥ ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिच-

अर्थः—तिनकेप्रति [सो राजा] कह-
ताभया:—प्रातःकालमैं तुह्मारेअर्थ उत्तर-
का दाता होउंगा ॥ ॥ [ऐसैं उक्त हुये]
वे समित्पाणि [होयके] पूर्वान्हविषै समीप

वाले समित्पाणि हुये कहिये समिधोंका भार
है हस्तविषै जिनोंके ऐसैं हुये अन्यदिनविषै
पूर्वाह्नमैं (मध्यान्नतैं पूर्व) राजाके प्रति ग-
मन करतेभये ॥ [357]जातैं ऐसैं महाशालावाले
महाश्रोत्रिय ब्राह्मणहुये महाशालावान्‌पनैआ-
दिकके अभिमानकूं छोडिके समिधोंका भार है
हस्तविषै जिनोंके ऐसैं वि[358]द्यार्थी हुये जातितैं

---

३५७ "वे (ब्राह्मण)" इत्यादि षष्ठ वाक्यके तात्पर्यकूं
दिखावै हैं ॥

३५८ योगक्षेमकेअर्थ राजाकेप्रति ब्राह्मणोंका उपगमन
इष्ट हीं है? ऐसैं मानते हुये विशेषण देते हैं ॥ इहां तथा
(तैसैं) इस ठिकानैं अतः (यातैं) शब्द देखनेकूं योग्य है औ

क्रमिरे ॥ तान् हानुपनीयैवैतदुवाच॥७॥
इति पंचमप्रपाठकस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

जाते भये ॥ ॥ [राजा] तिनकूं पादवंदन नकरवायकेहीं यह कहताभया ॥ ७ ॥
इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्र०एकादशः खंडः ११

हीन (क्षत्रिय) राजाके प्रति विनयकरि (नम्र-भावकरि) उपगमन करतेभये कहिये शिष्यकी रीतिसैं शरणागत होतेभये । तैसैं यातैं अन्य विद्याके ग्रहण करनेकी इच्छावालोंकरि होनेकूं योग्य है॥ औ [राजा] तिनकूं उपनयन (दोपादनविषै निपतन) नकरवायकेहीं [३५९] तिन यथा-योग्यनके अर्थ विद्याकूं देताभया । तैसैं अन्य विद्वान्‌करिबी विद्या देनेकूं योग्य है । यह आ-

---

उपनयन कहिये दो पादनविषै निपतन (गिरना) औ वक्ष्य-माण जो वैश्वानरका विज्ञान है तिसकेसाथि "इस" या प-दका संबंध है । यह अर्थ है ॥

३५९ आख्यायिकाके तात्पर्यकूं उपसंहार करैहैं ॥

इति श्री०पंचमप्रपाठकगतैकादशखंडस्य टिप्पणम् ॥ ११ ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य द्वादशः खंडः १२
औपमन्यव ! कं त्वमात्मानमुपास्स

अथ श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपाठकस्य द्वादशःखंडः १२

अर्थः—राजोवाचः—१ हे औपमन्यव ! तूं किस आत्माकूं उपासताहैं ? ॥ ॥ ऐसैं

ख्यायिकाका अर्थ है ॥ इस वैश्वानर संबंधी विज्ञानकूं कहताभया । ऐसैं वक्ष्यमाण (आगे कहनेके) ग्रंथसैं संबंध है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठकस्यैकादशः खंडः ॥ ११ ॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठ॰द्वादशः खंडः ॥ १२ ॥

प्राचीनशाल-अश्वपतिसंवाद (स्वर्गाऽऽत्मा) २

टीकाः—सो राजा कैसैं कहताभया ? यह श्रुति कहैहैः—१ राजोवाचः—हे औपमन्यव ! तूं किस आत्मारूप (वैश्वानर)कूं उपासताहैं ? ऐसैं एक विद्यार्थीकूं पूंछताभया ॥ ॥ [३६०] ननु यह अन्याय है किः—आचार्य हुया शि-

---

अथ श्री॰पंचमप्रपाठ॰द्वादशखंडस्य टिप्पणम् १२

३६० शिष्य प्रसिद्ध प्रष्टा (पूंछनेवाला) औ आचार्य तो

इति॥ दिवमेव भगवो राजन्निति होवा-
चैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं

उक्तहुया [प्राचीनशालः-] हे भगवन्! हे राजन्! स्वर्गलोककूंहीं [उपासताहूं]। ऐसैं कहताभया॥ ॥[राजाः-] यह प्रसिद्ध सुतेजा (सुंदर तेजवाला) आत्मा

ष्यके प्रति पूंछताहै ऐसैं? [361] यह दोष बनै नहीं: काहेतैं "जो जानताहै तिसकरि मेरेप्रति शरणागत हो। तातैं ऊर्ध्व तेरेअर्थ कहूंगा" इस न्यायके देखनेतैं॥ [362] अन्यत्र बी आचार्य (अजातशत्रु राजा)का अप्रतिभानवाले शिष्यविषै प्रतिभानके उत्पादनअर्थ प्रश्न देख्या है:-"यह तब (सुषुप्तिकालमैं) कहांथा। कहांतैं यह जैसैं

प्रतिवक्ता होवैहै? इस न्यायकरि पूर्ववादी शंका करैहै॥

३६१ वाक्यशेषके आश्रयकरि सिद्धांती दूषण देतेहैं॥

३६२ बृहदारण्यककी श्रुतिकी आलोचना (विचार)के हुयेबी यह अन्याय नहीं। ऐसैं कहैहैं॥ इहां आचार्य[के] अजातशत्रुके। ऐसैं संबंध है॥

त्वमात्मानमुपास्से। तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

वैश्वानर है। जिस आत्माकूं तूं उपासता हैं। तिसतैं तेरे कुलविषै सुत (सोम) प्रसुत अरु आसुत देखियेहै ॥ १ ॥

होवै तैसैं आवता भया" ऐसैं ॥ ॥ प्राचीनशाल उवाचः—हे भगवन् ! हे राजन्! "स्वर्गलोक रूपहीं वैश्वानरकूं मैं उपासताहूं"। ऐसैं कहता भया ॥ ॥ राजोवाचः—यह प्रसिद्ध सुतेजा कहिये शोभन है तेज जिसका सो यह सुतेजा कहियेहै। ऐसा प्रसिद्ध वैश्वानररूप आत्मा है। काहेतैं [३६३] आत्माका अवयवभूत होनेतैं॥ तूं जिस

---

३६३ ता (स्वर्गलोक)के आत्मभावविषै प्राचीनशाल हेतुकूं कहैहै ॥ इहां एकाह (एकदिवस) आदिरूप ज्योतिष्टोम आदिक यज्ञ अहर्गण कहिये है। तिसविषै सुत जो सोमरूप लतामय द्रव्य अहीन (उत्तम शुद्ध ब्राह्मणादि वर्ण)के होते प्रसुत होवैहै। औ सत्रनामक यागविषै तो आसुत होवैहै। यह भेद है औ तेरे। ऐसा फेर कथन अन्वयके दिखावने अर्थ है ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले

अर्थः—अन्नकूं खाता हैं। प्रियकूं देखताहैं॥ अन्नकूं खाताहै । प्रियकूं देखता है। इसके कुलविषै ब्रह्मवर्चस (ब्रह्मतेज)

आत्माकूं (आत्माके एकदेशकूं)उपासताहैं। तिस सुतेजा वैश्वानरके उपासनतैं तेरे कुलविषै सुत जो सोमरूप अभिषुत। सो कर्मविषै प्रसुत कहिये प्रकर्षकरि सुत औ अहर्गण आदिकनविषै आसुत देखियेहै। अर्थ यह जोः—तेरेकुलविषै उत्पन्न जे पुरुष वे अतीव (अतिशयकरि हीं) कर्मी हैं॥ [१]॥ तूं प्रदीप्त अग्निवाला हुया अन्नकूं भक्षण करताहैं औ पुत्र पौत्रादिरूप प्रिय (इष्ट)कूं देखताहैं॥१॥

टीकाः—अन्यबी[३६४] अन्नकूं भक्षण करताहै

---

३६४ केवल प्राचीनशालविषै स्थित। यह फल नहीं किंतु अन्यकूंबी होवैहै। ऐसें कहैहैं॥

य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते । मूर्द्धा त्वेष आत्मन इति होवाच । मूर्द्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥२॥

इति पंचमप्रपाठकस्य द्वादशः खंडः ॥ १२ ॥

होवैहै । जो इस वैश्वानररूप आत्माकूं ऐसैं उपासताहै ॥ यह आत्माका मूर्धा तो है । ऐसैं कहताभया । मूर्धा तेरा पतन होता जो मेरेप्रति नहीं आवता ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपा०द्वादशः खंडः१२

औ प्रियकूं देखताहै । इसके कुलविषै सुत जो है सो । प्रसुत अरु आसुत इत्यादि कर्मीपनारूप ब्रह्मवर्चस होवैहै ॥ जो कोइकबी ऐसैं इस यथोक्त आत्मारूप वैश्वानरकूं उपासताहै ॥ परंतु आत्मारूप वैश्वानरका[३६५] मूर्धा (मस्तक) तो यह है । समस्त वैश्वानर न-

---

३६५ तब यथोक्त वैश्वानरके ज्ञानतैंहीं कृतकृत्यता होवैगी ? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥

अथ पंचमप्रपाठक० त्रयोदशः खंडः १३

अथ होवाच–सत्ययज्ञं पौलुषिं। प्रा-

अथ श्री० मूलभाषा० पंचमप्रपाठकस्य त्रयोदशः खंडः १३

अर्थः–अनंतर [राजा] २ सत्ययज्ञ पौलुषिकूं कहताभया:–हे प्राचीनयोग्य!

हीं। यातें [इस असमस्तविषै]. समस्तबुद्धि-करि वैश्वानरके उपासनतैं तुज विपरीतग्राहीका मूर्धा (शिर) विपतित होता (गिर-जाता) जो मेरे प्रति तूं नहीं आवता तो।
[२६६] श्रेष्ठ करताभयाहैं:–जो तूं मेरेप्रति आयाहैं। यह अभिप्राय है ॥ २ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्रपाठकस्य द्वादशः खंडः १२॥

अथ श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्र० त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

सत्ययज्ञ-अश्वपतिसंवाद (सूर्याऽऽत्मा) २

टीका:–अनंतर २ सत्ययज्ञ पौलुषिकूं कहताभया ॥ राजोवाच:–हे प्राचीनयो-

---

२६६ अक्षरार्थकूं कहिके विवक्षित अर्थकूं कहैहैं ॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगतद्वादशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १२ ॥

चीनयोग्य ! कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से । तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

तूं किस आत्माकूं उपासताहैं ? ॥ ॥ ऐसैं [उक्तहुया सत्ययज्ञः-] हे भगवन् ! हे राजन् ! आदित्यकूंहीं । ऐसैं कहताभया ॥ ॥ [राजाः-] यह प्रसिद्ध विश्वरूप आत्मा वैश्वानर है । जिस आत्माकूं तूं उपासता हैं । तिसतैं तेरेकुलविषै बहु विश्वरूप (साधन) देखियेहै ॥ १ ॥

ग्य ! तूं किस आत्माकूं उपासताहैं ? ऐसैं ॥ ॥ सत्ययज्ञ उवाचः-हे भगवन् ! हे राजन् ! "आदित्यकूंहीं" ऐसैं कहता भया ॥ ॥ राजोवाचः-आदित्यकूं शुक्ल नील आदिकरूपवाला होनेतैं । वा सर्वरूप होनेतैं

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्य-
न्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं

अर्थः-[तेरेप्रति] अश्वतरीरथ अरु दासीनकरि युक्त हार प्रवृत्त भया है। अन्नकूं खाताहैं। प्रियकूं देखताहैं॥ अन्नकूं खाता है। प्रियकूं देखता है। इ-

---

विश्वरूपपना है। वा जातैं सर्वरूप[३६७] त्वष्टा (सूर्य) के हैं। यातैं यहहीं आदित्य विश्वरूप है॥ ताके उपासनतैं तेरे कुलविषै बहु विश्व-रूप (इसलोक अरु परलोककेअर्थ उपकरण) देखियेहै॥ १॥

टीका:-किंवाः-तेरे पीछे दो अश्वतरी(खे-

अथ श्री० पंचमप्रपाठ०त्रयोदशखंडस्य टिप्पणम् १३

३६७ इहां अथ शब्दका प्राचीनशालके तूष्णीभूत अरु जिज्ञासावान् हुये अनंतर। यह अर्थ है औ आदित्यका शु-क्लताआदिरूपवान्पना अष्टम अध्यायविषै स्पष्ट होवैगा। ता (आदित्य)की सर्वरूपताकरि उक्त विश्वरूपताकूं उपपादन करैहैं॥ इहां "अन्नकूं खाता हैं" इत्यादि वाक्य "चक्षुतो यह है" या वाक्यतैं पूर्वका है। यह शेष है॥

भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमा-
त्मानं वैश्वानरमुपास्ते। चक्षुष्ट्वेदतात्मन
इति होवाचान्धोऽभविष्यद्यन्मां नाग-
मिष्य इति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

सके कुलविषै ब्रह्मवर्चस होवैहै। जो इस
आत्मारूप वैश्वानरकूं ऐसें उपासताहै ॥
यह आत्माका चक्षु तो है। ऐसें कहताभया॥
अंध होता जो मेरे प्रति नहीं आवता[तो]
ऐसें ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्र०त्रयोदशःखंडः १३

चरी) नकरि युक्त जो रथ सो अश्वतरीरथ
कहियेहै । सो प्रवृत्तभया (चलता)है औ
दासियोंकरि युक्त ऐसा निष्क जो हार सो
दासीनिष्क कहियेहै सो [तेरेकूं प्राप्तभयाहै]।
अन्नकूं खाताहैं । इत्यादि समान है ॥ परंतु

अथ पंचमप्रपाठकस्य चतुर्दशःखंडः १४

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं । वै-

अथ श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपा०चतुर्दशः खंडः १४

अर्थः-अनंतर [राजा] ३ इंद्रद्युम्न भा-ल्लवेयकूं कहताभयाः-हे वैयाघ्रपद्य ! तूं

आत्मारूप वैश्वानरका[३६८] चक्षु यह सविता (सूर्य) है [समस्त वैश्वानर नहीं]। ताके समस्तबुद्धिकरि उपासनतैं तूं अंध होता कहिये चक्षु-हीन होता । जो मेरेप्रति नहीं आवतातो । यह [३६९] पूर्वकी न्यांई है ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य त्रयोदशःखण्डः १३

अथ श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठ०चतुर्दशःखंडः॥ १४॥

इंद्रद्युम्न-अश्वपतिसंवाद (वायुआत्मा) २

टीकाः-अनंतर ३ इंद्रद्युम्न भाल्लवेयकूं

---

३६८ "चक्षुतो यह है" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

३६९ तिसविषैबी पूर्वके अनुसार तात्पर्य देखनेकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगतत्रयोदशखंडस्य टिप्पणम्॥ १३ ॥

याघ्रपद्य! कं त्वमात्मानमुपास्स इति ?
वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष
वै पृथग्वर्त्माऽऽत्मा वैश्वानरो यं त्व-

किस आत्माकूं उपासताहैं? ऐसें ॥ ॥
[इंद्रद्युम्न] हे भगवन्! हे राजन्! वायु-
कूंहीं। ऐसें कहताभया॥ ॥[राजाः-]
यह प्रसिद्ध पृथग्वर्त्मा (नानामार्गवाला
वायुरूप) आत्मा वैश्वानर है जिस आ-

कहताभया ॥ राजोवाचः-हे वैयाघ्रपद्य
(व्याघ्रके लक्षणकरि श्लाघायुक्त)! तूं किस
आत्माकूं उपासताहैं ? इत्यादि समान है ॥
राजोवाचः-पृथक् (नाना[३७०]) हैं वर्त्म (मार्ग)

अथ श्री॰पंचमप्रपाठ॰ चतुर्दशखंडस्य टिप्पणम् १४
३७० इहां सत्ययज्ञके उपरम (तूष्णीभाव)के अनंतर। यह अथशब्दका अर्थ है औ इत्यादि। इस आदिपदकरि "पृथक्" इसपदतैं पूर्वका वाक्य ग्रहण किया है। अब पृथग्वर्त्मा। इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करैहैं॥ इहां अभिमुख होने-

मात्मानमुपास्से। तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति॥१॥

त्माकूं तूं उपासताहैं। तातें तेरे प्रति पृथक् बलि आवतेहैं। पृथक् रथनकी पंक्तियां पीछे चलतियां हैं ॥ १ ॥

जिस आवह अरु उद्वह आदिक भेदनकरि वर्त्तमान वायुके। सो यह पृथग्वर्त्मा वायु है ॥ तिसे[३७१] पृथग्वर्त्मा आत्मारूप वैश्वानरके उपासनतें तेरेप्रति पृथक् (नाना दिशाओंविषै होनेवाले) वस्त्रअन्न आदिकरूप बलि (भेट) आवतेहैं औ पृथक् (नाना) रथनकी पंक्तियांबी तेरे पीछे गमन करैहैं ॥ १ ॥

करि आगमन करता हुया वायु आवह कहियेहै औ ऊर्ध्व करि वहताहै यातें उद्वह कहियेहै ॥

३७१ "तातें तेरेप्रति" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां नाना दिक्का। याका (नानादिशाओंविषै होनेवाले) यह अर्थ है औ "अन्नकूं खाता हैं" इत्यादि समान है। इस वाक्यविषै जो आदिपद है सो "उपासताहै" इहां पर्यंतके वाक्यके ग्रहणअर्थ है ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते। प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच। प्राणस्त

अर्थः–अन्नकूं खाताहैं। प्रियकूं देखता हैं॥ अन्नकूं खाताहै। प्रियकूं देखताहै। इसके कुलविषै ब्रह्मवर्चस होवैहै। जो इस आत्मारूप वैश्वानरकूं ऐसैं उपासता है॥ यह आत्माका प्राण तो है। ऐसैं कहताभया॥ तेरा प्राण उत्क्रमण करता जो

टीकाः–अन्नकूं खाताहैं। इत्यादि समान है॥ परंतु [३७२] आत्माका प्राण यह (वायु) है। ऐसैं कहताभया॥ तेरा प्राण उत्क्रमण करता कहिये उत्क्रांत होता (देहतैं निकस जाता)

---

३७२ उत्तर (पीछले) वाक्यविषैबी अभिप्रायकी समताकूं मानिके कहैहैं॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगतचतुर्दशखंडस्य टिप्पणम्॥ १४॥

उदक्रमिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति॥२॥

इति पंचमप्रपाठकस्य चतुर्दशः खंडः ॥ १४ ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य पञ्चदशः खंडः १५

अथ होवाच–जन४ शार्कराक्ष्य! कं

मेरेप्रति नहीं आवता [तो] ऐसें ॥ २ ॥

इति श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपा॰चतुर्दशःखंडः१४

अथ श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपा॰पंचदशः खंडः ॥१५॥

अर्थः–अनंतर [राजा] ४ जनकूं क-हताभया:–हे शार्कराक्ष्य ! तूं किस आ-

---

जो मेरेप्रति तूं नहीं आवता तो ऐसें ॥ २ ॥

इति श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठ॰ चतुर्दशः खण्डः॥१४॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपा॰पंचदशः खण्डः॥१५॥

जन-अश्वपतिसंवाद (आकाशाऽऽत्मा) २

टीकाः–अनंतर४जन नामक शिष्यकूं कहताभया॥ राजोवाचः–इत्यादि समान है॥ ॥ [राजा कहैहै:–] यह (आकाशरूप) प्रसिद्ध बहुल आत्मा वैश्वानर है। आकाशकूं सर्व-

त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भग-
वो राजन्निति होवाचैष वै बहुल आत्मा
वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से। तस्मा-
त्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च॥१॥

त्माकूं उपासताहै ? ॥ ॥ ऐसें [उक्त-
हुया जनः-] हे भगवन् ! हे राजन् !
आकाशकूं हीं । ऐसें कहताभया ॥ ॥
[राजाः-] यह प्रसिद्ध बहुल आत्मा वै-
श्वानर है। जिस आत्माकूं तूं उपासताहैं।
तातें तूं प्रजाकरि औ धनकरि बहुल हैं॥१॥

गत होनेतें औ बहुलगुणकरि बहुलपनाहै[३७३] ॥
ताके उपासनतें तूं पुत्र पौत्रादि प्रजाकरि
औ हिरण्यआदिक धनकरि बहुलहैं ॥ १ ॥

अथ श्री०पंचमप्रपाठ०पंचदशखंडस्य टिप्पणम् १५

३७३ इहां इंद्रद्युम्नके उपरमकी अनंतरता । अथ शब्दका अर्थ है औ इहां जो आदिपद है सो "यह" इस वाक्यतैं पूर्वले वाक्यके संग्रहअर्थ है ॥ अब आकाशकी बहुलता कैसैं है ? यह शंका भई । यातैं कहैहैं ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते । स-

---

अर्थः—अन्नकूं खाताहैं । प्रियकूं देखताहैं ॥ अन्नकूं खाताहै । प्रियकूं देखताहै इसके कुलविषै ब्रह्मवर्चस होवैहै । जो इस आत्मारूप वैश्वानरकूं ऐसैं उपासताहै ॥

टीकाः—॥ परंतु यह (आकाश) वैश्वानर (विराट्रूप आत्मा)का संदेह[३७४] कहिये मध्यम शरीर (शरीरका मध्यमभागरूप उदर) है [समस्त नहीं] ॥ "दिहि" धातुकूं उपचय (वृद्धि) रूप अर्थवाला होनेतैं मांस[३७५] रुधिर अरु अस्थि

---

३७४ शरीरके मध्यमभागविषै संशयका वाची "संदेह" शब्द कैसैं वर्त्तता है ? तहां कहैहैं ॥

३७५ आकाशकूं सर्वगत होनेकरि बहुल होनेतैं औ देहकूं परिच्छिन्न होनेकरि ता (बहुलता)के अभावतैं आकाश

न्देहस्त्वेष आत्मन इति होवाच। सन्देहस्ते व्यशीर्य्यद्यन्मां नागमिष्य इति॥२॥
इति पंचमप्रपाठकस्य पंचदशः खंडः ॥ १५ ॥

यह आत्माका संदेह (शरीर) तो है। ऐसें कहताभया ॥ तेरा संदेह (शरीर) विशीर्ण (नष्ट) होता जो मेरे प्रति नहीं आवता ऐसें ॥ २ ॥
इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपा०पंचदशःखंडः १५

आदिकनकरि बहुल (बढ्या) जो शरीर सो संदेह है ॥ तेरा शरीर विशीर्ण (नष्ट) होता जो तूं मेरेप्रति नहीं आवता तो ऐसें॥ २ ॥
इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठ०पंचदशः खण्डः॥ १५॥

वैश्वानरका शरीर कैसें होवैगा ? यह आशंकाकरिके कहैहैं॥
इहां सो शरीर [संदेह] है ऐसें संबंध है ॥
इति श्री० पंचमप्रपाठकगतपंचदशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १५ ॥

अथ पंचमप्रपा॰षोडशः खंडः ॥ १६ ॥

अथ होवाच-बुडिलमाश्वतराश्विं । वैयाघ्रपद्य! कंत्वमात्मानमुपास्स इत्यप-

---

अथ श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपा॰ षोडशः खंडः ॥१६॥

अर्थः–अनंतर [राजा] ५ बुडिल आश्वतराश्विकूं कहताभयाः–हे वैयाघ्रपद्य ! तूं किस आत्माकूं उपासताहैं ? ॥ ॥

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपा॰षोडशः खण्डः ॥१६॥

बुडिल-अश्वपतिसंवाद (जलाऽऽत्मा) २

टीकाः–अनंतर५ बुडिल आश्वतराश्विकूं राजा कहताभया । इत्यादि समान है ॥ ॥ [राजा कहैहैः–] यह प्रसिद्ध रयि (धनरूप) आत्मा वैश्वानर है ॥ जलतें[३७६] अन्न होवैहै ।

अथ श्री॰पंचमप्रपाठक॰षोडशखंडस्य टिप्पणम् १६

३७६ इहां जननामक शिष्यके उपरमके अनंतर । अथ शब्दका अर्थ है ॥ जलस्वरूप जो वैश्वानर सो "रयि" ऐसैं धनकरि कैसैं निर्देश करियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां "आयुहीं घृत है" याकी न्यांई कार्यके वाचक रयि (धन) शब्द

एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयि-
रात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से।
तस्मात्त्वꣳ रयिमान् पुष्टिमानसि ॥१॥

ऐसैं [उक्त हुया बुडिलः-] हे भगवन् !
हे राजन् ! जलहींकूं । ऐसैं कहताभया ॥
[राजाः-] यह प्रसिद्ध रयि (धनरूप
जल) आत्मा वैश्वानर है । जिस आत्माकूं
तूं उपासताहैं । तातैं तूं रयिमान् (धन-
वान्) पुष्टिमान् हैं ॥ १ ॥

तिसतैं धन होवैहै ऐसैंहै । तातैं तूं रयिमान्
(धनवान्)हैं औ शरीरकरि पुष्टिमान् हैं ।
पुष्टिकूं[३७७] अन्नरूप निमित्तवाली होनेतैं ॥ १ ॥

करि कारण (जलरूप वैश्वानर) लखिये है (लक्षणसैं जानि-
येहै) । यह अर्थ है औ तातैं । याका यथोक्त वैश्वानरके उ-
पासनतैं । यह अर्थ है ॥

३७७ धनरूप वैश्वानरके उपासनतैं धनवान् हैं ऐसैंहीं
कहनेकी योग्यताके हुये पुष्टिमान् हैं ऐसैं अधिकका मिश्रण
कैसैं किया ? तहां कहैहैं ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते। बस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच। बस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्य षोडशः खंडः ॥ १६ ॥

अर्थः-अन्नकूं खाताहैं। प्रियकूं देखताहैं अन्नकूं खाताहै। प्रियकूं देखताहै। इसके कुलविषै ब्रह्मवर्चस होवैहै। जो इस आत्मारूप वैश्वानरकूं ऐसैं उपासताहै ॥ यह आत्माका बस्ति (मूत्रस्थान) तो है। ऐसैं कहताभया ॥ तेरा बस्ति फटता जो मेरेप्रति नहीं आवता [तो] ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपा०षोडशःखंडः१६

टीकाः-परंतु यह आत्मारूप वैश्वानरका [३७८] बस्ति कहिये मूत्रके संग्रहका स्थान है॥ तेरा

---

३७८ धनुष जैसा वक्र जो मूत्राशय सो "वस्ति" ऐसैं कहियेहै। इस आशयकरि कहैहैं॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगतषोडशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १६ ॥

अथ पंचमप्रपा० सप्तदशः खंडः ॥१७॥

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम! कं त्वमात्मानमुपास्स इति? पृथिवीमेव

अथ श्री० मूलभाषा० पंचमप्रपा० सप्तदशः खंडः ॥१७॥

अर्थः–अनंतर [राजा] ६ उद्दालक आरुणिकूं कहताभया:–हे गौतम! तूं किस आत्माकूं उपासताहैं? ॥ ॥ ऐसैं [उक्त हुया उद्दालकः–] हे भगवन्! हे राजन्!

बस्ति भिन्न (भेदकूं प्राप्त) होता जो तूं मेरेप्रति नहीं आवता तो ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्रपाठकस्य षोडशःखंडः ॥ १६ ॥

अथ श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्र० सप्तदशःखंडः ॥ १७ ॥

उद्दालक-अश्वपतिसंवाद (पृथ्वी आत्मा) २

टीका:–[३७९]अनंतर ६ उद्दालक मुनिकूं राजा

अथ श्री० पंचमप्रपाठ० सप्तदशखंडस्य पिप्पणम् १७

३७९ इहां प्राचीनशालआदिक पांचके मौन स्थित हुयेके अनंतर। यह अथ शब्दका अर्थ है ॥

इति श्री० पंचमप्रपाठकगतसप्तदशखंडस्य टिप्पणम् ॥ १७ ॥

भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रति-
ष्ठाऽऽत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमु-
पास्से। तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया
च पशुभिश्च ॥ १ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं प-
श्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले
य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते। पा-

पृथिवीकूंहीं। ऐसैं कहताभया ॥ ॥ [रा-
जाः-] यह प्रसिद्ध प्रतिष्ठारूप आत्मा
वैश्वानर है। जिस आत्माकूं तूं उपास-
ताहैं ॥ तातैं तूं प्रजाकरि अरु पशुनकरि
प्रतिष्ठित हैं ॥ १ ॥

अर्थः-अन्नकूं खाताहैं। प्रियकूं देख-
ताहैं ॥ अन्नकूं खाताहै। प्रियकूं देखता-
है। इसके कुलविषै ब्रह्मवर्चस होवैहै।
जो इस आत्मारूप वैश्वानरकूं ऐसैं उपा-

कहताभया। इत्यादि समान है ॥ ॥ उद्दा-

दौ त्वेतावात्मन इति होवाच ॥ पादौ ते
व्यम्लास्येतां यन्मां नागमिष्य इति २

इति पंचमप्रपाठकस्य सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

सताहै ॥ ये आत्माके दो पाद तो हैं।
ऐसैं कहताभया ॥ तेरे दो पाद विम्लान
होते जो मेरेप्रति नहीं आवता ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्र०सप्तदशः खंडः १७

लक उवाचः—हे भगवन् ! हे राजन् ! "पृ-
थिवीकूंहीं" ऐसैं कहताभया ॥ ॥ [रा-
जोवाचः—] यह वैश्वानर आत्माकी प्रसिद्ध
प्रतिष्ठा (पादका युगल) है ॥ तेरे दो पाद
विम्लान (शिथिलरूप)होते जो तूं मेरेप्रति
नहीं आवता तो ऐसैं ॥ १ ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपा०सप्तदशःखण्डः ॥ १७ ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्याष्टादशः खंडः १८

तान् होवाचैते वै खलु यूयं पृथगि-

अथ श्री० मूलभाषा० पंचमप्रपाठकस्याष्टादशः खंडः १८

अर्थः–तिनकूं [राजा] कहताभयाः–ये

अथ श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्रपाठकस्याष्टादशःखंडः १८

सर्वसैं अश्वपतिका संवाद (समस्तवैश्वानरविद्या) २

टीकाः–तिनैं[३८०] यथोक्त वैश्वानरके दर्शनवाले

अथश्री० पंचमप्रपा०गताष्टादशखंडस्यटिप्पणम् १८

३८० उद्दालकपर्यंत विद्यार्थिनके उपसन्न (शरणागत) हुये समस्तभावकरि वैश्वानरकी विद्याकूं कहनेकूं इच्छता हुया अश्वपति नामक राजा। तिनके मिथ्याज्ञानकूं अनुवाद करैहै ॥ इहां "वै। खलु" ये दो निपातरूप शब्द अर्थरहितकीन्यांई अर्थरहित हैं। परंतु अर्थरहितहीं नहीं। काहेतैं तिन शिष्यनके मिथ्याज्ञानीपनैकी प्रसिद्धिके स्मारक होनेतैं औ "तुह्म" यह पद पाठके क्रमसैं पूर्व उक्तबी अन्वयकेअर्थ फेरि अनुवाद करिके कहा है औ पृथक्कीन्यांई जानते हुये। ऐसैं संवंध है ॥ जैसैं जन्मांधपुरुष हस्तीके दर्शनविषै भिन्नदृष्टिवाले होवैहैं। तैसैं तुह्म एक सर्वात्मक हुयेबी वैश्वानररूप आत्माकूं भिन्नकीन्यांई जानते हुये कहिये परिच्छिन्न अत्तारूपकरि आत्माकूं जानते हुये॥ तैसैं हुये मिथ्यादर्शी तुह्म प्रत्यवायतैं पूर्वहीं मेरेप्रति आवते भये। यह श्रेष्ठकामकरतेभये। यह अर्थ है ॥

वेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाꣳसोऽन्नम-
त्थ। यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमा-

तुह्म इस वैश्वानररूप आत्माकूं पृथक्की-
न्यांई जानतेहुये अन्नकूं खाते हैं ॥ जो
तो इसकूं ऐसैं प्रादेशमात्र अभिविमान

ब्राह्मणनकूं राजा कहताभया ॥ राजोवाचः—ह-
स्तिदर्शनविषै जन्मांध पुरुषनकीन्यांई ये तुम
[इहां वै । खलु । ये दो निपात अर्थरहित हैं]
अपृथक् हुये इस एक वैश्वानररूप आत्माकूं
पृथक्की न्यांई जानतेभये । अर्थ यह जोः—
परिच्छिन्न आत्माकी बुद्धिकरि अन्नकूं खातेहो
॥ ॥[३८१]परंतु जो इसकूं ऐसैं कहिये [३८२]स्वर्ग-

३८१ प्रधानविद्याकूं कहनेकूं पातनिका (अवतरणिका)कूं करिके ताकूं अब उपदेश करैहै ॥ इहां इसकूं कहिये एवंभूतकूं (इस प्रकारके वैश्वानरकूं) जो उपासता है सो सर्वविषै अन्नकूं भक्षण करता है । ऐसैं संबंध है ॥

३८२ एवं शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां एक । याका समस्त त्रैलोक्यस्वरूप । यह अर्थ है"

नमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥ १ ॥

आत्मारूप वैश्वानर[कूं] उपासताहै । सो सर्व लोकनविषै सर्वभूतनविषै सर्व आत्माओंविषै [स्थित होयके] अन्नकूं खाताहै ॥१॥

लोकरूप मूर्धासैं आदिलेके पृथिवीरूप पादपर्यंत यथोक्त अवयवोंकरि विशिष्ट एक अरु प्रादेशमात्र जो [383] स्वर्गलोकरूप मूर्धासैं आदिलेके पृथिवीरूप पादपर्यंत जे प्रादेश (प्रदेशरूपअवयव) हैं तिनोंकरि अध्यात्म (प्रत्यगात्माविषै) हीं जानियेहै सो प्रादेशमात्र है । वा जो [384] मुखआदिक क-

३८३ प्रादेशमात्र । इस अर्थकूं विभाग करैहैं ॥ इहां यथोक्त अधिदैविक अवयवोंकरि अध्यात्म कहिये प्रत्यगात्माविषैहीं यह प्रमाण करियेहै कहिये जानियेहै । इस व्युत्पत्तिकरि प्रादेशमात्र है ताकूं । यह अर्थ है ॥

३८४ प्रकारांतरकरि व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं तिन प्रदेशनविषै यह अत्ताभावकरि साक्षी होनेकरि जानियेहै । इस व्युत्पत्तिकरि तैसा (प्रादेशमात्र) कहिये है ॥

रणोंविषै अत्ता (भोक्ता)भावकरि जानियेहै सो प्रादेशमात्र है। वा [385]स्वर्गलोकसैंआदिलेके पृथिवीपर्यंत प्रदेशनके परिमाणवाला प्रादेशमात्र है। वा [386]प्रकर्षकरि शास्त्रसैं आदेश करियेहैं ऐसैं प्रदेश स्वर्गलोकआदिकहीहैं तितनैं परिमाणवाला प्रादेशमात्र है। [387]अन्यशाखाविषै तो मस्तकादिक जो चिबुक (हनुवटी)विषै प्रतिष्ठित प्रदेश है सो प्रादेशमात्र है। ऐसैं प्रादेशमात्रकूं कल्पतेहैं ॥ [388]इहांतो तैसैं अभिप्रेत नहींहै। काहेतैं "तिस वा इस आत्माका" इत्यादि याके द्वितीयवाक्यविषै उपसंहारतैं॥ ऐसा प्रादेशमात्र अरु [389]प्रत्यगात्म-

---

३८५ अन्यप्रकारसैं व्याख्यान करैहैं ॥

३८६ अन्य अर्थकूं कहैहैं ॥

३८७ "औ याकूं तिसविषै मानते हैं" इस न्यायकरि अन्यपक्षकूं कहैहैं ॥

३८८ ननु तब जाबाल श्रुतिके अनुसारकरि मस्तककूं आरंभ करिके अधरफलक (चिबुक)पर्यंत देहके अवयवविषै संपादन किया जो वैश्वानर सो प्रादेशमात्र होहू ? यह कथन बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सर्वात्मभावकारि वैश्वानरके उपसंहारके देखनेतैं इहां जाबालश्रुति अनुसरनेकूं योग्य नहीं है ॥

३८९ अब अन्यविशेषणकूं व्याख्यान करैहैं ॥

भावकरि "मैं हूं" ऐसैंजानियेहै सो अभिविमान है। ऐसा अभिविमान। तिस इस आत्मारूप वैश्वानरकूं कहिये विश्वं[३९०] (सर्व) नरनकूं पुण्य-पापके अनुसार गतिकेतांई लेजाताहै ऐसा जो सर्वात्मा यह ईश्वर सो वैश्वानर है। वा सर्वात्मा होनेतें विश्वनररूपहीं वैश्वानर है। वा विश्व नरोंकरि प्रत्यगात्मभावसैं विभागकरिके ग्रहण करियेहै यातें वैश्वानर है। तिस वैश्वानरकूं जो ऐसैं उपासताहै। सो (वैश्वानरका वेत्ता) अदन (भक्षण) करनेवाला अन्नादी हुया स्वर्गलोकआदिक सर्वलोकनविषै अरु चराचर-रूप सर्वभूतनविषै अरु शरीरइंद्रियमनबुद्धिआदिक सर्व आत्माओंविषै स्थित होयके

---

३९० सर्वेश्वरताकूं वा सर्वात्मताकूं वा सर्वप्रत्यक्षताकूं हेतुकरिके वैश्वानर शब्दकूं अनेक प्रकारसैं व्याख्यान करैहैं॥ इहां ईश्वर वैश्वानर है [वा विश्वनरहीं वैश्वानर है] इस ठिकानैं वैश्वानरपद देहली दीपकन्यायकरि उभयत्र (दोनूं-विषै) संबंधकूं पावता है औ सो वैश्वानरका वेत्ता अन्नकूं भक्षण करता हुया सर्व लोकनविषै स्थित होयके अन्नकूं भक्षण करैहै। ऐसैं संबंध है॥

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः

अर्थः-तिस इस आत्मारूप वैश्वानरका मूर्धाहीं सुतेजा (स्वर्ग) है। चक्षु विश्वरूप (सूर्य) है। प्राण पृथग्वर्त्मा (वा-

अन्नकूं [भक्षण करैहै] ॥ तिनविषै[391] जातैं प्राणिनके आत्माकी कल्पनाका व्यपदेश (व्यवहार) होवैहै यातैं वे आत्मा कहियेहैं वैश्वानरका[392] वेत्ता सर्वात्मा हुया अन्नकूं भक्षण करताहै। परंतु जैसैं अज्ञानी पिंडमात्रका अभिमानी हुया अन्नकूं भक्षण करताहै। तैसैं नहीं। यह अर्थ है ॥ १ ॥

टीकाः-किस[393] हेतुतैं ऐसैं [निश्चय किया]

३९१ आत्मशब्दकरि शरीर आदिक कैसैं ग्रहण करियेहैं? तहां कहैहैं ॥

३९२ "सर्व लोकनविषै" इत्यादि वाक्यके तात्पर्यरूप अर्थकूं दिखावै हैं ॥

३९३ ननु वैश्वानरका उपासक सर्वात्माहुया अन्नकूं खाताहै ऐसैं किस हेतुतैं निश्चितभया? इस आशंकाकूं अनुवाद करिके हेतुके दिखावनेपर होनेकरि उत्तररूपताकरि उत्तर

पृथग्वर्त्माऽऽत्मा सन्देहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लो-

यु) है । आत्मारूप संदेह बहुल (नभ) है । बस्तिहीं रयि (जल) है । पृथिवीहीं दो पाद हैं ॥ उरहीं वेदि है । लोम बर्हि

है ? तहां कहैहैं:- जातैं तिस प्रकृतहीं इस आत्मारूप वैश्वानरका मूर्धाहीं सुतेजा (स्वर्गलोक) है । चक्षु विश्वरूप (सूर्य) है । प्राण पृथग्वर्त्मा (वायु) है । आत्मा जो संदेह (देहका मध्यभाग) सो बहुल (आकाश) है । बस्ति (मूत्राशय) हीं रयि (धनकरि लक्षित जल) है । पृथिवीहीं दो पाद हैं ॥ [३९४] अथवा विधिरूप अर्थवाला यह वचन

(पीछले) वाक्यकूं ग्रहणकरैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:-वैश्वानरकूं सर्वात्मा होनेतैं ताके उपासककूं बी इस रूपताकरि सर्वात्मा होनेतैं यह (ताका उपासक) सर्वात्महोयके सर्वत्र अन्नकूं खाताहै । यह युक्त है ॥

३९४ "तिस इसका" इत्यादि वाक्यके अन्य तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

मानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वा-
हार्य्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्याष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

(दर्भ) है। हृदय गार्हपत्य है। मन अ-
न्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि) है। मुख आ-
हवनीय है ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभा०पंचमप्रपा०अष्टादशः खंडः १८

ऐसैं उपास्य है इसरीतिसैं [बोधन करै] है॥ ॥

३९५ अब वैश्वानरवेत्ताके भोजनविषै अग्निहोत्रकूं संपादन करता हुया अश्वपति कहैहैः—इस वैश्वानररूप भोक्ताका उर (वक्षस्थल)हीं वेदि

३९५ प्रधानविद्या (मुख्य विद्या)कूं कहिके अब ताके अंगभूत प्राणाग्निहोत्रकूं दिखावनेकूं इच्छते हुये आचार्य भूमिकाकूं करैहैं ॥ इहां संपादन करनेकूं इच्छताहुया अश्वपति आदिविषै ताके अंगनकूं कहैहै ॥ इहां "वेदि" ऐसैं स्थंडिलमात्र ग्रहणकरिये है। काहेतैं अग्निहोत्रविषै तितनैं मात्रकूं उपयोगी होनेतैं अरु इतर वेदिके भागकूं दर्श पूर्णमास आदिकका अंगहोनेतैं ॥ औ इधरवेदिविषै बिछायिते हैं जे दर्भ वे बर्हि शब्दकरि कहिये हैं औ हृदयकूं गार्हपत्य अग्निपना जो है सो मनके प्रणयन (उत्पत्ति)का हेतु होनेतैं है औ प्रणीतकी न्यांई। याका उत्पन्न हुयेकी न्यांई। यह अर्थ है ॥

अथ पंचमप्रपा० एकोनविंशः खंडः १९

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ

अथ श्री० मूलभा० पंचमप्रपाठकस्यैकोनविंशः खंडः१९

अर्थः–तहां जो भक्त (रंधित अन्न)

(स्थंडिल)है आकारके सामान्यतैं। लोम वेदिविषै बिछाये दर्भनकी न्यांई उरविषै बिछाये देखियेहैं यातैं वे बर्हि (दर्भ) है। हृदय गार्हपत्य नामक अग्नि है । जातैं मन हृदयतैं प्रणीतकी न्यांई अंतरायरहित होवैहै यातैं अन्वाहार्यपचन नामक अग्नि मन है॥ आस्य (मुख) ३९६आहवनीय अग्निकी न्यांई आहवनीय है। इसविषै अन्न होम करियेहै यातैं ॥ २ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्रपाठकस्याष्टादशः खंडः॥१८॥

अथ श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्रपाठकस्यैकोनविंशः खंडः

विद्वान्के अग्निहोत्रकी सिद्धिअर्थ "प्राणाय स्वाहा यह प्रथमाहुति" २

टीकाः–तहां ऐसैं हुये जो भक्त (रंधित

३९६ औ आहवनीय अग्निका सादृश्य मुखकूं दिखावै हैं॥
इति श्री० पंचमप्रपाठकगताष्टादशखंडस्य टिप्पणम् ॥१८॥

ज्ञाताग्निहोत्रसिद्ध्यर्थं "प्राणाय स्वाहा" यह १ आहुति २

स या प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ॥ १ ॥

प्रथम होवै सो होम करनेकूं योग्य है। सो जिस प्रथम आहुतिकूं होम करै ताकूं "प्राणाय स्वाहा" ऐसैं होम करै। प्राण तृप्त होता है ॥ १ ॥

अन्न) भोजनकालविषै भोजनकेअर्थ प्रथम आवै सो होम करनेकूं योग्य है। [३९७]अग्निहोत्रकी संपत्मात्रकूं विवक्षित होनेतैं इहां (वैश्वानरके वेत्ताके भोजनविषै) अग्निहोत्रके अंगन-

---

अथ श्री०पंचमप्रपा०एकोनविंशखंडस्य टि० १९

३९७ इहां ऐसैं हुये। याका उक्तन्यायकरि अग्निहोत्रके संपादित (सिद्ध) हुये। यह अर्थ है ॥ संपादनकिये अग्निहोत्र भावके सामान्यतैं अग्निके उद्धारआदिक ताके अंग अन्य ठिकाने (प्रसिद्ध अग्निहोत्रविषै) होवैहैं? यह आशंकाकरिके तिन अंगोंकी बुद्धिमात्रकूं इहां कहनेकूं इच्छित होनेतैं ऐसैं मतिकहो। इसरीतिसैं कहैहैं ॥ इधर "इहां ऐसैं वैश्वानरके वेत्ताका भोजन कहिये है ॥

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि

अर्थः—प्राणके तृप्त हुये चक्षु तृप्त हो-

की इतिकर्त्तव्यता (न्यूनता) की प्राप्ति नहीं है ॥ [३९८] सो भोक्ता जिस प्रथम आहुतिकूं होम करै ॥ ताकूं कैसें होम करै ? तहां कहैहैः— "[३९९] प्राणाय स्वाहा" इस मंत्रकरि [४००] आहुति शब्दतैं अवदान (एक आहुतिके पूर्णहोनेयोग्य द्रव्य) प्रमाण अन्नकूं मुखमैं डालै । यह अर्थ है ॥ [४०१] तिसंकरि प्राण तृप्त होवैहै ॥ १ ॥

टीकाः—प्राणके तृप्त हुये चक्षु तृप्त होवैहै । चक्षु आदित्य औ स्वर्गलोक । इत्या-

---

३९८ प्रकृत होमगत बीचके विभागकूं कहैहैं ॥

३९९ इहां "कैसें" इस रीतिसैं मंत्र वा हुतद्रव्यका परिमाण वा फल पूंछियेहै । तिनमैं प्रथम (मंत्र)के प्रति कहैहैं॥

४०० जब द्वितीय पक्षहै तब तहां कहैहैं ॥ इहां अवदानका प्रमाण कहिये परिमाण याका कर्मीनकूं प्रसिद्ध जो आहुतिका प्रमाण है तिसकरि परिमित । यह अर्थ है ॥

४०१ जब तृतीय विकल्प होवै तब तहां कहैहैं ॥

तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यत्यां यत्किञ्च द्यौरादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पंचमप्रपाठकस्यैकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

ता है। चक्षुके तृप्त होते आदित्य तृप्त होता है। आदित्यके तृप्त होते स्वर्गलोक तृप्त होता है। स्वर्गलोकके तृप्त होते जिस किसीकेतांई स्वर्गलोक अरु आदित्य दो अधिष्ठित होवैहैं सो तृप्त होता है। ताकी तृप्तिके अनंतर प्रजाकरि पशुनकरि अन्नआदिककरि तेजकरि ब्रह्मवर्चसकरि [भोक्ता] तृप्त होता है ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभा०पंचमप्र०एकोनविंशः खंडः १९

दिकके तृप्त हुये जिस किसीकेतांई स्वर्गलोक अरु आदित्य स्वामिभावकरि अधिष्ठित होवैहैं

सो बी तृप्त होवैहै। ताकी तृप्तिके पीछे आप भोजन करनेवाला तृप्त होवैहै। यह प्रत्यक्ष[४०२] है॥ किंवाः–प्रजाआदिकनकरि [भोक्ता तृप्त होवैहै] ॥ इहां तेज जो है सो शरीरविषै स्थित दीप्ति (उज्वलता) है वा प्रगल्भपना (अन्योकूं दबावनेवालेपना)है औ ब्रह्मवर्चस जो है सो वृत्त अरु स्वाध्याय (आचार अरु वेदाध्ययन) रूप निमित्तवाला तेज है॥ २॥

इति श्री०पंचमप्रपाठकस्यैकोनविंशः खंडः ॥ १९ ॥

---

४०२ भोजन करनेवालेकी तृप्तिविषै प्रत्यक्ष प्रमाण है औ प्राण आदिककी तृप्तिविषै शास्त्र प्रमाण है। इस विभागकूं अभिप्रायका विषय करिके कहेहैं॥ इहां प्रजाआदिकनकरि भोक्ता तृप्त होवैहै। ऐसैं संबंध है"

इति श्री०पंचमप्रपाठकगतैकोनविंश-विंशैकविंश-द्वाविंश-त्रयोविंश-खण्डनां टिप्पणम् ॥१९॥ २० ॥ २१ ॥ २२॥ २३ ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य विंशः खण्डः २०

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥१॥

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यतीषु

अथ श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपाठकस्य विंशः खंडः २०

अर्थः—अनंतर जिस द्वितीय [आहुति] कूं होम करै ताकूं "व्यानाय स्वाहा" ऐसैं होम करै। व्यान तृप्त होताहै ॥ १ ॥

अर्थः—व्यानके तृप्त हुये श्रोत्र तृप्त होताहै। श्रोत्रके तृप्त हुये चंद्रमा तृप्त होताहै। चंद्रमाके तृप्त हुये दिशा तृप्त होतियां हैं। दिशाओंके तृप्त हुये जिस किसीकेताँई दि-

---

अथ श्री॰ भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठकस्यविंशः खंडः २०

"व्यानाय स्वाहा" इस द्वितीयाहुतिका कथन २

टीकाः—अनंतर जिस द्वितीयाकूं तृती-

यत्किञ्च दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति २

इति पंचमप्रपाठकस्य विंशः खण्डः ॥ २० ॥

अथ पंचमप्रपाठकस्यैकविंशः खंडः २१

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥ १ ॥

शा अरु चंद्रमा अधिष्ठित होवैहैं सो तृप्त होताहै। ताकी तृप्तिके पीछे प्रजाकरि पशुनकरि अन्नआदिककरि तेजकरि ब्रह्मवर्चसकरि [भोक्ता] तृप्त होवैहै ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपा०विंशः खंडः २०

अथ श्री०मूलभाषा०पंचमप्रपाठकस्यैकविंशः खंडः २१

अर्थः—अनंतर जिस तृतीय [आहुति] कूं होमकरै ताकूं "अपानाय स्वाहा" ऐसैं

याकूं चतुर्थीकूं पंचमीकूं। यह समानहै १॥२

इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य विंशः खंडः ॥२०॥

अथ श्रीभाष्यभाषा०पंचमप्रपा०एकविंशः खंडः ॥२१॥

"अपानाय स्वाहा" इस तृतीयाहुतिका कथन २

अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यत्यामाग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यत्यां यत्किञ्च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पंचमप्रपाठकस्यैकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

होमकरै । अपान तृप्त होताहै ॥ १ ॥

अर्थः—अपानके तृप्तहुये वाक् तृप्त होतीहै । वाक्के तृप्तहुये अग्नि तृप्त होताहै । अग्निके तृप्तहुये पृथिवी तृप्त होतीहै । पृथिवीके तृप्तहुये जिस किसीकेताईं पृथिवी अरु अग्नि अधिष्ठित होवैहैं सो तृप्त होवैहै । ताकी तृप्तिके पीछे प्रजाकारि पशुनकरि अन्नआदिककरि तेजकरि ब्रह्मवर्चसकरि [भोक्ता]तृप्त होताहै ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभा०पंचमप्रपा०एकविंशःखंडः २१

॥ १ ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्यैकविंशः खंडः॥२१॥

अथ पंचमप्रपाठकस्य द्वाविंशः खंडः २२

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात् समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति॥१॥

समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यत्यां य-

---

अथ श्री॰मूलभाषा॰पंचमप्रपाठकस्य द्वाविंशः खंडः २२

अर्थः-अनंतर जिस चतुर्थीं [आहुति] कूं होमकरै ताकूं "समानाय स्वाहा" ऐसैं होमकरै। समान तृप्त होताहै ॥ १ ॥

अर्थः-समानके तृप्त हुये मन तृप्त होताहै। मनके तृप्त हुये पर्जन्य (वृष्टिकी सामग्रीका अभिमानी देव) तृप्त होताहै ॥ पर्जन्यके तृप्तहुये विद्युत् तृप्त होतीहै। विद्युत्के तृप्त हुये जिस किसीकेताईं विद्युत्

अथ श्री॰भाष्यभाषा॰पंचमप्रपाठ॰द्वाविंशःखंडः॥२२॥

"समानाय स्वाहा" इस चतुर्थाहुतिका कथन २

त्किञ्च विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृ-
प्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया प-
शुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥२॥

इति पंचमप्रपाठकस्य द्वाविंशः खंडः ॥ २२ ॥

अथ पंचमप्रपाठ० त्रयोविंशः खंडः २३

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादु-

अरु पर्जन्य अधिष्ठित होवैहैं सो तृप्त हो-
ताहै। ताकी तृप्तिके पीछे प्रजाकरि पशुन-
करि अन्नआदिककरि तेजकरि ब्रह्मवर्चस-
करि [भोक्ता] तृप्त होताहै ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री० मूलभा० पंचमप्रपाठ० द्वाविंशःखंडः२२

अथ श्री० मूलभाषा० पंचमप्रपाठकस्यत्रयोविंशःखंडः२३

अर्थः—अनंतर जिस पंचमी [आहुति]
कूं होमकरै ताकूं "उदानाय स्वाहा" ऐसैं

॥ १ ॥ २ ॥

इति श्री० भाष्यभाषा० पंचमप्रपाठ० द्वाविंशः खंडः॥ २२ ॥

अथ श्री० पंचमप्रपा० त्रयोविंशः खंडः ॥ २३ ॥

"उदानाय स्वाहा" इस पंचमाहुतिका कथन २

दानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ १ ॥

उदाने तृप्यति वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्ततृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥२॥

इति पंचमप्रपाठकस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥२३॥

होमकरै। उदान तृप्त होताहै ॥ १ ॥

अर्थः–उदानके तृप्त हुये त्वक् तृप्त होतीहै। त्वक्के तृप्त हुये वायु तृप्त होताहै। वायुके तृप्त हुये आकाश तृप्त होताहै। आकाशके तृप्त हुये जिस किसीकेतांईं आकाश अरु वायु अधिष्ठित होवैहैं सो तृप्त होताहै। ताकी तृप्तिके पीछे प्रजाकरि पशुनकरि अन्नआदिककरि तेजकरि ब्रह्मवर्चसकरि [भोक्ता] तृप्त होताहै ऐसैं ॥ २ ॥

इति श्री०मूलभा०पंचमप्र०त्रयोविंशः खंडः २३

॥ १ ॥ २ ॥

इति श्री०भाष्यभाषा०पंचमप्रपाठकस्य त्रयोविंशःखंडः२३

अथ श्रीछान्दोग्योपनिषदः पंचमप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः प्रारभ्यते॥२४॥
स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति य-

अथ श्रीछांदोग्योपनिषदो मूलमात्रभाषादीपिकायाः पंचमप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः प्रारभ्यते ॥ २४ ॥

अर्थः—सो जो अविद्वान् हुया इस अग्निहोत्रकूं हवन करताहै। जैसैं अंगारनकूं

अथ श्रीछांदोग्योपनिषद् भाष्यभाषादीपिकायाः पंचम प्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः प्रारभ्यते ॥ २४ ॥

ऐसैं ज्ञाताकूं इस अग्निहोत्रका फल ९

टीकाः—सो जो कोइकबी इस यथोक्त वैश्वानरके दर्शनकूं अविद्वान् हुया प्रसिद्ध अ[४०३]ग्निहोत्रकूं होमताहै। जैसैं आहुतिके योग्य अंगारनकूं दूरी करिके आहुतिके स्थानविषै

अथश्री०पंचमप्र०गतचतुर्विंशखंडस्य टिप्पणम् २४

४०३ प्रसिद्ध अग्निहोत्रकी निंदारूप द्वारकरि वैश्वानरके वेत्ताके यथोक्त अग्निहोत्रकूं अवश्य कर्त्तव्यताकेअर्थ स्तुत करैहैं ॥

थाऽङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक् तत्स्यात् ॥ १ ॥

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहो-

दूरीकरिके भस्मविषै हवनकूं करै तैसा [ताका]सो (हवन) होवैहै ॥ १ ॥

अर्थः—अनंतर जो इसकूं ऐसैं जानता-हुया अग्निहोत्रकूं हवनकरताहै। ताका सर्व

भस्ममैं होमकूं करै ताके तुल्य वैश्वानरके वेत्ताके अग्निहोत्रकूं अपेक्षा करिके ताका सो अग्निहोत्रका हवन होवैहै ॥ इस रीतिसैं प्रसिद्ध अग्निहोत्रकी निंदाकरि वैश्वानरके वेत्ताका अग्नि-होत्र स्तुत करियेहै ॥ १ ॥

टीकाः—यातैंबी यह श्रेष्ठ अग्निहोत्र है ॥ ॥

४०४ कैसैंकि ? अनंतर जो इसकूं ऐसैं जानता-

---

४०४ प्राणाग्निहोत्रकी श्रेष्ठताविषै यातैं शब्दकरि ग्रहण किये अन्यहेतुकूं प्रश्नपूर्वक प्रकट करैहैं ॥ इहां नियमसंबंधी अग्निहोत्रकी निंदाद्वारा प्राणाग्निहोत्रकी स्तुतिके अनंतर प्र-

ति तस्य सर्व्वेषु लोकेषु सर्व्वेषु भूतेषु सर्व्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥ २ ॥

लोकनविषै। सर्वभूतनविषै। सर्व (देहेंद्रियादि) आत्माओंविषै हुत (हवन किया) होवैहै ॥ २ ॥

हुया अग्निहोत्रकूं होमताहै। तिस यथोक्त वैश्वानरके विज्ञानवालेका सर्व लोकनविषै। इत्यादि वाक्य पूर्व उक्त अर्थवाला है। काहेतैं हुतं होवैहै अरु अन्नकूं भक्षण करताहै। इन दोनूं शब्दनकूं एक अर्थवाले होनेतैं ॥ २ ॥

कारांतकरि ताहीकी निर्दोषता कीर्तन करियेहै। यह अथ शब्दका अर्थ है औ "यह" ऐसैं वैश्वानरका उपासन कहा औ "ऐसैं" याका वैश्वानरके उक्त सर्वात्मभाव आदिक प्रकारकरि। यह अर्थ है औ अग्निहोत्रकूं। ऐसैं संपादित अग्निहोत्र ग्रहण करियेहै ॥

४०५ ननु "सर्व लोकनविषै अन्नकूं खाताहै" यह वाक्य उक्त अर्थवाला है। इसप्रकारसैं कैसैं व्याख्यान किया। काहेतैं ताका सर्व लोक आदिकनविषै हुत होवैहै। ऐसा यह वाक्य अन्य प्रकारका है? तहां कहैहैं ॥

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवꣳहास्य सर्व्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥ ३ ॥

अर्थः—तहां जैसें इषीकाका तूल (कपास) अग्निविषै डाल्या हुया दग्ध होवै। ऐसैंहीं इसके सर्वपाप (पुण्यापुण्य) दग्ध होतेहैं। जो इसकूं ऐसैं जानता हुया अग्निहोत्रकूं हवनकरताहै ॥ ३ ॥

टीकाः—किंवा[४०६]:—सो जैसें इषीका (तृणविशेष)का तूल (कार्पासयुक्त अग्र) अग्निविषै डाल्या हुया शीघ्रहीं दग्धहोवै। ऐसैं हीं इस सर्वात्मभूत अरु सर्व अन्नोंकेभोक्ता विद्वानके सर्व (अवशेषरहित) अनेक जन्मों-

---

४०६ इसतैं बी वैश्वानरविद्यावालेका अग्निहोत्र श्रेष्ठ है। ऐसैं कहनेकूं वैश्वानरविद्याकूं स्तुत करैहैं ॥ इहां "तहां" याका वैश्वानरविद्याके माहात्म्यविषै दृष्टांत है। यह अर्थ है औ इषीकाका। याका मुंजके मध्यवर्ति तृणका। यह अर्थ है॥

तस्माद्ु हैवंविद्यद्यपि चण्डालायो-

अर्थः—तातैंहीं ऐसैं जाननेवाला यद्यपि

विषै संचित औ इहां (वर्त्तमान शरीरविषै) ज्ञानकी उत्पत्तितैं पूर्व होनेवाले अरु ज्ञानके सहभावि ऐसे धर्म अधर्म नामवाले पाप दग्ध होतेहैं [४०७] वर्त्तमानशरीरके आरंभक (प्रारब्धकर्मरूप) पापसैं वर्जित ॥ लक्ष्य (वेधनकरने योग्य निशान)के प्रति छूटे बाणकीन्यांई प्रवृत्त फलवाला होनेतैं ता (प्रारब्धकर्म)का दाह (नाश) नहीं होवैहै । जो [४०८] इसकूं ऐसैं जानता हुया अग्निहोत्रकूं होम करताहै (भोजन करताहै) ॥ ३ ॥

टीकाः—सो (विद्वान्)यद्यपि उच्छिष्ट (जू-

---

४०७ सर्व शब्दतैं प्रारब्ध कर्मकेबी दाहकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

४०८ वैश्वानरविद्याके महाफलवान्ताके सिद्धहुये इस विद्यावालेका अग्निहोत्र श्रेष्ठ है । ऐसैं ताके कर्त्ताकी सर्व

च्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वा-
नरे हुतꣳ स्यादिति तदेष श्लोकः ॥ ४ ॥

चंडालकेअर्थ उच्छिष्टकूं देवै । इसका सो आत्मारूपहीं वैश्वानरविषै हुत होवैहै इति ॥ तहां यह श्लोक है ॥ ४ ॥

ठे अन्न)के अयोग्य चंडालकेअर्थ उच्छिष्टकूं देवै कहिये निषिद्ध उच्छिष्टके दानकूं यद्यपि करै । तथापि आत्मारूपहीं चंडालके देहमैं स्थित वैश्वानरविषै इसका सो हुत (होम-किया) होवैहै । अधर्मका निमित्त नहीं । ऐसैं विद्याकूं हीं स्तुतकरैहै ॥ तिस इस स्तुतिरूप अर्थविषै श्लोक (मंत्र) बी यह होवैहै ॥४॥

दोषनकरि अस्पर्शिता है । इस आशयकरि कहैहैं ॥ इहां विद्याकूंहीं । याका विद्याकी स्तुतिद्वारा अग्निहोत्रकूं । यह अर्थ है औ स्तुतिरूप अर्थविषै । याका अग्निहोत्रकी स्तुतिरूप जो अर्थ है तिसविषै । यह अर्थ है ॥

ऐसैं ज्ञाताकूं इस अग्निहोत्रका फल ६

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्य्युपासत एवꣳ सर्व्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपा

अर्थः—जैसैं क्षुधित बाल माताकूं उपासतेहैं । ऐसैं सर्वभूत अग्निहोत्रकूं (याके

टीकाः—जैसैं इस लोकविषै क्षुधित कहिये बुभुक्षित (भूंखे) बालक माताकूं "कब हमारेअर्थ माता अन्नदेवैगी" ऐसैं उपासतेहैं । ऐसैं अन्नके भोक्ता सर्वभूत ऐसैं जाननेवालेके अग्निहोत्र (भोजन)कूं "कब यह भोजनकूं करैगा" ऐसैं उपासतेहैं । अर्थ यह जोः—[४०९]सर्व जगत् विद्वान्के भोजनकरि तृप्त होवैहै ॥ इहां

---

४०९ मंत्रके तात्पर्यरूप अर्थकूं दिखावै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—वैश्वानररूप विद्वान्कूं सर्वात्मा होनेतैं । यह अर्थ है ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां पंचमप्रपाठकगतचतुर्विंशखंडस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ २४ ॥

समाप्तेयं पंचमप्रपाठकस्य टिप्पणिका ॥ ५ ॥

सत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥ ५ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषदि पञ्चमप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः समाप्तः ॥ २४ ॥

भोजनकूं) उपासतेहैं इति । अग्निहोत्रकूं उपासतेहैं इति ॥ ५ ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषदो मूलमात्रभाषादीपिकायां पंचमप्रपाठ॰चतुर्विंशःखंडः समाप्तः ॥२४॥

दोवार उक्ति जो है सो अध्यायकी परिसमाप्तिरूप अर्थवाली है ॥ ५ ॥

इति श्रीछांदोग्योपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां पंचमप्रपाठकस्य चतुर्विंशः खंडः समाप्तः ॥ २४ ॥

समाप्तेयं पंचमप्रपाठकस्य भाष्यभाषादीपिका ५

इतितानोपासनप्रतिपादनपरो भागः समाप्तिमगमत् ॥